# जीव विज्ञान शिक्षण

# (Teaching of Life Science)

## Paper-5 & 6

## B.Ed.

# विषय सूची


**इकाई–1**

| | | |
|---|---|---|
| **अध्याय 1** | विद्यालय पाठ्यक्रम में जीव विज्ञान का महत्व | 5 |
| **अध्याय 2** | जीव विज्ञान शिक्षण के सामान्य लक्ष्य एवं उद्देश्य | 12 |
| **अध्याय 3** | ब्लूम के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण | 20 |
| **अध्याय 4** | जीव विज्ञान के विशिष्ट उद्देश्यों का व्यवहारपरक शब्दावली में प्रतिपादन | 28 |

**इकाई–2 (a)**

| | | |
|---|---|---|
| **अध्याय 1** | प्रकाश संश्लेषण | 39 |
| **अध्याय 2** | मानव तन्त्र–पाचन, श्वसन, उत्सर्जन, परिसंचरण | 44 |
| **अध्याय 3** | कोशिका संरचना | 59 |
| **अध्याय 4** | सूक्ष्म जीव | 65 |
| **अध्याय 5** | आहार श्रंखला | 80 |
| **अध्याय 6** | पारिस्थितिक सन्तुलन | 85 |

**इकाई–2 (b)**

| | | |
|---|---|---|
| **अध्याय 1** | अध्यापन कला विश्लेषण | 91 |

**इकाई–3 (a)**

| | | |
|---|---|---|
| **अध्याय 1** | इकाई योजना बनाना | 95 |
| **अध्याय 2** | पाठ योजना बनाना | 100 |
| **अध्याय 3** | सहायक सामग्री का निर्माण | 120 |
| **अध्याय 4** | जलजीवशला एवं वायुजीवशाला का विकास | 136 |
| **अध्याय 5** | प्रदर्शन प्रयोगों का विकास | 140 |

**इकाई–3 (b)**

| | | |
|---|---|---|
| **अध्याय 1** | स्व–अधिगम सामग्री का विकास | 144 |

**इकाई–4 (a)**

| | | |
|---|---|---|
| **अध्याय 1** | शिक्षण विधियाँ | 155 |
| **अध्याय 2** | व्याख्यान प्रदर्शन विधि | 162 |
| **अध्याय 3** | प्रयोजन विधि | 169 |
| **अध्याय 4** | समस्या समाधान विधि | 178 |

**इकाई–4 (b)**

| | | |
|---|---|---|
| **अध्याय 1** | अस्थाई एवं स्थाई माऊंटस तैयार करना | 184 |
| **अध्याय 2** | नमूनों का संग्रहण एवं संरक्षण | 188 |

**इकाई–4 (c)**

| | | |
|---|---|---|
| **अध्याय 1** | पाठ–प्रस्तावना कौशल | 191 |
| **अध्याय 2** | प्रश्न–कौशल | 197 |
| **अध्याय 3** | दष्टान्त कौशल | 204 |
| **अध्याय 4** | व्याख्या कौशल | 211 |
| **अध्याय 5** | उद्दीपक परिवर्तन कौशल | 218 |

**इकाई–5**

| | | |
|---|---|---|
| **अध्याय 1** | मापन एवं मूल्यांकन का प्रत्यय | 224 |
| **अध्याय 2** | निर्माणात्मक एवं संकलनात्मक मूल्यांकन | 234 |
| **अध्याय 3** | ग्रेडिंग के विभिन्न प्रकार | 238 |
| **अध्याय 4** | एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण के गुण | 243 |
| **अध्याय 5** | एक वस्तुनिष्ठ उपलब्धि परीक्षण तैयार करना | 247 |

# TEACHING OF LIFE SCIENCE
## PAPER–5 & 6
## Group-C (Option-I)

***Objectives***

1. To develop awareness about developments in the area of teaching and learning of Life Science at the national and international level.
2. To develop competencies in the prospective teachers related to Life Science at the lower secondary level with specific reference to Indian School Conditions.
3. To orient prospective teachers in specific educational aspects of Science and Technology Education e.g. general concept of Life Science, aims and objectives of Life Science, pedagogical analysis of contents in Life Science at the lower secondary level, transaction of contents, methods of teaching evaluation etc.
4. To enable prospective teachers to be effective teachers in order to perform the required role as a Life Science teacher under Indian School conditions.

## THEORY

M.Marks : 100
Time : 3 Hrs.

***Note:*** The examiner is requested to set 10 questions taking two questions from each unit. The candidate will be required to attempt five questions selecting at least one from each unit.

**I. Importance, Aims and Objectives:**

1. Importance of Life Science in School Curriculum.
2. General aims and objectives of Teaching Life Science
3. Bloom's taxonomy of educational objectives.
4. Formulation of specific objective of Life Science in behavioral terms

**II. Contents and Pedagogical Analysis**

**1. Contents:**

(a) Photosynthesis (b) Human digestive system-Respiratory, Excretory, Circulatory
(c) Cell structure (d) Micro-organism
(e) Food chain (f) Ecological balance

**2. Pedagogical Analysis**

Following points should be followed for pedagogical analysis:

(a) Identification of concepts (b) Listing behavioural outcomes
(c) Listing activities and experiments (d) Listing evaluation techniques

Teacher will demonstrate pedagogical analysis of any one of the topics mentioned under contents above
The examiner therefore can ask for pedagogical analysis of anyone of the given topics.

**III. Development of Instructional Material**

**1. Transaction of contents**

(a) Unit Planning (b) Lesson Planning
(c) Preparation of teaching aids (d) Development of aquarium, vivarium etc.
(e) Development of demonstration experiments

**2. Development of Self Instructional Material (Linear Programme)**

**IV. 1. Methods of Teaching and Skills (Practical and Micro-teaching)**

(a) Methods of teaching (b) Lecture-demonstration methods
(c) Project method (d) Problem-solving method

**2. Practical skills**

(a) Preparation of temporary and permanent mounts
(b) Collection and preservation of specimen

**3. Micro-teaching skills**

(a) Skill of introducing the lesson (set induction)
(b) Skill of Questioning
(c) Skill of illustration
(d) Skill of explaining
(e) Skill of stimulus variation

**V. Evaluation**

1. Concept of measurement and evaluation 2. Formative evaluation
3. Summative evaluation 4. Different types of grading
5. Attributes of a good achievement test 6. Preparation of an objective type and achievement test

# इकाई–1

# अध्याय-1: विद्यालय पाठ्यक्रम में जीव विज्ञान का महत्व

# (Importance of Life Science in School Curriculum)

**उद्देश्यः**

इस इकाई के अध्याय (1) भाग के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे किः

- जीव विज्ञान शिक्षण के ऐतिहासिक परिपेक्ष्य का वर्णन कर सकें।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति में जीव विज्ञान शिक्षण के महत्व को बता सकें।
- जीव विज्ञान के विद्यालय पाठ्यक्रम में अन्तर्वेश को न्यायोचित ठहरा सकें।
- जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में जीव विज्ञान के महत्व की व्याख्या कर सकें।
- जीव विज्ञान के सामाजिक औचित्य को दर्शा सकें।

**संरचनाः**

1.1. प्रस्तावना
1.2. भारत में जीव विज्ञान शिक्षण
1.3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं जीव विज्ञान शिक्षण
1.4. विज्ञान शिक्षण का महत्व एवं पाठ्यक्रम में स्थान
1.5. सारांश
आर्दश उत्तर
1.6. मुख्य शब्द
1.7. सन्दर्भ ग्रन्थ

## 1.1 प्रस्तावना

जीव–विज्ञान विज्ञान की वह शाखा है जो जीवित प्राणियों और वनस्पतियों के द्रव्य तथा ऊर्जा का अध्ययन करती है। यह एक प्राचीन एवं विस्तत विज्ञान है। जीव विज्ञान का प्रारम्भ मानव सभ्यता के विकास के साथ हुआ। पौराणिक ग्रीक तथा प्रागैतिहासिक मानव द्वारा गुफाओं में निर्मित जानवरों के चित्र इसका स्पष्ट प्रमाण हैं। मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में प्रमुख भोजन के लिए वह प्रारम्भ में जानवरों के मांस एवं वक्षों के फलों आदि पर आश्रित था और इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसने बाद में कषि, उद्यान विज्ञान, यूजेनिक्स जैसे अनेक प्रायोगिक विषयों का विकास किया। अपनी जिज्ञासाओं की शांति, नये उपकरणों के अविष्कार एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये किये गए अन्वेषणों के फलस्वरुप आज जीव विज्ञान के अनेक

उपविषय विकसित हो चुके हैं जैसे टेक्सोनोमी (Taxonomy), एनॉटमी (Anatomy) फिजियोलॉजी (Physiology), इकोलॉजी (Ecology), माइकोलॉजी (Mycology), एन्टोमोलॉजी (Entomolgy), वाइरोलॉजी (Virology), जेनेटिक्स (Genetics), सेल बायलॉजी (Cell Biology), पेथोलॉजी (Pathology), मालीक्यूलर बायलॉजी (Molecular Biology) आदि।

आज का जीव विज्ञान बहुत समद्ध एवं गतिशील हो गया है और इसे वास्तविक विज्ञान कहा जाने लगा है। प्राकृतिक प्रेक्षण पर आधारित वैज्ञानिक ज्ञान को प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में विशेष स्थान दिया गया है। 9वीं से 10वीं शताब्दी में भारतीय विज्ञान एवं विज्ञान शिक्षण को बाहरी वैज्ञानिक धारणाओं की घुसपैठ से बहुत आघात पहुँचा। ब्रिटिश काल में भारत में विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में कोई सार्थक प्रगति नहीं हुई, यहाँ तक कि बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भी हमारे देश में विज्ञान विषय विद्यालयों में नहीं पढ़ाया जाता था और केवल कुछ विश्वविद्यालयों में ही विज्ञान शिक्षण की व्यवस्था थी। भारतवर्ष में स्वतन्त्रता के पश्चात ही जीव विज्ञान के क्षेत्र में कार्य आरम्भ हुआ, अनेक विद्यालय एवं महाविद्यालय खोले गए और जीव विज्ञान विषय के शिक्षण की व्यवस्था की गई।

विदेशों मे सर्वप्रथम 19वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड में 'रगबी' नामक विद्यालय में वनस्पति विज्ञान का शिक्षण आरम्भ हुआ। 1900 ई. तक अमेरिका और इंग्लैण्ड के अनेक विद्यालयों में वनस्पति विज्ञान मानव शरीर क्रिया विज्ञान तथा प्राणी विज्ञान विषय, पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये गए। आधुनिक काल में इंग्लैण्ड में 'फील्ड फाउण्डेशन स्कॉटिश शिक्षा विभाग, एसोसियेयान फॉर साइंस एजूकेशन' आदि संगठन जीव विज्ञान शिक्षण के प्रसार तथा सुधार में लगे हुए हैं। अमेरिका में 'नेशनल सोसायटी फॉर दी स्टडी ऑफ एजूकेशन' द्वारा शिक्षण विधि, पाठ्यक्रम एवं जीव विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यों आदि पर समय–समय पर रिपोर्ट प्रकाशित की जाती है। रूस में 'सांइस एकेडमी' (Science Academy) तथा इसकी शाखाएं जीव विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में कार्य कर रही है।

## 1.2 भारत में जीव विज्ञान शिक्षण (Teaching of Life Science in India)

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सन् 1952–53 में मुदलियर कमीशन ने जीव विज्ञान शिक्षण (सामान्य विज्ञान के एक योग के रूप में) पढ़ाने पर विशेष बल दिया। सन् 1956 में तारादेवी (शिमला) में एक अखिल भारतीय गोष्ठी (All India Seminar on The Teaching of Science in Secondary Schools) का आयोजन किया गया। इसमें प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, आदर्श पाठ्यक्रम, वैज्ञानिक उपकरण, परीक्षा पद्धति तथा विज्ञान–शिक्षण–प्रशिक्षण आदि समस्याओं पर विचार–विमर्श करके अनेक सुझाव प्रस्तुत किये। इसकी सिफारिशों के आधार पर 'अखिल भारतीय विज्ञान–शिक्षण संघ' की स्थापना की गई तथा कुछ शिक्षाविदों को विज्ञान–शिक्षण–पद्धति से परिचित कराने के लिए विदेशों में जाने की सुविधायें प्रदान की गई। विद्यालयों को प्रयोगशाला हेतु अनुदान दिये गए। विभिन्न विद्यालयों में 'विज्ञान–क्लब' की स्थापना की गई। कुछ राज्यों में 'विज्ञान–मन्दिरों' के निर्माण पर भी बल दिया गया। 'विज्ञान–शिक्षक' नामक एक पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारम्भ हुआ। समय–समय पर विज्ञान–शिक्षण व्यवस्था हेतु विभिन्न 'सेमीनार' आयोजित किये गए।

1964 में 'वैज्ञानिक प्रतिभा की खोज' (Science Talent Search) कार्यक्रम का प्रारम्भ किया गया। इसी अवधि में 'राष्ट्रीय विज्ञान शिक्षा परिषद' के सहयोग से 'नेशनल साइंस फाउन्डेशन' द्वारा ग्रीष्मकाल प्रशिक्षण (Summer Training) की व्यवस्था की गई। 1964–1966 में कोठारी कमीशन ने विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में नवीन दष्टिकोण प्रस्तुत किया। इस कमीशन ने विज्ञान के पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों तथा प्रयोगशालाओं आदि के उन्नयन के लिए अनेक सुझाव प्रस्तुत किये। सन् 1971 में 'नेशनल कौंसिल फॉर साइन्स एजूकेशन, यू.जी.सी., यू.एस.नेशनल सांइस फांउडेशन तथा यू.एस.ऐजन्सी आफ इन्टरनेशनल डेवलपमैंट आदि संस्थाओं ने मिल कर बंगलौर में जीव विज्ञान में शिक्षण एवं शोध पर सेमिनार का आयोजन किया। इस कॉन्फ्रेन्स में निम्नलिखित सुझाव दिये गए।

1. जीव विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम का विस्तार किया जाए।
2. जीव विज्ञान में नवीनतम संप्रत्ययों का समावेश किया जाए।
3. मूल्यांकन बालक की योग्यता सम्बन्धी जाँच पर आधारित हो।
4. आन्तरिक मूल्यांकन पर अधिक बल दिया जाए।

**अपनी प्रगति जाँचिए–1**

(i) जीव विज्ञान शिक्षण के सम्बन्ध में बंगलौर में आयोजित सेमिनार में क्या सुझाव दिये गए?

## 1.3 राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं जीव विज्ञान शिक्षण (National Policy of Education and Teaching of Life Science)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (National Policy on Education) जोकि संसद द्वारा 1986 में मान्यकृत हुई और जिसे 1992 में सुधारा गया, में विद्यालय स्तर पर विज्ञान को आवश्यक विषय घोषित किया है। इस शिक्षा नीति में विज्ञान शिक्षण के महत्व को निम्नलिखित रूप से प्रदर्शित किया गया है–

1. विज्ञान शिक्षा को सुदढ़ किया जाएगा ताकि बच्चों में जिज्ञासा की भावना, सजनात्मक, वस्तुनिष्ठ प्रश्न करने का साहस और सौन्दर्य बोध जैसी योग्यताएं और मूल्य विकसित हो सकें।
2. विज्ञान शिक्षा के कार्यक्रमों को इस प्रकार बनाया जाएगा कि उनसे विद्यार्थियों में समस्याओं को सुलझाने और निर्णय लेने की योग्यता उत्पन्न हो सके और वे स्वास्थ्य, कृषि उद्योग तथा जीवन के अन्य पहलुओं के साथ विज्ञान के सम्बन्ध को समझ सकें। विज्ञान शिक्षा के अत्याधिक प्रसार हेतु वे सारे प्रयास किए जाऐंगे जोकि अब तक औपचारिक शिक्षा के दायरे से बाहर रहे है।

शिक्षा नीति की सिफारिशों को दष्टिगत करते हुए भारत सरकार ने उनको करने हेतु कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए है। उनका विस्तत वर्णन इस प्रकार है–

### कार्यन्वित रिपोर्ट (Implementation Report)

I. प्रो. यशपाल, पूर्व सभापति, UGC के सभापतित्य के अन्तर्गत एक कमेटी का गठन किया गया जो विज्ञान शिक्षा के विकास हेतु कार्यक्रम को लागू करने से सम्बन्धित थी। इस कमेटी ने अध्यापकों को उचित रूप से प्रेरित करने की आवश्यकता पर बल दिया ताकि वे अपनी भूमिका भली भांति निभा सकें। स्कूलों मे विज्ञान शिक्षा के सुधार हेतु एक विस्तत रूपरेखा तैयार की गई जिसकी मुख्य विशेषताएं इस प्रकार है–

   1. 90,000 अन्य प्राईमरी स्कूलों को वैज्ञानिक यन्त्रों का एक बैग (Science Kits) प्रदान करना।
   2. 22,500 सैकेण्डरी एवं उच्च सैकेण्डरी स्कूलों को एक प्रयोगशाला और विज्ञान के अध्यापकों को वैज्ञानिक उपकरण प्रदान करने में सहायता।
   3. प्रत्येक स्कूल में कुल उपकरणों की कीमत रू.75,000/– लगाई गई है।
   4. प्रत्येक सैकेण्डरी/सीनियर सैकेण्डरी स्कूल को 500 विज्ञान पुस्तकों को रखने हेतु रू.40,000 सैकेण्डरी या सीनियर सैकेण्डरी स्कूलों को रू.15,000 प्रदान किए जाएंगे।
   5. प्रत्येक राज्य में एक शैक्षणिक संस्थान अथवा किसी स्वैच्छिक संस्थान को विज्ञान शिक्षकों की सहायता के लिए स्त्रोत केन्द्र घोषित किया जायेगा। प्रत्येक स्त्रोत केन्द्र (Resource Centre) को एक लाख रूपये की राशि दी जाएगी।
   6. उच्च शैक्षिक सेवाकालीन प्रशिक्षण का आयोजन करना। इसी प्रकार सैकेण्डरी शिक्षा प्रशिक्षण कालेजों में तथा DIET में विभिन्न कोर्स के रूप में सेवाकालीन प्रशिक्षण का आयोजन करना।
   7. स्वैच्छिक संस्थानो (Voluntary Organisations) को वैज्ञानिक व्यवहार तथा वैज्ञानिक शिक्षा को प्रेरित करने के लिए विशेषज्ञ होने पर 100 प्रतिशत के आधार पर सहायता प्रदान करना।

   इस रूपरेखा को क्रियान्वित करने हेतु निम्न प्रकार के कदम उठाए गए हैः

   (i) NCERT द्वारा उच्च प्राईमरी स्तर के लिए एक कार्यशील वैज्ञानिक यन्त्रों का एक बैग (Kit) बनाया गया है जिसका मूल्य 1200 रूपये है।

(ii) NCERT द्वारा राज्यों को मार्गदर्शिका के रूप में अनुमोदित पुस्तकों की एक सूची तैयार की गई है और यह सभी राज्यों को रूपरेखा सहित भेज़ दी गई है।

(iii) NCERT ने विशिष्टीकरण के साथ उपकरणों की एक सूची तैयार की है।

II. यह रूपरेखा सरकार द्वारा मान्यकृत है और जनवरी 1988 में सभी राज्य सरकारों तथा प्रशासनों में घुमाई गई है। यही नहीं, राज्यों से इस सम्बन्ध में उत्साहपूर्ण प्रतिक्रिया प्राप्त हुई हैं और यह विश्वास दिलाया जा रहा है कि इस योजना के अन्तर्गत उच्चतम सहयोग राज्यों को दिया जाएगा।

III. 17 राज्यों को लगभग 27 करोड़ की राशि केन्द्रीय सहायता के रूप में दी जाएगी। यह सहायता 18,604 उच्च प्राईमरी स्कूलों को जिन्हें वैज्ञानिक उपकरणों के बैग दिए जाएंगें, 7093 सैकेण्डरी तथा उच्च सैकेण्डरी स्कूलों को जिनकी प्रयोगशालाओं को उपकरणों के सम्बन्ध में विशिष्ट स्तर पर लाया जाएगा, 7483 सैकण्डरी तथा उच्च सैकण्डरी स्कूलों को जिन्हें विज्ञान एवं गणित सम्बन्धी 500 पुस्तकों को ग्रहण करने तथ लाइब्रेरी सुधारने हेतु अवसर दिए जाएंगे, प्रदान की जाएगी। इस योजना के अन्तर्गत दिया गया योगदान सौ प्रतिशत के आधार पर होगा। पुस्तकालय में पुस्तकें रखने के लिए अनुमोदित पुस्तकों की सूची तैयार करके राज्यों को प्रदान कर दी गई हैं और यह विश्वास दिलाया जा रहा है कि वे इस सूची (जो कि अंग्रेजी में है) की उपयुक्त पुस्तकों के शीर्षकों को क्षेत्रीय भाषा में परिवर्तित कर तैयार करें ताकि पुस्तकालय को क्षेत्रीय भाषा में नवीन पुस्तकों का समान क्रम प्राप्त हो सके। उच्च प्राईमरी स्कूलों के लिए NCERT ने एक मिश्रित तथा कार्यशील वैज्ञानिक उपकरणों का एक बैग तैयार किया है परन्तु राज्यों द्वारा अपना वैज्ञानिक बैग भी निर्मित किया गया है। इसी प्रकार, प्रयोगशाला उपकरणों के लिए NCERT द्वारा व्यक्तिगत यन्त्रों के लिए विशिष्टीकरण के साथ एक सूची तैयारी की गई है और राज्यों को प्रदान की गई है परन्तु वे राज्य अपनी प्रयोगशालाओं हेतु उपकरण उस सूची की सहायता से ले सकते है जो राज्य बोर्ड ने तैयार की हैं। सभी राज्यों को विज्ञान तथा गणित के शिक्षकों के प्रशिक्षण के एक विशाल कार्यक्रम हेतु शिक्षक प्रशिक्षण कालेजों में ग्रीष्मकालीन संस्थानों तथा सेवाकालीन कोर्स के आयोजन के लिए पर्याप्त सहायता दी जाएगी। प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए राज्य सरकार NCERT से सलाह मशवरे के पश्चात प्रशिक्षिण कोर्स जिनमें वैज्ञानिक व्यवहार एवं दष्टिकोण का विकास करने के तत्व भी सम्मिलित हैं, को विकसित करने हेतु प्रयासरत हैं।

## 1.4 जीव विज्ञान का महत्व एवं पाठ्यक्रम में स्थान (Importance of Life Science and Place in Curriculum)

जीव विज्ञान को हमारे जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। घरेलू सामान से लेकर सांसारिक जीवन, और बचपन से मत्युपर्यन्त जीव विज्ञान का सन्देश सर्वत्र व्याप्त है। वर्तमान युग में जीव विज्ञान के बिना जीवन असंभव है। दार्शनिक, वैज्ञानिकों, अर्थशास्त्रियों तथा शिक्षाविदों ने जीव विज्ञान को विद्यालय पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने के लिए अपना पक्ष प्रस्तुत किया है। जीव विज्ञान को विद्यालय पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने के निम्नलिखित कारण हैं–

### 1.4.1 बौद्धिक महत्व (Intellectual Value)

विज्ञान द्वारा सोचने और तर्क करने की विधियों का ज्ञान होता है। बचपन से ही वैज्ञानिक दष्टिकोण चेतनता प्रदान करता है और हम अपनी सामान्य बुद्धि का विवेकसंगत उपयोग करते हैं। जीव–विज्ञान के द्वारा हम अपनी आन्तरिक और बाह्य शक्तियों का भली–भाँति निरीक्षण करते हैं और निष्पक्ष भाव से युक्ति और तर्क से ठीक–ठीक निष्कर्ष निकालते हैं। इससे हमारे विचार अनुशासित होते है और हमारी बुद्धि का सदुपयोग होता है।

### 1.4.2 व्यावहारिक महत्व (Practical Value)

जीव–विज्ञान के द्वारा, हम समस्त जीवों और वनस्पतियों के जीवन–चक्र का अध्ययन करते हैं। मानव जीवन के लिए जीवों की उपयोगिता का हम सहज ज्ञान प्राप्त करते हैं। साथ ही हम उनसे होने वाली हानियों से परिचित हो जाते हैं। विषैले

कीट–पतंगों और पौधों द्वारा होने वाली हानियों से परिचित होने पर हम अपने को उनसे बचाते हैं और दूसरों को भी उनसे बचे रहने को सचेत करते हैं। विषैले सर्पों, पागल कुत्तों, छिपकलियों, गिरगिटों आदि के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर लेने पर हम उनके घातक प्रभावों से बचने का प्रयास करते हैं। अनेक रोगों की उत्पत्ति के कारणों, उनसे बचने का उपाय और उनकी चिकित्सा का उचित ज्ञान प्राप्त करके भी हम अपने कल्याण की बात सोच लेते हैं।

विभिन्न रोगों की उत्पत्ति का कारण बैक्टीरिया और वाइरस हैं। बैक्टीरियोलौजी (Bacteriology), वाइरोलौजी (Virology) तथा एन्टोमोलोजी (Entomology) के अन्तर्गत उपलब्ध विभिन्न ज्ञान मानव को विभिन्न रोगों की उत्पत्ति के कारणों तथा उनसे बचाव के साधनों से अवगत कराता है। इसी ज्ञान के आधार पर विभिन्न रोगों की दवा का विकास सम्भव हो पाया है। मलेरिया की उत्पत्ति का कारण एक विशेष प्राकर का मच्छर होता है। एमीबियासिस के जीवन–वत्त को जान लेने पर हम उसके विकास की किसी भी अवस्था में उसे नष्ट करने में सफल होते हैं। एमीबियासिस (Amoebiasis), डिप्थीरिया (Diptheria), क्षयरोग (Tuberculosis), यौन रोग (Veneral Diseases) जैसे कष्टसाध्य और हानकिारक रोगों के निदान का आधार जीव–विज्ञान के अन्तर्गत प्राप्त ज्ञान ही है।

वनस्पति विज्ञान के अन्तर्गत प्राप्त ज्ञान हमें दैनिक जीवन में रहन–सहन के स्तर को उन्नत बनाने में सहायता देता है। मानव–सभ्यता की मूलभूत आवश्यकताओं– रोटी, कपड़ा और मकान की समस्या का निराकरण वनस्पति विज्ञान की उपलब्धियों पर ही निर्भर है। विभिन्न खाद्य सामग्री के अधिक उत्पादन; जैसे – अनाज, तेल, चीनी, फल, सब्जी इत्यादि में वनस्पति विज्ञान का ज्ञान अधिक उपयोगी है। वनों के विकास के माध्यम से हम विभिन्न कार्यों के लिए लकड़ी तथा अन्य उपयोगी सामग्री प्राप्त करते हैं। विभिन्न रोगों की चिकित्सा वनस्पति द्वारा उपलब्ध दवाओं पर निर्भर है। आयुर्वेद का तो आधार ही वनस्पति जगत में उपलब्ध वनस्पतियाँ हैं।

इस प्रकार, जीव–विज्ञान का हमारे जीवन में व्यावहारिक महत्व है।

### 1.4.3 व्यावसायिक महत्त्व (Vocational Value)

जीव–विज्ञान विभिन्न व्यवसायों के लिए आवश्यक आधारभूत ज्ञान प्रदान करता है। चिकित्सक, वैद्य, जीव–विज्ञान अध्यापक, स्वास्थ्य–निरीक्षक आदि पदों पर भरती करते समय जीव–विज्ञान के ज्ञान पर निश्चित रूप से विचार किया जाता है। वन विभाग के विभिन्न पदों पर नियुक्ति के लिए भी जीव–विज्ञान की शिक्षा आवश्यक मानी जाती है। डाक्टरों के सहायक के रूप में काम करने वाले पुरुषों और महिलाओं को जीव–विज्ञान की शिक्षा से लाभ होता है। इस प्रकार व्यवसाय की दष्टि से भी जीव–विज्ञान उपयोगी विषय है।

### 1.4.4 सांस्कृतिक महत्व (Cultural Value)

किसी देश के रहन–सहन, खान–पान और आचार–विचार पर विज्ञान का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता है। गत बीस वर्षों में भारत की संस्कृति एवं जीवन–पद्धति में जो परिवर्तन हुए हैं, उनके मूल में विज्ञान की बढ़ती हुई शिक्षा ही है। जीव–विज्ञान ने मानव के अनेक अंधविश्वासों को समूल नष्ट कर दिया है; जैसे– प्रत्येक सर्प विषैला होता है, चेचक माता के प्रकोप से निकलती है, विभिन्न विकृतियाँ दैवी प्रकोप के कारण होती है, आदि। कुछ वैज्ञानिक जन–संहारक अस्त्र–शस्त्रों के निर्माण में प्रगति करके मानवता को मिटाने पर तुले हैं तो अनेक जीवन–विज्ञानवेत्ता जीवन–रक्षा के साधनों का अविष्कार करने में लगे रहते हैं। इस प्रकार बुराई–भलाई दोनों ही में यह ज्ञान उपयोगी है। सांस्कृतिक मान्यताओं के अुनसार विज्ञान का ध्वंसकारी स्वरूप किसी को अच्छा नहीं लगता हे। भारत की प्रगति की सम्भावनाएँ वैज्ञानिक विकास में निहित हैं।

### 1.4.5 नैतिक महत्व (Moral Value)

सत्यं, शिवं और सुन्दरम् हमारे जीवन में विशेष सुखद अनुभूति को जन्म देते हैं। वैज्ञानिक तटस्थ भाव से सत्य का समर्थक होता है। यद्यपि दैनिक व्यवहार में लोग सत्य के उपासक बहुत कम होते हैं; पर वैज्ञानिक का काम सत्य के बिना नहीं चल

पाता है। निष्ठापूर्वक अपने प्रयोगों को करने, निरीक्षण में सावधानी बरतने, परिणाम की सत्यता का निश्चय करने में ही वैज्ञानिक अपने कर्तव्य की सफलता समझता है। वकीलों, व्यापारियों और तस्करों के लिए असत्य और धोखाधड़ी एक सामान्य बात है, पर वैज्ञानकि इस बुराई की ओर देखता ही नहीं, उसके कर्तव्य की चरम परिणति तो अन्वेषण की निर्लिप्त सत्यता ही है। इस दष्टि से जीव–विज्ञान का नैतिक महत्व भी है।

### 1.4.6 सौन्द्रर्यात्मक महत्व (Aesthetic Value)

कलाकार सौन्दर्य की उपासना करता है। वह अपनी कृति को आकर्षक बनाकर दर्शकों को आनन्द प्रदान करता है। वैज्ञानिक अपने प्रयोगों में ही सौन्दर्य के दर्शन करता है। उसके आविष्कारों द्वारा मानवता का जो कल्याण होता हैं वही वैज्ञानिक सौन्दर्य का प्रतीक है।

### 1.4.7 मनोवैज्ञानिक महत्व (Psychological Value)

विज्ञान की शिक्षा मनोवैज्ञानिक दष्टिकोण से भी उपयोगी है। 'करके सीखना' (Learning by doing), ठोस तथा सजीव नमूनों के निरीक्षण द्वारा सीखना आदि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को विज्ञान शिक्षण में प्रयोग किया जाता है। इससे विद्यार्थियों की रचनात्मक एवं निर्माणात्मक प्रवत्तियों का विकास होता है। विज्ञान व्यक्ति की जिज्ञासा को शांत करता है और उसकी स्वाभाविक रूचियों के विकास में सहायता प्रदान करता है। विभिन्न प्रयोगों को करने एवं परिणाम निकालने से विद्यार्थियों की अन्वेषणात्मक प्रवत्तियों का विकास होता है और उन्हें आत्म–तुष्टि प्राप्त होती है। विज्ञान संग्रहालय द्वारा उनकी संग्रह करने की प्रवत्ति को उचित दिशा प्राप्त होती है।

### 1.4.8 सामाजिक महत्व (Social Value)

विज्ञान शिक्षा का सामाजिक महत्व है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अकेला नहीं रह सकता। समाज में रहकर वह दूसरे व्यक्तियों के साथ अंतःक्रिया करता है, समाज के नियमों का पालन करता है और समाज की उन्नति में अपना योगदान करता है। विज्ञान व्यक्ति को इस दिशा में उपयोगी ज्ञान प्रदान करता है। जैसे शरीर को स्वस्थ्य कैसे रखें? पर्यावरण की स्वच्छता क्यों और कैसे? रोगों से बचाव के लिए क्या उपाय करने चाहिए? आदि सभी बातों की जानकारी विज्ञान की शिक्षा द्वारा ही संभव है। यदि हम सभ्यता के विकास के क्रम का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तो हमें यह ज्ञात होता हैं कि जब से मुनष्य के मस्तिष्क में विज्ञान का अंकुर फूटा तब से उसमें सामाजिक भावना का जन्म हुआ। आदि मानव द्वारा घटनावश की गई आग की खोज पहली वैज्ञानकि खोज कही जा सकती है। इसके पश्चात औजारों के निर्माण, खेती की खोज और काम के बंटवारे की भावना ने सामाजिक जीवन के विकास पर बल दिया। आधुनिक काल में हुई वैज्ञानिक उन्नति ने दूरियों को कम किया है और हम केवल भारत को ही नहीं पूरे विश्व को एक समाज के रूप में देखते हैं। विज्ञान–शिक्षा व्यक्ति को विज्ञान के नई अवष्किारों एवं नई तकनीकों से संबंधित सैद्धान्तिक जानकारी प्रदान करती है और व्यवहारिक रूप में उसे प्रयोग करना भी सिखाती है। विज्ञान–शिक्षा व्यक्तियों को विश्व के किसी भी भाग में होने वाले घटनाक्रमों से परिचित करवाती है और उन्हें स्वस्थ सामाजिक जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित करती है। विज्ञान–शिक्षा व्यक्ति एवं समाज की उन्नति के लिए भी आवश्यक है।

विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में बहुत लम्बी अवधि तक समन्वित दष्टिकोण को मान्यता मिलती रही है। इसीलिए विज्ञान विषय को साधारण विज्ञान के रूप में पढ़ाया जाता रहा है। विज्ञान के विभिन्न उपविषयों से सामग्री लेकर साधारण विज्ञान विषय का संगठन किया जाता रहा है। परन्तु पिछले कुछ दशकों में हुई वैज्ञानिक प्रगति और ज्ञान के विस्तत भण्डार की खोज से इस बात को बल मिला है कि समन्वित दष्टिकोण के स्थान पर विज्ञान विषय की शाखाओं का विशिष्ट ज्ञान करवाया जाए। इसी आधार पर आज विद्यालयों में विज्ञान से सम्बन्धित उपविषयों को अलग–अलग बाँटकर पढ़ाने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। उच्च माध्यमिक स्तर पर भौतिक विज्ञान एवं जीव विज्ञान को अनिवार्य विषय के रूप में एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाया जा रहा है। इस प्रकार पाठ्यक्रम में जीव विज्ञान को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

**अपनी प्रगति जांचिए–2**

(i) व्यावहारिक जीवन में जीव विज्ञान का क्या महत्व है?

(ii) माध्यमिक विद्यालयों में जीव विज्ञान को विद्यालय पाठ्यक्रम में कितना महत्व दिया गया है?

## 1.5 सारांश

जीव–विज्ञान जीवन का ज्ञान है। प्रारम्भ में इसे वास्तविक विज्ञान नहीं माना जाता था परन्तु आज जीव–विज्ञान बहुत समद्ध एवं गतिशील हो गया है। इसलिए इसे वास्तविक विज्ञान कहा जाने लगा है। भारत में जीव विज्ञान शिक्षण के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विशेष प्रयास किये गए हैं। इनमें 'विज्ञान–मन्दिर', 'विज्ञान–क्लब', 'सेमिनारों', 'वैज्ञानिक प्रतिभ खोज' आदि कार्यक्रम महत्वपूर्ण है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1992 में विज्ञान शिक्षा को सुदढ़ बनाने पर बल दिय गया है। जीव विज्ञान हमारे जीवन के विभिन्न पक्षों से जुड़ा है। यह हमारे जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक है; यह व्यक्ति के बौद्धिक, सामाजिक और नैतिक विकास में सहायक है, इससे हम स्वस्थ्य रहने और पर्यावरण को दूषित होने से बचाने के विभिन्न तरीकों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और यह विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित आधारभूत ज्ञान भी प्रदान करता है। इस प्रकर जीव विज्ञान का हमारे जीवन में विशेष महत्व है। जीव विज्ञान के इसी महत्व को देखते हुए माध्यमिक शिक्षा स्तर पर विद्यालयों में इसे एक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाया जा रहा है और उच्च माध्यमिक स्तर पर इसे वैकल्पिक विषय के रूप में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

**आदर्श उत्तर**

1. जीव–विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम का विस्तार किया जाए और जीव विज्ञान में नवीन संप्रत्ययों का समावेश किया जाए।
2. (i) रोगों के इलाज़ व बचाव में, खाद्य उत्पादन बढ़ाने में
   (ii) माध्यमिक विद्यालयों में जीव विज्ञान समन्वित रूप में एक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाया जाता है।

## 1.6 मुख्य शब्द

**जीव विज्ञानः** जीवित प्राणियों के शरीर और क्रियाओं से सम्बन्धित ज्ञान

## 1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

कुल श्रेष्ठ, एस. पी. – 'जीव विज्ञान शिक्षण', लायल बुक डिपो, मेरठ, 1993.

मंगल, एस. के. – 'भौतिकी एवं जीव विज्ञान शिक्षण', आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, 1995.

कोहली, वि. के. – 'विज्ञान कैसे पढ़ाएं, विवेक पब्लिशर्ज, अम्बाला, 1996.

शर्मा एण्ड छिकारा – 'जीव विज्ञान शिक्षण' प्रकाश ब्रदर्स, लुधियाना, 1994.

## 2.1 प्रस्तावना

स्पष्ट चिन्तन बोध और अपने लक्ष्य में उचित मूल्यांकन के बिना शिक्षा निश्चय ही एक प्रतिवाद है। शिक्षा एक उद्देश्यमूलक गतिविधि है। लक्ष्य के बिना कोई शिक्षा सार्थक नहीं हो सकती। संक्षेप में लक्ष्य किसी शिक्षा की प्रक्रिया की प्रकृति का सूचक है। लक्ष्य शिक्षा के प्रारूप, विषय की प्रकृति और शिक्षा के स्तर के अनुसार भिन्न होते हैं। अतः स्कूल में पढ़ाये जाने वाले प्रत्येक विषय के निश्चित लक्ष्य एवं उद्देश्य होते हैं। आज के शिशु को कल का उत्तरदायी नागरिक बनाना सामान्य शिक्षा का लक्ष्य है जिसे ध्यान में रखते हुए, जीव विज्ञान का लक्ष्य शिक्षार्थी को जीवन एवं जीवन प्रक्रिया के शिक्षण द्वारा उसके परिप्रेक्ष्य का विस्तार करना है। इसके शिक्षण का एक ध्येय उन मेधावी नागरिकों को प्रोत्साहन देना भी है जिनमें सामाजिक समस्याओं के समाधान में भाग लेने की क्षमता है। वर्तमान युग में जीव–विज्ञान के बिना जीवन असम्भव है। यह मानव जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है जैसे– शरीर विज्ञान, चिकित्सा, जीव रसायन, सूक्ष्म जीव विज्ञान, आनुवांशिक और अंतरिक्ष जीव विज्ञान आदि। घरेलू सामान से लेकर सांसारिक जीवन, और बचपन से मत्युपर्यन्त जीव विज्ञान का सन्देश सर्वव्याप्त है।

## 2.2 जीव विज्ञान शिक्षण के लक्ष्य एवं उद्देश्य (Aims and Objectives of Teaching Life Science)

सामान्यतः लक्ष्य तथा उद्देश्य का प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाता है जबकि वास्तव में इनमें अन्तर होता है। लक्ष्य से हमारा अभिप्राय उस ध्येय से होता है जिसे प्राप्त करने के लिए हम, हमारे विद्यालय तथा शिक्षा–व्यवस्था समग्र रूप से प्रयत्नशील होती है। (Aim is a general declaratoin of intent which gives direction to as teaching programme) उद्देश्य, एक विशेष लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए छोटे–छोटे पद होते हें जो जीव–विज्ञान के अध्ययन को अधिक उपयोगी बनाकर विद्यार्थियों के व्यवहारों में उपयुक्त परिवर्तन लाने में सहायता करते हैं।

उद्देश्य से अभिप्राय उस बिन्दु से है जिसके लिये कार्य किया जाता है। उद्देश्य निश्चित एवं विशिष्ट होता है। इनका क्षेत्र सीमित होता है। ये सरल, संकलित एवं स्पष्ट होते हैं।

### उद्देश्यों की आवश्यकता (Need of Objectives)

जीव विज्ञान शिक्षक को पढ़ाने से पूर्व विषय के लक्ष्यों से परिचित होना चाहिए और उपविषय के आधार पर उद्देश्यों का निर्धारण कर लेना चाहिए। यदि हमारे सामने विषय के निश्चित उद्देश्य नहीं होंगे तो हम (शिक्षक) अपने पथ से भटक सकते हैं। हमें इस बात का ज्ञान नहीं रहेगा कि हमें क्या पढ़ाना है? किसलिए पढ़ाना है? जीव विज्ञान पढ़ने से विद्यार्थियों को क्या लाभ होगा? उनमें किस प्रकार के परिवर्तन आ सकते हैं? हमारा शिक्षण कितना प्रभावशाली रहा? आदि। अतः प्रत्येक शिक्षक के लिए यह अति आवश्यक है कि वह अपने विषय के उद्देश्यों का निर्धारण कर ले। उद्देश्य निर्धारित करते समय निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए–

1. उद्देश्य विद्यार्थियों की आवश्यकता एवं रूचियों के अनुरूप हों।
2. उद्देश्य विद्यार्थियों की बुद्धि एवं स्तर के अनुकूल हों।
3. उद्देश्य पाठ्यक्रम के विस्तत उद्देश्यों से सम्बन्धित हों।
4. उद्देश्य हमारी जनतान्त्रिक शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक हों।
5. उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन ला सकें।
6. उद्देश्य विद्यार्थियों की प्रगति के मूल्यांकन में सहायक हों।
7. उद्देश्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित हों।
8. उद्देश्य समय एवं परिस्थितियों के अनुकूल हों।

लक्ष्य एवं उद्देश्य में मुख्य अंतर निम्नलिखित हैं–

| | लक्ष्य (Aims) | | उद्देश्य (Objectives) |
|---|---|---|---|
| 1. | लक्ष्य से अभिप्राय उस ध्येय से है जिससे हमारी शिक्षण व्यवस्था को दिशा मिलती है | 1. | उद्देश्य लक्ष्य को प्राप्त करने के लिया गया विशिष्ट कार्य होता है। |
| 2. | ये समग्र विषय, शिक्षा–व्यवस्था से सम्बन्धित होते हैं। | 2. | ये प्रायः उस विषय तथा विभिन्न उपविषयों से सम्बन्धित होते हैं। |
| 3. | ये अनिश्चित तथा अस्पष्ट होते हैं। | 3. | ये निश्चित तथा स्पष्ट होते हैं। |
| 4. | ये एक प्रकार के आदर्श (ideals) होते हैं जिन्हें पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं किया जा सकता। | 4. | ये प्राप्त किये जा सकते हैं। |
| 5. | इनकी प्राप्ति में बहुत अधिक समय लगता है। | 5. | इनकी प्राप्ति में अधिक समय नहीं लगता एक पाठ/ उपविषय के अन्त में इसकी प्राप्ति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। |
| 6. | इनकी पूर्ति के लिए समाज, राष्ट्र को उत्तरदायी माना जाता है। | 6. | इनकी पूर्ति का दायित्व अध्यापक का होता है। |
| 7. | इनका क्षेत्र व्यापक होता है। | 7. | इनका क्षेत्र सीमित होता है। |

## 2.3 तारादेवी सम्मेलन एवं जीव विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य (Tara Devi Conference & Objectives of Teaching Life Science)

तारादेवी (शिमला में आयोजित अखिल भारतीय विज्ञान–शिक्षण सम्मेलन में विद्यालय के विभिन्न स्तरों पर विज्ञान–शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए–

### I प्राथमिक स्तर (Primary Level)

1. प्रकृति तथा भौतिक एवं सामाजिक परिवेश में रूचि जाग्रत करना, प्रकृति के प्रति प्रेम उत्पन्न करना तथा प्रकृति और उसके साधनों को सुरक्षित रखने की आदत का निर्माण करना।
2. निरीक्षण, खोज़, वर्गीकरण तथा विधिवत चिन्तन की आदतों का विकास करना।
3. बालक की प्रयोगात्मक, रचनात्मक एवं अन्वेषणात्मक शक्तियों का विकास करना।
4. स्वच्छता और संयम आदतों का विकास करना।
5. स्वस्थ जीवन यापन की आदतों का निर्माण करना।

### II मिडल-स्कूल स्तर (Middle School Level)

उपरोक्त उद्देश्यों के अतिरिक्त माध्यमिक स्तर पर निम्नलिखित उद्देश्यों को सम्मिलित करना चाहिए–

6. प्रकृति तथा विज्ञान से संबंधित सूचनाएँ प्रदान करना जो साधारण विज्ञान पाठ्यक्रम का आधार बनें।
7. सामान्यीकरण करने तथ दैनिक जीवन की समस्याओं के समाधान में विज्ञान के सामान्य नियमों को लागू करने की योग्यता का विकास करना।
8. विज्ञान सम्बन्धी मनोरंजन के प्रति अभिरूचि का विकास करना।
9. वैज्ञानिकों के जीवन चरित्र एवं अविष्कारों की कहानियों द्वारा विद्यार्थियों को प्रेरित करना।
10. मानव जीवन पर विज्ञान के प्रभाव को समझना।

### III- उच्च एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर (High and Senior Secondary Level)

1. विद्यार्थियों को उस संसार से परिचित कराना, जिसमें वे रहते हैं तथा उन्हें समाज पर विज्ञान के प्रभाव से अवगत कराना जिससे वे स्वयं को परिवेश के अनुरूप बदल सकें।
2. विद्यार्थियों को वैज्ञानिक विधि से परिचित कराना और उनमें वैज्ञानिक दष्टिकोण का विकास करना।
3. विद्यार्थियों को विज्ञान के ऐतिहासिक पक्ष से अवगत कराना जिससे वे विज्ञान के विकास को समझ सकें।

## 2.4 कोठारी कमीशन एवं जीव विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य (Kothari Commission and Objectives of Teaching Life Science)

कोठारी कमीशन (1964-66) के अनुसार जीव विज्ञान शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

### 2.4.1 प्राथमिक स्कूल स्तर (Primary School Level)

स्कूलों में विज्ञान शिक्षण का उद्देश्य भौतिक और जैविक पर्यावरण के मुख्य तथ्यों, अवधारणाओं, सिद्धान्तों और प्रक्रियाओं के बारे में उचित ज्ञान पाना होना चाहिए। इन विचारों को स्पष्ट करने के लिए आगमन और निगमन दोनों पद्धतियों का उपयोग करना चाहिए लेकिन निगमन या वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग पर अधिक बल देना चाहिए।

1. बालक को परिवेश से परिचित कराना तथा उसमें प्रकृति के प्रति प्रेम उत्पन्न करना।
2. भौतिक और सामाजिक परिवेश में विज्ञान के उपयोगों का परिचय देना।
3. बालक में शारीरिक स्वच्छता तथा स्वस्थ जीवनयापन सम्बन्धी उपयोगी आदतें डालना।
4. बालक की निरीक्षण शक्ति (Observation Power) को विकसित करना।
5. बालकों की अन्वेषणात्मक और रचनात्मक प्रवत्तियों के विकास के लिये अवसर प्रदान करना।
6. वैज्ञानिक भाषा को समझने के लिए रोमन संख्यांक (Numerals) और वर्ण–माला (Alphabets) का ज्ञान कराना।
7. व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित महत्वपूर्ण बातों की जानकारी देना।
8. बालकों में स्वच्छ एवं क्रमबद्ध रीति से कार्य करने की आदत डालना।
9. मानचित्र, चार्टों लेखाचित्र (Graphs) तथा सांख्यिकी तालिकाओं (Statistical tables) आदि को पढ़ने की कुशलता उत्पन्न करना।
10. बालकों को विज्ञान के महान आविष्कारकों की जीवनगाथा और आविष्कारों की कहानी पढ़ने के लिए प्रेरित करना।

### 2.4.2 उच्च प्राथमिक स्तर (Middle or Higher Primary Stage)

पाँचवीं से लेकर सातवीं कक्षा के लिए जीव विज्ञान शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिएं–

1. छात्रों को अपने परिवेश में व्याप्त विज्ञान के प्रभाव को समझने में सहायता करना और उनमें वैज्ञानिक अभिरूचि को विकसित करना।
2. छात्रों को विज्ञान सम्बन्धी मूलभूत तथ्यों, नियमों और सिद्धान्तों का ज्ञान कराना।
3. विद्यार्थियों में तर्कपूर्ण और सुनियोजित ढंग से सोचने की आदत डालना।
4. विद्यार्थियों में वैज्ञानिक अभिवत्ति (Attitude) का विकास करना।
5. विज्ञान के अध्ययन द्वारा विद्यार्थियों के मस्तिष्क को अनुशासित (Disciplined) करने की अपेक्षा करना।
6. छात्रों में प्रस्तुत तथ्यों के आधार पर उचित निष्कर्ष निकालने की योग्यता और आदत विकसित करना।
7. छात्रों को आगामी कक्षाओं में विज्ञान के अध्ययन के लिये आवश्यक पष्ठभूमि प्रदान करना।

8. छात्रों को विज्ञान के विकास के ऐतिहासिक क्रम से परिचित कराकर विज्ञान की प्रगति और विकास को समझने में मदद करना।

**माध्यमिक स्तर (Secondary Stage)**

आठवीं कक्षा से दसवीं कक्षा तक विज्ञान शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिएं–

1. विद्यार्थियों को विषय के (पिछली कक्षाओं से अधिक) गहन एवं सूक्ष्म ज्ञान की जानकारी देना।
2. उनमें प्रयोग सम्बन्धी कुशलता उत्पन्न कर विज्ञान के उपयोगों को समझने की योग्यता विकसित करना।

**वरिष्ठ माध्यमिक स्तर (Higher Secondary Stage)**

कक्षा 11वीं से लेकर 12वीं तक कक्षाओं के पाठ्यक्रम में विज्ञान वर्ग में निम्न विषयों को रखा गया है–

(i) भौतिकी, (ii) रसायन, (iii) जीव विज्ञान, (iv) भू–विज्ञान, (v) गणित

विशेष विषयों का चुनाव करने में विद्यार्थी उपरोक्त विषयों में किन्हीं तीन को चुन सकते हैं अथवा इनमें से किन्हीं दो ओर कला वर्ग में से किसी एक को चुन सकते हैं।

## 2.5 वर्तमान संदर्भ में जीव विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य (Objectives of Teaching Life Science in Present Context)

पिछले कुछ दशकों में हुई वैज्ञानिक उन्नति एवं शैक्षिक तकनीकी के विकास से विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यों में लगातार परिवर्तन आता रहा है। आधुनिक समय में हमारे विद्यालयों में जीव विज्ञान–शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिएँ–

1. ज्ञान (Knowledge)
2. बोधगम्यता/समझ (Understanding)
3. प्रयोग (Application)
4. कौशल (Skills)
5. वैज्ञानिक दष्टिकोण (Scientific Attitude)
6. वैज्ञानिक रूचि (Scientific Interest)
7. प्रशंसात्मक क्षमताएँ (Appreciation)

**2.5.1 ज्ञान उद्देश्य (Knowledge Objectives):** यह किसी भी विषय की शिक्षा का प्रथम एवं आधारभूत उद्देश्य होता है। जीव विज्ञान के क्षेत्र में भी ज्ञान–प्राप्ति का उचित महत्व है क्योंकि ज्ञान के आधार पर ही ज्ञानात्मक पक्ष से संबन्धित उच्चतर उद्देश्यों जैसे–समझ, प्रयोग, संश्लेषण, विश्लेषण तथा मूल्यांकन की प्राप्ति की जा सकती है। ज्ञान उद्देश्य में निम्नलिखित बिन्दु सम्मिलित होते हैंऋ

(i) ***वैज्ञानिक नामावली (Scientific Terms),*** शब्द संकेत (Symbols), सूत्रों (Formula) आदि की जानकारी प्राप्त करके वैज्ञानिक भाषा को सीखना।

(ii) जीव–विज्ञान सम्बन्धी परिभाषाओं, नियमों, तथ्यों, संप्रत्ययों और प्रक्रियाओं को पहचानना।

(iii) जीव–विज्ञान सम्बन्धी परिभाषाओं, नियमों, तथ्यों, संप्रत्ययों और प्रक्रियाओं का प्रत्यास्मरण करना।

(iv) अपने परिवेश से सम्बन्धित वैज्ञानिक जानकारी होना।

(v) प्रकृति के रहस्यों एवं प्राकृतिक घटनाओं की जानकारी होना।

(vi) वैज्ञानिक साहित्य से सम्बन्धित मूलभूत तथ्यों की जानकारी होना।

(vii) विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के परस्पर सम्बन्धों एवं आत्मनिर्भरता की जानकारी होना।

(viii) व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित ज्ञान होना।

(ix) वैज्ञानिक उन्नति तथा समाज पर इसके प्रभाव से अवगत होना।

**2.5.2 समझ या बोधगम्यता उद्देश्य (Understanding Objectives):** किसी विषय का ज्ञान समझ अथवा बोधगम्यता के स्तर में तब परिवर्तित होता है जब उस विषय को सही परिप्रेक्ष्य में पढ़ाया जाता है। जीव विज्ञान के 'समझ' उद्देश्य विद्यार्थियों में निम्न योग्यताओं के विकास से सम्बन्धित होते हैं–

(i) जीव विज्ञान के संप्रत्ययों, नियमों, तथ्यों, प्रक्रियाओं आदि की व्याख्या करना।

(ii) प्रतीकों, शब्दावली, संकेतों (फार्मूलों) आदि का अनुवाद करना।

(iii) जीव विज्ञान के तथ्यों और सिद्धान्तों में भेद करना।

(iv) जीव विज्ञान के ग्राफ और प्रदत्तों (आंकड़ों) की व्याख्या करना।

(v) जीव विज्ञान से सम्बन्धित संप्रत्ययों, जीवों आदि का वर्गीकरण करना।

(vi) जीव विज्ञान के विभिन्न तथ्यों, संप्रत्ययों, जीवों आदि के सम्बन्ध की पहचानना।

(vii) जीव विज्ञान के नियमों, सिद्धान्तों आदि की पुष्टि करना।

**2.5.3 प्रयोग उद्देश्य (Application Objectives):** प्रयोग स्तर के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विद्यार्थी ज्ञान एवं समझ का उपयोग अपने दैनिक जीवन में, नवीन एवं अपरिचित परिस्थितियों में करते हैं। प्रयोग उद्देश्य विद्यार्थियों में निम्नलिखित योग्यताओं के विकास से सम्बन्धित होते हैं–

(i) स्थिति का विश्लेषण करना।

(ii) परिकल्पना का निर्माण एवं परीक्षण करना।

(iii) जीव विज्ञान से सम्बन्धित प्रक्रियाओं, सिद्धान्तों आदि के कारण एवं प्रभाव में समावय स्थापित करना।

(iv) जीव विज्ञान के सिद्धान्तों का अपने परिवेश को समझने और समस्या समाधान में उपयोग करना।

(v) किसी तथ्य अथवा प्रक्रिया के निरीक्षण के आधार पर निष्कर्ष निकालना।

(vi) दिये गए प्रदत्तों के आधार पर वैज्ञानिक प्रक्रिया से सम्बन्धित भविष्यवाणी करना।

**2.5.4 कौशल उद्देश्य (Skill Objectives):** जीव विज्ञान के अध्ययन द्वारा विद्यार्थियों में निम्नलिखित कौशल विकसित किये जा सकते हैं–

(i) प्रयोगशाला कौशल

(ii) आलेखन कौशल

(iii) हस्त प्रयोग कौशल

(iv) समस्या समाधान कौशल

(v) प्रतिरूपों का संग्रह, आरोहण तथा परिरक्षण कौशल

(vi) विच्छेदन कौशल

**2.5.5 रूचि उद्देश्य (Interest Objectives):** अभिरूचि से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया सरल हो जाती है। जीव विज्ञान शिक्षण से विद्यार्थियों में निम्न क्षेत्रों में रूचि उत्पन्न की जा सकती है–

(i) वैज्ञानिक साहित्य के अध्ययन में।

(ii) प्राकृतिक घटनाओं के अध्ययन में।

(iii) वैज्ञानिक महत्व के स्थानों के भ्रमण में।

(iv) विज्ञान क्लब तथा विज्ञान मेलों के आयोजन तथा क्रिया–कलापों में।

(v) मॉडल एवं जीवनोपयोगी वस्तुएँ बनाने में।

(vi) वैज्ञानिक रूचियाँ अपनाने में।

(vii) विज्ञान पर तर्क प्रतियोगिताओं, वाक् प्रतियोगिताओं, सेमिनार आदि में भाग लेने में।

(viii) विज्ञान योजना पर काम करने में।

**2.5.6 वैज्ञानिक दष्टिकोण सम्बन्धी उद्देश्य (Objectives related to Sceintific Attitude):** वैज्ञानिक दष्टिकोण से अभिप्राय उदार मनोवत्ति, शुद्ध ज्ञान की इच्छा, वैज्ञानिक प्रक्रिया में विश्वास आदि गुणों से है। इसके अन्तर्गत विद्यार्थियों में निम्नलिखित योग्यताओं का विकास किया जा सकता है–

(i) प्रमाणिक ज्ञान से समस्या समाधान करना।

(ii) विज्ञान से सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित, संगठित तथा विश्लेषण करना।

(iii) अन्धविश्वास की अपेक्षा परिणाम की सत्यता को परखने की इच्छा रखना।

(iv) प्रत्येक घटना का कारण जानने की इच्छा रखना।

(v) अपने निर्णयों पर पुनः विचार करने को तैयार रहना।

(vi) नए विचारों का स्वागत करना।

(vii) किसी सुनी व पढ़ी बात को परीक्षण तथा प्रयोग की कसौटी पर जांचने के बाद मानना।

(viii) वैज्ञानिक सामग्री के संकलन में ईमानदारी से काम लेना।

(ix) प्रत्येक कार्य को धैर्यपूर्वक करना।

(x) मानव कल्याण के लिए वैज्ञानिक प्रयोगों का समर्थन करना।

**2.5.7 प्रशंसात्मक उद्देश्य (Appreciation Objectives):** इनके अन्तर्गत विद्यार्थियों में निम्नलिखित योग्यताओं का विकास किया जाता है–

(i) मानव सभ्यता के विकास में जीव विज्ञान की सराहना करना।

(ii) विज्ञान की प्रकृति पर विजय पाने के साधन के रूप में प्रशंसा करना।

(iii) आधुनिक जीवन में जीव विज्ञान के योगदान की सराहना करना।

(iv) महान वैज्ञानिकों के प्रति आदर एवं सम्मान की भावना प्रदर्शित करना।

(v) वैज्ञानिक अविष्कारों की कहानियां पढ़कर प्रेरणा प्राप्त करना।

(vi) अपने पर्यावरण में घटित होने वाली प्रक्रियाओं में निहित वैज्ञानिक नियमों, सिद्धान्तों आदि को जानने में आनन्द अनुभव करना।

### अपनी प्रगति जांचिए–1

(i) जीव विज्ञान शिक्षण के मुख्य उद्देश्यों के नाम बताओ ?

(ii) किन्हीं पांच कौशलों के नाम बताओ?

(iii) लक्ष्य एवं उद्देश्य में क्या अन्तर है?

## 2.6 सारांश

किसी भी कार्य को करने से पूर्व उसके लक्ष्य एवं उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं जिससे कार्य को दिशा मिल सके। लक्ष्य व्यापक होते हैं और उद्देश्य एक विशेष लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए छोटे–छोटे पद होते हैं। जीव विज्ञान शिक्षण के लक्ष्य एवं उद्देश्य शिक्षक को पाठ्यवस्तु, शिक्षण–विधियों, शिक्षण–तकनीकों आदि के चयन में सहायता करते हैं। इसके अतिरिक्त लक्ष्य एवं

उद्देश्यों के आधार पर विद्यार्थियों के व्यवहार–परिवर्तन का मूल्यांकन भी किया जा सकता है। शिक्षा के लक्ष्य व उद्देश्य समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप निर्धारित किये जाते हैं। समाज की आवश्यकताओं में परिवर्तन के अनुसार शिक्षा के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों में भी परिवर्तन आता है। जीव–विज्ञान शिक्षण के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विभिन्न सम्मेलनों एवं कमीशनों के अनुसार विभिन्न लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की पूर्ति पर बल दिया गया है। आधुनिक समय में विद्यार्थी–केन्द्रित शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता है। विद्यार्थी के व्यवहार के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित मुख्यत लक्ष्यों व उद्देश्यों– ज्ञान, बोध, प्रयोग, कौशल, वैज्ञानिक दष्टिकोण, वैज्ञानिक रूचि एवं प्रशंसात्मक क्षमताओं की पूर्ति जीव विज्ञान िशक्षण के माध्यम से की जाती है।

**आदर्श उत्तर**

(i) ज्ञान उद्देश्य, बोध उद्देश्य, प्रयोग उद्देश्य, कौशल उद्देश्य, वैज्ञानिक दष्टिकोण सम्बन्धी उद्देश्य, रूचि उद्देश्य।

(ii) प्रयोगशाला कौशल, आलेख कौशल, हस्त प्रयोग कौशल, समस्या समाधान कौशल, विच्छेदन कौशल।

(iii) लक्ष्य व्यापक होते हैं और इनकी पूर्ति में बहुत अधिक समय लगता है। उद्देश्य संकुचित होते हैं और इन्हें एक पाठ/कालांश की समाप्ति पर प्राप्त किया जा सकता है।

## 2.7 मुख्य शब्द

**लक्ष्यः** लक्ष्य से अभिप्राय उस ध्येय से है जो हमें दिशा प्रदान करता है।

**उद्देश्यः** उद्देश्य से अभिप्राय उस बिन्दु से है जिसके लिए कार्य किया जाता है।

## 2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

**Bloom, B.S. et.al.** – Taxonomy of Educational Objectives, David Mikey, New York.

**कोहली, वि. के.** – 'विज्ञान कैसे पढ़ाएं', विवेक पब्लिशर्ज़, अम्बाला, 1996.

**Shukla, R.S.** – Teaching of Science, Laxmi Narayan Publisher, Agra.

**शर्मा, रवीन्द्र कुमार** – 'शिक्षण अधिगम के मूल तत्व' श्री राम पब्लिकेशन, भिवानी, 2000.

# इकाई–I

# अध्याय-3: ब्लूम के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण (Bloom's Taxonomy of Educational Objectives)

**उद्देश्यः**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे किः

- ब्लूम द्वारा बताए गए शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण का उल्लेख कर सकें।
- ज्ञानात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्यों को वर्गीकृत कर सकें।
- भावात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण कर सकें।
- क्रियात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण कर सकें।

**संरचनाः**

3.1. प्रस्तावना
3.2. ब्लूम के शैक्षिक उद्देश्य
3.3. ज्ञानात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण
3.4. भावात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण
3.5. क्रियात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण
3.6. सारांश
आदर्श उत्तर
3.7. मुख्य शब्द
3.8. संदर्भ ग्रन्थ

## 3.1 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में हमने जीव विज्ञान शिक्षण के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के बारे में विस्तार से पढ़ा। हमने जाना कि किसी भी विषय के शिक्षण का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थी के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाना होता है। विद्यार्थी के व्यवहार के कितने पक्ष होते हैं? उन पक्षों के आधार पर शिक्षण उद्देश्य कितने प्रकार के होते हैं और जीव विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य किस प्रकार निर्धारित किये जाते हैं, इसका अध्ययन हम इस अध्याय में करेंगे।

## 3.2 ब्लूम का शैक्षिक उद्देश्य (Bloom's Educational Objectives)

शैक्षिक उद्देश्यों के महत्व के कारण विभिन्न शिक्षाविदों ने इस क्षेत्र में अनुसंधान किये और इनका विस्तत वर्णन करने का प्रयत्न किया है। परन्तु सर्वप्रथम 1949 में अमेरिकन महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के परीक्षकों ने एक समिति का गठन किया।

इस समिति को 'American Taxonomic Group for Classification of Educational Objectives' का नाम दिया गया। इस समिति ने चार वर्षों तक विभिन्न दष्टिकोण लेकर संगोष्ठियाँ आयोजित की और शैक्षिक उद्देश्यों का एक विस्तत वर्गीकरण प्रस्तुत किया। इस समिति द्वारा प्रस्तुत 'शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण' (Taxonomy of Educational Objectives) नामक पुस्तक के प्रथम भाग का सम्पादन शिकागो विश्वविद्यालय (Chicago University) के डा. बी. एस. ब्लूम (Dr. B.S.Bloom) ने किया। इसलिए इस वर्गीकरण को 'ब्लूम के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण' के नाम से जाना जाता है। ब्लूम द्वारा प्रतिपादित उद्देश्यों की वर्गीकरण पद्धति उसी प्रकार शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण करती है जिस प्रकार प्रसिद्ध शिक्षाविद, डेवी की दशमलव पद्धति (Decimal System) पुस्तकालय की पुस्तकों का वर्गीकरण करती है। ब्लूम ने शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण करके उन्हें अत्यन्त सरल एवं स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया है। इन उद्देश्यों का शिक्षा के क्षेत्र में विशेष महत्व है। इस से शिक्षकों, विशेषज्ञों, प्रशासकों तथा अनुसंधानकर्ताओं को पाठ्यक्रम एवं मूल्यांकन सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करने में सहायता मिलती है। विद्यार्थियों की अधिगम सम्बन्धी कठिनाईयों को पहचान कर उनको दूर किया जा सकता है। ब्लूम ने शैक्षिक उद्देश्यों का उपयुक्त एवं प्रभावशली वर्गीकरण इस आधार पर किया कि शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया द्वारा विद्यार्थियों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाये जा सकते हैं। व्यवहार के तीन पक्ष हैं–

1. ज्ञानात्मक पक्ष (Cognitive Domain)
2. भावात्मक पक्ष (Affective Domain)
3. क्रियात्मक पक्ष (Psychomotor or Conative Domain)

ज्ञानात्मक पक्ष का सम्बन्ध मस्तिष्क से, भावात्मक पक्ष का सम्बन्ध दिल अथवा भावनाओं से एवं क्रियात्मक पक्ष का सम्बन्ध अंगों के संचालन अथवा शारीरिक क्रियाओं से है। मानव व्यवहार तीनों पक्षों के विकास द्वारा संचालित होता है अर्थात् व्यवहार में ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों का समन्वय एवं सामंजस्य होता है। डा. ब्लूम ने इन तीनों पक्षों के आधार पर अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया है–

1. ज्ञानात्मक उद्देश्य (Cognitive Objectives)
2. भावात्मक उद्देश्य (Affective Objectives)
3. क्रियात्मक उद्देश्य (Psychomotor or Conative Objectives)

ब्लूम (Bloom, 1956) ने शैक्षिक उद्देश्यों के ज्ञानात्मक पक्ष का वर्गीकरण प्रस्तुत किया। इसके अन्तर्गत वे शैक्षिक उद्देश्य आते हैं जिनका सम्बन्ध ज्ञान के पहचान या प्रत्यास्मरण से अथवा बौद्धिक योग्यताओं के विकास से होता है। ब्लूम, क्रथवाल व मारिया (Bloom, Karthwohl and Maria, 1964) ने भावात्मक पक्ष से सम्बन्धित उद्देश्यों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया। भावात्मक उद्देश्यों का सम्बन्ध रूचियों, अभिवत्तियों तथा मूल्यों के विकास से होता है। प्रो. दवे (Prof. Dave, 1967) सिम्पसन (Simpson, 1969) तथा हैरो (Harrow, 1972) ने क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित उद्देश्यों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया। इसके अन्तर्गत वे उद्देश्य आते हैं जिनका सम्बन्ध विद्यार्थी के क्रियात्मक कौशलों (Motor Skills) से होता है।

## 3.3 ज्ञानात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण (Taxonomy of Educational Objectives of Cognitive Domain)

ब्लूम ने ज्ञानात्मक पक्ष पर अधिक बल दिया और कहा कि बौद्धिक योग्यता के विकास के लिए ज्ञानात्मक पक्ष महत्वपूर्ण है। इस पक्ष का मुख्य केन्द्र पाठ्यक्रम का विकास होता है और इसका विकास करते समय उद्देश्यों को अधिक से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है तथा इन उद्देश्यों को विद्यार्थी व्यवहार में वर्णित किया जा सकता है। ज्ञानात्मक उद्देश्यों को सरल से कठिन तथा निम्न से उच्च स्तर की दिशा में निम्नलिखित 6 स्तरों (वर्गों) में वर्गीकृत किया गया है–

I. **ज्ञान (Knowledge):** यह ज्ञानात्मक पक्ष से सम्बन्धित उद्देश्यों का निम्नतम स्तर है। 'ज्ञान' से अभिप्राय उन व्यवहारों एवं परीक्षण–परिस्थितियों से है जो विचारों, विषय–सामग्री या प्रक्रिया को स्मरण करने पर बल दते हैं। इसका सम्बन्ध विचारों, सूचनाओं, तथ्यों, वस्तुओं तथा क्रियाओं को पहचानने अथवा प्रत्यास्मरण (Recall) करने से है। अधिगम की स्थिति में, विद्यार्थी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह विशेष सूचनाओं को अपने मस्तिष्क में रखें तथा बाद में इन सूचनाओं का

प्रत्यास्मरण कर सके। इस प्रक्रिया में सूचनाओं में कुछ परिवर्तन होने की संभावना रहती है। विषय–वस्तु की दष्टि से ज्ञान उद्देश्यों को निम्नलिखित तीन भागों में बांटा जा सकता है–

(i) विशिष्ट का ज्ञान (Knowledge of Specifics)

(ii) विशिष्ट से सम्बन्धित साधनों व रीतियों का ज्ञान (Knowledge of ways and means of dealing with specifics)

(iii) सार्वभौमिक एवं अमूर्त प्रत्ययों का ज्ञान (Knowledge of Universals and Abstractions)

**उदाहरण**– विद्यार्थी न्यूटन के गुरूत्वाकर्षण नियम की परिभाषा दे सकता है।

II. **बोध (Comprehension):** ज्ञान के बिना बोध नहीं हो सकता। बोध के लिये ज्ञान एक आवश्यक आधार है। बोध से अभिप्राय है तथ्यों, विचारों, विधियों, प्रक्रियाओं, नियमों तथा सिद्धान्तों आदि की बुनियादी समझ। इसके परिणामस्वरूप विद्यार्थी को जो कुछ बताया जाता है वह उसकी पहचान एवं प्रत्यास्मरण की सहायता से उदाहरण दे सकता है, अनुवाद कर सकता है, उसका सारांश दे सकता है, व्याख्या कर सकता है, अनुमान लगा सकता है अथवा विस्तार कर सकता है। बोध उद्देश्यों को निम्न तीन भागों में बांटा जा सकता है–

(i) अनुवाद (Translation)

(ii) व्याख्या (Explaination)

(iii) बहिर्वेशन (Extrapolation)

**उदाहरण**– विद्यार्थी 'गुरूत्वाकर्षण के नियम' की व्याख्या कर सकता है।

III. **प्रयोग (Application):** प्रयोग के लिये ज्ञान तथा बोध का होना आवश्यक है। यह ज्ञानात्मक पक्ष का तीसरा स्तर है तथा ज्ञान एवं बोध से उच्च स्तर है। बोध में विद्यार्थी किसी अमूर्त वस्तु का उपयोग कर सकता है जबकि 'प्रयोग' में विद्यार्थी विशिष्ट एवं ठोस परिस्थितियों में किसी मूर्त वस्तु (concrete object) का उपयोग कर सकता है। प्रयोग उद्देश्यों को निम्न तीन भागों में बाँटा जा सकता है–

(i) तथ्यों, नियमों, अधिनियमों तथा सिद्धान्तों का सामान्यीकरण करना (Generalisation of facts, laws, principles and theories)

(ii) विद्यार्थियों की कमज़ोरियों का निदान करना (Diagnosis of Pupils weakness)

(iii) विद्यार्थियों द्वारा पाठ्यसामग्री का प्रयोग करना (Application of contents by the students)

**उदाहरण**– विद्यार्थी दैनिक जीवन में 'गुरूत्वाकर्षण के नियम' की उपयोगिता देखते हैं।

IV. **विश्लेषण ( Analysis):** विश्लेषण, ज्ञान, बोध तथा प्रयोग से उच्च स्तर है। 'बोध' में पाठ्य सामग्री को समझने पर बल दिया जाता है तथा प्रयोग में समझी गई सामग्री के व्यवहारिक जीवन में प्रयोग पर बल दिया जाता है। विश्लेषण में पाठ्य सामग्री को विभिन्न तत्वों में बांटा जाता है। इन तत्वों में आपसी सम्बन्धों की खोज़ एवं उनके संगठन की विधियों को भी सम्मिलित किया जाता है। यह सम्प्रेषण (Communication) को स्पष्ट करता है और उसके निष्कर्षों को भी बताता है। विश्लेषण उद्देश्य के निम्नलिखित तीन स्तर हैं।

(i) तत्वों का विश्लेषण (Analysis of Elements)

(ii) सम्बन्धों का विश्लेषण (Analysis of Relationships)

(iii) व्यवस्थित सिद्धान्तों का विश्लेषण (Analysis of Organised Principles)

**उदाहरण**– विद्यार्थी गुरूत्वाकर्षण के नियम का विश्लेषण कर सकते हैं।

V. **संश्लेषण (Synthesis):** संश्लेषण को सजनात्मक उद्देश्य भी कहा जाता है। यह ज्ञानात्मक पक्ष का पांचवां स्तर है। इसमें विभिन्न तत्वों को व्यवस्थित करके एक नये एवं पूर्ण रूप की रचना की जाती है। इससे विद्यार्थियों में सजनात्मक योग्यताओं (Creative Abilities) का विकास होता है। संश्लेषण उद्देश्य के भी तीन स्तर हैं–

(i) अनुपम संप्रेषण की उत्पत्ति (Production of Unique Communication)

(ii) प्रस्तावित क्रियाओं अथवा योजना का निर्माण (Production of plan or proposed set of operations)

(iii) अमूर्त सम्बन्धों को खोजना (Derivation of a set of abstract relations)

**उदाहरण**– विद्यार्थी गुरूत्व एवं गुरूत्वाकर्षण शक्ति को ज्ञात करने के लिये प्रस्तावित क्रियाओं अथवा योजना का निर्माण करता है।

VI. **मूल्यांकन (Evaluation):** मूल्यांकन ज्ञानात्मक पक्ष का उच्चतम स्तर है। यह विद्यार्थी में उस योग्यता का विकास करता है जिसके द्वारा वह ज्ञान, बोध, प्रयोग, विश्लेषण एवं संश्लेषण से प्राप्त उपलब्धि की उचित जांच करता है। इस में विद्यार्थी से किसी विशिष्ट विचार, वस्तु, नियम या सिद्धान्त के सम्बन्ध में उचित गुणात्मक एवं परिमाणात्मक निर्णय लेने की आशा की जाती है। मूल्यांकन के दो स्तर हैं–

(i) आंतरिक साक्षियों द्वारा निर्णय

(ii) बाह्य साक्षियों द्वारा निर्णय

**उदाहरण**– विद्यार्थी गुणात्मक एवं परिमाणात्मक विधियों द्वारा 'गुरूत्वाकर्षण के नियम' का मूल्यांकन करता है।

## 3.4 भावात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण (Taxonomy of Educational Objectives of Affective Domain)

भावात्मक उद्देश्य विद्यार्थियों की रूचियों, अभिरूचियों, प्रवत्तियों, मूल्यों आदि से सम्बन्धित होते हैं तथा आन्तरिक अनुभूतियों को स्पष्ट करते हैं। इन उद्देश्यों द्वारा विद्यार्थियों की भावनाओं एवं मूल्यों में वांछित परिवर्तन लाया जा सकता है। ब्लूम, क्रथवाल और मारिया (Bloom, Krathwohl & Maria, 1964) के अनुसार भावात्मक उद्देश्यों के निम्न 5 स्तर (वर्ग) हैं–

I. **आग्रहण (Receiving or Attending):** यह भावात्मक उद्देश्यों का निम्नतम स्तर है। इसका सम्बन्ध विद्यार्थियों की संवेदना से होता है। संवेदना या अनुभूति के लिये उद्दीपक (Stimulus) का होना आवश्यक है।इस स्तर में अध्यापक विद्यार्थियों के सामने कोई उद्दीपक प्रस्तुत करके उन्हें अभिप्रेरित करता है जिससे उनमें विषय एवं उससे सम्बन्धित क्रियाओं को ग्रहण करने की इच्छा जागत होती है। आग्रहण में निम्नलिखित तीन क्रियाओं का क्रम निहित है–

(i) उद्दीपकों/परिस्थितियों/प्रक्रिया की जागरूकता (Awareness of Stimuli/Situations/Phenomenon)

(ii) उद्दीपकों को ग्रहण करने की इच्छा (Willingness to receive the Stimuli)

(iii) विद्यार्थियों का ध्यान नियन्त्रित करना (To Control the attention of Students)

**उदाहरण**– अध्यापक द्वारा पर्यावरण प्रदूषण सम्बन्धी चित्र दिखाने पर विद्यार्थी अध्यापक की ओर ध्यान देते हैं तथा सुनने के लिए तैयार हो जाते हैं।

II. **प्रतिक्रिया (Response):** यह भावात्मक पक्ष का दूसरा स्तर है। प्रतिक्रिया के लिये आग्रहण आवश्यक है। जब विद्यार्थी उद्दीपक के प्रति आकर्षित होते हैं और उनमें उद्दीपक को ग्रहण करने की इच्छा जागत हो जाती है, तब वे उसे ग्रहण करने के लिए प्रतिक्रिया करते हैं। यह प्रतिक्रिया सक्रिय रूप से व्यक्त होती है। जैसे आज्ञापालन करना, उत्तर देना, पढ़ना, लिखना, विचार–विमर्श करना, रिकार्ड करना आदि।

प्रतिक्रिया के निम्न तीन भाग होते हैं–

(i) प्रतिक्रिया के प्रति आज्ञाकारी होना (Obedience for Responding)

(ii) प्रतिक्रिया की इच्छा (Willingness to Respond)

(iii) प्रतिक्रिया में संतुष्टि (Satisfaction in Response)

**उदाहरण**–विद्यार्थी विद्यालय के परिवेश में पर्यावरण प्रदूषण के कारणों के सम्बन्ध में विचार–विमर्श करते हैं।

III. **आकलन (Valuing):** आकलन के लिये आग्रहण एवं प्रतिक्रिया दोनों स्तर आधार का कार्य करते हैं। आकलन में किसी वस्तु, क्रिया या व्यवहार का महत्त्व निहित होता है। जब विद्यार्थी किसी प्रक्रिया की ओर ध्यान देते हैं और उसे ग्रहण करने के लिए प्रतिक्रिया करते हैं, उस प्रक्रिया में प्राप्त संतुष्टि के आधार पर वे प्रक्रिया का महत्व स्वीकार करते हैं। अर्थात् उन्हें मूल्यों का बोध होता है और वे उन्हें पालन करने का प्रयास करते हैं। आकलन में निम्न तीन क्रियाओं का क्रम निहित होता है–

(i) मूल्य की स्वीकृति (Acceptance of a Value)

(ii) मूल्य की वरीयता (Preference for a Value)

(iii) मूल्य के प्रति वचनबद्धता (Commitment of a Value)

**उदाहरण**– विद्यार्थी अपने विद्यालय के परिवेश में प्रदूषण को कम करने अथवा रोकने की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं–

IV. **संगठन (Organisation):** यह भावात्मक पक्ष का चौथा स्तर है। इस स्तर के लिये आग्रहण, प्रतिक्रिया एवं आकलन का होना आवश्यक है। जब विद्यार्थी विभिन्न मूल्यों को ग्रहण करता है तो कई परिस्थितियों में ग्रहण किये गए मूल्यों में टकराव की अनुभूति करता है। इस टकराव को रोकने के लिए लिये विद्यार्थी मूल्यों का समन्वय एवं स्पष्टीकरण करता है। इससे विद्यार्थी मूल्यों की संरचना एवं जीवन–दर्शन के निर्माण की ओर अग्रसर होता है। संगठन में निम्नलिखित क्रियाएं निहित हैं–

(i) मूल्यों का संप्रत्ययीकरण (Conceptualisation of Values)

(ii) मूल्य–पद्धति की व्यवस्था (Organisation of a Value System)

**उदाहरण**– विद्यार्थी अपने विद्यालय के परिवेश में प्रदूषण रोकने के लिये विभिन्न उपायों/तरीकों का संगठन करते हैं।

V. **मूल्यों का चरित्रीकरण (Characterization of Values):** भावात्मक पक्ष के उद्देश्यों का यह उच्चतम स्तर है। इसके लिये उपरोक्त चारों स्तरों आग्रहण, प्रतिक्रिया, आकलन एवं संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति आवश्यक है। इस स्तर पर पहुंचने तक विद्यार्थी अपनी जीवन–शैली में विशेष प्रकार के मूल्य समाहित कर लेता है। इस स्तर में मूल्यों को स्थिरता (Consistency) प्रदान करके उन्हें विद्यार्थी के चरित्र का अंग बनाने पर बल दिया जाता है। इस स्तर की सहायता से विद्यार्थियों में विशिष्ट शैली, रूचियों तथा अभिरूचियों का विकास होता है। इसलिए मूल्यों का चरित्रीकरण भावात्मक पक्ष के उद्देश्यों में सर्वोपरि है। यह सामान्य–समूह (Generalized Set) एवं विशिष्टीकरण दो रूपों में हो सकता है।

**उदाहरण**– विद्यार्थी अपने विद्यालय का परिवेश प्रदूषण रहित करने के लिए पॉलीथीन एवं एल्यूमिनियम फॉयल का उपयोग न करने तथा बेकार कागज कूड़दान में फेंकने की आदतों का निर्माण करने का संकल्प लेते हैं।

## 3.5 क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित उद्देश्यों का वर्गीकरण (Taxonomy of Educational Objectives of Psychomotor Domain)

क्रियात्मक पक्ष में वे शैक्षिक उद्देश्य सम्मिलित होते हैं जिनका सम्बन्ध शारीरिक तथा क्रियात्मक कौशलों से होता है। क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित शैक्षिक उद्देश्यों का मानकीकृत वर्गीकरण तैयार नहीं किया गया फिर भी इन उद्देश्यों को वर्गीकृत करने का प्रयास प्रो. आर. एच. दवे (Prof. R.H. Dave, 1967), सिम्पसन (Simpson, 1969) तथा ए. जे. हैरो (A.J. Harrow, 1972) ने किया। एन. सी. आर. टी (NCERT) के प्रो. दवे ने क्रियात्मक पक्ष के उद्देश्यों को पाँच स्तरों में विभाजित किया और इसे 'क्रियात्मक पक्ष का दवे प्रतिमान' (Dave Model of Psycholmotor Domain) का नाम दिया। सिम्पसन एवं हैरो ने इन उद्देश्यों को क्रमशः पाँच एवं छः स्तरों में वर्गीकृत किया।

दवे, सिम्पसन तथा हैरो द्वारा दिये गये वर्गीकरण निम्न तालिका में प्रस्तुत किये गये हैं–

| Prof. R.H. Dave, 1967 | Simpson, 1969 | A.J. Harrow, 1972 |
|---|---|---|
| I. अनुकरण (Imitation) | I. प्रत्यक्षीकरण (Perception) | I. सहज क्रियात्मक अंग संचालन (Reflex Movements) |
| II. कार्य करना (Manipulation) | II. व्यवस्था या समुच्चय (Set) | II. आधारभूत अंग संचालन (Fundamental Movements) |
| III. यथार्थता (Precision) | III. निर्देशात्मक प्रतिक्रिया (Guided Response) | III. शारीरिक योग्यताएँ (Physical Abilities) |
| IV. स्पष्ट उच्चारण (Articulation) | IV. कार्य प्रणाली (Mechanism) | IV. प्रत्यक्षीकरण योग्यताएँ (Perceptual Abilities) |
| V. स्वाभावीकरण (Naturalisation) | V. जटिल प्रत्यक्ष क्रिया (Complex Overt Response) | V. कौशलयुक्त अंग संचालन (Skilled Movements) |
| | | VI. सांकेतिक सम्प्रषण (Non-discussive Communication) |

हैरो (A.J. Harrow, 1972) द्वारा दिये गये वर्गीकरण को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया गया है–

I. **सहज़ क्रियात्मक अंग संचालन (Reflex Movements):** यह क्रियात्मक पक्ष का निम्नतम स्तर है। इन क्रियाओं के लिये किसी विशेष योग्यता की आवश्यकता नहीं होती। ये बिना इच्छा के अपने आप होती रहती हैं। व्यक्ति के सभी सहज़ व्यवहार इन क्रियाओं पर आधारित होते हैं। जैसे छींक आना, पलक झपकना, गर्म चीज़ से हाथ छूने पर हाथ का पीछे हटाना आदि। ये क्रियाएँ मेरूरज्जु, (Spinal Cord) द्वारा संचालित होती हैं। इनके बिना जीवन असंभव है। ये क्रियाएँ जन्म से मत्यु तक चलती रहती हैं।

II. **आधारभूत अंग संचालन (Fundamental Movements):** यह क्रियात्मक पक्ष का दूसरा स्तर है। बालक स्वाभाविक रूप से अंग संचालन करता है जैसे– हाथ हिलाना, पैर चलाना, चलना आदि। इस प्रकार अंग संचालन के लिये बालक को किसी विशेष प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं पड़ती।

III. **शारीरिक योग्यताएँ (Physical Abilities):** यह क्रियात्मक पक्ष का तीसरा स्तर होता है। इस स्तर का मुख्य उद्देश्य अंग संचालन सम्बन्धी क्रियाओं में परिपक्वता लाना तथा बालक की शक्तियों का विकास करना है। शारीरिक अंगों के उचित संचालन से शारीरिक योग्यताओं का विकास होता है जिससे बालक अपने पर्यावरण के साथ प्रभावशाली ढ़ंग से समायोजन करता है और जीवन में आने वाली समस्याओं का समाधान कर सकता है। जैसे– शारीरिक योग्यताओं के विकास के कारण बालक खेलों में अच्छा प्रदर्शन करता है। बालक की शारीरिक योग्यताओं के विकास के लिये उन्हें अपनी जन्मजात शक्तियों का प्रयोग करने, स्थिति को सहन करने आदि क्रियाओं का प्रशिक्षण देना चाहिए।

IV. **प्रत्यक्षीकरण योग्यताएँ (Perceptual Abilities):** यह क्रियात्मक पक्ष का चौथा स्तर है। प्रत्यक्षीकरण योग्यताओं को अर्जित करने के लिए विशेष क्रियाएँ व शारीरिक योग्यताएँ आधार का कार्य करती हैं। ये योग्यताएँ बालक की ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों के सामंजस्य पर निर्भर करती हैं। बालक इच्छानुसार प्रत्यक्षीकरण योग्यताओं को अर्जित करने का प्रयास करता है और इन की सहायता से वह वस्तुओं को पहचानने, समझने, विभेद करने तथा उनके साथ समायोजन करने में सफल होता है।

**उदाहरण**– बालक स्पर्श करके, सुनकर, देखकर, सूंघकर व चखकर अर्जित ज्ञान का प्रत्यक्षीकरण करता है।

V. **कौशलयुक्त अंग संचालन (Skilled Movements):** यह क्रियात्मक पक्ष का पाँचवाँ स्तर है और उपरलिखित चारों स्तर इसके लिये आधार का कार्य करते हैं। कौशलयुक्त अंग संचालन के लिए बालक को विशेष प्रशिक्षण लेना पड़ता है तथा अभ्यास करना पड़ता है। जिससे वह इससे सम्बन्धित क्रियाओं का प्रभावशाली ढ़ंग से प्रदर्शन कर सके।

**उदाहरण**– नत्य कौशल, संगीत कौशल, तैराकी कौशल, कम्प्यूटर आदि कौशलों में बालक अभ्यास से ही निपुण हो सकते हैं।

VI. **सांकेतिक सम्प्रेषण (Non-Discussive Communication):** यह क्रियात्मक पक्ष का उच्चतम स्तर है। सांकेतिक सम्प्रेषण से अभिप्राय उस व्यवहार से है जिसमें विद्यार्थी बिना कोई शब्द बोले अपने भावों को कुशलतापूर्वक अभिव्यक्त करता है। इसमें विद्यार्थी शब्दों का प्रयोग नहीं करता अपितु अपनी भाव–भंगिमा व मुखाकृति द्वारा अपनी बात दूसरों तक पहुंचाता है। सांकेतिक सम्प्रेषण लगातार अभ्यास द्वारा विकसित होता है।

उदाहरण– बालक फिल्म देखने के पश्चात् नायक द्वारा किये गये नत्य का सांकेतिक संप्रेषण द्वारा प्रदर्शन करता है।

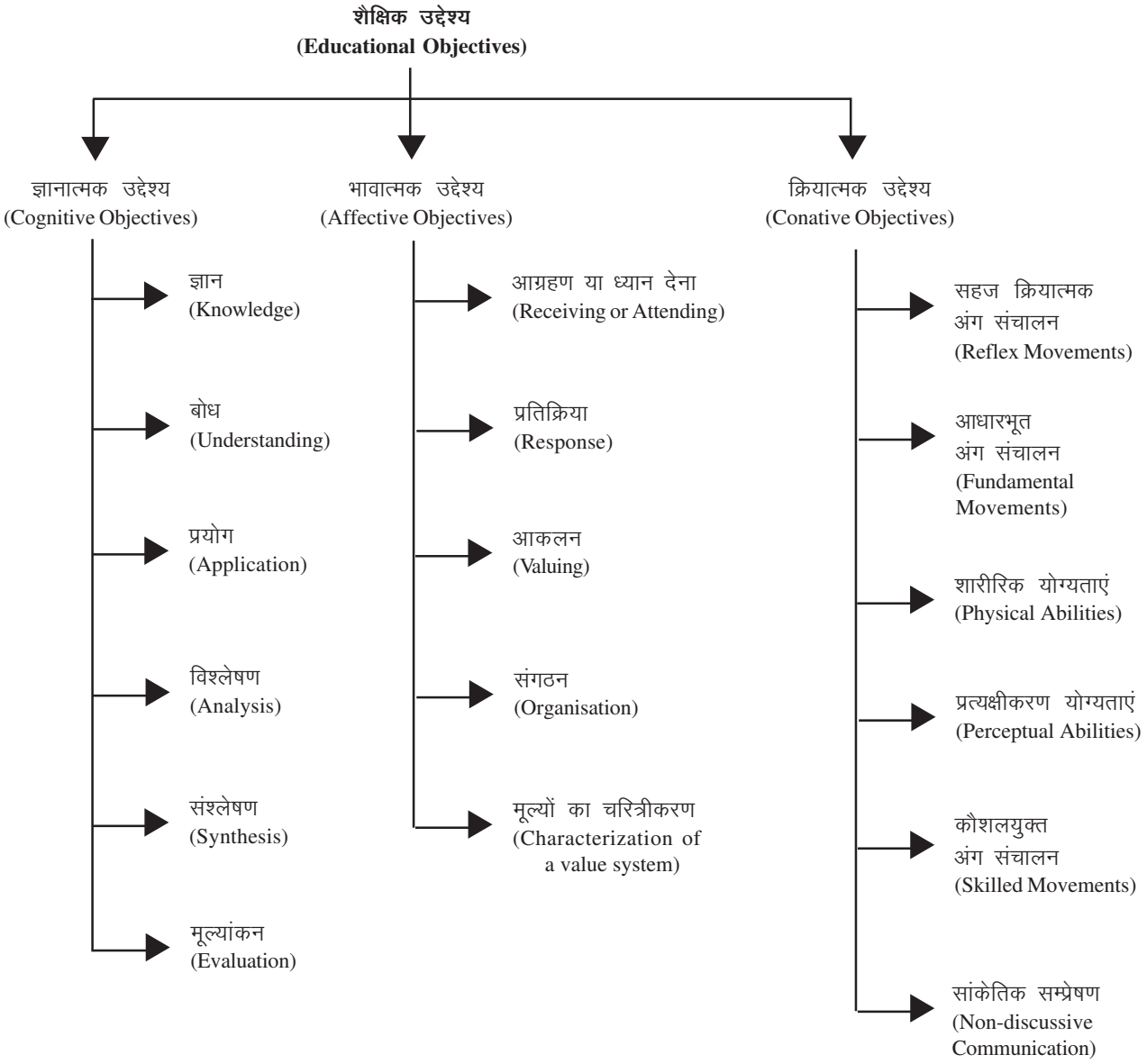

**अपनी प्रगति जांचिए**

(i) भावात्मक पक्ष से सम्बन्धित उद्देश्यों के नाम बताइए।

(ii) (a) प्रत्यक्षीकरण योग्यताएँ .....पक्ष के उद्देश्यों से सम्बन्धित हैं।

(b) विश्लेषण ..... उद्देश्य है।

(iii) सीखने के उद्देश्यों को ब्लूम द्वारा किन तीन पक्षों में विभाजित किया गया है।

(iv) ज्ञानात्मक पक्ष के स्तरों को क्रम में लिखो।

(v) दवे द्वारा क्रियात्मक उद्देश्यों के वर्गीकरण को क्रम में लिखो।

## 3.6 सारांश

इस अध्याय को पढ़कर हमने जाना कि शैक्षिक उद्देश्यों का पहला स्पष्ट एवं प्रभावशाली वर्गीकरण डा. बी. एस. ब्लूम द्वारा प्रस्तुत किया गया। ब्लूम ने शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण इस आधार पर किया कि शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया द्वारा विद्यार्थियों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाये जा सकते हैं। ब्लूम ने व्यवहार के तीन पक्षों– ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्षों के आधार पर शैक्षिक उद्देश्य का वर्गीकरण किया है। शैक्षिक उद्देश्यों को ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक उद्देश्यों के नाम से जाना जाता है। विद्यार्थी के व्यवहार के प्रत्येक पक्ष के विभिन्न स्तर होते हैं। इन स्तरों के अनुरूप शिक्षण उद्देश्यों को सरल से कठिन एवं निम्न से उच्च स्तर की दिशा में वर्गीकृत किया गया है। ज्ञानात्मक उद्देश्य– ज्ञान, बोध, प्रयोग, विश्लेषण, संश्लेषण और मूल्यांकन से सम्बन्धित होते हैं। भावात्मक उद्देश्यों में आग्रहण, प्रतिक्रिया, आकलन, संगठन तथा मूल्यों का चरित्रीकरण आदि सम्मिलित हैं। इसी प्रकार क्रियात्मक उद्देश्यों में कार्य करना, स्पष्ट उच्चारण, निर्देशात्मक प्रतिक्रिया, जटिल प्रत्यक्ष क्रिया, कौशल युक्त अंग संचालन, सांकेतिक सम्प्रेषण, प्रत्यक्षीकरण, आदि सम्मिलित होते हैं।

**आदर्श उत्तर**

(i) आग्रहण, प्रतिक्रिया, आकलन, संगठन तथा मूल्यों का चरित्रीकरण

(ii) (a) क्रियात्मक

(b) ज्ञानात्मक

(iii) ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्ष।

(iv) ज्ञान, बोध, प्रयोग, विश्लेषण, संश्लेषण, मूल्यांकन।

(v) दवे ने क्रियात्मक उद्देश्यों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है– अनुकरण, कार्य करना, यथार्थता, स्पष्ट उच्चारण, स्वाभावीकरण।

## 3.7 मुख्य शब्द

**ज्ञानः** ज्ञान से अभिप्राय उन व्यवहारों एवं परीक्षण परिस्थितियों से है जो विचारों, विषय–सामग्री या प्रक्रिया को स्मरण करने पर बल देते हैं।

**बोधः** बोध से अभिप्राय है– तथ्यों, तत्वों, विचारों, विधियों, प्रक्रियाओं, नियमों, सिद्धान्तों आदि की बुनियादी समझ।

**भावात्मकः** भावात्मक वह है जो भावनाओं, अनुभूतियों आदि से सम्बन्धित हो।

**क्रियात्मकः** क्रियात्मक से अभिप्राय अंग संचालन अथवा शारीरिक क्रियाओं से है।

## 3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

**ओबराय, एस. सी.** – 'शिक्षण–अधिगम के मूल तत्व', शोभित प्रकाशन, भिवानी 1998.

**Bloom, B.S. et.al –** "Taxonomy of Educational Objectives, David Mikey, New York.

**शर्मा, रवीन्द्र कुमार** – 'शिक्षण अधिगम के मूल तत्व' श्री राम पब्लिकेशन, भिवानी, 2000.

**शर्मा, आर. ए.** – 'शिक्षण अधिगम के मूल तत्व' लायल बुक डिपो, मेरठ, 1989.

# इकाई–1

# अध्याय-4: जीव विज्ञान के विशिष्ट उद्देश्यों का व्यवहारपरक शब्दावली में प्रतिपादन

# (Formulation of Specific Objectives of Life Science in Behavioural Terms)

**उद्देश्य:**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि:

- विशिष्ट उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने की आवश्यकता बता सकें।
- उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने से सम्बन्धित उपागमों की सूची बना सकें।
- विभिन्न प्रकार के व्यवहारों के उदाहरण दे सकें।
- राबर्ट मेगर उपागम की सहायता से ज्ञानात्मक एवं भावात्मक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिख सकें।
- राबर्ट मिलर उपागम की सहायता से क्रियात्मक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिख सकें।
- आर. सी. ई. एम. उपागम द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिख सकें।

**संरचना:**

4.1. प्रस्तावना
4.2. विशिष्ट उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने की आवश्यकता।
4.3. उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने से सम्बन्धित उपागम।
4.4. राबर्ट मेगर उपागम द्वारा ज्ञानात्मक एवं भावात्मक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखना।
4.5. राबर्ट मिलर उपागम द्वारा क्रियात्मक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखना।
4.6. आर. सी. ई. एम. उपागम द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखना।
4.7. सारांश
आदर्श उत्तर
4.8. मुख्य शब्द
4.9. संदर्भ ग्रन्थ

## 4.1 प्रस्तावना

हमने इकाई 1 के अध्याय (3) में शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण का अध्ययन किया। अब हम शैक्षिक उद्देश्यों तथा उनके विभिन्न स्तरों के बारे में जानते हैं। शैक्षिक अथवा अनुदेशनात्मक उद्देश्य अध्यापक द्वारा निर्धारित किए जाते हैं और इनके आधार पर अध्यापक अपने शिक्षण की सफलता का अनुमान लगाता है। उद्देश्यों का निर्धारण शिक्षण की क्रियाओं को विशिष्ट रूप में प्रस्तुत नहीं करता है। शिक्षण उद्देश्य से एक ही स्तर का बोध हो सकता है अतः शिक्षण उद्देश्यों को व्यवहारिक रूप में लिखा जाना चाहिए। इस पाठ में हम उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने से सम्बन्धित विभिन्न उपागमों का अध्ययन करेंगे और उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखना सीखेंगे।

## 4.2 विशिष्ट उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने की आवश्यकता (Need of Writing Specific Objectives in Behavioural Terms)

विशिष्ट उद्देश्यों से अभिप्राय उन उद्देश्यों से है जिनकी सहायता से अनुदेशन की दिशा निर्धारित की जाती है एवं मूल्यांकन की प्रविधियों का विशिष्टीकरण किया जाता है। विशिष्ट उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिये ब्लूम द्वारा दिया गया वर्गीकरण आधार के रूप में प्रयुक्त होता है। ब्लूम द्वारा दिये गये उद्देश्यों के वर्गीकरण की मुख्य कमी यह है कि इसमें शिक्षण के उद्देश्यों को विद्यार्थियों के अन्तिम व्यवहार (Terminal Behaviour) के रूप में स्पष्ट नहीं किया गया है। शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्यों का उल्लेख तभी सार्थक एवं प्रभावशाली हो सकता है जब उन्हें व्यवहारपरक शब्दावली में व्यक्त किया जाये। उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने की आवश्यकता को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया गया है–

1. इससे सीखने के अनुभवों की विशेषताओं का निर्धारण किया जा सकता है।
2. शिक्षण व अधिगम में सन्तुलन बना रहता है तथा शैक्षिक क्रियाएँ सुनिश्चित की जा सकती है।
3. इससे शिक्षण सामग्री का सामान्य एवं विशिष्ट सारांश बताया जा सकता है।
4. इससे उद्देश्यों को विस्तत रूप दिया जा सकता है।
5. इससे उपयुक्त दश्य–श्रव्य सामग्री के चयन में सहायता मिलती है।
6. इससे प्रश्नों का सरलतापूर्वक निर्माण किया जा सकता है।

## 4.3 उद्देश्यों की व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने से सम्बन्धित उपागम (Approaches for Writing Objectives in Behavioural Terms)

ये उपागम निम्नलिखित हैं–

1. राबर्ट मेगर उपागम (Robet Mager's Approach)
2. राबर्ट मिलर उपागम (Robet Miller's Approach)
3. आर. सी. ई. एम. उपागम (R.C.E.M. Approach)

## 4.4 राबर्ट मेगर उपागम द्वारा ज्ञानात्मक एवं भावात्मक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखना (Robert Mager's Approach)

इस उपागम का विकास राबर्ट मेगर द्वारा सन् 1962 में किया गया। मेगर ने विशिष्ट उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिये ब्लूम के वर्गीकरण को आधार माना है। मेगर ने ज्ञानात्मक एवं भावात्मक उद्देश्यों को ही व्यवहारपरक शब्दावली में लिखा है। उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिये उन्होंने 'कार्य सूचक क्रियाओं' (Action Verbs) का प्रयोग किया। मेगर के अनुसार 'कार्य सूचक क्रियाओं' के उपयोग से विद्यार्थियों के अधिगम परिणामों को ऐसी व्यवहारपरक

शब्दावली में लिखा जाता है जिसका सरलतापूर्वक मापन किया जा सकता है। इसके लिये उन्होंने निम्नलिखित तीन सुझाव दिये हैं–

1. अन्तिम व्यवहार की पहचान करना (Identification of Terminal Behaviour)
2. उन महत्वपूर्ण परिस्थितियों का वर्णन करना जिसके अन्तर्गत वांछित व्यवहार परिवर्तन होने की अपेक्षा है। (Describing important conditions for desirable change in behaviour)
3. वांछनीय व्यवहार की कसौटियों का स्पष्टीकरण करना (Clarfying criteria for desirable behaviour)

मेगर ने ज्ञानात्मक तथा भावात्मक पक्षों के विभिन्न स्तरों के लिये विभिन्न कार्यसूचक क्रियाओं का उल्लेख किया है। ये 'कार्य सूचक क्रियाएं' निम्नलिखित हैं–

**ज्ञानात्मक पक्ष से सम्बन्धित कार्य-सूचक क्रियाएं**
**(Action Verbs of Cognitive Domain)**

| उद्देश्य (objectives) | कार्य-सूचक क्रियाएं (Action Verbs) |
|---|---|
| I. ज्ञान (Knowledge) | परिभाषा देना (Define), नाम देना (Name), प्रत्यास्मरण (Recall), पहचान करना (Recognise), सूची देना (List), लेबल लगाना (Label), पुनः प्रस्तुत करना (Reproduce), चयन करना (Select), कथन करना (State), मापन (Measure), रेखांकित करना (Underline), आदि। |
| II. बोध (Understanding) | पहचान करना (Identify), व्याख्या करना (Explain), दष्टान्त देना (Illustrate), विभेद करना (Distinguish), प्रतिपादन करना (Formulate), वर्गीकरण करना (Classify), संकेत देना (Indicate), अर्थ निकालना (Interpret), पुष्टि करना (Verify), सारांश देना (Summarise), रूपान्तर करना (Transform), अनुवाद करना (Translate), निर्णय लेना (Judge) आदि। |
| III. प्रयोग (Application) | जाँच करना (Assess), परिवर्तन करना (Change), चुनना (Choose), संचालन करना (Conduct), निर्माण करना (Construct), गणना करना (Compute), प्रदर्शन करना (Demonstrate), खोज (Discover), स्थापित करना (Establish), उत्पन्न करना (Generate), संशोधन करना (Modify), पूर्व कथन (Predict), ढूढ़ना (Find) आदि। |
| IV. विश्लेषण (Analysis) | विश्लेषण करना (Analyse), तुलना करना (Compare), निष्कर्ष निकालना (Conclude), सम्बन्धित करना (Associate), आलोचना करना (Criticise), विभाजित करना (Divide), पहचानना (Identify), पुष्टि करना (Verify), संकेत करना (Point Out), हल करना (Resolve), चयन करना (Select), पथक करना (Separate), आदि। |
| V. संश्लेषण (Synthesis) | सुनिश्चित करना (Precise), संक्षिप्त करना (Briefing), पुनः कथन (Restate), मिलाना (Combine), निष्कर्ष निकालना (Conclude), तर्क करना (Argue), विचार–विमर्श करना (Discuss), संगठित करना (Organise), एक्य स्थापित करना (Integrate), सारांश देना (Summarise), सिद्ध करना (Prove), सामान्यीकरण करना (Generalise), सम्बन्ध जोड़ना (Relate) आदि। |
| VI. मूल्यांकन (Evaluation) | समर्थन करना (Support), सारांश देना (Summary), चयन करना (Select), बचाव करना (Defend), दूर करना (Avoid), आलोचना करना (Criticise), निष्कर्ष निकालना (Conclude), निर्धारित करना (Determine), आक्रमण करना (Attack), निर्णय देना (Judge), आदि। |

उदाहरण– विषय– जीव विज्ञान उपविषय– आहार श्रंखला (Food Chain)

(i) ज्ञान/उद्देश्य (Knowledge objective)

– विद्यार्थी आहार श्रंखला को परिभाषित कर सकेंगे।

(ii) बोध उद्देश्य (Understanding Objective)

– विद्यार्थी 10% नियम की व्याख्या कर सकेंगे।

– विद्यार्थी आहार श्रंखला एवं खाद्य जाल में अन्तर कर सकेंगे।

(iii) प्रयोग उद्देश्य (Application Objective)

– विद्यार्थी अपने परिवेश में उपस्थित किसी आहार श्रंखला की रचना कर सकेंगे।

(iv) संश्लेषण उद्देश्य (Synthesis Objectives)

– विद्यार्थी आहार श्रंखला में ऊर्जा के एक मुखी प्रवाह को तर्क सहित स्पष्ट कर सकेंगे।

(v) मूल्यांकन उद्देश्य (Evaluation Objective)

– विद्यार्थी आहार श्रंखला से सम्बन्धित तथ्यों को सारांश रूप में प्रस्तुत कर सकेंगे।

**भावात्मक पक्ष से सम्बन्धित कार्य-सूचक क्रियाएं**
**(Action Verbs of Affective Domain)**

| उद्देश्य (objectives) | कार्य-सूचक क्रियाएं (Action Verbs) |
|---|---|
| I. आग्रहण या ध्यान देना (Receiving/Attending) | सुनना (Listen), स्वीकार करना (Accept), प्राथमिकता देना (Prefer), ग्रहण करना (Receive), प्रत्यक्षीकरण (Perceive), ध्यान देना (Attend), चयन करना (Select), सावधान होना (Beware), अवलोकन करना (Observe), पूछना (Ask), अनुसरण करना (Follow), पक्ष लेना (Favour) आदि। |
| II. प्रतिक्रिया (Response) | उत्तर देना (Answer), कथन कहना (State), सूची बनाना (List), नाम देना (Name), आज्ञा पालन करना (Obey), उत्तर देना (Answer), सहायता करना (Assist), पूरा करना (Complete), उत्पत्ति करना (Derive), विकसित करना (Develop), रिकार्ड करना (Record), चयन करना (Select), लिखना (Write), विचार विमर्श करना (Discuss), प्रस्तुत करना (Present), अभ्यास करना (Practise) आदि। |
| III. आकलन (Valuing) | स्वीकार करना (Accept), पूरा करना (Complete), प्राप्त करना (Attain), निर्णय लेना (Decide), प्रदर्शन करना (Demonstrate), संकेत देना (Indicate), वद्धि करना (Increase), प्रभावित करना (Influence), भाग लेना (Participate), पहचानना (Recognise) आदि। |
| IV. संगठन (Organisation) | बनाना (Form), पाना (Find), चयन करना (Select), जोड़ना (Add), सम्बन्धित करना (Associate), परिवर्तन करना (Change), समावयित करना (Correlate), निर्धारित करना (Determine), सामान्यीकरण करना (Generalise) आदि। |
| V. मूल्यों का चरित्रीकरण (Characterization of Values) | स्वीकार करना (Accept), बदलना (Change), चरित्रिक करना (Characteristics), निर्णय करना (Decide), सिद्ध करना (Prove), दोहराना (Revise), सेवा करना (Serve), प्रदर्शन करना (Demonstrate), विकसित करना (Develop), हल करना (Solve), पुष्टि करना (Verify), आदि। |

उदाहरण– विषय– जीव विज्ञान उपविषय– कोशिका

आग्रहण उद्देश्य (Receiving Objective)

– विद्यार्थी कोशिका के बारे में ध्यान से सुनेंगे।

प्रतिक्रिया उद्देश्य (Response Objective)

– विद्यार्थी अध्यापक द्वारा कोशिका के सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देंगे।

आकलन उद्देश्य (Valuing Objective)

– विद्यार्थी जन्तु एवं पादप कोशिका में अन्तर कर सकेंगे।

संगठन उद्देश्य (Organisation Objective)

– विद्यार्थी कोशिका के विभिन्न भागों में सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे।

चरित्रीकरण उद्देश्य (Characterization Objective)

– विद्यार्थी माइट्रोकोन्ड्रिया को कोशिका का पावर हाऊस कहलाने का स्पष्टीकरण कर सकेंगे।

राबर्ट मेगर ने ज्ञानात्मक एवं भावात्मक पक्ष से सम्बन्धित उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने का प्रयास किया परन्तु इस उपागम के कुछ दोष भी हैं। ये दोष निम्नलिखित हैं–

**राबर्ट मेगर उपागम के दोष–**

1. इस उपागम में मानसिक प्रक्रियाओं एवं योग्यताओं को कोई महत्व नहीं दिया गया है।
2. यह उपागम केवल ज्ञानात्मक एवं भावात्मक उद्देश्यों के लिये उपयोगी है। इसमें क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित उद्देश्यों का स्पष्टीकरण नहीं किया गया है।
3. यह उपागम केवल अभिक्रमित अधिगम में उपयोगी हो सकता है। कक्षा के विशिष्ट अथवा अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिये उपयुक्त नहीं है।
4. मेगर उद्दीपक तथा प्रतिक्रिया को अधिगम के रूप में व्यक्त किया है। परन्तु मानव अधिगम को केवल साधारण उद्दीपक प्रतिक्रिया के रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता।
5. इस उपागम में कार्यसूचक क्रियाओं की सूची बहुत अधिक लम्बी है।
6. इस उपागम में कार्यपरक शब्दों की अनेक पक्षों एवं स्तरों में पुनरावत्ति हुई है जो युक्ति संगत नहीं है जैसे– चयन करना, सूची बनाना आदि।

## 4.5 राबर्ट मिलर उपागम द्वारा उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखना (Robert Miller Approach)

इस उपागम का विकास डा. राबर्ट मिलर ने सन् 1962 में किया। मिलर ने क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने में योगदान दिया है। इस उपागम के अनुसार क्रियात्मक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं का अनुसरण करना चाहिए–

1. सर्वप्रथम संकेतक (Indicator) का वर्णन करना चाहिए जिससे आवश्यक क्रिया का संकेत मिल सके।
2. उस उद्दीपक (Stimuilus) का विशेष वर्णन करना चाहिए जिससे प्रतिक्रिया (Response) हो सकें।
3. उस वस्तु/व्यक्ति को नियंत्रित करना चाहिए जिसे कार्य करने की दिशा में प्रेरित किया जाना है।
4. जिस क्रिया को सम्पन्न करना है, उसका वर्णन करना चाहिए।
5. प्रतिपुष्टि को उचित स्थान देना चाहिए।

राबर्ट मिलर ने भी राबर्ट मेगर की भांति 'कार्य सूचक क्रियाओं' के उपयोग पर बल दिया है और क्रियात्मक पक्ष के उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिये सम्बन्धित कार्य सूचक क्रियाओं की सूची प्रस्तुत की है। हैरो द्वारा प्रस्तुत क्रियात्मक पक्ष के विभिन्न स्तरों से सम्बन्धित कार्यसूचक क्रियाएं निम्नलिखित हैं–

**क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित कार्यसूचक क्रियाएं**
**(Action Verbs of Psychomotor Domain)**

| उद्देश्य (objectives) | कार्य-सूचक क्रियाएं (Action Verbs) |
|---|---|
| I. सहज़ क्रियात्मक अंग संचालन (Reflex Movement) | छींक आना, पलक झपकना, झटका देना, डरना, फैलना, खींचना, ढ़ीला करना, सुस्ताना, सीधा करना, काटना, लम्बा करना आदि।<br>उदाहरण– तेज़ प्रकाश से अन्धेरे कमरे में आने पर आँखों की पुतलियाँ फैल जाती हैं। |
| II. आधारभूत अंग संचालन (Fundamental Movement) | दौड़ना, उछलना, कूदना, घुटनों के बल चलना, रेंगना, चलना, पकड़ना, पीना, पहुँचना आदि।<br>उदाहरण– विद्यार्थी सांप को देखते ही दौड़ने लगते हैं। |
| III. शारीरिक योग्यताएं (Physical Abilities) | आरम्भ करना, सुधारना, संचालन करना, वद्धि करना, मोड़ना, सहन करना, रोकना, टुकड़े करना, सहारा देना आदि।<br>उदाहरण– विद्यार्थी आहार के उचित संतुलन द्वारा अपना स्वास्थ्य सुधार सकते हैं। |
| IV. प्रत्यक्षीकरण योग्यताएं (Perceptual Abilities) | संतुलन करना, मोड़ना, पकड़ना, खोज़ करना, खाना, लिखना, फेंकना, छू कर, देख कर या सूंघ कर पहचानना आदि।<br>उदाहरण– विद्यार्थी विभिन्न फूलों को देखकर उनकी पहचान कर सकते हैं। |
| V. कौशलयुक्त अंग संचालन (Skilled Movement) | नत्य करना, तैरना, बुनना, टाइप करना, खोदना, बुनाई करना, निशान लगाना, नाव चलाना स्केटिंग करना आदि।<br>उदाहरण– विद्यार्थी टाइप करना सीखते हैं। |
| VI. सांकेतिक संप्रेषण (Non-discussive Communication) | मुस्कुराना, भाव–भंगिमा बनाना, नकल करना, चिढ़ाना, चित्रित करना, खड़ा होना, बैठना, आदि।<br>उदाहरण– विद्यार्थी किसी विशेष क्रिया को चित्रित कर सकते हैं। |

**राबर्ट मिलर उपागम के दोष (Demerits of Miller's Approach)**

1. इस उपागम में केवल क्रियात्मक पक्ष के उद्देश्यों को ही व्यवहारपरक शब्दावली में लिखा गया है तथा ज्ञानात्मक व भावात्मक पक्ष की ओर ध्यान नहीं दिया गया।
2. इस उपागम में मानसिक योग्यताओं की उपेक्षा की गई है।

## 4.6 आर. सी. ई एम. उपागम द्वारा उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखना (R.C.E.M. Approach)

इस उपागम का विकास क्षेत्रीय कालेज आफ एजुकेशन, मैसूर (Regional College of Education, Mysore) के शिक्षाविदों ने किया है। मेगर एवं मिलर उपागम मानव व्यवहार के तीनों पक्षों से सम्बन्धित उद्देश्यों को पूर्ण रूप से व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने में असमर्थ रहे हैं। इन दोनों ही उपागमों में मानसिक योग्यताओं को उचित महत्व नहीं दिया गया एवं कार्य सूचक क्रियाओं का विभिन्न पक्षों एवं स्तरों में आच्छादन (Overlaping) होता है। इसीलिए आर. सी. ई. एम उपागम का विकास किया गया। इस उपागम की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें मानव व्यवहार के तीनों पक्षों– ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक से सम्बन्धित उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखा जा सकता है।

इस उपागम में कार्यसूचक क्रियाओं की सहायता से व्यक्ति अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इसमें 17 मानसिक योग्यताओं का प्रयोग किया गया है। आर. सी. ई. एम. उपागम में ब्लूम द्वारा दिये गये वर्गीकरण को संशोधित रूप में प्रयोग किया गया है और इसे आर. सी. ई. एम टैक्सोनोमी के नाम से जाना जाता है। इसमें ब्लूम द्वारा दिये गये ज्ञानात्मक पक्ष के 6 स्तरों के स्थान पर 4 स्तरों का वर्णन किया गया है। ब्लूम द्वारा प्रतिपादित 'बोध' (Comprehension) स्तर को समझ (Understanding) एवं अन्तिम तीन स्तरों विश्लेषण (Analysis), संश्लेषण (Synthesis) तथा मूल्यांकन (Evaluation) को सजनात्मकता (Creativity) का नाम दिया गया है।

**आर. सी. ई. एम. उपागम के विभिन्न स्तर, उद्देश्य एवं मानसिक योग्यताएँ**
**(Different Levels - Mental Abilities in R.C.E.M. Approach)**

| उद्देश्य (Objectives) | मानसिक योग्यताएँ या प्रक्रियाएँ (Mental Abilities or Processes) |
|---|---|
| I. ज्ञान (Knowledge) | 1. पहचान करना (Recognise) |
| | 2. प्रत्यास्मरण करना (Recall) |
| II. समझ (Understanding) | 3. सम्बन्ध देखना (See Relationship) |
| | 4. उदाहरण देना (Cite Example) |
| | 5. विभेद करना (Discriminate) |
| | 6. व्याख्या करना (Interpret) |
| | 7. वर्गीकरण करना (Classify) |
| | 8. पुष्टि करना (Verify) |
| | 9. सामान्यीकरण करना (Generalise) |
| III. प्रयोग (Application) | 10. कारण बताना (Reason out) |
| | 11. परिकल्पना का निर्माण करना (Formulation of Hypothesis) |
| | 12. परिकल्पना को स्थापित करना (Establishing Hypothesis) |
| | 13. निष्कर्ष निकालना (Infer) |
| | 14. भविष्यवाणी करना (Predict) |
| IV. सजनात्मकता (Creativity) | 15. विश्लेषण करना (Analysis) |
| | 16. संश्लेषण करना (Synthesis) |
| | 17. मूल्यांकन करना (Evaluate) |

इन 17 मानसिक योग्यताओं की सहायता से ज्ञानात्मक भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित विशिष्ट अथवा अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखा जा सकता है। इस कार्य के लिये निम्नलिखित 17 कथनों का उल्लेख किया गया है–

I. **ज्ञान उद्देश्य (Knowledge Objectives)**

(1) विद्यार्थी ..... का प्रत्यास्मरण करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

(2) विद्यार्थी ..... की पहचान करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

II. **समझ उद्देश्य (Understanding Objectives)**

(3) विद्यार्थी ..... तथा ..... में सम्बन्ध देखने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

(4) विद्यार्थी ..... के उदाहरण देने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

(5) विद्यार्थी ..... तथा ..... में विभेद करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

(6) विद्यार्थी ..... का वर्गीकरण करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

(7) विद्यार्थी ..... की व्याख्या करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

(8) विद्यार्थी ..... की पुष्टि करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

(9) विद्यार्थी ..... का सामान्यीकरण की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

III. **प्रयोग उद्देश्य (Application Objectives)**

(10) विद्यार्थी ..... का कारण बताने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

(11) विद्यार्थी ..... के बारे में परिकल्पना का निर्माण करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

(12) विद्यार्थी ..... के बारे में परिकल्पना को स्थापित करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

(13) विद्यार्थी ..... का निष्कर्ष निकालने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

(14) विद्यार्थी ..... की भविष्यवाणी करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

IV. **सजनात्मक उद्देश्य (Creative Objectives)**

(15) विद्यार्थी ..... का विश्लेषण करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

(16) विद्यार्थी ..... का संश्लेषण करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

(17) विद्यार्थी ..... का मूल्यांकन करने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

आर. सी. ई. एम उपागम के अनुसार उद्देश्यों को व्यवहापरक शब्दावली में लिखने के लिये निम्नलिखित विधि का प्रयोग करना चाहिए।

1. सर्वप्रथम विद्यार्थी के प्रारम्भिक व्यवहार (Entering Behaviour) को ध्यान में रखना चाहिये।
2. शिक्षण तथा अधिगम के उद्देश्यों पर विचार करना चाहिए।
3. विद्यार्थी को प्रदान किये जाने वाले अधिगम–अनुभवों, विषय–वस्तु, उपविषय आदि के बारे में विचार कना चाहिए।
4. विद्यार्थी के प्रारम्भिक व्यवहार, विषय–वस्तु, उपविषय आदि को ध्यान में रखकर मानसिक योग्यताओं का चयन करना चाहिए।

उदाहरण 1. विषय – जीव विज्ञान कक्षा – आठवीं

उपविषय – फूल के भाग

व्यवहारपरक उद्देश्य (Behavioural Objectives)

1. विद्यार्थी फूल के विभिन्न भागों को पहचान सकेंगे। (ज्ञान)
2. विद्यार्थी फूल के विभिन्न भागों की व्याख्या कर सकेंगे। (समझ)
3. विद्यार्थी किसी फूल को देखकर उसके विभिन्न भागों सम्बन्धी निष्कर्ष निकाल सकेंगे। (प्रयोग)
4. विद्यार्थी फूल के विभिन्न भागों के कार्यों का विश्लेषण कर सकेंगे। (सजनात्मकता)

उदाहरण 2. विषय – जीव विज्ञान कक्षा – नवीं

उपविषय – पाचन–तंत्र

**व्यवहारपरक उद्देश्य (Behavioural Objectives)**

1. विद्यार्थी पाचन तंत्र के विभिन्न अंगों को पहचान सकेंगे (ज्ञान)
2. विद्यार्थी पाचन तंत्र की व्याख्या कर सकेंगे। (समझ)
3. विद्यार्थी पाचन तंत्र के विभिन्न अंगों का वर्गीकरण कर सकेंगे। (समझ)
4. विद्यार्थी पाचन तंत्र के कार्यों के बारे में निष्कर्ष निकाल सकेंगे। (प्रयोग)

उदाहरण 3. विषय – जीव विज्ञान

उपविषय – तना

1. विद्यार्थी तने को परिभाषित कर सकेंगे (ज्ञान)
2. विद्यार्थी तने के रूपों की व्याख्या कर सकेंगे। (समझ)
3. विद्यार्थी तने के कार्यों की भविष्यवाणी कर सकेंगे। (प्रयोग)
4. विद्यार्थी तने का विश्लेषण कर सकेंगे। (सजनात्मकता)

**आर. सी. आई. एम. उपागम के निम्नलिखित गुण हैं–**

1. इस उपागम का विकास भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप किया गया है इसीलिए यह भारतीय विद्यालयों के लिये अधिक उपयोगी है।
2. इस उपागम में उत्पादन (Product) के स्थान पर प्रक्रिया (Process) को अधिक महत्व दिया गया है।
3. इस उपागम में मानव व्यवहार के तीनों पक्षों – ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक से सम्बन्धित उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखा जा सकता है।
4. इस उपागम में अनुदेशनात्मक उद्देश्यों की व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिए 17 मानसिक योग्यताओं का प्रयोग किया जाता है।
5. इस उपागम में मानसिक योग्यताओं का एक स्तर से दूसरे स्तर तक आच्छादन (Overlapping) नहीं होता।
6. यह उपागम परीक्षण प्रश्न व मूल्यांकन करने में अध्यापक की सहायता करता है।

## आर. सी. आई. एम. उपागम के दोष (Demerits of R.C.E. M. Approach)

आर. सी. आई. एम. उपागम के दोष निम्नलिखित हैं–

1. इस उपागम में मानव व्यवहार के तीनों पक्षों से सम्बन्धित उद्देश्यों के बारे में कोई स्पष्ट विभाजन नहीं किया गया हे। यह उपागम ज्ञानात्मक पक्ष के लिये अधिक उपयुक्त है। परन्तु भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्ष के उद्देश्यों से सम्बन्धित कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती।
2. इस उपागम में मानव व्यवहार को 17 मानसिक योग्यताओं में सीमित कर दिया गया है जो कि अपर्याप्त है।
3. इस उपागम द्वारा विद्यालय में पढ़ायी जाने वाली सम्पूर्ण विषय–वस्तु के अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को उचित रूप से व्यवहारपरक शब्दावली में लिखना संभव नहीं है।
4. इस उपागम में ज्ञान व सजनात्मक स्तरों की मानसिक योग्यताओं की सूची बहुत छोटी है।

5. इस उपागम द्वारा विद्यार्थियों के व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों की व्याख्या करना कठिन है।

6. किसी भी विषय की सामग्री का मानसिक योग्यताओं के साथ मिलान करना एक कठिन कार्य है।

7. इस उपागम में विभिन्न स्तरों के लिये प्रयुक्त मानसिक योग्यताओं में संतुलन नहीं है।

उपरोक्त व्याख्या के आधार पर यह स्पष्ट है कि अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिये आर. सी. ई. एम. उपागम भी पर्याप्त नहीं है। इस दिशा में अनुसंधान जारी है।

**अपनी प्रगति जांचिए**

(i) राबर्ट मेगर उपागम द्वारा किन शैक्षिक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखा जाता है?

(ii) राबर्ट मिलर उपागम का मुख्य दोष क्या है?

(iii) आर. सी. ई. एम. उपागम का प्रतिपादन किसने किया?

(iv) आर. सी. ई. एम. उपागम में ..... मानसिक योग्यताओं पर बल दिया गया है

(v) बोध स्तर में ..... तथा प्रयोग स्तर में ..... मानसिक योग्यताओं को स्थान दिया गया है।

## 4.7 सारांश

उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिए ब्लूम द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण आधार रूप में प्रयोग किया जाता है। ब्लूम के वर्गीकरण का मुख्य दोष यही है कि इसमें शिक्षण उद्देश्यों को सार्थकता प्रदान करने के लिए उन्हें व्यवहारपरक शब्दावली में लिखा जाना आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विभिन्न उपागमों का विकास हुआ जिनमें से राबर्ट मेगर उपागम, राबर्ट मिलर उपागम और आर. सी. ई. एम. उपागम मुख्य हैं। राबर्ट मेगर ने ज्ञानात्मक पक्ष एवं भावात्मक पक्ष के विभिन्न स्तरों से सम्बन्धित उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिए 'कार्य सूचक क्रियाओं' के प्रयोग पर बल दिया है जबकि राबर्ट मिलर ने केवल क्रियात्मक पक्ष के विभिन्न स्तरों (Simpson) से सम्बन्धित उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने के लिए 'कार्य सूचक क्रियाओं' की सूची प्रस्तुत की है। इन दोनों उपागमों में मानसिक योग्यताओं को कोई स्थान नहीं दिया गया है, 'कार्य सूचक क्रियाओं की सूची बहुत अधिक लम्बी है और कार्य परक शब्दों की विभिन्न उद्देश्यों में पुनरावत्ति होती है। आर. सी. ई. एम. अर्थात् Regional College of Education, मैसूर द्वारा प्रतिपादित उपागम का विकास भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप करने का प्रयत्न किया गया है। इसमें ब्लूम द्वारा प्रतिपादित ज्ञानात्मक पक्ष के 6 स्तरों के स्थान पर 4 स्तरों का वर्णन किया गया है। और 4 स्तरों से सम्बन्धित 17 मानसिक योग्यताओं का प्रयोग किया गया है। इसमें कार्य सूचक क्रियाओं को कोई स्थान नहीं दिया गया है। यह उपागम ज्ञानात्मक पक्ष से सम्बन्धित उद्देश्यों के लिए अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त 17 मानसिक योग्यताओं को विषय वस्तु से सम्बन्धित करना कठिन कार्य है। इस प्रकार आप देखते हैं कि तीनों उपागमों के कुछ गुण व कुछ सीमाएँ हैं। इस दिशा में अभी अनुसंधान हो रहा है।

**आदर्श उत्तर**

(i) ज्ञानात्मक व भावात्मक उद्देश्य

(ii) यह केवल क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जा सकता है।

(iii) रीजनल कॉलेज ऑफ एजुकेशन, मैसूर के शिक्षाविदों ने

(iv) 17 (सत्रह)

(v) 5,7 (पाँच, सात)

## 4.8 मुख्य शब्द

**विशिष्ट उद्देश्यः** वे शैक्षिक उद्देश्य जिनकी सहायता से अनुदेशन की दिशा निर्धारित की जाती है और मूल्यांकन की प्रविधियों का विशिष्टीकरण किया जाता है।

**व्यवहारपरक शब्दावलीः** ऐसे शब्दों का प्रयोग करना जो विद्यार्थी के अन्तिम व्यवहार को दर्शाएं।

## 4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

शर्मा, आर. ए. – 'शिक्षण–अधिगम के मूल तत्व', लायल बुक डिपो, मेरठ, 1989.

Bloom, B.S. et.al – 'Taxonomy of Educational Objectives, David Mikey, New York.

शर्मा, रवीन्द्र कुमार – 'शिक्षण– अधिगम के मूल तत्व' श्री राम पब्लिकेशन्स, भिवानी, 2000.

मंगल, एस. के – 'शिक्षण–अधिगम के मूल तत्व' आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, 1997.

# इकाई–2 (a)

# अध्याय-1: प्रकाश संश्लेषण

# (Photosynthesis)

**उद्देश्यः**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे किः

- प्रकाश संश्लेषण की परिभाषा दे सकें।
- प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया का जीवों के लिए महत्त्व का वर्णन कर सकें।
- प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया के लिए आवश्यक पदार्थों की व्याख्या कर सकें।
- प्रकाश संश्लेषण से सम्बन्धित तथ्यों की विभिन्न प्रयोगों द्वारा पुष्टि कर सकें।

**संरचनाः**

1.1. प्रस्तावना
1.2. प्रकाश संश्लेषण–अर्थ
1.3. प्रकाश संश्लेषण का महत्त्व
1.4. प्रकाश संश्लेषण के लिए आवश्यकताएं
1.5. प्रकाश संश्लेषण का स्थान
1.6. प्रकाश संश्लेषण से संबंधित प्रयोग
1.7. सारांश
आदर्श उत्तर
1.8. मुख्य शब्द
1.9. सन्दर्भ ग्रन्थ

## 1.1 प्रस्तावना

यह इकाई विषय वस्तु से सम्बन्धित है। आप पिछली कक्षाओं में इन उपविषयों का अध्ययन कर चुके हैं। इन उपविषयों का यहाँ देने का उद्देश्य आपको विषय वस्तु की पुनरावत्ति कराने के साथ–साथ इस विषय वस्तु का शिक्षण–कला विश्लेषण कराना है। इकाई–II के प्रथम भाग में आप कुछ उपविषयों का अध्ययन करेंगे और द्वितीय भाग में उस उपविषय/प्रकरण का शिक्षण–कला विश्लेषण करेंगे। इस अध्याय में हम प्रकाश–संश्लेषण प्रक्रिया का अध्ययन करेंगे जो कि पथ्वी पर जीवन के संचालन के लिए आवश्यक है।

## 1.2 प्रकाश संश्लेषण का अर्थ (Meaning of Photosynthesis)

सभी हरे पौधे स्वपोषी होते हैं। वे अपना भोजन बनाने के लिए कार्बन डाइ ऑक्साईड, पानी तथा खनिज लवण जैसी कच्ची सामग्री (Raw materials) का उपयोग करते हैं। हरे पौधों में भोजन बनाने की यह प्रक्रिया प्रकाश संश्लेषण द्वारा होती है। हरे पौधे अपना भोजन बनाने के लिये सरल पदार्थों से जटिल पदार्थ बनाते हें। वे ऐसा सूर्य के प्रकाश से ऊर्जा लेकर करते हैं इसीलिए इस प्रक्रिया को प्रकाश संश्लेषण कहते हैं।

## 1.3 प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया का महत्त्व (Significance of Photosynthesis)

प्रकाश संश्लेषण हरे पौधों में भोजन बनाने की प्राथमिक विधि है। कार्बन तथा हाइड्रोजन को ऑक्साइड ($CO_2$ तथा $H_2O$) सूर्य के प्रकाश से ऊर्जा लेकर पौधों की कोशिकाओं में कार्बोहाइड्रेट (ग्लूकोज) के रूप में स्थिर हो जाते हैं। प्रकाश संश्लेषण का रासायनिक समीकरण निम्नलिखित है–

$$6Co_2 + 12H_2O \xrightarrow{\text{प्रकाश}} C_6H_{12}O_6 + 6O_2\uparrow$$

कार्बन–डाई ऑक्साइड जल क्लोरोफिल ग्लूकोज़ ऑक्सीजन

पौधे न केवल कार्बन डाई आक्साइड ($CO_2$) तथा पानी ($H_2O$) को कार्बोहाइड्रेट के रूप में स्थिर करते हैं अपितु सूर्य से प्राप्त ऊर्जा को भी स्थिर करते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि हम सब प्रतिदिन भोजन में अप्रत्यक्ष रूप से सूर्य का प्रकाश ग्रहण करते हैं क्योंकि पौधे सूर्य के प्रकाश को भोजन के रूप में स्थिर करते हैं। प्रत्यक्ष रूप से जन्तु अपना भोजन पौधों और उनके उत्पादों से प्राप्त करते हैं तथा अप्रत्यक्ष रूप से जब वे अन्य जन्तुओं को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। क्योंकि वे जन्तु भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पौधों पर निर्भर होते हैं। पौधे सूर्य के प्रकाश को परिवर्तित करके कार्बनिक पदार्थों के रूप में इकट्ठा करते हैं। इन पदार्थों को हम अपने भोजन में लेते हैं। वायु की आक्सीजन भी मुख्यतः पौधों की प्रकाश–संश्लेषण क्रिया द्वारा उत्पन्न होती है। पथ्वी पर पौधों की उत्पत्ति से पूर्व वायु में आक्सीजन गैस की मात्रा नगण्य थी। जितनी भी ऑक्सीजन उस वक्त पथ्वी पर उपस्थित थी, वह संयुक्त रूप में कार्बन एवं हाइड्रोजन के साथ कार्बन के ऑक्साइड ($CO_2$,CO) एवं जल ($H_2O$) के रूप में थी। पौधों की उत्पत्ति एवं प्रकाश संश्लेषण क्रिया के आरम्भ से वायु में ऑक्सीजन की मात्रा वर्तमान लगभग 20% तक पहुंची है। यह प्रक्रिया लगभग 280 करोड़ वर्ष पहले प्रारम्भ हुई थी। वायु में आक्सीजन की उपस्थिति से ही उच्च जन्तुओं की उत्पत्ति एवं विकास संभव हुआ। प्रकाश–संश्लेषण द्वारा उत्सर्जित इसी आक्सीजन के कारण ही पथ्वी के वायुमण्डल में 'जीवन–रक्षक' 'ओजोन की परत' का निर्माण हुआ।

## 1.4 प्रकाश-संश्लेषण के लिये आवश्यकताएँ (Requirements for Photosynthesis)

प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया के लिए आवश्यक कच्ची सामग्री निम्नलिखित हैं–

1. कार्बन–डाइ–ऑक्साइड (Carbon-di-oxide)
2. जल (Water)
3. क्लोरोफिल (Chlorohyll)
4. सूर्य का प्रकाश (Sunlight)

**1.4.1 कार्बन-डाइ-ऑक्साइडः** कार्बनडाई–ऑक्साइड का रसायनिक सूत्र $CO_2$ है। यह गैस मुख्यतः श्वसन एवं दहन क्रिया में उत्पन्न होती है। पौधे इस कार्बन डाई आक्साइड गैस का उपयोग करने की क्षमता रखते हैं। वे अपना भोजन बनाने के लिए इस गैस का उपयोग करते हैं। स्थलीय पौधे वायुमण्डल से कार्बनडाई–ऑक्साइड गैस लेते हैं जबकि जलीय पौधे

पानी में घुली हुई कार्बन–डाई–ऑक्साइड लेते हैं। दिन के समय जब सूर्य का प्रकाश उपलब्ध होता है, तब पौधे प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया में इस कार्बन–डाई–आक्साइड गैस को स्थिर कर देते हैं। रात्रि के समय पौधे प्रकाश–संश्लेषण क्रिया नहीं करते अपितु संचित स्टार्च (कार्बोहाइड्रेट) का उपापचयन करते हैं और कार्बन–डाई–आक्साइड गैस वायुमण्डल में छोड़ते हैं। जब प्रकाश–संश्लेषण की दर कम होती है जैसे– छाया में या उषा काल या सायं काल, उस समय श्वसन प्रक्रिया द्वारा उत्सर्जित कार्बन–डाई–ऑक्साइड की मात्रा प्रकाश–संश्लेषण प्रक्रिया के लिए पर्याप्त होती है। यह अवस्था जिसमें वायुमण्डल की कार्बन–डाई–आक्साइड का अंतग्रहण नहीं होता, संतुलन प्रकाश तीव्रता (Compensation Point) कहलाती है।

**1.4.2 जल (Water):** जल का रसायनिक सूत्र $H_2O$ है। आपने देखा होगा कि माली बाग में अथवा किसान खेत में फसल को पानी देते है। वे ऐसा क्यों करते हैं? पौधों की जड़ें इस जल को अवशोषित करती हैं और जाईलम (Xylem) द्वारा पत्तियों तक पहुंचा देती हैं। पौधों की जड़ें जल के साथ–साथ अधिकांश घुलनशील खनिज़, लवण भी अवशोषित करती हैं। ये खनिज लवण भी प्रकाश–संश्लेषण की प्रक्रिया को पूरा करने में अपना योगदान देते हैं।

**1.4.3 पर्णहरित (Chlorophyll): पौधों की पत्तियाँ सामान्यतः** हरे रंग की होती है। पत्तियों का हरा रंग उनमें उपस्थित एक हरे रंग के वर्णक (Pigment) के कारण होता है। इस हरे रंग के वर्णक को ही क्लोरोफिल या पर्णहरित कहा जाता है। वर्णहरित के चार घटक हैं– क्लोरोफिल–ए, क्लोरोफिल–बी, कैरोटीन (Carotene) तथा जैंथोफिल (Xanthophyll)। इनमें से क्लोरोफिल–ए तथा बी हरे रंग के होते हैं तथा ऊर्जा का अवशोषण एवं स्थानान्तरण करते हैं। ये सूर्य के प्रकाश से फोटोन (Photon) अवशोषित करते हैं। कैरोटीन एवं जैंथोफिल क्लोरोफिल ए तथा बी को आक्सीकरण से बचाते हैं एवं ऊर्जा का अवशोषण भी करते हैं। क्लोरोफिल प्रकाश–संश्लेषण के लिए आवश्यक है। इसीलिए जिन कोशिकाओं में क्लोरोफिल होता है, उन्हें प्रकाश–संश्लेषी कोशिकायें (Photosynthetic Cells) कहा जाता है। पौधों के पत्तों एवं तनों में क्लोरोफिल पाया जाता है। इसीलिये पत्तों एवं हरे तनों को प्रकाश–संश्लेषी अंग (Photosynthetic Organs) कहा जाता है। पत्तों एवं हरे तनों की कोशिकाओं में 'क्लोरोप्लास्ट (Chloroplast) नाम का अंगक (Organelle) होता है जिसमें क्लोरोफिल पाया जाता है। क्लोरोप्लास्ट को पौधे का प्रकाश–संश्लेषी अंगक (Photosynthetic Organelle) कहा जाता है। छोटे हरे तनों तथा फलों में पर्याप्त मात्रा में क्लोरोफिल होता है। शैवाल का लगभग सारा पौधा ही प्रकाश–संश्लेषी होता है।

**1.4.4प्रकाश (Light):** प्रकाश संश्लेषण में सूर्य का प्रकाश प्राकृतिक स्रोत है, परन्तु कुछ कृत्रिम स्रोत भी इस प्रक्रिया को करने में समर्थ होते हैं। क्लोरोफिल प्रकाश में से बैंगनी, नीला तथा लाल रंग ग्रहण करता है। परन्तु प्रकाश संश्लेषण की दर लाल प्रकाश में सबसे अधिक होती है।

## 1.5 प्रकाश संश्लेषण का स्थान (Site of Photosynthesis)

यदि हम एक पत्ती का सैक्शन अर्थात् एक पतली सी परत काटें और उसे सूक्ष्मदर्शी के नीचे देखें तो हमें बाह्य मोमी क्यूटीकल तथा पतली सी एपिडर्मिस दिखाई देती है और उसके नीचे खंभ कोशिकायें (Palisade cells) दिखाई देते हैं। प्रकाश संश्लेषण खंभ कोशिकाओं में होता है। जल शिराओं से परासरण द्वारा और कार्बन–डाई–आक्साईड, वायुमण्डल से विसरण द्वारा कोशिकाओं में जाती है। खंभ कोशिकाओं में क्लोरोफिल होता है। यह क्लोरोफिल सूर्य के प्रकाश का अवशोषण करता है। इस ऊर्जा से तथा कई एजाइमों की सहायता से कार्बन–डाई–ऑक्साइड तथा पानी क्लोरो प्लास्ट में मिलकर शर्करा बनाते हैं। इस अभिक्रिया में पत्ते की कोशिका से ऑक्सीजन निकलकर वायुमण्डल में जाती है। कुछ एंजाइम स्टार्च पर क्रिया कर के भी शर्करा बनाते हैं। जैसे– सुक्रोस। यह शर्करा फलोएम द्वारा पौधों में उपापचय तथा संचयन के लिये भेजा जाता है। पत्तों में स्टार्च के उत्पादन एवं स्टार्च की उपस्थिति को प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है।

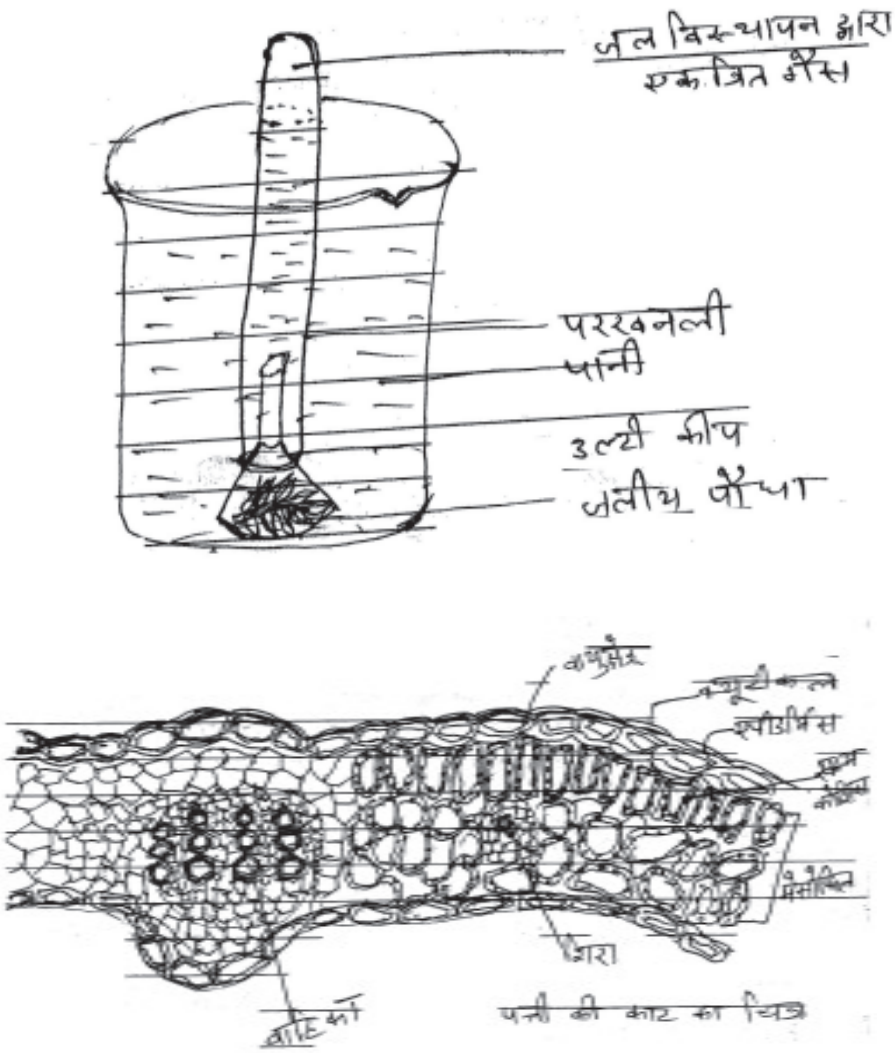


**चित्र 1: पत्ती की काट का चित्र**

## 1.6 प्रकाश संश्लेषण से सम्बन्धित प्रयोग

**प्रयोग 1.**

सूर्य के प्रकाश में रखे हुए पौधे का एक पत्ता तोड़िये। इसको कुछ मिनट उबलते हुए पानी में डालिए। इससे पत्ते में उपस्थित एंजाइम नष्ट हो जायेंगे तथा पत्ता नर्म और अधिक उदग्रहित हो जाएगा। अब पत्ते को एल्कोहल में डालकर जल कुंड़िका में उबालिए ताकि पत्ते से सारा क्लोरोफिल निकल जाये और पत्ता सफेद हो जाए। इससे रंगों को आसानी से देखा जा सकता है। पत्ते को पुनः नरम करने के लिये गर्म पानी में डालिये। अब आयोडीन के घोल की कुछ बूंदें पत्ते पर डालिये। पत्ते के जिस भाग में स्टार्च होगा, वह आयोडीन से नीला हो जाएगा। अगर पत्ते में स्टार्च नहीं है तो पत्ता भूरे रंग का हो जाएगा।

**प्रयोग 2: प्रकाश की आवश्यकता के लिए परीक्षण**

एक स्टार्च रहित पौधा लें। पौधों को स्टार्च रहित करने के लिए इसे तीन दिन तक अंधेरे में रखें। इस स्टार्च रहित पौधे के एक पत्ते को कार्बन पेपर से ढ़क दें जिससे इस पत्ते पर प्रकाश न पड़े। अब पौधे को छः 'घण्टे के लिए सूर्य के प्रकाश में रख दें। इसके पश्चात् कार्बन पेपर से ढ़के पत्ते को प्रयोग नं. 1 के अनुसार टैस्ट करें। इस पत्ते को सूर्य का प्रकाश नहीं मिला है, इसीलिये इसमें स्टार्च की उपस्थिति लगभग नगण्य होगी जबकि दूसरे पत्ते स्टार्च की उपस्थिति का प्रमाण देंगे।

**प्रयोग 3: कार्बन-डाइ-ऑक्साईड की आवश्यकता के लिए परीक्षण**

स्टार्च रहित पौधे वाले दो गमले लें और उन्हें प्लास्टिक की थैली से ढ़क दें ऐसा करने से पौधों की प्रकाश तो मिल जाएगा परन्तु ताज़ी हवा नहीं मिल पाएगी। एक थैली में कुछ मात्रा में सोड़ा लाइम रख दें। सोड़ा लाइम कार्बन डाइ आक्साइड़ को अवशोषित कर लेता हैं दूसरी थैली में सोड़ियम कार्बोनेट ($NaHCO_3$) का घोल रखें। ऐसा करने से इस पौधे को अधिक कार्बन–डाइ–ऑक्साइड मिलेगी। दोनों गमलों को छः 'घण्टों के लिए सूर्य के प्रकाश में रख दें। दोनों पौधों का एक–एक पत्ता लेकर टैस्ट करें। जिस पौधे में सोड़ा लाइम रखा था, उसके पत्ते में स्टार्च नहीं होगा क्योंकि इस पौधे को कार्बन–डाइ–ऑक्साइड नहीं मिली।

**प्रयोग 4: प्रकाश संश्लेषण में ऑक्सीजन का एक उपोत्पाद के रूप में निकलने के लिए परीक्षण**

इस प्रयोग के लिए एक बीकर, कीप, एक जलीय पौधा (हार्डड्रिला), परखनली, पानी और थोड़ा बेकिंग सोड़ा लें। बीकर को पानी से आधा भर दें, हाइड्रिला की कुछ टहनियाँ इसमें रख दें। पौधे को कीप से ढ़क दें (चित्र अनुसार)। परखनली को भी पानी से भर दें। पानी से भरी हुई परखनली को कीप की डंडी पर उल्टा रख दें। इसके पश्चात् इस उपकरण को सूर्य के प्रकाश में रख दें। कुछ देर पश्चात् आप बुलबुले निकलते हुए देखेंगे जो परखनली के ऊपरी भाग में एकत्रित हो जाते हैं। परखनली में पानी का स्तर नीचे गिर जाता है। परखनली में एकत्रित गैस की जाँच करने पर पता चलेगा कि परखनली में उपस्थित गैस ऑक्सीजन है।

### अपनी प्रगति जांचिए

1. प्रकाश संश्लेषण में ..... गैस वायुमण्डल में छोड़ी जाती है।
2. सूर्य के प्रकाश से ऊर्जा का अवशोषण करने के लिए आवश्यक तत्व ..... है।
3. $6Co_2 + 12H_2O \xrightarrow[\text{क्लोरोफिल}]{\text{सूर्य का प्रकाश}}$ ..... ? ..... + .....

## 1.7 सारांश

प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा हरे पौधे एवं कुछ जीवाणु सूर्य के प्रकाश और पर्णहरित की उपस्थिति में कार्बन–डाई आक्साइड और जल से भोजन का निर्माण करते हैं। इस प्रक्रिया में सूर्य की ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में बदल कर भोजन के रूप में स्थिर किया जाता है। प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा वायुमण्डल में ऑक्सीजन गैस मुक्त होती है जो जीवधारियों के श्वसन के लिए आवश्यक गैस है। प्रकाश संश्लेषण पत्ते में उपस्थित खंभ कोशिकाओं में होता है। प्रकाश–संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा संश्लेषित भोजन ही दूसरे जीवधारियों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करने के लिए ऊर्जा प्रदान करता है।

### आदर्श उत्तर

(1) ऑक्सीजन (2) क्लोरोफिल (3) $C_6H_{12}O_6 + 6O_2$

## 1.8 मुख्य शब्द

**प्रकाश संश्लेषणः** वह प्रक्रिया जिससे हरे पौधे क्लोरोफिल की सहायता से सूर्य के प्रकाश से ऊर्जा अवशोषित करके कार्बन–डाई–ऑक्साइड और जल से भोजन का निर्माण करते हैं, प्रकाश–संश्लेषण कहलाती है।

**संतुलन प्रकाश-तीव्रताः** वह अवस्था जिसमें पौधे वायुमण्डल से कार्बनडाई आक्साइड का अवशोषण नहीं करते और स्वयं के श्वसन द्वारा उत्पन्न कार्बन डाई आक्साइड का ही भोजन के रूप में स्थिरीकरण कर देते हैं, संतुलन प्रकाश तीव्रता कहलाती है।

## 1.9 संदर्भ ग्रन्थ

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी' NCERT, New Delhi, 2003; Singh, Lakhmir & Kaur, Manjit – 'A Text book of Science for class X, S. Chand & Co. New Delhi, 2003

Dhami, P.S. – 'A Text book of Biology', Pardeep Book Depot, Karnal, 1998.

# इकाई–2 (a)

# अध्याय–2: मानव तन्त्र-पाचन, श्वसन, उत्सर्जन, परिसंचरण

# (Human System – Digestive, Respiratory, Excretory, Circulatory)

**उद्देश्य:**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि:

- पाचन का अर्थ एवं महत्व बता सकें।
- पाचन तन्त्र की संरचना की चित्र सहित व्याख्या कर सकें।
- पाचन तन्त्र की कार्यप्रणाली का वर्णन कर सकें।
- श्वसन प्रक्रिया का महत्व बता सकें।
- श्वसन तन्त्र की संरचना की चित्र सहित व्याख्या कर सकें।
- श्वसन प्रक्रिया का का वर्णन कर सकें।
- उत्सर्जन प्रक्रिया का महत्व बता सकें।
- उत्सर्जन तन्त्र की संरचना की चित्र सहित व्याख्या कर सकें।
- उत्सर्जन प्रक्रिया का महत्त्व बता सकें।
- उत्सर्जन तन्त्र की संरचना की चित्र सहित व्याख्या कर सकें।
- उत्सर्जन प्रक्रिया का वर्णन कर सकें।
- परिसंचरण तन्त्र का महत्व बता सकें।
- परिसंचरण तन्त्र के विभिन्न भागों का चित्र सहित वर्णन कर सकें।

**संरचना:**

2.1. प्रस्तावना
2.2. पाचन तन्त्र – अर्थ एवं महत्व
2.3. पाचन तन्त्र की संरचना
2.4. पाचन तन्त्र की कार्यप्रणाली
2.5. श्वसन प्रक्रिया का अर्थ एवं महत्व
2.6. श्वसन तंत्र की संरचना

2.7. श्वसन प्रक्रिया
2.8. उत्सर्जन का अर्थ
2.9. मानव उत्सर्जन तंत्र की संरचना
2.10. परासरण नियमन
2.11. वक्क निष्क्रियता तथा उत्तरजीविता हेतु तकनीक
2.12 परिसंचरण तंत्र का महत्व
2.13. परिसंचरण तंत्र की संरचना एवं कार्य
2.14. सारांश
आदर्श उत्तर
2.15. मुख्य शब्द
2.16. संन्दर्भ ग्रन्थ

## 2.1 प्रस्तावना

पाचन–क्रिया से क्या तात्पर्य है? पाचन–क्रिया किन अवयवों द्वारा सम्पन्न होती है? दाँत कितने प्रकार के होते हैं ? उनकी रचना किस प्रकार की होत है? भोजन–प्रणाली पाचन में किस प्रकार सहायक होती है? आमाशय, पक्वाशय तथा आँतों का पाचन–क्रिया में स्थान है? पाचन के उपरान्त भोजन के अवशोषण की क्या विधि है? निकृष्ट पदार्थों के निष्कासन में बड़ी आंत का क्या कार्य है? पाचन–क्रिया के स्वास्थ्य केलिए किन बातों पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। इस अध्याय में आप इसका अध्ययन करेंगे।

## 2.2 पाचन का अर्थ एवं महत्त्व
## (Digestion — Meaning and Importance)

बालक के शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के लिए शरीर के विभिन्न अंगों का स्वस्थ्य होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि बालक का रक्त–दूषित है, रक्त–परिवहन ठीक प्रकार से नहीं हो रहा है, हृदय संक्रामक रोग आदि से पीड़ित है या श्वसन–प्रक्रिया में किसी भी प्रकार का व्याघात है तो इन सबका उसके शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य पर अत्यन्त दूषित प्रभाव पड़ता है। किन्तु यदि इन दोषों एवं रोगों के सम्बन्ध में सूक्ष्म दष्टि से अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होगा कि इन सबकी जड़ में पाचन–क्रिया ही कार्य करती है। यदि बालक के पाचन अवयव–आमाशय, पक्वाशय, आंत या दांत आदि समुचित रूप से कार्य करते हैं तो स्वास्थ्य स्वमेव ही उत्तरोत्तर वद्धि करता है क्योंकि पाचन–क्रिया से ही रक्त बनता है, रक्त समस्त श्रीर के अंगों में परिवहन होता है। यदि रक्त ही ठीक प्रकार से नहीं बनेगा, उनका संचार उचित रूप से नहीं होगा तो स्वास्थ्य में वद्धि किस प्रकार होगी? अतः बालक के जीवन में पाचन तन्त्र तथा पाचन क्रिया का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। अतएव शिक्षक को इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी होनी चाहिए।

पाचन से अभिप्राय ग्रहण किये गए भोजन को अत्यन्त सूक्ष्म कणों में विभक्त करने के पश्चात् रसों की क्रिया द्वारा उसको उस रूप में परिवर्तित कर देने से हे, जिससे उनका सार–तत्व रक्त द्वारा अवशोषित किया जा सके। रक्त इस सार तत्व को शरीर के भिन्न–भिन्न अंगों में ले जाता है और उनका पोषण करता है।

## 2.3 पाचन तन्त्र की संरचना
## (Structure of Digestive System)

पाचन तन्त्र में एक लम्बी नली जिसका व्यास सर्वत्र एक सा नही होता और कुछ ग्रन्थियाँ सम्मिलित है जो अपना रस उसमें डालती है। इस नली को पाचन तन्त्र मार्ग कहते हें इसका मार्ग मुख से आरम्भ होता है और मुख–गुहा में जब यह मुँह के पीछे

की ओर जाता है तो यह यह कीप के आकार का गर्त बनाता है। जिसे ग्रसनी गुहा कहते हैं। इसके बाद यह नली कोमल पेशीय सिकुड़ी नली में परिवर्तित हो जाती है जिसकी लम्बाई लगभग 15 इंच होती है। इसे भोजन नली कहते हैं। यह नली ग्रीवा से होती हुई वक्ष में से गुजरती है, और श्वास नली के पीछे स्थित होती है यह नली आगे जाकर आमाशय की थैली के रूप में फूल जाती है। आमाशय का रूप एक बड़े खोखले थैले जैसा है जिसकी लम्बाई 8 या 9 इंच होती है। यह डायफ्राम से ठीक नीचे थोड़ा सा बांयी ओर को स्थित होती है, इसके दो मुख होते हैं–

1. पहला, जहाँ भोजन नली समाप्त होती है, और
2. दूसरा, जहाँ अन्तड़ियाँ आरम्भ होती है।

अमाशय का निचला सिरा तंग हो जता है और छोटी अन्तड़ियों का 10 इंच लम्बा पहला भाग पक्वाशय अर्द्ध–चन्द्राकार होता है और अंग्रेजी के C अक्षर का आकार बनाता है जिसके खोखले स्थान मं एक क्लोम ग्रन्थि होती है। पक्वाशय में यकृत और क्लोम की रस की नालियां आकर खुलती है। शेष छोटी आंत अन्तिम सिरे पर चौड़ी परन्तु कम लम्बी नली में खुलती है जिसे बड़ी आँत कहते हैं। यह लगभग 6 फीट लम्बी और इंच चौड़ी होती है छोटी और बड़ी आंत के मिलने के स्थान से ठीक नीचे बड़ी आंत में एक बन्द थैला सा होता है जिसे अन्धन्त्र कहते हैं। एक संकरी बन्द नली, आँत–परिशिष्ट जो लगभग 4–6 इंच तक लम्बी होती है अन्धान्त्र से नीचे की ओर लटकी रहती है। अन्धान्त्र के ऊपर बड़ी आँत के भाग को कोलन कहते हैं कोलन पेट के दाहिनी ओर से चलता है और यकृत और पेट के नीचे पेडू को पार करता है और अन्त में बायीं ओर चला जाता है। इसका बिल्कुल अन्तिम भाग मलाशय है, जो बाहर गुदा में खुलता है।

## 2.4 पाचन तंत्र की कार्यप्रणाली (Working of Digestive System

### भोजन नली

भोजन मुख में चवर्ण किए जने के पश्चात जिह्वा को सहायता से ग्रसनी गुहा में प्रविष्ट करा दिया जात है। यहाँ से भोजन नली में प्रवेश करता है। भोजन नली में अस्थि न होने से इस नलिका को दीवारें आपस में मिली रहती है। केवल जब भोजन इस में आता है तो नली का मार्ग खुलता है।

इसकी पेशीय दीवारें लहर की तरह कार्य करती है और इस नली के सिकुड़ने और फैलने से भोजन नीचे की ओर पेट में प्रविष्ट हो जाता है। स्वर–यन्त्र छद भोजन को श्वास नली में जाने से रोक लेता है। यह स्वर–यन्त्र का ऊपरी भाग बन्द कर देता है। और भोजन श्वास नली में न जाकर सीधा भोजन–नली में होकर पेट में चला जाता है। मुख में लार होती है जिसमें टाइलिन एंजाइम होता है यह 40% स्टार्च का पाचन करता है। भोजन नली में पाचन नहीं होता।

### आमाशय में पाचन क्रिया

आमाशय में भोजन नली एक थैले के रूप में परिवर्तित हो जाती है और इसका चौड़ा सिरा बांयी ओर तथा सँकरा सिरा दाहिनी ओर होता है उसकी दीवार में एक–दूसरे को काटते हुए लम्बे, आड़े और वत्ताकार तन्तु होते हैं जो बारी–बारी से प्रसरण और संकुचन क्रिया में दीवारों में गति उत्पन्न कर सकते हैं। इस प्रकार वहाँ पुनः भोजन का इस क्रिया में चवर्ण होता हैं आमाशय के भीतरी भाग में श्लैष्मिक कला का वातावरण होता है। जिसमें नली

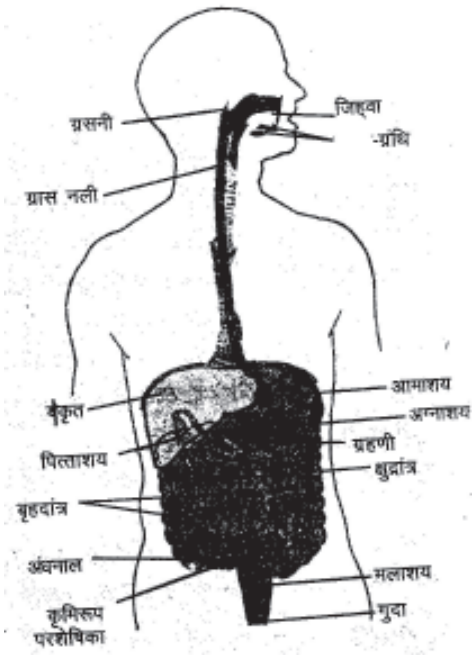


**चित्र 2.1: मानव पाचन तंत्र**

के आकार की अनेक ग्रन्थियाँ होती है। जो उसके सतह पर खुलती है। यह एक प्रकार का पाचन रस उत्पन्न करती है। जिसे आमाशयिक रस कहते हैं इस हाइड्रोक्लोरिक और दो प्रकार के खमीर रेनिन और पेप्सिन मिले रहते हैं। इन्हीं दोनों रसों की सहायता से आमाशय में भोजन का पाचन होता है। भोजन जब आमाशय में होता है तो क्षारीय होता है। नमक का अम्ल उसे आम्लीय बना देता है। पेट की दीवार के धीमी लहर जैसे संकुचन और प्रसरण से आमाशयिक रस भोजन में घुल–मिल जाता है। जब भोजन आमाशय में पहुंचता है उसके 15–30 मिनट उपरान्त तक लार भोजन के श्वेतसारी भाग पर अपना प्रभाव डालती रहती है। उस समय तक आमाशयिक रस पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न हो जाता है और अपना कार्य प्रारम्भ कर देता है। अब टायलिन का कार्य स्थगित हो जाता है। खमीर रेनिन दूध को जमा देता है तब उस पर एवं अन्य प्रोटीन पर पेप्सिन अपना कार्य आरम्भ करता है। पेप्सिन हाइड्रोक्लोरिक एसिड के सहारे भोजन में निहित प्रोटीन तत्वों पर अपना कार्य करता है और उन्हें साधारण रूप प्रदान करता है। जिसे पेप्टोन कहते हैं यह सरलता से घुलनशील होता है भोजन में निहित कार्बोहाईड्रेट और वसा पर आमाशयिक रस का कोई प्रभाव नहीं होता। शक्कर और पेप्टोन के कुछ भाग का आमाशय की रक्त वाहिनियों में शोषण कर लिया जाता है और शेष का अधिकांश भाग, जिसे जाईम कहते हैं, पक्वाशय में चला जाता है।

### पक्वाशय में पाचन क्रिया

आमाशय के दूसरे सिरे से जो क्षुदान्त्र प्रारम्भ होती है, उसके प्रथम दस या बारह इन्च लम्बे, आकृति में अर्द्धचन्द्र के समान भाग को पक्वाशय कहते हैं।

पक्वाशय में भोजन के पाचन का बड़ा महत्व है। क्योंकि इसी स्थान में क्लोम रस तथा यकृत के रस भोजन पर अपना कार्य करते हैं और पाचन की क्रिया प्रायः यहाँ पर सम्पूर्ण हो जाती है क्लोम रस क्लोम से उत्पन्न होता है, क्लोम–नली द्वारा पक्वाशय में प्रवेश करता है। इस रस में तीन खमीर होते हैं।

1. एमीलोप्सिन
2. स्टीयप्सिन
3. ट्रिप्सिन

एमीलोप्सिन भोजन के उस श्वेतासार को जो मुँह में नहीं पच पाता, शर्करा में परिवर्तित करता है। ट्रिप्सिन आमाशय के रस से बचे हुए प्रोटीन को पेप्टेन में परिवर्तित करके अमीनो एसिड में परिवर्तित कर देता है। स्टीयप्सिन या लाइपेस वसा को पितीय रस की सहायता से एक प्रकार की वसीय अमल और ग्लिसरीन में परिवर्तित कर देता है।

पित्तीय रस एक प्रकार का एक रंग का रस होता है जो यकृत द्वारा उत्पन्न किया जाता है। यह वसा को सरलता से घुला देता है जिससे कि क्लोम रस में निहित लाइपेस या स्टीयप्सिन खमीर, वसीय अम्ल तथा ग्लिसरीन को पथक–पथक कर सके। पित्त के अन्य कार्य अग्रलिखित हैं–

1. यह यूरिया और यूरिक एसिड नामक प्रोटीन से उत्पन्न निरर्थक पदार्थों को पथक करता है जिससे वे वक्कों द्वारा बाहर किए जा सके।
2. यह शर्करा को ग्लूकोज में परिवर्तित करता है जो ग्लाइकोजन के रूप में यकृत में एकत्रित होता रहता है।
3. यह हानिकारक पदार्थों को प्रभावहीन कर देता है और आंतों में सड़ाव उत्पन्न होने से रोकता है।
4. यह रक्त को गाढ़ा होकर जमने में सहायता देता है।
5. यह हिमोग्लोबिन को विभाजित करता है और इस प्रकार उत्पन्न कण मल–मूत्र से मिल जाते हैं और उसे एक प्रकार का रंग दे देते हैं।

पक्वाशय के दूसरे सिरे से क्षुद्रान्त का प्रारम्भ होता है। यह एक पेशीय नली है जिसकी लम्बाई बाइस फीट तथा चौड़ाई डेढ़ इंच के लगभग है। यह उदर के भीतर स्थित होता है।

आँत की रचना में बाहर की ओर परिविस्त त कला का एक स्तर रहता है यह स्नेहिक स्तर कलाता है। यह अत्यन्त सूक्ष्म और भीतरी स्तरों से जुड़ा रहता है। इसमें भीतर माँस–सूत्र का भाग है। जिसमें दो स्तर है। बाहर के स्तर में, जो स्नेहिक स्तर से मिला हुआ है, माँस सूत्र आन्त्रियों की लम्बाई की दिशा में स्थित है।

इसके भीतर के मांस–सूत्र आन्त्रियों को उनकी चौड़ाई या गोलाई की दिशा की ओर घेरे हुए हैं। मांस सूत्र और श्लैष्मिक कला के बीच अधोश्लैष्कि स्तर होता है। सबसे भीतर श्लैष्मिक कला का स्तर है। जिसमें सलवटें पड़ी हुई है। आमाशय की अपेक्षा ये सिलवटें गहरी और बड़ी होती है और उन पर बाल जैसे सूक्ष्म उभार होते हैं, जिन्हें अंकुर कहते हैं। उनकी संख्या बहुत अधिक होती है। छोटी आंत की भीतरी श्लैष्मिक कला विशेष महत्त्व की है। अमाशय की भांति रस को बनाने वाली ग्रन्थियाँ इसी में स्थित है। अंकुर श्लैमिष्क कला में स्थित आन्त्रिक ग्रन्थियों के बीच से नलिका मार्ग की ओर को निकले हुए प्रवर्द्धन है। इस पर वही कला, जो ग्रन्थियों को आच्छादित किए हैं, चढ़ी हुई है। अतएव इसको श्लैष्मिक कला का भाग ही समझना चाहिए। इनके नीचे की ओर श्लैष्मिक कला के नीचे रहने वाली अधोश्लैष्मिक कला है।

## छोटी आंत में पाचनक्रिया

छोटी आंतों से भी एक रस स्त्रवित होता है जिसे आन्त्रिक रस कहते हैं। वास्तव में आहार को अच्छी तरह पचाकर रक्त में मिल जाने योग्य बना देना इसी रस का कार्य है। इसमें निम्न तत्व विद्यमान होते हैं।

(अ) **इरोप्सिनः** यह एक प्रकार का खमीर होता है जो प्रोटीन से बने पेप्टोन को अमीनों एसिड में परिवर्तित करता है।

(ब) **ऐन्ट्रोकाइनेजः** यह एक प्रकार का पदार्थ होता है जो निष्क्रिय ट्रिप्सीनोजन खमीर को जो क्लोम द्वारा स्त्रवित होता है, प्रभवित करता है। यह ट्रिप्सीनोजन को सक्रिय ट्राइप्सिन में परिवर्तित करता है।

## पचे हुए भोजन का शोषण

छोटी आंत के अंकुरों के भीतर रक्त ले जाने वाली बहुत सी कोशिकाएँ रहती है। शक्कर परिवर्तित श्वेतसार तथा एमीनो–एसिड रक्त कोशिकाओं में शोषित हो जाते हैं। रक्त कोशिकाएँ मिलकर शिराएँ बनाती है। आमाशय तथा अंतड़ियों से आने वाली शिराएँ इन पदार्थों को एक शिरा में पहुंचा देती है जो उन्हें यकृत तक ले जाती है वहाँ इसकी कई शाखाएँ हो जाती है। श्वेतसार और प्रोटीन पदार्थो के अंश यकृत से होते हुए रक्त की बड़ी नलियों में पहुंचते हैं, इसमें शक्कर का जो भाग होता है, वह ग्लाइकोजन के रूप में परिवर्तित कर यकृत में एकत्र किया जाता है और आवश्यकता पड़ने पर रक्तधारा द्वारा शरीर के विभिन्न अवयवों को पहुंचा दिया जाता है।

पचे भोजन का चिकनाई वाला भाग ऊपर बतलाई हुई विधि से रक्त में नहीं मिलता। वसा रक्त ले जाने वाली सूक्ष्म नालियों में प्रवेश नहीं कर सकती। अंकुरों में श्वेत महीन धागे जैसी नलिकाएँ होती है जिन्हें लेक्टीयल्स कहते हैं। यह पचे हुए वसा युक्त पदार्थों का शोषण करती है लैक्टीयल्स मिलकर लिम्फैटिक्स और अन्त में एक बड़ी लसीका वाहिनी बनाती है जिसे थोरोसिक डक्ट कहते हैं और ग्रीवा के पास रक्त नालिकाओं में खुलती है।

रक्त में प्रवेश करने के बाद एमीनो एसिड प्रोटीन में परिवर्तित हो जाते हैं। वसायुक्त अम्ल और ग्लीसरीन पुनः संयुक्त होकर वसा बनाते हैं तथा काबोज साधारण ग्लुकोज के रूप में ही रक्त में विद्यमान रहती है।

### अपनी प्रगति जांचिए-1

1. (i) लार में ..... एंजाइम होता है।

   (ii) HCL भोजन को ..... करता है।

   (iii) छोटी आंत में पेप्टोन को ..... में परिवर्तित किया जाता है।

   (iv) बड़ी आंत का मुख्य कार्य ..... है।

## 2.5 श्वसन प्रक्रिया का अर्थ एवं महत्व (Respiration – Meaning and Significance)

वायु में आक्सीजन गैस होती है। यह शरीर के लिए बड़ी आवश्यक और महत्वपूर्ण है। शरीर को सक्रिय और स्वस्थ्य बनाए रखने के लिए इस गैस का नियमित रूप से शरीर में जाना नितान्त आवश्यक है। शरीर के विकास, पेशियों की क्रिया, पाचन रसों के उत्पादन और मस्तिष्क की प्रक्रिया– सभी को ऑक्सीजन गैस की आवश्यकता होती है, जिस क्रिया के द्वारा यह गैस शरीर में प्रवेश करती है, उसे 'श्वसन' कहते हैं। इस क्रिया के दो रूप हैं–

(अ) वायु का भीतर खींचना अर्थात निश्वसन,

(ब) हवा को बाहर छोड़ना अर्थात उच्छ्सन।

श्वास लेने में ऑक्सीजन शरीर में प्रवेश करती है और प्रधानतः उसका उपयोग शरीर के व्यर्थ पदार्थ को जलाने में होता है। इसके अतिरिक्त ऑक्सीजन शरीर के अन्य तत्वों से मिलकर शरीर में गर्मी और शक्ति उत्पन्न करती है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप जो पदार्थ उत्पन्न होता है, वह मुख्यतः कार्बोनिक एसिड गैस होती है जो उसी मार्ग के द्वारा, जिसके द्वारा ऑक्सीजन शरीर के बाहर निकाल दी जाती है।

## 2.6 श्वसन तंत्र की संरचना (Structure of Respiratory System)

श्वसन तंत्र के अवयव हैं– मुख, नासिका मार्ग, स्वर यंत्र, श्वास नली और फुफ्फुस (Lungs)

### 2.6.1 मुख तथा नासिका मार्ग

वायु फुफ्फुसों तक या तो मुख से या नासिक मार्ग से होकर जा सकती है। वास्तव में वायु के भीतर जाने के लिए नासिका मार्ग ही है। नासिका मार्ग मुड़ा हुआ है और उस पर श्लैष्मक कला का आवरण चढ़ा रहता है, जो एक लसलसा और चिपचिपा पदार्थ उत्पन्न करती है, जैसे रुधिर में जीवाणुओं को ग्रसित कर लेने वाले कण पाए जाते हैं, उसी तरह इस पदार्थ में भी वे कण पाए जाते हैं। ये जीवाणुओं को ग्रसित कर लेते हैं और वायु को शुद्ध कर देते हैं। जैसे ही वायु इस मार्ग से होकर गुजरती है, वह नासिका की रक्त कोशिकाओं के सम्पर्क में आती हैं उसमें नमी आ जाती है और उसका तापक्रम शरीर के तापक्रम के बराबर हो जाता है। नासिका मार्ग पर बाल भी उगे रहते हैं, जिससे भीतर जाने वाली वायु छनकर जाती है। यदि कोई अस्वाभाविक वस्तु नासारन्ध्रों में पहुंच जाती है तो श्लैष्मिक कला के उत्तेजित होने से छींकें आने लगती है जिससे वह वस्तु बाहर निकल जाती है। परन्तु मुख से श्वास लेने पर यह सब नहीं हो पाता। यह स्पष्ट है जो लोग लगातार मुख से श्वास लेते हैं वे नाक से श्वास लेने वालों की अपेक्षा गले के रोग से अधिक और सरलता से शिकार हो जाते हैं। इसलिए नासिका से श्वास लेना बड़ा लाभदायक और महत्वपूर्ण है और उसकी आदत बचपन से ही डालनी चाहिए। कुछ बालकों की मुँह से श्वास लेने की बुरी आदत को सुधारा जा सकता है और कुछ में यह आदत नासिका में किसी त्रुटि का लक्षण है जिसका सावधानी से उपचार होना चाहिए।

### 2.6.2 स्वर तंत्र (Larynx)

नासिका या मुँह से ली गई श्वास जिह्वा की जड़ से पीछे स्थित ग्रसनी गुहा (Phyarynx) से होती हुई स्वर यंत्र में जाती है। स्वर यंत्र श्वास नली के ऊपरी सिर पर स्थित है। स्वर यंत्र में वायु जाने के रास्ते के घाटी द्वार पर उपास्थित का बना हुआ एक ढक्कन जो काकमुख कहलाता है, खाने की चीजों को श्वास नली में जाने से रोकता है। साधारणतः काकमुख सीधा रहता है, जिससे कि वायु आसानी से स्वर यंत्र में प्रवेश कर सके। लेकिन कोई वस्तु खाते समय वह ऊपर की ओर खिंच जाता है और स्वर यंत्र का मार्ग बन्द कर देता है ताकि भोजन या पानी आदि स्वर यंत्र में न जाये। स्वर यंत्र में स्वर–रज्जु (Vocal Cords) स्थित होती है जिनके स्पन्दन में मूल स्वर जन्म लेते हैं, यह मुख्यतः उपास्थि के तत्वों से बने होते हैं, पहली उपस्थि उभरी हुई होती है, जिनके सामने वाले भाग को टेंटुआ या 'एडम्स एपल'' (Adams Apple) कहते हैं, जिसको कि पुरुषों में बाहर से छूकर मालूम किया जा सकता है।

### 2.6.3 श्वास नली (Trachea)

वायु, स्वर यंत्र के बाद नीचे स्थित, श्वास नली में आ जाती है। जिसकी लम्बाई लगभग 5 इंच होती है। यह सौत्रिक धातु और सूक्ति से अंग्रेजी अक्षर C के आकार के छल्लों से बनी होती है। पीछे की तरफ छल्ले एक कला से पूर्ण होते हैं। जब अन्न नली भोजन ग्रसने के समय फूलती है तो श्वास नली सिकुड़ जाती है और उसे फूलने का स्थान देती है। श्वास नली में श्लैष्मिक कला की परत बिछी होती है और उसके कुछ कोषों के रस से तर रहती है। इस कला की भीतरी तह में बालों की तरह सूक्ष्म तन्तु निकले होते हैं जिन्हें सीलिया कहते हैं। सीलिया लगातार सक्रिय हैं और यदि श्वास के साथ धूल का कोई कण चला जाता है तो उसे अलग करने का काम करते हैं। श्वास नली गर्दन में होती हुई वक्ष में जाती है, यहाँ वह दायी और बायीं दो वायु उपनलियों (Bronchi) में विभाजित हो जाती है। एक एक वायु उपनली प्रत्येक फुफ्फुस को जाती है। श्वास नली की शाखाएँ फुफ्फुसों में प्रवेश करने के प्रश्चात फिर अनेक शाखाओं में विभक्त होती है। ये नलिकाएँ कहलाती है। इनकी फिर शाखाएँ होती है, फिर शाखाओं से शाखाएँ निकलती चली जाती है।

अन्त में ये उपनलिकाएँ इतनी सूक्ष्म हो जाती है, कि उनमें कोई शक्ति नहीं रहती है, ये केवल सौत्रिक धातु की सूक्ष्म नलिकाएँ होती हैं। अंत में ये उपनलिकाएं कोष्ठिका बनाती है। इस तरह फुफफुस में लाखों छोटे–छोटे वायु के कोष वायु उपनलिकाओं से सम्बन्धित हैं। प्रत्येक वायु कोष का बाहर की वायु उपनलिकाओं द्वारा सम्पर्क होता है। यहाँ ही गैसों में परिवर्तन और रक्त की शुद्धि होती है। फुफ्फुस केवल वायु कोषों के समूह का नाम है।

### 2.6.4 फुफ्फुस (Lungs)

वक्ष के दोनों ओर स्थित फुफ्फुस श्वसन के प्रधान अवयव हैं, ये वायुरोधक गर्त में स्थित होते हैं जो कि सामने की तरफ पर्शुकाएँ, पर्शुकान्तर पेशियों तथा उपरोस्थि से पीछे की ओर पर्शुकाओं तथा मेरूदण्ड से नीचे की ओर डायफ्राम से बना है। डायफ्राम का रंग भूरा होता है और देखने में स्पंज की तरह लचीला होता है। फुफ्फुसों की रक्षा एक कला द्वारा होती है, जिसे फुफ्फुसावरण कहते हैं, यह पर्शुकाओं की आन्तरिक सतह को भी आच्छादित किए हुए हैं। कला की दो परतों के बीच के स्थान को फुफ्फुस गुहा कहते हैं। फुफ्फुस गर्त में पानी भर जाने से ही प्लूरसी नाम का रोग हो जाता है।

प्रत्येक वायु प्रणली के साथ–साथ फुफ्फुसीय धमनी की सूक्ष्म शाखाएँ, रक्त कोशिकाएँ होती है। इनमें अशुद्ध रक्त फुफ्फुसों की शुद्धि के लिए आता है। जब रक्त इनमें से होकर बहता है तो रक्त और वायु कोषों की वायु में केवल कोशिकाओं की भझि और वायु कोषों की भत्ति की अवरूद्धता होती है। दोनों की भित्तियाँ सूक्ष्म दर्शनीय होती हैं। इसी से वायु कोषों की वायु में पायी जाने वाली आक्सीजन गैस लाल रक्त कण में पाए जाने वाले हेमोग्लोबिन के शक्तिशाली आकर्षण के कारण छनकर रक्त में आ जाना असम्भव हो जाता है। इसी प्रकार कार्बन–डाई–आक्साइड रक्त से छनकर आसानी से वायु नलिकाओं में चली जाती है।

कोशिकाओं में आक्सीजन आ जाने से रक्त की शुद्धि हो जाती है और नीले के स्थान पर लाल चमकीला हो जाता है ये कोशिकाएँ संयुक्त होकर फुफ्फुसीय शिराएँ बन जाती है। ये शिराएँ आक्सीजन मिश्रित शुद्ध रक्त को हृदय के बाएँ भाग में ले जाती है, जहाँ से रक्त सारे शरीर में संचालित कर दिया जाता है।

## 2.7 श्वसन प्रक्रिया (Process of Respiration)

फुफ्फुस में वायु का आना निरन्तर बना रहता है और वह प्रत्येक समय तक ताजी बनी रहती है। अन्यथा फुफ्फुस में आक्सीजन समाप्त हो जाएगी और फुफ्फुस कार्बन–डाइ–आक्साइइड से भर जायेंगे। ताजी वायु का आना और कार्बन–डाई–आक्साइड का बाहर जाना डायफ्राम के क्रमिक प्रसार और संकुचन की प्रक्रिया द्वारा होता है।

डायफ्राम वक्ष और उदर के बीच का पेशीय विभाजन है। जब इसके तन्तु संकुचित होते हैं तो यह कम गुम्बज के आकार की हो जाती है। और वक्ष का गर्त ऊपर से नीचे की ओर बढ़ जाते हैं। जब यह पेशी फैलती है और परिमाणतः फिर ऊपर उठती है तो वक्ष का गर्त सिकुड़ जाता है।

वक्ष का गर्त एक ओर प्रकार से भी फैलता है। वक्ष भित्ति पर्शुकाओं तथा उरोस्थि से बनती है जो कशेरूकाओं से पीछे की ओर और सामने की ओर उरोस्थि से सम्पर्क रखती हैं। पर्शुकाओं के बीच के स्थान में सशक्त पेशियाँ होती है जिन्हें पर्शुकान्तर कहते हैं। इन पेशियों की दो परतें हैं। बाहरवाली को बाह्य पर्शुकान्तर पेशी कहते हैं और आन्तरिक को अभ्यान्तर पर्शुकान्तर पेशी। जब बाह्य पर्शुकान्तर पेशियाँ संकुचित होती हैं तो वे पर्शुकाओं और उरोस्थि को ऊपर खींचती है। इस प्रकार से वक्ष का गर्त सामने से पीछे की ओर फैलकर बढ़ जाता है। पर्शुकाओं के उठने के साथ ही साथ गर्त की चौड़ाई में भी अगल बगल वद्धि होती है।

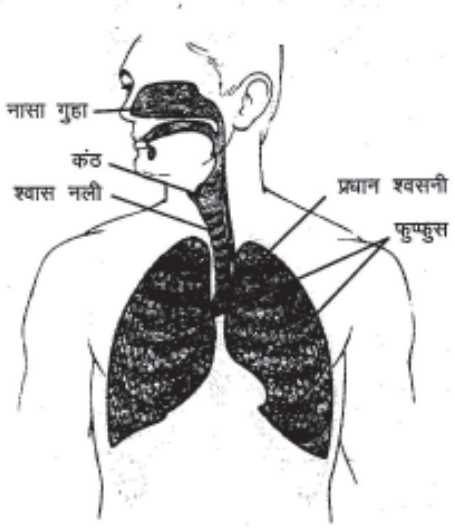


**चित्र 2.2: मानव श्वसन-तंत्र**

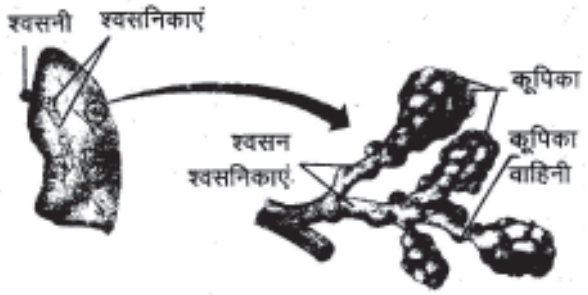


**चित्र 2.32: फुप्फुस की आतंरिक रचना।**

इन सब सम्मिलित प्रक्रियाओं के द्वारा वक्ष का गर्त तीन तरह से फैलता है– एक ओर से दूसरी ओर को, सामने से पीछे की ओर, ऊपर से नीचे को। वक्ष के इस फैलाव के फलस्वरूप वायु नासिका मार्ग से होकर फुप्फुस को फैलाने के लिए दौड़ती है और फुप्फुस फूल जते हैं। इस फैलाव के तुरन्त बाद ही पेशियाँ जो फुलाव की गति उत्पन्न करती है, संकुचन की क्रिया बंद कर देती है। डायफ्राम ढीली पड़ जाती है और गुम्बज के आकार की हो जाती है और पर्शुकाएँ तथा उरोस्थि अपनी पूर्व स्थिति पर पीछे की ओर चली जाती है। सम्मिलित क्रियाओं द्वारा उरोस्थित का गर्त छोटा हो जाता है और परिणामस्वरूप फुप्फुस संकुचित हो जाते हैं और आवश्यकता से अधिक भीतर आयी हुई वायु को बाहर कर देते हैं।

### अपनी प्रगति जांचिए–2

(i) श्वास नली की लम्बाई लगभग ..... इंच होती है।

(ii) डायफ्राम का रंग ..... होता है।

## 2.8 उत्सर्जन-का अर्थ (Excretion)

प्रत्येक जीव को अक्षुण्ण रखने के लिए उसकी कोशिकाएँ निरन्तर कार्य करती रहती हैं। अधिकांशतः यह कार्य जैव रासायनिक क्रियाओं के रूप में होता है। इन क्रियाओं में हानिकारक अपशिष्ट पदार्थ का बनना तथा शरीर में जल की मात्रा का कम या अधिक होना हो सकता है।

हानिकारक अपशिष्ट पदार्थ की अधिक मात्रा को शरीर से निष्कासित करने के जैविक प्रक्रम को उत्सर्जन (Excretion) कहते हैं। शरीर में जल की उचित मात्रा तथा उपयुक्त आयनों का संतुलन बनाए रखना परासरण नियमन (Osmoregulation) कहलाता है। उत्सर्जन तथा परासरण नियमन दोनों ही साथ–साथ चलते रहते हैं। इन्हें संपादित करने वाले अंगतंत्र को मूत्र तंत्र या उत्सर्जन तंत्र कहते हैं।

## 2.9 मनुष्य में उत्सर्जन तन्त्र की संरचना (Structure of Excretory System in Man)

मुनष्य का उत्सर्जन तंत्र उदरगुहा में स्थित होता है। इसमें सेम के बीच की आकृति के दो वक्क होते हैं। प्रत्येक से एक वाहिनी निकलती है जिसे *मूत्र वाहिनी* कहते हैं जो मूत्राशय में खुलती है। मूत्राशय में एकत्रित मूत्र मूत्रमार्ग द्वारा शरीर से बाहर निष्काषित हो जाता है।

प्रत्येक वक्क उत्सर्जन हेतु लाखों इकाइयों का बना होता है इन्हें *वक्क नलिकाएं* (nephron) कहते हैं। प्रत्येक वक्क नलिका का ऊपरी सिरा एक प्याले के आकार की रचना बनाता है जिसे बोमन संपुट कहते हैं। बोमन संपुट में कोशिकाओं का सघन गुच्छा होता है। इसलिए इसे *कोशिका गुच्छ* (glomerulus) कहते हैं। ये कोशिकाएं वक्क में आने वाली उस धमनी के विभाजन से बनती हैं जिसमें अपशिष्ट पदार्थ युक्त रुधिर प्रवाहित होता है। बोमन संपुट वक्क नलिका का प्रवेश द्वार है।

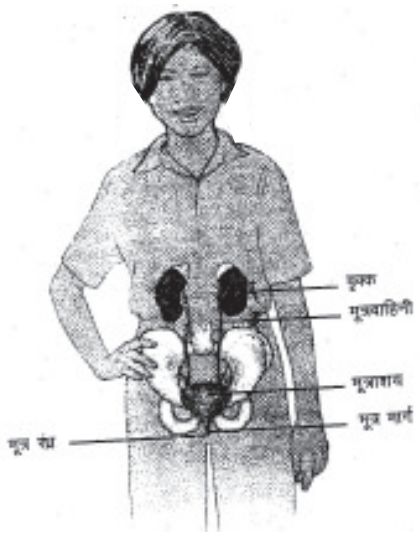


**चित्र 2.4: मानव मूत्रतंत्र**

वक्क धमनी द्वारा अपशिष्ट पदार्थ वक्क में आते हें। कोशिका गुच्छ की कोशिकाओं से रुधिर का तरल भाग छनकर बोमन संपुट में आ जाता है। जैसे–जैसे यह वक्क नलिका में प्रवाहित होता है, ग्लूकोज तथा अमीनो अम्ल जैसे सभी उपयोगी पदार्थ वक्क नलिका के चारों ओर बने कोशिकाजाल द्वारा पुनः अवशोषित हो जाते हैं। वक्क नलिकाएँ अपशिष्ट पदार्थों को वक्क के भीतरी भाग में प्रवाहित कर देती हैं जहां से यह मूत्रनलिका द्वारा मूत्राशय तक चला जाता है। मनुष्य द्वारा मूत्र त्याग के समय तक यह मूत्राशय में ही एकत्र रहता है। मनुष्य के मूत्र में मुख्यतः यूरिया, कुछ अकार्बनिक लवण तथा जल होता है।

## 2.10 परासरण नियमन (Osmoregulation)

परासरण नियमन शरीर के अंदर जल की मात्रा तथा आयन सांद्रण को नियंत्रित करने का प्रक्रम है। परासरण नियमन जंतुओं के आवास से जुड़ा है। अलवणीय जल में रहने वाले जंतु अत्यधिक मात्रा में मुख और त्वचा द्वारा जल ग्रहण करते हैं। उन्हें अपशिष्ट पदार्थ के निष्कासन के लिए पर्याप्त मात्रा में जल की आवश्यकता होती है। समुद्री जंतु तथा मनुष्य सहित अन्य स्थलीय जंतुओं में जल संरक्षण

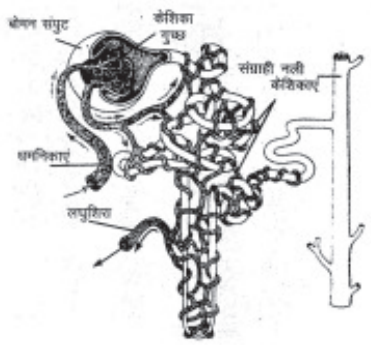


**चित्र 2.5:**
**उत्सर्जन की इकाई-वक्क नलिका**

की पर्याप्त आवश्यकता होती है अतः उत्सर्जन तंत्र जल का पुनः अवशोषण करता है। अतिरिक्त जल का निष्कासन या पुनः अवशोषण हार्मोन के नियंत्रण में रहता है। इस प्रकार, वक्क का कार्य अपशिष्ट पदार्थों के निष्कासन के अलावा शरीर के अन्दर जल तथा खनिज आयन के स्तर को नियंत्रित करना भी है।

## 2.11 वक्क-निष्क्रियता तथा उत्तरजीविता हेतु तकनीक (Kidney Failure & Dialysis)

आपने देखा कि मनुष्यकी उत्तरजीविता के लिए वक्क कितने महत्वपूर्ण हैं। सामान्यतः वक्क अपक्रिय (fail) नहीं होते, परंतु संक्रमण, आघात, रुधिर प्रवाह में कमी अथवा अवरोध के कारण यह निष्क्रिय अथवा अपक्रिय हो सकते हैं। ऐसी अवस्था में रुधिर से अपशिष्ट पदार्थों का निस्पंदन करके उसमें जल तथा आयन की पर्याप्त मात्रा बनाए रखने के लिए 'कृत्रिम वक्क' (artifical kidney) नामक उपकरण का प्रयोग किया जाता है। (चित्र 2.4) जिसमें अपोहन अथवा **डायालिसिस** (dialysis) नामक तकनीक का उपयोग किया जाता है।

किसी अन्य व्यक्ति के सुमेलित वक्क का रोगी के शरीर में प्रत्यारोपण (transplant) भी किया जा सकता है।

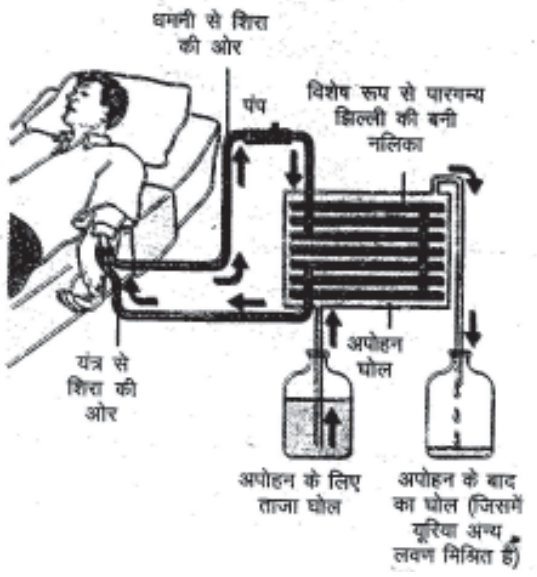


**चित्र 2.6: कृत्रिम वक्क**

### डायालिसिस (अपोहन) का नियम

अपोहन के उपकरण में सेल्युलोज़ की लंबी कुंडलित नलियां अपोहन विलयन से भरी टंकी में लगी होती है। जब रुधिर इन नलियों से प्रवाहित होता है तब अपशिष्ट पदार्थ विसरित होकर टंकी के विलयन में आ जाते हैं। स्वच्छ रुधिर रोगी के शरीर में पुनः प्रविष्ट करा दिया जाता है।

### अपनी प्रगति जांचो–3

(i) मानव उत्सर्जनतंत्र ..... में स्थित होता है।

(ii) परासरण नियमन क्या है?

(iii) वक्क अपक्रिय होने की स्थिति में ..... का उपयोग किया जाता है।

## 2.12 परिसंचरण तन्त्र का महत्व
## (Significance of Circulatory System)

श्वसन तंत्र की भाँति रक्त परिवहन तंत्र भी प्राणमूलक तंत्र है। इसकी समुचित प्रक्रिया पर ही बालक का स्वास्थ्य निर्भर करता हे। रक्त परिवहन प्रक्रिया के द्वारा ही समस्त अंगों में रक्त का संचार होता है। परिणामस्वरूप इस प्रक्रिया में लेशमात्र भी दोष उत्पन्न होने पर समस्त शरीर प्रभावित हो जाता हे। रक्त परिवहन प्रक्रिया के मुख्य अवयव हृदय, रक्त तथा रक्त–वाहिनियाँ हैं। अतः शिक्षक को इन अवयवों के संबध में पूर्ण ज्ञान होना चाहिए जिससे यह पता चल सके कि रक्त परिवहन प्रक्रिया समुचित रूप से कार्य कर रही है या नहीं।

## 2.13 परिसंचरण तंत्र की संरचना एवं कार्य
## (Structure and Function of Circulatory System)

अब आप जानते हैं कि रुधिर भिन्न पदार्थों का संवहन शरीर के विभिन्न अंगों तक करता है। परिसंचरण तंत्र द्वारा रुधिर शरीर के सभी अंगों तक पहुंचता है। परिसंचरण तंत्र के मुख्य भाग हैं, हृदय तथा रुधिर वाहिकाएं। हृदय एक पंप की भांति कार्य करता है।

### 2.13.1 रुधिर वाहिकाएँ
### (Blood Vessels)

रुधिर वाहिकाएं तीन प्रकार की होती हैं–

1. धमनी
2. शिरा
3. कोशिकाएं।

धमनी की दीवार मोटी होती है तथा यह हृदय से विभिन्न अंगों तक रुधिर ले जाती है। शिरा की दीवार धमनी की अपेक्षा पतली तथा कपाट युक्त होती है। यह विभिन्न अंगों से रुधिर को हृदय तक लाती है। कोशिकाएं बहुत पतली रुधिर वाहिकाएं हैं जो धमनी को शिरा से जोड़ती हैं। खाद्य पदार्थों, गैसों तथा अपशिष्ट पदार्थों का रुधिर और ऊतकों के बीच आदान–प्रदान कोशिकाओं के माध्यम से ही होता है।

### 2.13.2 मानव हृदय
### (Human Heart)

हृदय चार कोष्ठीय अंग है। ऊपर वाले दो कोष्ठ *अलिन्द* तथा नीचे वाले दो कोष्ठ *निलय* कहलाते हैं। दायां अलिन्द महाशिरा से रुधिर प्राप्त करता है तथा बायां अलिन्द महाशिरा से रुधिर प्राप्त करता है तथा बायां अलिन्द फुप्फसीय शिरा से ऑक्सीजन युक्त रुधिर प्राप्त करता है। अलिन्द से निलय में रुधिर छिद्र द्वारा पहुंचाता है जिस पर वाल्व होते हैं। वाल्व रुधिर को विरीत

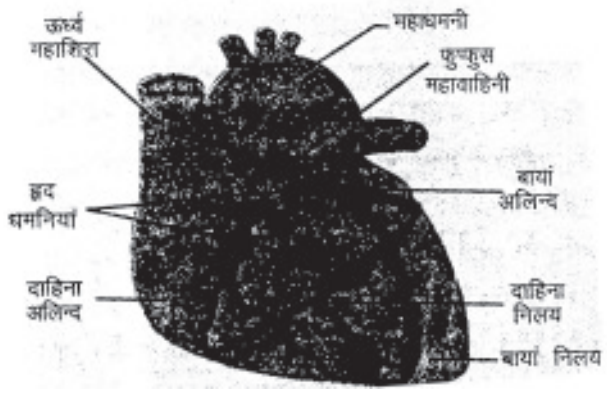


**चित्र 2.7: मानव हृदय**

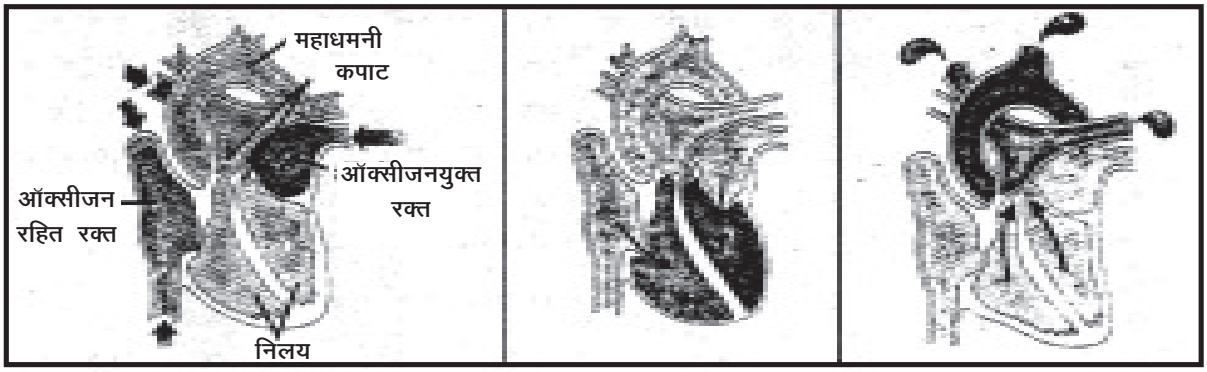


**अलिन्द और निलय का शिथिलन। अलिन्द में रक्त का प्रवाह।**

**अलिन्द का सिकुड़ना तथा रक्त का निलयों में प्रवाह**

**निलयों का सिकुड़ना। दाहिने निलय में रक्त का फुप्फुसीय धमनी तथा बाएं निलय की महाधमनी में प्रवाह**

**चित्र 2.8: हृदय स्पंद के दौरान की घटनाएं**

दिशा में प्रवाहित होने से रोकते हैं। दाएं अलिन्द से रुधिर फुप्फुसीय धमनी द्वारा फेफड़ों तक जाता है जबकि बाएं निलय से महाधमनी द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों तक रुधिर को लाया जाता है। हृदय शिराओं द्वारा रक्त को ग्रहण करता है और धमनियों द्वारा रुधिर को शरीर के विभिन्न भागों में भेजता है। इस तरह हृदय एक पंप की भांति कार्य करता है। हृदय विशेष प्रकार के पेशी ऊतक का बना होता है जिसे *हृदय पेशीय ऊतक* कहते हैं।

हृदय जीवनपर्यन्त धड़कता रहता है। हृदय का यह स्पंदन हृदय पेशियों के लयबद्ध संकुचन एवं शिथिलन से होता है। जब हृदय के चारों कोष्ठों की पेशियां विश्रांति की अवस्था में होती हैं तब महाशिरा से रुधिर दाहिने अलिन्द में प्रवाहित होता है। महाशिरा में शरीर के विभिन्न ऊतकों से आए इस रुधिर में ऑक्सीजन अत्यल्प मात्रा में होती है क्योंकि ऊतक ऑक्सीजन का उपयोग कर लेते हैं। फेफड़ों से आने वाली फुप्फुस शिरा ऑक्सीजनयुक्त रुधिर बाएं अलिन्द में लाती है। अब अलिन्द संकुचित होते हैं। अलिन्द के संकुचन से दाहिने अलिन्द का विऑक्सीजनति रुधिर दाहिने निलय में तथा बाएं अलिन्द का ऑक्सीजनित रुधिर

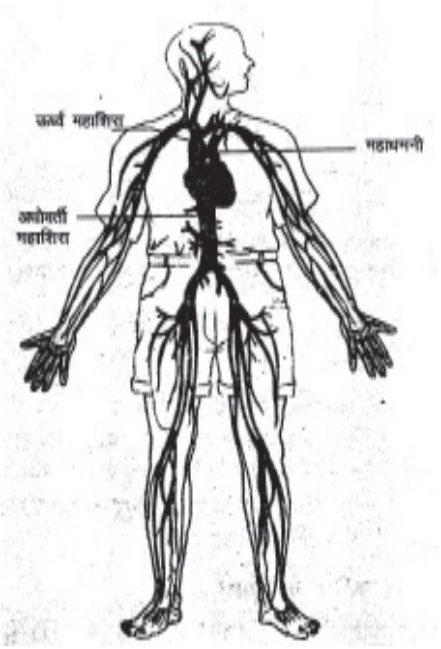


**चित्र 2.9: मानव में रक्त परिसंचरण**

बाएं अलिन्द का ऑक्सीजनित रुधिर बाएं निलय में आ जाता है। इसके पश्चात निलय के संकुचन के फलस्वरूप बाएं निलय का ऑक्सीजनित रुधिर महाधमनी से होता हुआ शरीर के सभी भागों तक तथा दाहिने निलय का रुधिर फुप्फुस धमनी द्वारा फेफड़ों तक प्रवाहित होता है। इस प्रकार संपूर्ण शरीर से हृदय में आने वाला विऑक्सीजनित रुधिर फुप्फुस तक भेजा जाता है। हृदय इस ऑक्सीजनित रुधिर को पुनः सभी अंगों तक पंप कर वितरित करता है। क्योंकि रुधिर हृदय से दो बार प्रवाहित होता है। इसलिए इसे दोहरा परिसंचरण (double circulation) कहते हैं।

चित्र 2.8 से स्पष्ट है कि सभी अंगों तक पहुंचने के लिए रुधिर का परिसंचरण धमनी तथा शिरा दोनों से होता है।

### रुधिर की संरचना एवं कार्य

रुधिर परिसंचरण का मुख्य कार्य पदार्थों का संवहन है। इसके द्वारा पोषक पदार्थ, श्वसनीय गैसें, अपशिष्ट पदार्थ, हार्मोन, एंजाईम एवं आयन शरीर के एक भाग से दूसरे भाग तक परिवहित होते हैं। शरीर के ताप का नियमन तथा रोगाणुओं एवं अवांछित पदार्थों से शरीर की प्रतिरक्षा भी रुधिर के प्रमुख कार्य हैं।

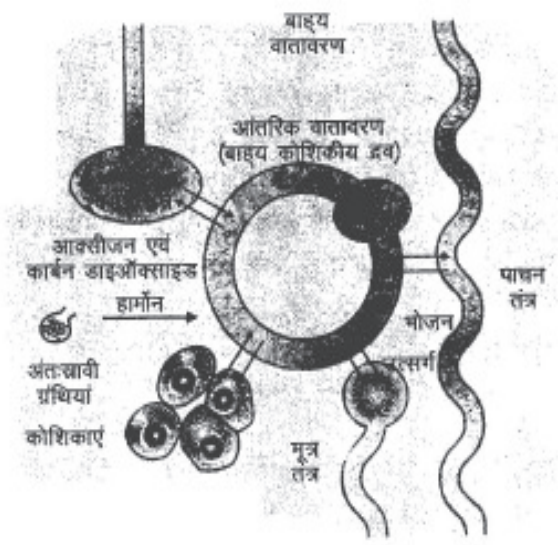


**चित्र 2.10: परिसंचरण तंत्र के कार्य**

रुधिर एक तरल संयोजी ऊतक है रुधिर में तरल आधात्री विद्यमान होती है जिसे *रक्त प्लैज्मा* (blood plasma) कहते हैं। इसमें तीन प्रकार की रुधिर कोशिकाएं तैरती रहती हैं। लाल रुधिर कणिकाएं, श्वेत रुधिर कणिकाएं तथा प्लेटलेट्स विभिन्न रुधिर कणिकाएं हैं।

प्लैजमा रंगहीन तरल है जिसका अधिकांश भाग जल होता है। इसमें अनेक प्रोटीन पाए जाते हैं। लाल रुधिर कणिकाओं में पाए जाने वाले हीमोग्लोबिन नामक लाल वर्णक के कारण ही रुधिर कणिका सामान्यतः गोलाकार होती है जिसमें केंद्रक अनुपस्थित होता है। हीमोग्लोबिन फेफड़ों से ऑक्सीजन को अन्य अंगों एवं ऊतकों तक पहुंचाने तथा, ऊतकों से कार्बन डाइऑक्साइड को फेफड़ों तक ले जाने का महत्वपूर्ण कार्य निष्पादित करता है।

लाल रुधिर कणिकाओं का जीवन काल लगभग 120 दिन होता है। ऐसा अनुमान है कि प्रतिदिन लगभग 30 लाख लाल कणिकाएं मर जाती हैं परंतु अस्थिमज्जा में लगभग चार गुना नई कणिकाएं बनती भी रहती हैं। इसलिए रक्तदान करते समय किसी प्रकार की चिंता नहीं करनी चाहिए क्योंकि इतना रूधिर पुनः उत्पादित हो जाता है।

### अपनी प्रगति जांचिए-4

(i) मानव हृदय के ..... कोष्ठक होते हैं।

(ii) मानव हृदय 1 मिनट ..... बार स्पंदन करता है।

(iii) धमनियों में ..... रक्त होता है।

(iv) ..... धमनी अशुद्ध रक्त फेफड़ों तक ले जाती है।

(v) श्वेत रक्त कणिकाएं ..... रक्षा करती हैं।

## 2.14 सारांश

आप जानते हैं कि कार्य करने के लिए आवश्यक ऊर्जा भोजन से प्राप्त होती है जो भोजन हम खाते हैं, उसका उसी रूप में हमारे शरीर द्वारा अवशोषण नहीं किया जा सकता। इसलिए उस भोजन को सरल रूप में परिवर्तित करना आवश्यक होता हैं पाचन तंत्र भोजन का पाचन अर्थात् इसे जटिल से सरल रूप में बदलता है। पाचन क्रिया में विभिन्न एंजाइम भोजन पर क्रिया करते हैं। स्टार्च आदि को ग्लूकोस में, प्रोटीन को एमीनो अम्ल में और वसा को ग्लिसरॉल एवं वसा अम्लों में बदला जाता है जिससे ये रक्त में मिल जाएं और शरीर के सभी भागों तक पहुंच सके। श्वसन एक ऐसी क्रिया है जिसमें ऊर्जा मुक्त करने के लिए खाद्य का आक्सीकरण होता है। श्वसन का प्रथम चरण श्वास लेना है जिसमें ऑक्सीजन को ग्रहण किया जाता है और इस ऑक्सीजण का उपयोग भोजन को आक्सीकृत करके ऊर्जा प्राप्त करने के लिए किया जाता है। मानव श्वसन तंत्र में नासाद्वार, नासागुहा, श्वास नली, श्वसनी एवं कूपिकाओं में समाप्त होने वाली श्वसनिकाएं हैं। फुप्फुस अनेक कूपिकाओं

को घेरे फुफफुसावरणी का बना होता है। श्वसन प्रक्रिया के दौरान डायफ्राम एवं पसलियों से जुड़ी पेशियां संकुचित एवं शिथिलत होती हैं जिससे वक्ष गुहा के आकार में परिवर्तन होता है तथा वायु का प्रवाह अन्दर एवं बाहर की तरफ होता है।

फुफ्फुस से ऊत्तकों के बीच श्वसन गैसों का परिवहन रक्त द्वारा होता है। शरीर के विविध पदार्थों के एक अंग से दूसरे अंग तक परिवहन के लिए एक विशिष्ट तंत्र होता है जिसे परिसंचरण तंत्र कहते हैं। परिसंचरण तंत्र के मुख्य भाग, रुधिर वाहिकाएं, हृदय तथा रूधिर होते हैं। रूधिर, सर्करा वाहिकाओं में प्रवाहित होता है। ये तीन प्रकार की होती हैंः

(i) धमनी

(ii) शिरा

(iii) रुधिर कोशिकाएं

हृदय रुधिर को प्राप्त करने उसे दूसरे अंगों को पंप कर देता है। हृदय लयबद्ध स्पंदन करता है। इसके चार कोष्ठक अलिन्द व दो निलय होते हैं। अलिन्दव निलय क्रमशः संकुचन व शिथिलन करते हैं। यह प्रक्रिया परिसंचरण में सहायक है। रुधिर तरल आधात्री (Fluid Matrix), प्लाज़्मा तथा इसमें तैरती हुई तीन प्रकार की कणिकाओं से बना होता है। लाल रुधिर कणिकाएं (RBC's), श्वेत रुधिर कणिकाएं (WBC's), तथा रुधिर प्लेटलैट्स। रुधिर कणिकाओं का निर्माण अस्थिमज्जा में होता है।

उत्सर्जन नाइट्रोजनधारी अपशिष्ट पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने की प्रक्रिया है। मानव उत्सर्जन तंत्र में एक युग्म वक्क तथा मूत्र वाहिनियां, एक मूत्राशय, मूत्रमार्ग तथा मूत्रद्वार सम्मिलित होते हैं। वक्क उत्सर्जन अंग है। वक्क, वक्क नलिकाओं का बना होता है। वक्कनलिका, उत्सर्जन की संरचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई है। वक्क परासरण नियमन के लिए भी उत्तरदायी हैं। परासरण नियमन की प्रक्रिया शरीर में जल की उचित मात्रा बनाए रखती है। वक्क निष्क्रियता की स्थिति में डायलिसिस के सिद्धांत पर आधारित कृत्रिम वक्क का उपयोग किया जाता है।

**आदर्श उत्तर**

1. (i) टाइलिन
   (ii) जीवाणु–मुक्त
   (iii) एमीनो अम्ल
   (iv) जल का अवशोषण
2. (i) 5 इंच (ii) भूरा
3. (i) उदर गुहा
   (ii) शरीर में जल की उचित मात्रा एवं ऑयनों का संतुलन बनाए रखना परासरण नियमन कहलाता है।
   (iii) डायालिसिस तकनीक

## 2.15 मुख्य शब्द

**पाचनः** वह क्रिया जिसमें जटिल भोजन पर विभिन्न एंजाइमों द्वारा क्रिया करके सरल रूप में परिवर्तित किया जाता है ताकि उसका सरलात से अवशोषण हो सके।

**श्वसनः** वह क्रिया जिसमें भोजन का आक्सीकरण करके ऊर्जा उत्पन्न की जाती है और कार्बन–डाई–ऑक्साइड शरीर से बाहर छोड़ी जाती है।

**उत्सर्जनः** यह शरीर से अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालने की प्रक्रिया है

**परासरण नियमनः** यह शरीर में जल की मात्रा तथा ऑयन सांद्रण को नियंत्रित करने का प्रक्रम है

**डायालिसिसः** ऐसी प्रक्रिया जिसमें कृत्रिम रूप से रुधिर से अपशिष्ट पदार्थों को पथक किया जाता है।

**दोहरा परिसंचरण**

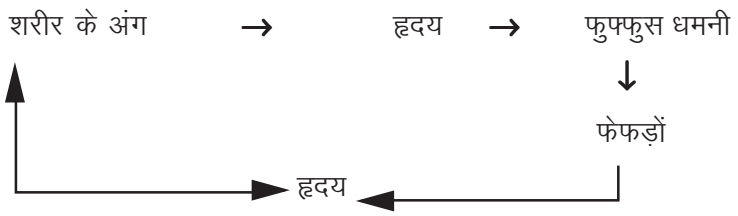


रुधिर हृदय से दो बार प्रवाहित होता है जिसे दोहरा परिसंचरण कहते हैं।

## 2.16 सन्दर्भ ग्रन्थ

'कक्षा 10 के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, NCERT, Delhi 2003.

Singh, L. & Kaur, M.Scinece and Technology Text book for X class', S. Chand & Co. Ltd., 2002.

Biology Text Book for Class XII, NCERT, Delhi, 1986.

Biology for Class X, Arya Book Depot, New Delhi.,2003.

# इकाई–2 (a)

# अध्याय-3: कोशिका संरचना

# (Cell Structure)

**उद्देश्यः**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें किः

- कोशिका को परिभाषित कर सकें।
- कोशिका की खोज की ऐतिहासिक पष्ठभूमि बता सकें।
- कोशिका सिद्धान्त का वर्णन कर सकें।
- पादप एवं जन्तु कोशिका की संरचना की चित्र सहित व्याख्या कर सकें।
- पादप एवं जन्तु कोशिका की तुलना कर सकें।

**संरचनाः**

3.1. प्रस्तावना
3.2. कोशिका की खोज
3.3. कोशिका सिद्धान्त
3.4. पादप एवं जन्तु कोशिका की संरचना
3.5. पादप एवं जन्तु कोशिका में तुलना
3.6. सारांश
आदर्श उत्तर
3.7. मुख्य शब्द
3.8. सन्दर्भ ग्रन्थ

## 3.1 प्रस्तावना

सभी जीवधारयिों का शरीर एक विशेष प्रकार के द्रव्य से बना होता है जिसे जीवद्रव्य (Protoplasm) कहा जाता है। जीवधारियों में यह जीवद्रव्य बहुत छोटी–छोटी इकाइयों में संगठित होता है। इन इकाइयों (Units) को कोशिकाएं कहा जाता है। कोशिकाओं की तुलना किसी दीवार के निर्माण में प्रयोग की जाने वाली ईंटों से की जा सकती है जो दीवार के मूल खंड (Basic Structure) के रूप में कार्य करती हैं। कोशिकायें भी सजीवों की संरचना में दीवार की ईंटों अथवा तत्व के परमाणुओं की भांति कार्य करती हैं। कोशिकाओं में आकृति और आकार की दष्टि से बहुत असमानता देखने को मिलती है। कुछ कोशिकायें इतनी छोटी होती हैं कि उन्हें नंगी आंखों से सूक्ष्मदर्शी की सहायता के बिना नहीं देखा जा सकता जबकि कुछ कोशिकायें इतनी बड़ी होती हैं कि उन्हें सरलतापूर्वक नंगी आंखों से देखा जा सकता है। विषाणु अथवा PPLO (Pleuro Pneumonia) जैसे जीव सबसे छोटी कोशिका का उदाहरण हैं और शतुरमुर्ग का अण्डा (Ostrich Egg) सबसे बड़ी कोशिका का उदाहरण है। एक कोषीय जीव जैसे क्लैमाइडोमोनास (Chlamydomonas) यीस्ट (Yeast) अमीबा, पैरामीशियम, युग्लीन! (Amoeba, Paramecium,

Euglena) आदि के शरीरों में केवल एक ही कोशिका पाई जाती है। ये जीव अपने जीवन–सम्बन्धी सभी कार्यों जैसे–गति, प्रजनन, पोषण, उत्सर्जन आदि को एक ही कोशिका के माध्यम से पूरा करते हैं। बहुकोषी जीवों के शरीर में बहुत सी कोशिकायें होती हैं। इन कोशिकाओं में कार्यों का विभाजन (Division of Works) होता है अर्थात् अलग–अलग कार्यों को करने के लिए अलग–अलग कोशिकायें होती हैं। कोशिका चाहे एककोषी जीव की हो अथवा बहुकोषी जीव की, उनकी आधारभूत संरचना (Fundamental Structure) समान होती है और वे सजीवों के जीवन जिससे वे जीवन सम्बन्धी विभिन्न क्रिया–कलापों को करते हैं का प्रतिनिधित्व करती हैं इसीलिए कोशिका को जीवन का सबसे छोटी संरचनात्मक एवं कार्यात्मक इकाई कहा जाता है। (Cell is the smallest structural and functional unit of life).

## 3.2 कोशिका की खोज (Discovery of Cell)

कोशिका की खोज का इतिहास काफी पुराना है। वेसालियस (1514–1564) नामक वैज्ञानिक ने सबसे पहले मानव शरीर की चीरफाड़ द्वारा जीवन की आधारभूत इकाई के विषय में जानने की चेष्टा की परन्तु इससे जीवित शरीर के रहस्यों को ज्ञात नहीं किया जा सका। फ्रांसीसी शरीर शास्त्री विरवाट तथा फर्नेल ने माँसपेशियों की गतिविधियों के अध्ययन के आधर पर यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्येक बड़ी पेशी छोटी–छोटी पेशियों से मिलकर बनी होती है। ये छोटी पेशियाँ इनसे भी छोटी पेशियों से मिलकर बनी होती हैं और यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है। विरवाट तथा फर्नेल इससे आगे परीक्षण नहीं कर सके क्योंकि तब तक सूक्ष्मवस्तुओं को देखने के लिए सूक्ष्मदर्शी का आविष्कार नहीं हुआ था।

सूक्ष्मदर्शी के आविष्कार ने कोशिका की रचना के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया। सन् 1665 में एक ब्रिटिश वैज्ञानिक राबर्ट हुक (Robert Hook) ने स्वयं निर्मित सूक्ष्मदर्शी से कार्क की पतली परत की जांच करते समय यह पता लगाया कि कार्क की रचना शहद की मक्खी के छत्ते की तरह छोटे–छोटे कोष्ठों के मिलने से बनी है। उसने प्रत्येक कोष्ठ को कोशिका अथवा सैल (Cell) का नाम दिया। 'सैल' शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा के शब्द –सैलुला' (Cellula) से हुई है जिसका अभिप्राय है एक छोटा कक्ष अथवा खाली जगह।

इसी आधार पर हुक ने कार्क में दिखने वाले छोटे–छोटे खाली कोष्ठों का नामकरण किया। हुक ने कुछ अन्य पौधों की छालों का भी अध्ययन किया और उनमें भी उसने कार्क की भांति विभिन्न कोष्ठों को देखा। उसने अपने परिणामों को 'माइक्रोग्रेफिया' नामक पुस्तक में प्रकाशित किया। इससे संसार के सभी वैज्ञानिकों का ध्यान विभिन्न जीवधारियों में कोशिकाओं की खोज की ओर आकर्षित हुआ। इसके पश्चात सन् 1824 में आर.जे.एच. डुट्रोचेट (R.J. Dutrochet, 1824) ने सिद्ध किया कि सभी जीवधारियों के शरीर में कोशिकाएं होती हैं जो कि एक जैसी होती हैं। इस समय तक कोशिका की आंतरिक संरचना के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं थी। सन् 1933 में स्काटलैण्ड के वनस्पतिशास्त्री राबर्ट ब्राऊन ने एक फूलदार पौधे की बाह्य त्वचा का अध्ययन करते समय कोशिका के अन्दर एक छोटी सी गोल संरचना देखी और उसे केन्द्रक का नाम दिया। सन् 1835 में फ्रांस के एफ. डुजारडिन ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि कोशिका में एक जैली जैसा पदार्थ होता है। इस पदार्थ को उसने सार्कोड़ (Sarcode) का नाम दिया। इसके पश्चात् सन् 1839 में जे.ई. पुरकिंजे तथा हुगो वॉन मॉडल (J.E. Purkenjee and Hugo Van Model) ने इस जैली जैसे द्रव्य को प्रोटोप्लास्म (Proto plasm) का नाम दिया। (Latin protoplasm - First formed matter) उनके अनुसार कोशिका की रचना में सर्वप्रथम इस जैली जैसे पदार्थ का निर्माण होता है इसलिये इसे प्रोटोप्लाज्म कहा जाता है।

## 3.3 कोशिका सिद्धान्त (Cell Theory)

सन् 1839 में जर्मनी के दो वैज्ञानिकों एम. जे. शीलडन तथा थियोडेर शवहान ने कोशिका सम्बन्धी अनुसंधानों के आधर पर कोशिका सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। कोशिका सिद्धान्त कोशिका की खोज के 50 वर्षों बाद प्रतिपादित हुआ और इससे कोशिका सम्बन्धी स्पष्ट धारणाओं के निर्माण एवं विकास में सहायता मिली। कोशिका क्या है? उसकी आंतरिक संरचना क्या है? और उसकी जीवधारियों के लिए क्या उपयोगिता है? आदि प्रश्नों से सम्बन्धित स्पष्ट धारणायें बनाने में सहायता मिली। कोशिका सिद्धान्त के मुख्य बिन्दु निम्नलिखित हैं–

1. सभी सजीव पदार्थ—पौधे, जन्तु, एक कोषीय अथवा बहुकोषीय जीव आदि अनिवार्य रूप से कोशिकाओं से बने होते हैं।
2. सभी कोशिकायें पहले से विद्यमान कोशिकाओं से ही बनती हैं (Omni Cellula e Cellula - Rudolph Witch, 1855)
3. जीवन के सभी क्रियाकलाप कोशिकाओं द्वारा ही सम्पन्न किये जाते हैं।
4. सभी कोशिकाओं में आनुवंशिक पदार्थ होता है जिसका कोशिका विभाजन द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरण होता है।
5. कोशिकाओं में संरचना तथा कार्यप्रणाली की दष्टि से उचित संगठन और समन्वय पाया जाता है।

## 3.4 पादप एवं जन्तु कोशिका की संरचना (Structure of Plant and Animal Cell)

कोशिका से अभिप्राय जीवधारियों के शरीर की सबसे छोटी संरचनात्मक एवं कार्यपरक इकाई से है। पौधों एवं जन्तुओं की कोशिकाओं में पायी जाने वाली कुछ संरचनाओं में साम्य होता है और कुछ अंतर पाये जाते हैं। इनका वर्णन निम्नलिखित हैं—

### A पौधों तथा जन्तुओं की कोशिका में उपस्थित उभयनिष्ठ संरचनाएं (Common Structural Features of Plants and Animals)

3.4.1. **कोशिका झिल्ली अथवा प्लाज्मा झिल्ली (Cell membrane or plasmalemma):** कोशिका के बाहर एक झिल्ली जैसा आवरण होता है इसे प्लाज्मा झिल्ली अथवा कोशिका झिल्ली कहते हैं। इसका निर्माण वसा तथा प्रोटीन अणुओं द्वारा होता है। यह झिल्ली कोशिका में उपस्थित जीव द्रव्य को बांधे रखती है। इस झिल्ली में से केवल कुछ पदार्थ आ जा सकते हैं इसीलिए इसे (Selectively Permeable) कहा जाता है। इसका मुख्य कार्य कोशिका में विभिन्न पदार्थों के आवागमन को नियन्त्रित करना होता है।

3.4.2. **कोशिका द्रव्य (Cytoplasm):** यह कोशिका में उपस्थित गाढ़ा तरल पदार्थ होता है और मैट्रिक्स (Matrix or Ground substance) का निर्माण करता है। कोशिका द्रव्य देखने में पारदर्शक, झागदार तथा दानेदार होता है। एक जीवित कोशिका का जीवद्रव्य निरन्तर गतिशील रहता है। कोशिका द्रव्य में छोटे–छोटे कणों के अतिरिक्त खाद्य पदार्थ वैक्यूल (Food Vacuole) एवं विभिन्न अंगक जैसे माइट्रोकोन्ड्रिया, रसधानी, केन्द्रक, गाल्जीकॉय आदि तैरते रहते हैं।

3.4.3. **केन्द्रक (Nucleus):** जीवद्रव्य का केन्द्रीय घना भाग केन्द्रक कहलाता है यह कोशिका द्रव्य से घिरा होता है और इसकी आकृति छोटी तथा गोलाकार होती है। यह कोशिका के नियन्त्रण केन्द्र की तरह कार्य करता है। कोशिका विभाजन की क्रिया में कोशिका द्रव्य के विभाजन से पूर्व केन्द्रक का विभाजन होता है जिसे सूत्री विभाजन कहते हैं। केन्द्रक की अनुपस्थिति में कोशिका एक अंधे कक्ष के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। लैंगिक प्रजनन में माता–पिता के गुण नवजात शिशु तक केन्द्रक द्वारा ही पहुंचाये जाते हैं। सामान्यतया एक केन्द्रक में निम्न अंगक उपस्थित होते हैं—

(i) ***केन्द्रक झिल्ली (Nuclear Memberane):*** यह झिल्ली केन्द्रक को चारों ओर से घेरती है और उसे कोशिका द्रव्य से अलग करके विशिष्ट रूप एवं आकार प्रदान करती है। केन्द्रक झिल्ली भी प्लाज्मा झिल्ली की तरह (Selectively permeable) होती है अर्थात् यह केवल कुछ विशिष्ट पदार्थों को ही गुजरने देती है। केन्द्रक झिल्ली में कुछ छोटे–छोटे छेद होते हैं जिन्हें केन्द्रक छेद (Nuclear Pores) कहा जाता है।

(ii) ***केन्द्रक रस (Nucleoplasm):***—केन्द्रक में जिलेटिन की तरह का एक पदार्थ होता है जिसे केन्द्रक रस कहा जाता है। यह केन्द्रक में मैट्रिक्स की भांति कार्य करता है और इसमें धागे अथवा बिन्दु जैसी बहुत सी संरचनाएं तैरती रहती हैं।

(iii) ***केन्द्रिका (Nucleolus):*** ये अधिक घनत्व वाले सूक्ष्म पदार्थ होते हैं जिनकी संख्या एक या एक से अधिक हो सकती है।

(iv) ***गुण सूत्र (Chromosomes):*** केन्द्रक रस में तैरती हुई धागे जैसी संरचनाएं गुणसूत्र होती हैं। प्रत्येक जीवधारी की कोशिका में गुणसूत्रों की निश्चित संख्या होती है जैसे मनुष्य में 23 जोड़े गुणसूत्र होते हैं और फल वाली मक्खी में 4 जोड़े। इन गुणसूत्रें में जीन्स (Genes) होते हैं जो एक पीढ़ी के गुण दूसरी पीढ़ी में स्थानान्तरित करते हैं।

3.4.4. **माइट्रोकान्ड्रिया या सूत्र कणिका (Mitochondria):** ये देखने में छड़ की आकृति के होते हैं। इनका कार्य कोशिका में श्वसन क्रिया करके ऊर्जा का उत्पादन करना होता है जिससे कोशिका के सभी कार्य सुचारु रूप से हो सकें। ये ऊर्जा उत्पन्न करते हैं जिससे कोशिका की कार्य करने की शक्ति मिल सके इसीलिए इन्हें कोशिका का ऊर्जाघर अथवा पॉवर हाऊस (Power House) भी कहा जाता है।

3.4.5. **रसधानी (Vacuoles):** इनकी आकृति बिन्दु अथवा छड़ जैसी होती है। इनमें रस के रूप में स्वच्छ तरल पदार्थ भरा रहता है। कोशिका की आयु बढ़ने के साथ–साथ इनके आकार में वद्धि होती जाती है। पादप कोशिकाओं में रसधानियों का आकार एवं संख्या जन्तु कोशिका की अपेक्षा बड़ी होती है।

3.4.6. **गाल्जीकाय (Golgi Bodies):** ये केन्द्रक के निकट होती हैं और देखने में ऐसे लगती हैं जैसे वस्तु सी प्लेटों को एक दूसरे के ऊपर रख दिया गया हो। ये प्लेटें दोहरी झिल्ली की बनी होती हैं। पादप कोशिका में इन्हें गाल्जीकाय के स्थान पर डिक्टियोसोम (Dictyosomes) के नाम से जाना जाता है। इनके कार्य एन्जाइमों का संचयन, स्त्रवण Secretion) शुक्राणु में एक्रोसोम (Acrosome in sperm) एवं पादप कोशिका में कोशिका विभाजन के समय कोशिकाओं के बीच कोशिका भित्ति का निर्माण करना आदि होता है।

3.4.7. **अंतद्रव्यी जलिका (Endoplasmic Reticulum):** ये भी केन्द्रक के पास होती हैं और केन्द्रक झिल्ली से कोशिका झिल्ली तक एक जाल (Network) सा बनाती हैं। इनका मुख्य कार्य पदार्थों का संवहन, स्त्रवण एवं राइबोसोमस को आधार प्रदान करना है। ये भी दोहरी झिल्ली की बनी होती हैं। इनकी संख्या कोशिका में एक से अधिक हो सकती है।

3.4.8. **राइबोसोमस (Ribosomes):** ये दानेदार दिखने वाली संरचनाएं होती हैं। ये मुख्यतः एंडोप्लास्मिक रेटीकुलम पर अथवा कोशिका द्रव्य में पायी जाती हैं। इनका मुख्य कार्य प्रोटीन संश्लेषण में सहायता करना है।

3.4.9. **तारककाय (Centrosomes):** पौधों में यह केवल थैलोफाइटा वर्ग में पाया जाता है परन्तु जन्तु कोशिका में यह सदा उपस्थित होता है। इसकी संख्या कोशिका में केवल एक होती है। इसका स्थान केन्द्रक के निकट होता है तथा आकृति गोल और रूप पारदर्शी होता है। इसका केन्द्रीय भाग काफी घना एवं गाढ़ा होता है जिसे तारक केन्द्र (Centriole) कहा जाता है। यह कोशिका विभाजन में मुख्य भूमिका निर्वाह करता है।

## B केवल पादप कोशिकाओं में उपस्थित संरचनाएँ (Structures present in Plant Cells Only)

1. **कोशिका भित्ति (Cell Wall):** पौधों की कोशिकाओं में कोशिका झिल्ली के बाहर एक और आवरण होता है जिसे कोशिका भित्ति कहा जाता है। अन्य भागों की तुलना में यह अधिक कठोर होती है। यह मुख्यतः एक संकरीय कार्बोज पदार्थ सैलुलोज (Cellulose) की बनी होती हैं। कोशिका भित्ति कोशिका की आकृति को बनाए रखने के साथ–साथ कोशिका झिल्ली या प्लाज्मालैमा की रक्षा करने का कार्य भी करती हैं परन्तु इसमें से होकर तरल पदार्थ सुगमता से एक कोशिका से दूसरी कोशिका में आ जा सकते हैं। यह कठोर होने के कारण पौधों का ढांचा (Skeleton) बनाती है अर्थात् यह वही कार्य करती है जो रीढ़ की हड्डी (Vertebral Column) द्वारा रीढ़धारियों में किया जाता है। यह पौधों की कोशिकाओं के लिए बहुत ही आवश्यक भाग है, इसके बिना वे जीवित नहीं रह सकती।

2. **लवक अथवा प्लास्टिड्स (Plastids):** लवक की आकृति गोल, अंडाकार या डिस्क जैसी होती है। ये केवल पादप कोशिकाओं में ही पाये जाते हैं। कुछ निम्न श्रेणी के पौधों जैसे–बैक्टीरिया, शैवाल, कवक आदि में ये अनुपस्थित होते हैं। ये मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं–

   (i) ***अवर्णी लवक (Leucoplast):*** ये रंगहीन, कण होते हैं और पौधे के ऐसे भागों में उपस्थित होते हैं जहाँ धूप नहीं पहुंचती जैसे–भूमिगत जड़, तना आदि। आलू, चुकन्दर, अदरक, कचालू आदि पौधों में ये लवक स्टार्च के रूप में भोजन के संग्रहण का कार्य करते हैं। पौधों के नवजात अंगों जैसे पत्तियों की कोपलों आदि की कोशिकाओं में भी ये लवक पाये जाते हैं। अवर्णी लवक समय और परिस्थिति के अनुसार हरित लवक एवं वर्णी लवक में परिवर्तित हो जाते हैं।

(ii) ***हरित लवक (Chloroplast):*** हरित लवकों में एक हरे रंग का वर्णक क्लोरोफिल होता है। क्लोरोफिल की उपस्थिति के कारण ये हरे रंग के होते हैं। यह वर्णक पौधों में प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया के लिए अनिवार्य होता है। प्रकाश–संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा भोजन का निर्माण होता है और सूर्य की ऊर्जा एवं वायुमण्डल की कार्बन डाई ऑक्साइड का स्थिरीकरण होता है। सभी खाद्य पदार्थों, लकड़ी, रेशे, दवाइयाँ आदि पदार्थों का निर्माण इसी प्रक्रिया द्वारा होता है। इस प्रकार हरित लवक जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

(iii) ***वर्णी लवक (Chromoplasts):*** ये लवक हरे रंग के अतिरिक्त अन्य रंगों के होते हैं। इनका रंग इनमें उपस्थित वर्णक के कारण होता है जैसे जामुनी रंग एन्थ्रासायनिन वर्णक (Anthracyanin) की उपस्थिति के कारण होता है। विभिन्न वर्णी लवकों की उपस्थिति के कारण पौधों की पत्तियों, फूलों आदि के रंग सुन्दर व चमकीले होते हैं।

3. **अन्य विशिष्ट पदार्थ (Other special Materials):** पौधों की कोशिकाओं में ठोस व द्रव रूप में कुछ ऐसे पदार्थ होते हैं जो विभिन्न पौधों में विशेष रूप से अपनी उपस्थिति, प्रदर्शित करते हैं। जैसे पौधे के भूमिगत अंगों की कोशिकाओं में उपस्थित स्टार्च, ऐल्यूटोन कण, इंसुलिन, वसा, तेल आदि। उत्सर्जनी तथा अपशिष्ट पदार्थ जैसे गोंद, राल, लेटैक्स, टेनिन तथा खनिज क्रिस्टल आदि।

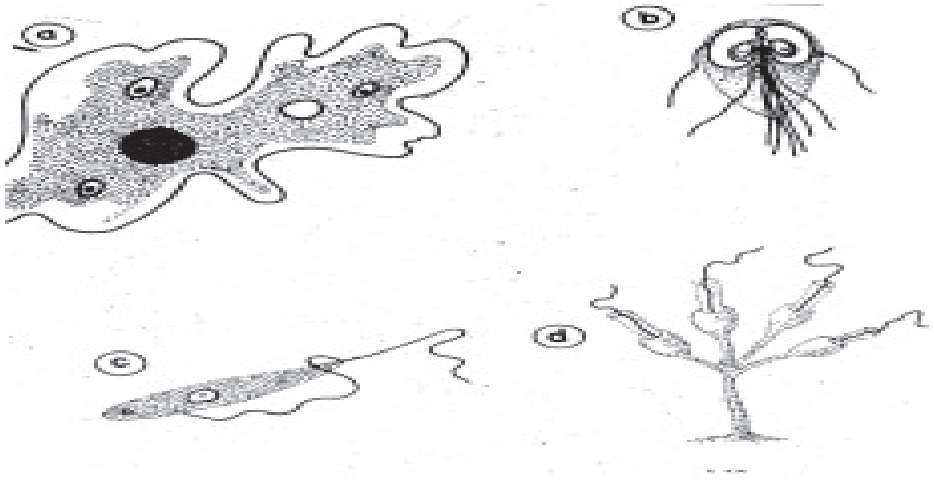


चित्र

## 3.5 पादप कोशिका तथा जन्तु कोशिका में तुलना (Comparison between Plant and Animal Cell)

| कोशिकीय संरचना (Cell Structure) | पादप कोशिका (Plant Cell) | जन्तु कोशिका (Animal Cell) |
|---|---|---|
| 1. आकृति | नियमित | अनियमित |
| 2. कोशिका भित्ति | उपस्थित | अनुपस्थित |
| 3. कोशिका झिल्ली | उपस्थित | उपस्थित |
| 4. केन्द्रक | उपस्थित | " |
| 5. लवक | उपस्थित | अनुपस्थित |
| 6. गाल्जीकाय | डिक्टियोसोम के रूप में | उपस्थित |
| 7. तारक काय | केवल थैलोफाइटा में | उपस्थित |
| 8. रिक्तिकायें | बड़ी एवं अधिक संख्या में | कम एवं छोटी–छोटी |

### अपनी प्रगति जांचिए

(i) कोशिका की खोज .....ने की।

(ii) कोशिका सिद्धान्त का प्रतिपादन ..... ने किया।

(iii) सबसे बड़ी कोशिका का नाम बताइये।

(iv) जन्तु कोशिका में रिक्तिाएं.....होती हैं।

(v) कोशिका भित्ति.....कोशिका में उपस्थित होती है।

## 3.6 सारांश

कोशिका जीवन की सबसे छोटी संरचनात्मक एवं कार्यात्मक इकाई होती है। कोशिका इतनी छोटी भी हो सकती है कि उसे सूक्ष्मदर्शी की सहायता के बिना देखा न जा सके और शतुरमुर्ग के अण्डे जितनी बड़ी भी हो सकती है। कोशिका जीवधारियों के जीवन की इकाई होती है। कोशिका की खोज राबर्ट हुक ने सन् 1665 में की। कोशिका की खोज के 50 वर्षों पश्चात कोशिका सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। इस सिद्धान्त का आधार रुडोल्फ विच का कथन (Omni Cellula e Cellua) था अर्थात् सभी कोशिकाएं पहले से विद्यमान कोशिकाओं से बनती हैं। पौधों और जन्तुओं की कोशिका में कुछ समानताएं होती हैं और कुछ विभिन्नताएं। कोशिका झिल्ली, कोशिका द्रव्य, केन्द्रक, माइट्रोकान्ड्रिया, रसघानी, गाल्जीकाय, राइबोसोम, तारककाय और एंडोप्लास्मिक रेटीकुलम आदि अवयव पादप एवं जन्तु दोनों कोशिकाओं में विद्यमान होते हैं। जबकि कोशिका भित्ति और लवक या प्लास्टिड्स केवल जन्तु कोशिका में पाए जाते हैं।

### आदर्श उत्तर

(i) राबर्ट हुक (ii) शिलडन और शवहान (iii) शतुरमुर्ग का अण्डा (iv) छोटी व कम (v) पादप

## 3.7 मुख्य शब्द

**कोशिका:** जीवन की सबसे छोटी संरचनात्मक एवं कार्यात्मक इकाई को कोशिका कहा जाता है।

**जीवद्रव्य:** ऐसा गाढ़ा द्रव जो जीवन के लिए आधार का कार्य करता है, जीव द्रव्य कहलाता है।

**माइट्रोकोन्ड्रिया:** कोशिका का पॉवर हाऊस अर्थात् वह स्थान जहाँ भोजन से ऊर्जा उत्पन्न की जाती है।

## 3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

'विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी—कक्षा (IX) के लिए पाठ्यपुस्तक,

NCERT, New Delhi, 2002.

Biology for class IX, Arya Book Depot, New Delhi, 2003.

# इकाई–2 (a)

# अध्याय-4: सूक्ष्म जीव

# (Micro Organisms)

**उद्देश्यः**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति में समर्थ हो जाएंगेः

- सूक्ष्म जीवों को पहचान एवं परिभाषित कर सकेंगे।
- सूक्ष्म जीवों के प्रमुख वर्गों की चित्र सहित व्याख्या कर सकेंगे।
- सूक्ष्म जीवों से होने वाले रोगों के नाम बता सकेंगे।
- सूक्ष्म जीवों के विभिन्न उपयोगों का वर्णन कर सकेंगे।

**संरचनाः**

4.1. प्रस्तावना
4.2. सूक्ष्म जीव–परिचय
4.3. सूक्ष्म जीवों की प्रमुख वर्ग
4.4. सूक्ष्म जीव तथा रोग
4.5. सूक्ष्म जीवों के उपयोग
4.6. सारांश
आदर्श उत्तर
4.7. मुख्य शब्द
4.8. सन्दर्भ ग्रन्थ

## 4.1 प्रस्तावना

पास में स्थित तालाब या ऐसे स्थान से जहां पर पानी काफी दिनों से रुका हुआ है, गिलास में पानी लो। इसे महीन कपड़े में से छान लो। आपको कपड़े पर कुछ मिट्टी अथवा छोटे–छोटे जीव जैसे जलमक्खी (फ्लीज), कीट तथा लारवा दिखाई पड़ेंगे। गिलास में छना हुआ पानी साफ दिखाई पड़ेगा। लेकिन आप इस पानी की एक बूंद को कांच की पट्टिका पर फैलाकर सूक्ष्मदर्शी से देखो तो आपको बहुत से छोटे–छोटे जीव तैरते हुए दिखाई पड़ेंगे।

बाग से कुछ गीली मिट्टी एकत्र करो। पैट्रीडिश में गरम रसायन एगार का घोल डालकर एगार प्लेट तैयार करो। यह ठंडा होने पर जैल के रूप में जम जाता है। इस प्लेट पर बगीचे की कुछ मिट्टी डालो और उसे किसी गरम स्थान पर रख दो। दो या तीन दिनों के बाद आप देखोगे कि एगार पर कुछ धब्बे से उग आए हैं। यदि आप इस धब्बे को उठाकर किसी अन्य प्लेट पर रख दो तो ये धब्बा और भी बड़ा हो जाएगा। इस प्लेट को सूक्ष्मदर्शी से देखो और अपने अवलोकन को अपनी कापी में लिखो।

प्लेट में रोटी का एक गीला टुकड़ा रखो। इसे हवा में एक अथवा दो दिन के लिए छोड़ दो। आप देखेंगे कि इस रोटी के टुकड़े पर काले–सफेद धब्बे उग आये हैं। यदि आप इन धब्बों को आवर्धक लेन्स से देखो तो आपको रोटी पर उगे पतले–पतले (वृत्तों) पर स्थित काले रंग की गोल संरचनाएं दिखाई देंगी।

इन सभी अवलोकनों से यह ही निष्कर्ष निकलता है कि हमारे चारों ओर स्थित हवा, मिट्टीतथा पानी में बहुत से जीव होते हैं। वे प्रायः इतने छोटे होते हैं कि उन्हें केवल आँखों से नहीं देख सकते, लेकिन उनकी संख्या बड़े–बड़े पौधों तथा जन्तुओं से बहुत अधिक होती है। ये छोटे–छोटे जीव कई मापों में मिलते हैं। सूक्ष्मतर जीवों का माप कुछ ही माइक्रॉन (माइक्रोमीटर)

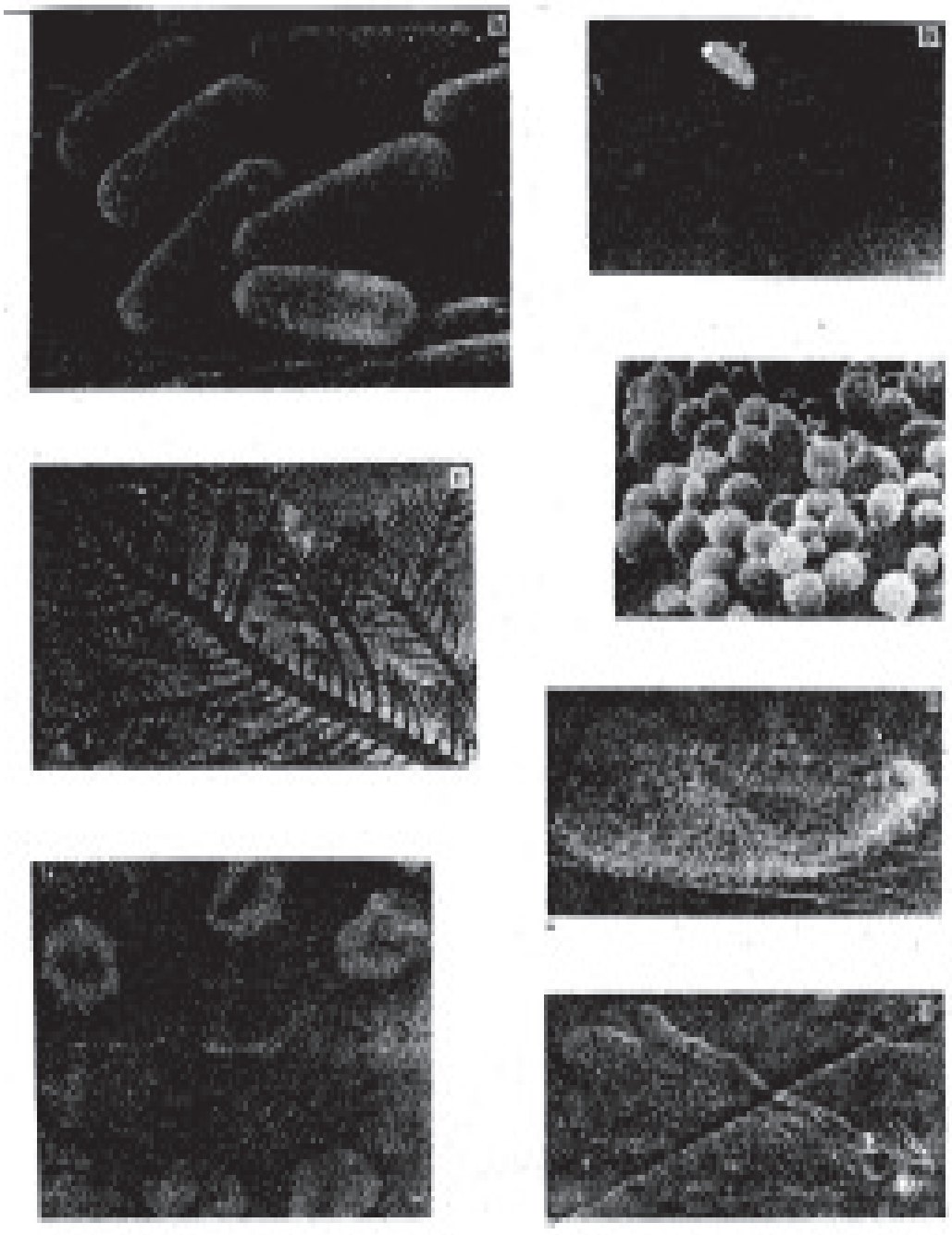

**चित्र 4.1: सूक्ष्मदर्शी से देखने पर कुछ सूक्ष्म जीवः (a), (b) जीवाणु, (c) शैवाल, (d) कवक (यीष्ट), (e) प्रोटोजोआ (पैरामीशियम, (f) विषाणु, (g) प्रोटोजोआ (अमीबा)।**

होता है और उनका अध्ययन करने के लिए हमें विशेष सूक्ष्मदर्शी की आवश्यकता होती है। इन्हें हम सूक्ष्म जीव कहते हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम सूक्ष्मजीवों के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे।

## 4.2 सूक्ष्म जीव – परिचय

ऐसे जीव जिनका आकार इतना छोटा होता है कि उन्हें केवल सूक्ष्मदर्शी यन्त्र की सहायता से देखा जा सकता है, सूक्ष्म जीव कहलाते हैं। बड़े सूक्ष्मजीवों को सामान्य सूक्ष्मदर्शी से देख सकते हैं, कुछ को केवल नग्न आंखों से देख सकते हैं। उदाहरणतः मशरूम। चित्र 1. में विभिन्न सूक्ष्मदर्शी से दिखाई देने वाले कुछ सूक्ष्मजीवों को दिखाया गया है। उनके चित्र लेने के लिए उन्हें कुछ सीमा तक आवर्धित किया गया है। उदाहरण के लिए, जीवाणु (चित्र 4.1 a) अमीबा से (चित्र 4.1b) 300,000 गुणा छोटा होता है। आप देख सकते हो कि उनके माप में कितनी विभिन्नता है। यह विभिन्नता उसी प्रकार है जैसा कि जन्तु जगत, जिसे हम जानते हैं, में है– अर्थात् चींटी के माप से लेकर हाथी के माप तक।

सूक्ष्मजीव लगभग सभी प्रकार के पर्यावरण–गरम झरनों में, बर्फ जैसे ठंडे पानी में, अधिक लवण, सल्फर अथवा कार्बनिक पदार्थ घुले पानी में, रेगिस्तानी मिट्टी अथवा नम स्थानों में पाए जाते हैं। कुछ गले–सड़े मांस को पसन्द करते हैं। कुछ हमारी आंतों में होते हैं। कुछ सूक्ष्मजीव मुक्त रूप से स्वयं जनन करते हैं तथा अन्य किन्हीं दूसरे जीवों, जिसे परपोषी कहते हैं, से जुड़ कर वद्धि करते हैं।

सूक्ष्मजीवों के विषय में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे बहुत कठोर होते हैं। उनमें से कुछ ताप तथा शुष्क की चरम सीमाओं तक भी जीवित रह सकते हैं। ऐसी परिस्थितियों का सामना करने के लिए वे अपने चारों ओर एक कठोर भित्ति बना लेते हैं जिसे पुटी कहते हैं। इस रक्षात्मक कवच में वे अनुकूल परिस्थिति मिलने तक निष्क्रिय रहते हैं। अनुकूल परिस्थिति मिलने पर वे कवच से बाहर आ जाते हैं, गुणन करते हैं और अपना जीवन–चक्र पूरा करते हैं। सूक्ष्मजीव एककोषकीय हो सकता है अथवा कोशिकाओं के एक समूह की तरह भी हो सकता है। हमारा आमना–सामना उनसे निरन्तर होता रहता है लेकिन हमें उनकी परिस्थिति का आभास उनके कार्यों द्वारा ही होता है। सूक्ष्मजीव हमारे लिए विभिन्न प्रकार से बहुत उपयोगी हैं लेकिन वे बीमारी भी फैला सकते हैं। जुकाम, मलेरिया, त्वचा रोग, इनफ्लुएंजा तथा अन्य रोग सूक्ष्मजीवों द्वारा ही होते हैं।

## 4.3 सूक्ष्म जीवों के प्रमुख वर्ग
## (Categories of Micro Organisms)

सूक्ष्मजीवों के पांच मुख्य वर्ग हैं। ये हैं–जीवाणु, कवक, प्रोटोजोआ, शैवाल तथा विषाणु। इन सब में विषाणु सबसे छोटा होता है। ये सजीव जगत तथा निर्जीव जगत की सीमा बनाते हैं। इनकी कोई कोशिकीय रचना नहीं होती और ये अन्य सजीव कोशिकाओं में ही वद्धि कर सकते हैं।

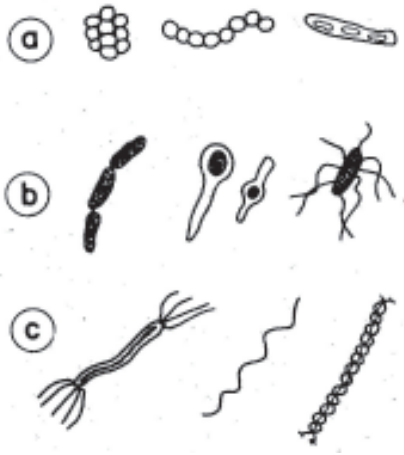


**चित्र 4.2: जीवाणु के विभिन्न प्रकार,**
**(a) गोल अथवा कॉक्स, (b) छडाकार अथवा बैसिलस, (c) कुंडलित अथवा स्पाइरीलुम।**

### 4.3.1 जीवाणु (Bacteria)

चित्र 4.2 में जीवाणु के विभिन्न रूपों को दिखाया गया है। ये अकेली कोशिका अथवा श्रंखला अथवा कोशिका समूह के रूप में भी हो सकते हैं। कोशिका के चारों ओर एक कठोर कोशिका भित्ति होती है। उनका माप 0.2 से 100 माइक्रॉन तक होता है। बहुतों में गति के लिए सिलिया तथा फ्लैजिला होते हैं। कुछ प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया भी करते हैं। जीवाणु सामान्यतः अनुकूल परिस्थितियों में द्विखंडन विधि द्वारा जनन करते हैं। इनमें लैंगिक जनन भी देखने को मिलता है। जिन जीवाणुओं को वद्धि के लिए आक्सीजन की आवश्यकता होती है उन्हें आक्सीकारी जीवाणु तथा जो आक्सीजन के बिना वद्धि करते हैं उन्हें अनाक्सीकारी जीवाणु कहते हैं। कुछ जीवाणु मनुष्यों में और कुछ पौधों तथा जन्तुओं में बीमारी फैलाते हैं। लेकिन कुछ जीवाणु हमारे लिए बहुत उपयोगी हैं जैसे कि लैक्टोबैसिलस दूध से दही बनाने में काम आता है अथवा कुछ जीवाणु गले–सड़े पत्तों तथा जानवरों को अपघटित कर देते हैं जिससे कि जैव प्रक्रिया के अगले चक्र को चलाने के लिए कार्बन, नाइट्रोजन तथा अन्य पोषक पदार्थ पर्यावरण में वापिस आ जाते हैं। ये मित्र जीवाणु न केवल अपमार्जक का काम करते हैं बल्कि ये मिट्टी, पानी तथा हवा के जीवनदायिनी गुणों का भी नवीकरण करते हैं। इन्हीं जीवाणुओं की क्रिया के कारण वक्षों से ढकी ऊपरी मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की एक काली सी परत होती है जिसे 'ह्यूमस' कहते हैं। इसमें पूर्ण अथवा आंशिक रूप से अपघटित पौधे तथा जन्तुओं के अपशिष्ट होते हैं। इस परत में न केवल पोषक पदार्थ होते हैं, बल्कि इसमें पानी को रोकने की क्षमता भी होती है। यह पानी पौधों की वद्धि के लिए आवश्यक होता है।

सभी सूक्ष्मजीवों में, जीवाणु सबसे अधिक संख्या में होते हैं। प्रायः ये बहुत तीव्र दर से प्रजनन करते हैं, जैसे सीडोमोनॉस प्रति 9.5 मिनट में जनन करता है। लेकिन कुछ जीवाणुओं में जनन की गति कम होती है, जैसे ऐसे जीवाणु जो तपेदिक (क्षय) तथा लैप्रोसी फैलाते हैं। इससे इन रोगों का आरम्भ में पता लगाना कठिन होता है। जीवाणु का संवर्धन प्रयोगशालाओं में भी कर सकते हैं। वैज्ञानिक अनुसंधानों में प्रायः उपयोग में आने वाला जीवाणु ई. कोलाई (एशकेरिशिया कोलाई) है। यह प्रायः मनुष्य की बड़ी आंत (कोलॉन) में पाया जाता है। ई. कोलाई ऑक्सीकारक जीवाणु है और दोगुना होने में 20 मिनट लेता है। एक नम तथा गरम पर्यावरण जीवाणु वद्धि के लिए उपयुक्त होता है। इसके विपरीत, शुष्क अथवा उच्च तापमान या निम्न तापमान पर वद्धि की दर कम होती है।

तालिका 4.1 में जीवाणु के कार्य दिए गए हैं। आप देखेंगे कि इस तालिका में उपयोगी तथा हानिकारक दोनों ही प्रकार के कार्यों को दिखाया गया है। विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीवों के स्वभाव के अध्ययन द्वारा मनुष्य कुछ जीवाणुओं का उपयोग अपने हित के लिए कर रहा है।

**तालिका–4.1**

**जीवाणु के कुछ जाने पहचाने कार्य**

1. दूध के उत्पाद जैसे दही तथा पनीर बनाना।
2. जीवाणु मांस के सख्त पेशी तन्तुओं को तोड़कर इसे कोमल बना देते हैं।
3. जीवाणु फलों के रस पर क्रिया करके सिरका तथा शराब बनाते हैं। गन्ने तथा खजूर के रस को यदि लम्बे समय तक रखें तो इसमें जीवाणु की क्रिया के कारण झाग पैदा हो जाते हैं।
4. गाय तथा अन्य पशुओं की आंत में रहने वाले जीवाणु घास तथा पौधों को पचाने में सहायता करते हैं। इस प्रक्रिया में जीवाणु सैल्यूलोज को तोड़ देते हैं जो कि जन्तु स्वयम् इसे नहीं तोड़ सकते। अतः इन जीवाणुओं के बिना गाय अपने मुख्य भोजन घास को नहीं खा सकेगी।
5. कुछ जीवाणु पोषक पदार्थ उत्पन्न करने के लिए कार्बनिक पदार्थों को अपघटित कर देते हैं।
6. कुछ जीवाणु चमड़ा कमाने में सहायता करते हैं।
7. कुछ जीवाणु हवा से मुक्त नाइट्रोजन लेते हैं और उसे नाइट्रोजनी यौगिकों में बदल देते हैं, इस प्रकार वे प्राकृतिक रूप से मिट्टी को उपजाऊ बनाते हैं। कुछ गले–सड़े पौधों तथा जन्तुओं से नाइट्रोजन निकालते हैं। जीवाणु नाइट्रोजन चक्र को चलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
8. कुछ जीवाणु मनुष्यों, पौधों तथा जन्तुओं में रोग फैलाते हैं।

### क्या आप जानते हैं कि दही कैसे बनती है?

ताजा दही बनाने के लिए आपको दही की कुछ मात्रा चाहिए। दही में प्रायः एक से अधिक सूक्ष्मजीव होते हैं। इनमें मुख्य रूप से लैक्टोबैसिलस तथा स्टैफाइलोकोकस, तथा अन्य सूक्ष्मजीव 'यीस्ट' होते हैं। इनमें से लैक्टोबैसिलस ऐसा जीवाणु है जो दही बनाने का कार्य करता है। जब इन सूक्ष्मजीवों को अच्छी प्रकार गरम ($37^0$ C) दूध में मिलाया जाता है तो ये वद्धि आरम्भ कर देते हैं। लैक्टोबैसिलस एक अनाक्सी जीवाणु है और दूध में वद्धि करता है जिसमें आक्सीजन की मात्रा बहुत कम होती है। यह दूध के अवसीय पदार्थों का उपयोग करके वद्धि करता है। इन प्रतिक्रियाओं का उत्पाद अम्लीय होता है जो दही को जमाना और दूध को गाढ़ा करना प्रारम्भ करता है। ऐसा जीवाणुओं की और वद्धि को कम करने के लिए किया जाता है। आपने अवश्य देखा होगा कि एक बार दही जमने के बाद उसे ठंडे स्थान पर रख देते हैं। यदि ऐसा न किया जाए तो जीवाणुओं की अधिक वद्धि होने के कारण अधिक अम्ल बन जाएगा और दही खट्टी हो जाएगी। यदि दूध अधिक गरम होगा तो सूक्ष्मजीव मर जाएंगे और दही को ठीक रूप से जमाने के लिए कोई प्रतिक्रिया नहीं होगी।

### 4.3.3 कवक (Fungi)

क्या आपने कभी सड़े हुए संतरे की सतह पर नीले हरे धब्बे, अथवा बासी रोटी, पुराने अचार अथवा जैम पर सफेद से स्लेटी रंग के उद्धर्व देखे हैं? यहाँ तक कि सीले कपड़े, पुराने जूते तथा नम वक्षों के तनों पर बरसात के दिनों में हरे धब्बे बन जाते हैं। ये सभी धब्बे विभिन्न प्रकार के कवक से बनते हैं। इनके बहुत से प्रकार होते हैं (चित्र 4.3)।

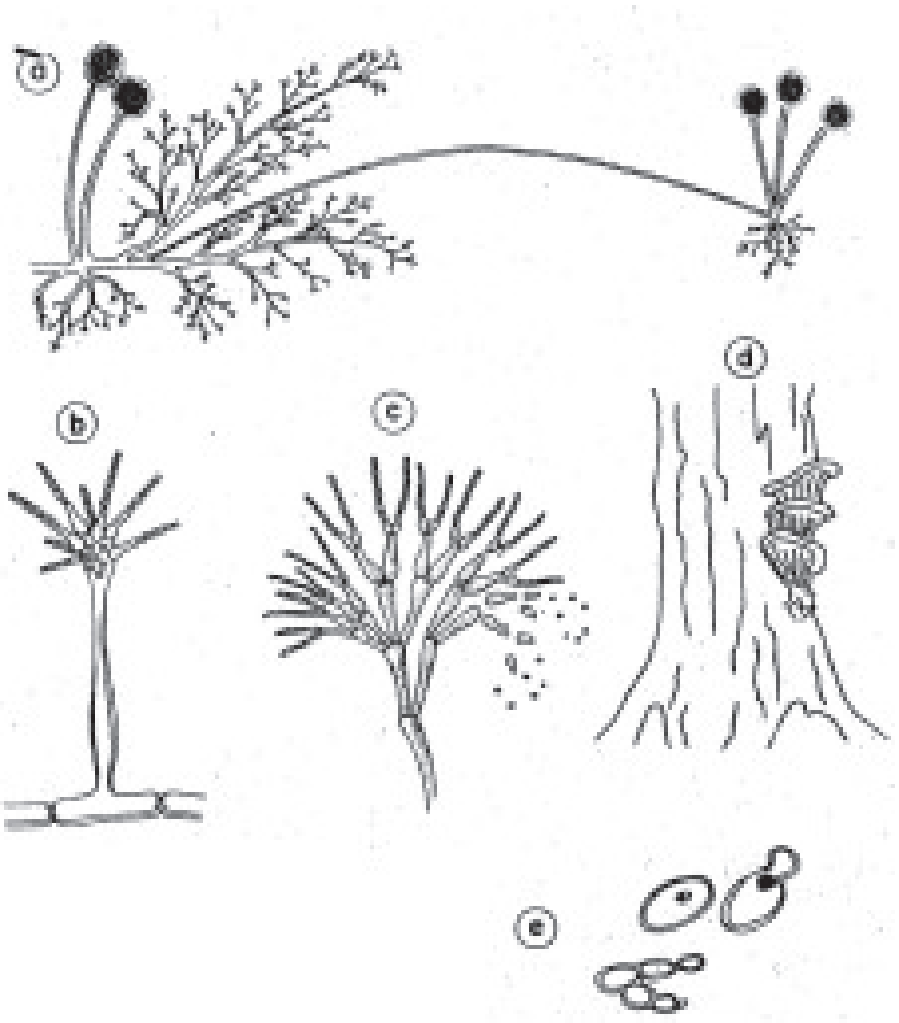


**चित्र 4.3: कवक के विभिन्न प्रकार,**
**(a) सामान्य ब्रेड मोल्ड, (b) एस्पर जिलस, (c) पैनिसीलियम, (d) कवच अथवा ब्रेक्ट कवक, (e) यीस्ट,**

कवक एक कोशिकीय तथा बहुकोशिकीय होते हैं। वे बीजाणु बनाते हैं और उनमें प्रायः अलैंगिक तथा लैंगिक दोनों प्रकार का जनन होता है। इनमें अलैंगिक जनन द्विखंडन, मुकुलन तथा किसी टुकड़े के पुनर्जनन द्वारा होता है। यीस्ट तथा मोल्ड (फफूंदी) कवक के दो मुख्य वर्ग हैं। यीस्ट प्रायः एककोशिकीय होती है जबकि मोल्ड बहुकोशिकीय, और उनका आकार तन्तुमयी होता है। यदि आप ब्रेड मोल्ड का अध्ययन आवर्धक लेन्स की सहायता से करो तो आपको बीजाणु धारण करने वाली संरचनाएं तथा सड़ी हुई रोटी पर फैले हुए तन्तु दिखाई देंगे। फील्ड मशरूम एक प्रकार का मोल्ड है। यीस्ट का माप 5 से 10 माइक्रॉन तथा मोल्ड का 2 से 10 माइक्रॉन तक भी होता है। कुछ मोल्ड, जैसे मशरूम, का माप कुछ सेंटीमीटर तक भी होता है। पादप कोशिकाओं की तरह कवक में भी एक कोशिका भित्ति होती है लेकिन उनमें प्रकाश संश्लेषण की क्रिया नहीं होती। मोल्ड हमारी तरह वायुजीवी होते हैं, लेकिन कुछ यीस्ट वायुजीवी तथा अवायुजीवी परिस्थितियों में भी जीवित रह सकते हैं। तालिका 4.2 में कवक की क्रिया से बनने वाले उत्पादों की एक सूची दी गई हैं।

**तालिका—4.2**

**उत्पाद जिसमें कवक की क्रिया की आवश्यकता होती है**

1. **बेकरी उत्पादः** गेहूँ के आटे से डबल रोटी (ब्रेड) तथा केक बनाना।
2. **खाद्य उत्पादः** जौ अथवा फलों के रस से बीयर, शराब बनाना। चावल तथा दाल के चूरे के मिश्रण से इडली, डोसा बनाना।
3. पनीर बनाना।
4. कुछ कवक, जैसे मशरूम सीधे ही खाए जाते हैं।
5. कुछ कवक से बहुत महत्त्वपूर्ण दवाई बनाई जाती है जैसे पैनिसिलीन।
6. मोल्ड भोजन को सड़ा देते हैं, आलू तथा फसल वाले पौधों (मक्का तथा गेहूँ) को हानि पहुँचाते हैं। वे कपड़ों, जूतों तथा लकड़ी के सामान को गला देते हैं।
7. कुछ कवक एथलीट फुट तथा दाद जैसे रोग फैलाते हैं।

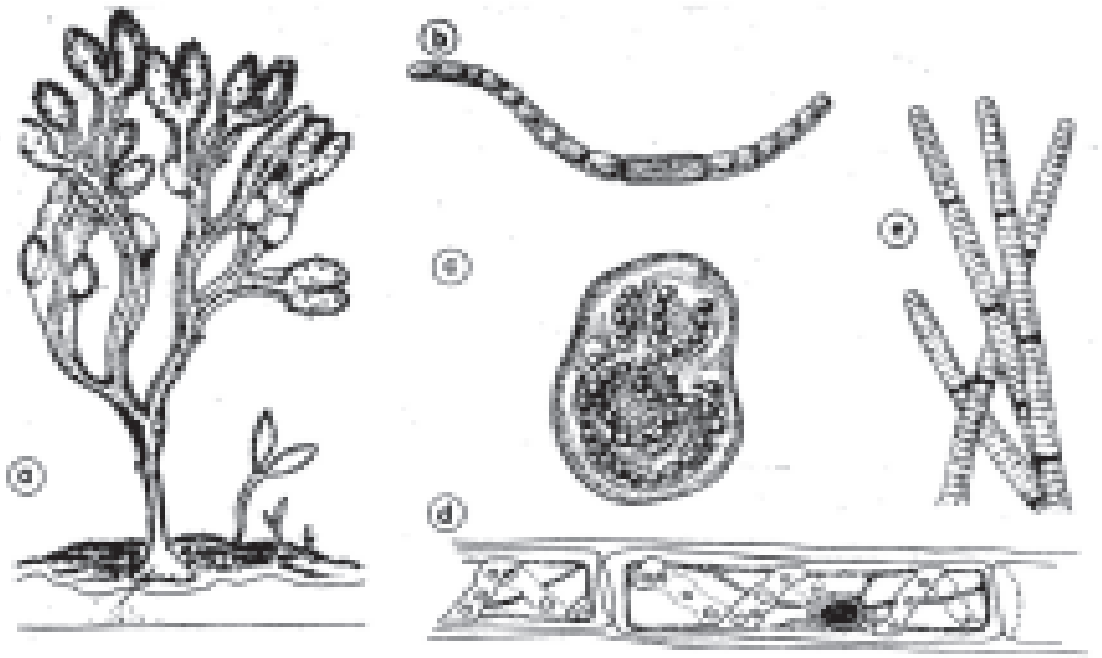


**चित्र 4.4: शैवाल के कुछ प्रकारः**
**(a) फ्युक्स-एक भूरा शैवाल, (b) एनाबीना, (c) नोस्टॉक, (d) स्पाइरोगायरा (सामान्य तालाब शैवाल), (e) आसिलेटोरिया**

आपने ब्रेड मोल्ड नामक कवक के विषय में सुना होगा। लेकिन क्या आप जानते हो कि यह यीस्ट की क्रिया के कारण होता है जो ब्रेड को नर्म तथा फूला हुआ बना देती है। जब यीस्ट को गरम पानी तथा चीनी के साथ आटे में मिलाते हैं तो आटा फूलना आरम्भ कर देता है। चीनी तथा गरमाई की उपस्थिति में यीस्ट की कोशिकाओं में तेजी से वद्धि होती है। उनके जनन के समय यीस्ट कोशिकाएं कार्बन डाई आक्साइड बनाती है। $CO_2$ के बुलबुले गुंधे हुए आटे में भर जाते हैं जिससे आटा ऊपर उठ जाता है। जब इसे पकाकर रोटी बनाई जाती है तब यह हल्की तथा स्पंजी हो जाती है।

आपने अवश्य देखा होगा कि इडली अथवा डोसा बनाने से पहले पिसे हुए चावल तथा दाल के मिश्रण को कुछ घन्टों के लिए छोड़ देते हैं। यह मिश्रण भी फूलना शुरू कर देता है और कुछ समय बाद खट्टा होना आरम्भ कर देता है। इस उदाहरण में भी यीस्ट कोशिकाओं की वद्धि होती है जो मिश्रण को फुलाती है और खट्टा करती है। क्या आपको पता है यीस्ट कहाँ से आती है? यह आपके हाथों अथवा हवा से आती है।

### 4.3.4 शैवाल (Algae)

आपने तालाबों अथवा झीलों अथवा नदी के ठहरे पानी में हरी तैरती हुई परत को देखा होगा। यह तालाबों तथा तरण तालों जिनकी सफाई बहुत समय से नहीं हुई हो, के किनारों पर भी हो सकते हैं। इन्हें शैवाल कहते हैं। वे पौधों की तरह जीव होते हैं और उनमें क्लोरोफिल होता है। वे प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया द्वारा अपना भोजन स्वयं बनाते हैं और नमी वाले स्थानों पर वद्धि करते हैं। इसी कारण इन्हें कभी–कभी 'पानी की घास' भी कहते हैं। शैवाल में विभिन्न प्रकार की संरचनाएं पाई जाती हैं। इनमें से कुछ को चित्र 4.4 में दिखाया गया है।

शैवाल एक कोशिकीय अथवा बहुकोशिकीय हो सकते हैं। उनका माप सूक्ष्मदर्शीय एक कोशिकीय (1.0 माइक्रॉन) से लेकर बड़ी–बड़ी समुद्रीय घास (जो कई मीटर लम्बी होती है), तक होती है। उनके आकार, वास स्थान तथा जनन प्रक्रिया में भी बहुत विभिन्नता होती है।

जीवाणु की तरह, शैवाल बर्फ, लवणीय जल, गरम झरनों, नम मिट्टी, वक्ष की छाल तथा चट्टानों की सतहों पर पाए जाते हैं। ये अन्य जलीय जीवों के शरीर के अन्दर सहजीवी रूप में भी वद्धि करते हैं। अकेली कोशिका वाले शैवाल गोल, छड़ाकार, गदाकार, अथवा तर्कु आकार के हो सकते हैं। बहुकोशिकीय शैवालों में जटिल संरचनाएं होती हैं। कुछ शैवाल कालोनी बनाते हैं। कालोनी में एक जैसी कोशिकाएं होती हैं जो विभाजन के बाद आपस में जुड़ी रहती हैं। अन्य कालोनियों में विभिन्न प्रकार की कोशिकाएं हो सकती हैं जो विशिष्ट कार्य करने के लिए विशिष्ट होती हैं। बहुत से शैवालों में वर्णक होते हैं जो उन्हें विभिन्न रंग लाल, भूरा अथवा हरा रंग देते हैं। क्या आप जानते हो कि लाल सागर का नाम ऐसा क्यों पड़ा? इस सागर में लाल शैवाल बहुत ही अधिक मात्रा में सतह पर तैरते रहते हैं जिसके कारण यह लाल रंग का दिखाई पड़ता है। कुछ शैवाल कशाभिका की सहायता से पानी में भी चल सकते हैं।

आप एगार से परिचित हैं। एगार का उपयोग प्रयोगशालाओं में सूक्ष्मजीवों के संवर्धन के लिए किया जाता है। यह जिलेटिन की तरह का पदार्थ है। इसका उपयोग दवाइयाँ बनाने तथा भोज्य उत्पादों जैसे खीरे तथा जैली बनाने में जमाव कारक के रूप में किया जाता है। यह लाल शैवाल से बनाया जाता है। इसी प्रकार का अन्य पदार्थ है चाइनाग्रास। इसे विभिन्न प्रकार के शैवाल से प्राप्त करते हैं। तालिका 4.3 में हमारे जीवन में शैवाल के विभिन्न उपयोगों को दिखाया गया है।

**तालिका– 4.3**

**शैवाल के उपयोग**

| | |
|---|---|
| 1. | शैवाल प्रकाश संश्लेषण द्वारा कार्बनिक पदार्थ बनाते हैं और अन्ततः जलीय जन्तुओं को भोजन प्रदान करते हैं। |
| 2. | शैवाल की कोशिकाओं के रस का उपयोग बहुत से कमर्शियल उत्पादों में किया जाता है। एगार तथा एलजिनिक एसिड का उपयोग दवाइयों, भोजन, सौन्दर्य प्रसाधनों, कागज बनाने, कपड़े की छपाई तथा रंग को गाढ़ा करने में किया जाता है। कैल्प, जो भूरे रंग का शैवाल है, आयोडीन तथा पोटेशियम का प्रमुख स्रोत है। |
| 3. | डायटम (एक शैवाल) की कोशिका भित्ति महीन सिलिका की प्राकृतिक स्रोत है। अतः डायटम कवचों के बड़े संग्रह का उपयोग फिल्टर, विशेष प्रकार के ग्लास तथा पोरसिलिन बनाने में किया जाता है। |
| 4. | चीन तथा जापान में बहुत सी समुद्री घासों का उपयोग भोजन के रूप में किया जाता है। |
| 5. | कुछ शैवालों का उपयोग मनुष्य के खाद्य पदार्थों में भी बढ़ रहा है। |

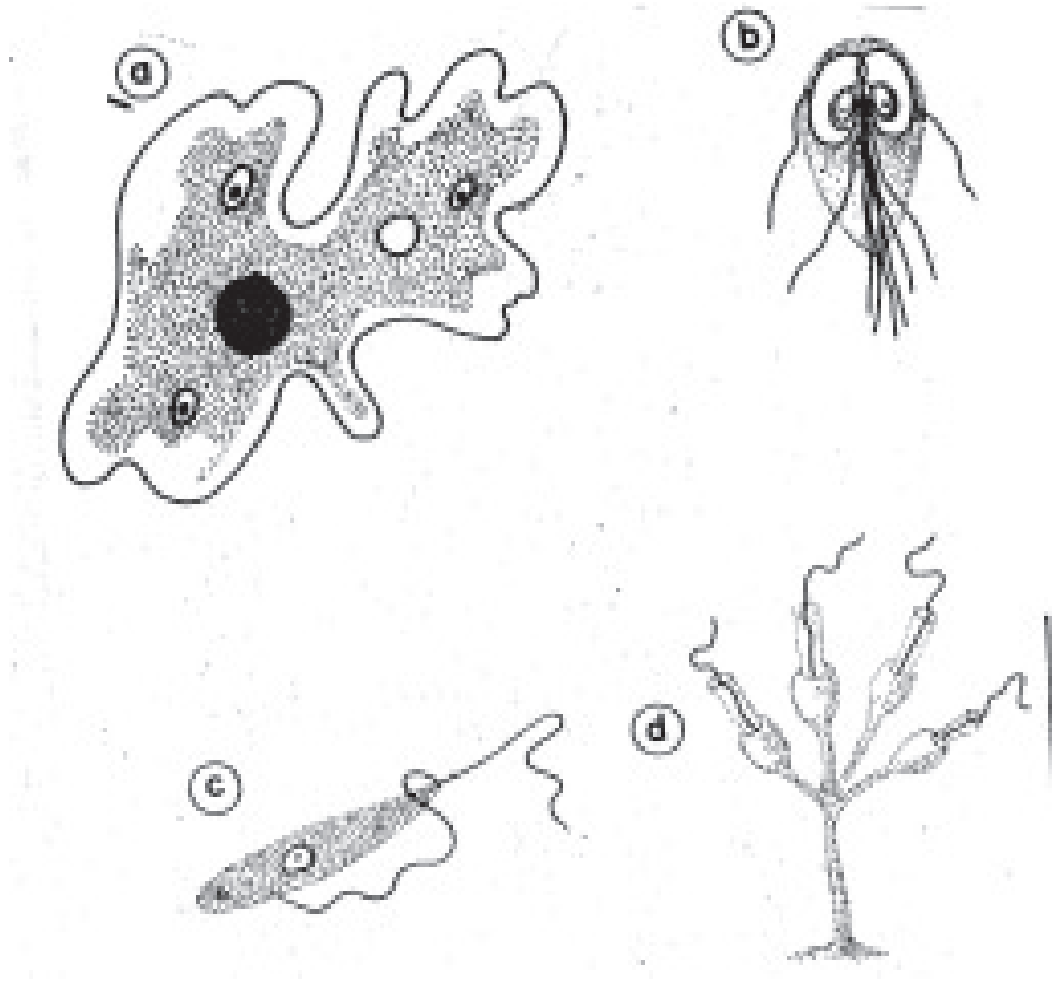


**चित्र 4.5: प्रोटोजोआ के कुछ प्रकार**
**(a) अमीबा, (b) जिआरडिआ, (c) ट्रिप्नोसोमा, (d) कोडोसिगा**

## तालिका–4.4
## हमारे चारों ओर उपस्थित प्रोटोजोआ की भूमिका

1. **खाद्य श्रंखला में एक कडी:** कुछ मुक्त जीवी प्रोटोजोआ (प्राणिप्लवक) जलीय खाद्य श्रंखला में प्राथमिक उपभोक्ता हैं। ये शैवाल को खाते हैं और इन्हें अन्य बड़े जन्तु खा जाते हैं।
2. **अपशिष्ट पदार्थों तथा वाहितमल का विवेचन:** प्रोटोजोआ, जो कार्बनिक पदार्थों को अपघटित करने वाले कवकों तथा जीवाणुओं को खाते हैं। इस प्रकार वे अपशिष्टों के अन्तिम निम्नीकरण में महत्त्वपूर्ण सोपान हैं।
3. **सजीवों का सैम्पल:** प्रोटोजोआ एक अनुसंधान सामग्री है। इससे बहुत से जैव क्रियाकलापों, जैसे कोशिका विभाजन तथा जनन का अध्ययन करते हैं।
4. **सहजीवी अस्तित्व:** कुछ प्रोटोजोआ अन्य सजीवों के साथ सहजीवी जीवन यापन करते हैं और उन्हें ऐसे वास स्थानों में रहने में सहायता देते हैं जहाँ वे सामान्यतः स्वयं न रह सकें। उदाहरणतया, दीमक के शरीर में प्रोटोजोआ का रहना जो लकड़ी में स्थित सेल्युलोज की घुलनशील कार्बोहाइड्रेट में बदलकर पचाती है। दीमक तब इस कार्बोहाइड्रेट का उपयोग करके वद्धि करती है।
5. **रोगों के कारण:** बहुत से प्रोटोजोआ मनुष्यों तथा अन्य जन्तुओं में रोग फैलाते हैं। कुछ प्रोटोजोआ हमारी आंतों के अन्दर रहते हैं और वे हमें कोई हानि नहीं पहुंचाते लेकिन अन्य पेचिश कर देते हैं।

### 4.3.5 प्रोटोजोआ (Protozoa)

आप पहले से ही जानते हो कि अमीबा क्या है और वह कैसे भोजन करता है, चलता है तथा विभक्त होता है। प्रोटोजोआ में अमीबा सबसे सरल तथा सामान्य है। 'प्रोटोजन' शब्द का अर्थ है सर्वप्रथम जन्तु। प्रोटोजोआ जन्तु की तरह होता है, जैसे कि शैवाल पौधों की तरह। उनका माप 2 से 200 माइक्रॉन तक होता है। चित्र 4.5 में कुछ प्रोटोजोआ दिखाए गए हैं।

प्रोटोजोआ में कोशिका भित्ति नहीं होती। वे नम वास स्थानों—समुद्र, मिट्टी, ताजे जल में पाये जाते हैं। मुक्तजीवी प्रोटोजोआ ध्रुवीय क्षेत्रों तथा बहुत ऊँचे–ऊँचे पर्वतों पर पाये जाते हैं। वे बहुत ही सरल तथा बहुत ही जटिल प्रकार के हो सकते हैं। उदाहरणतया एक अमीबा का कोई निश्चित आकार नहीं होता और अपने आकार को बदल सकता है। दूसरी ओर, पैरामीश्यिम चप्पल की तरह होता है और इसका एक मुंह, पक्ष्माभ तथा अन्य संरचनाएं होती हैं।

अन्य सूक्ष्म जीवों की तरह, प्रोटोजोआ भी हमारे जीवन को कई प्रकार से प्रभावित करता है। ये हमारे लिए तथा अन्य जन्तुओं के लिए लाभदायक अथवा हानिकारक हो सकते हैं। तालिका 4.4 में प्रोटोजोआ के कार्यों की एक सूची दी गई है।

### 4.3.6 विषाणु (Virus)

आपमें से बहुत से प्रायः जुकाम और बुखार से पीड़ित हुए होंगे जिसे डाक्टर फ्लू (इनफ्लूएंजा) अथवा वायरल फीवर कहते हैं। मनुष्य जानवरों तथा पौधों में ये तथा अन्य रोग उप सूक्ष्मदर्शीय संक्रामक कारक वाले वर्ग विषाणु से होते हैं। विषाणु को हम साधारण सूक्ष्मदर्शी से नहीं देख सकते क्योंकि इसका माप 0.015 से लेकर 0.2 माइक्रोन तक होता है। अभी तक यह स्पष्ट नहीं हो पाया है कि हम इसे सजीव कहें अथवा निर्जीव क्योंकि ये स्वयं वद्धि नहीं करते। ये केवल अन्य परपोषी सजीवों जैसे जीवाणु, पौधे अथवा जन्तु की कोशिकाओं के अन्दर गुणन कर सकते हैं। विषाणु की आकृति विभिन्न प्रकार की होती है (चित्र 4.6)।

विषाणु उन अन्य सूक्ष्मजीवों की तरह नहीं होते जिनमें कोशिकाकाय तथा अन्य रचनाएं होती हैं। वास्तव में इनका नामकरण उसके परपोषी अथवा बीमारी के आधार पर किया जाता है। उदाहरण के लिए, तम्बाकू मोजेक वाइरस (TMV) तम्बाकू के पौधे की कोशिकाओं के अन्दर वद्धि करता है और पांव तथा मुंह रोग वाइरस (FMDV) पशुओं में पांव तथा मुंह की बीमारी करते हैं। खसरा वाइरस मनुष्य में खसरे का कारण है। एक विषाणु जो जीवाणु को परपोषी के रूप में उपयोग करता है उसे जीवाणुभोजी कहते हैं। विषाणु जनन के लिए परपोषी की कोशिका की ऊर्जा का उपभोग करता है। जैसे ही गुणन करके इनकी संख्या बढ़ती है परपोषी की कोशिका फट जाती है। बच्चों में अंगों का मुड़ना जिसे पोलियोमाइलाइटिस कहते हैं तथा वाइरल पेचिश नामक रोग भी विषाणु के कारण होते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि कुछ केन्सर भी विषाणु जनित हैं।

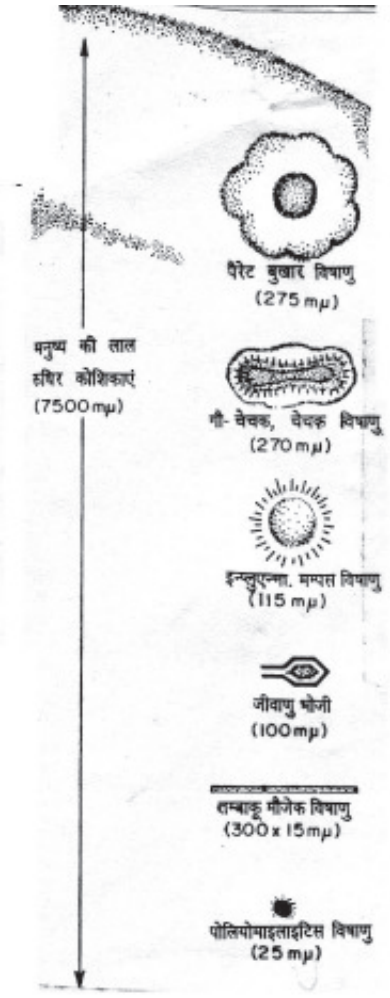


**चित्र 4.6: विषाणु की रचना**

## 4.4 सूक्ष्मजीव तथा रोग
## (Micro-Organisms and Diseases)

आप देख चुके हैं कि हमारे चारों ओर कितने विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीव हैं। इनमें से कुछ हमारे दैनिक जीवन में बहुत उपयोगी हैं, और वक्ष, हवा, तथा पानी की तरह ये भी हमारे पर्यावरण के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें से कुछ मनुष्य, पौधे तथा जन्तुओं में रोग उत्पन्न करते हैं। इन सूक्ष्मजीवों को रोग उत्पन्न करने वाले अथवा रोग जनक सूक्ष्मजीव कहते हैं। कुछ हमारी पाचन प्रक्रिया को खराब कर देते हैं जिससे पेचिश हो जाती है। कुछ विष (टॉक्सिन) उत्पन्न करते हैं जिससे शरीर के सामान्य कार्यों में बाधा आती है। अन्य कुछ जैसे क्षय जीवाणु शरीर के ऊतकों को नष्ट कर देते हैं।

सूक्ष्मजीव हमारे शरीर में विभिन्न विधियों द्वारा प्रवेश कर सकते हैं ये हैं हवा जिसको हम सांस द्वारा लेते हैं, पानी जो हम पीते हैं अथवा पहले से पीड़ित रोगी के सम्पर्क में आने से। लेकिन ये हमेशा ही हमें बीमार नहीं करते हैं। तथापि यदि आप प्रदूषित पानी पियें अथवा खांसी तथा जुकाम से पीड़ित मनुष्य के पास बैठें अथवा संदूषित भोजन करें तो हो सकता है कि आप बीमार हो जाएं। सूक्ष्मजीवी रोग जो संक्रमिक मनुष्य से स्वस्थ मनुष्य में हवा, पानी, भोजन, अथवा स्पर्श के कारण फैलता है उसे संचरणीय रोग कहते हैं। हैजा, जुकाम तथा चेचक संचरणीय रोगों के उदाहरण हैं। कुष्ठ रोग जिसे सामान्यतः संचरणीय रोग समझा जाता है सामान्यतः संक्रमण नहीं करता लेकिन यदि रोगी के सम्पर्क में ज्यादा समय तक रहे तो संक्रमण हो सकता है।

कुछ कीट तथा अन्य जन्तु रोग जनित सूक्ष्मजीवों के वाहक हैं। घरेलू मक्खी जो कूड़े कचरे तथा जन्तुओं की विष्ठा पर बैठती हैं एक सामान्य वाहक है। सूक्ष्मजीव आसानी से इसके शरीर पर स्थित पतले–पतले बालों से आसानी से चिपक जाते हैं और इस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित हो जाते हैं। वाहक का दूसरा उदाहरण है ऐनोफेलीज मच्छर जो एक विशेष प्रोटोजोआन का परपोषी है। यह प्रोटोजोआन मच्छर के काटने से हमारे रुधिर में चला जाता है जिससे मलेरिया बुखार हो जाता है। विशेष सूक्ष्मजीवों के वाहकों को रोग वाहक या वेक्टर कहते हैं। ऐनोफेलीज तथा ऐडीस दो प्रकार के मच्छर वेक्टर हैं जो मलेरिया तथा पीला ज्वर कर देते हैं।

मनुष्य जो जुकाम से पीड़ित है वह हर समय छींकता रहता है जिससे वह हवा में नमी की कुछ बूँदें भी छोड़ता है जिसमें जुकाम उत्पन्न करने वाले हजारों विषाणु होते हैं। जब नमी वाष्पित हो जाती है तो सूक्ष्मजीव हवा में स्थित धूल कणों से चिपक जाते हैं और बिखर जाते हैं। ये अन्य मनुष्यों में श्वसन द्वारा उनके शरीर में चले जाते हैं। क्या आप इस प्रकार से फैलने वाले रोगों से बचने की कोई विधि बता सकते हो?

यदि आप रोगों के फैलने की विधि समझ गये हो तो आप उनके बचाव तथा उस पर नियन्त्रण पाने की कारगर विधि भी सोच सकते हैं। बहुत से रोगों से बचने के लिए साफ–सुथरा वातावरण एक उत्तम विधि है। तालिका 4.5 में कुछ रोग जो मनुष्यों, पौधों तथा जन्तुओं में होते हैं, उनके फैलने की विधि तथा उनसे बचने की कुछ विधियों की सूची दी गई है।

**तालिका 4.5**

**सूक्ष्मजीवों से होने वाले कुछ सामान्य रोग**

| रोग | सूक्ष्मजीव | संचरण | बचाव के उपाय (सामान्य) |
|---|---|---|---|
| **मानव में** | | | |
| हैजा | जीवाणु | पानी/भोजन | अपने चारों ओर धूल, पानी को एकत्र मत होने दो। |
| टायफायड | जीवाणु | पानी | मनुष्य की विष्ठा तथा अन्य उत्सर्जित पदार्थों को ढ़क |
| क्षय (तपेदिक) | जीवाणु | हवा | कर रखें, उसे पानी के स्रोतों से दूर रखें। |
| **जुकाम** | **विषाणु** | **हवा** | |
| चेचक (चिकन तथा स्मालपॉक्स) | विषाणु | हवा/सम्पर्क | नियमित रूप से कपड़े धोएं और स्वयं को साफ रखें। यदि आप बीमार हो तो भोजन को न छुएं। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| खसरा | विषाणु | हवा | दूसरे मनुष्य के कपड़े न पहनें विशेषतः जब वह बीमार हो। रोगी के कपड़ों को अलग से धोएं। |
| पोलियो | विषाणु | हवा/पानी | |
| कवक | दाद | सम्पर्क | मक्खी तथा मच्छर की वद्धि को रोकें। ये बहुत से रोगों के वाहक होते हैं। |
| मलेरिया | प्रोटोजोआ | मच्छर | |
| **मवेशियों में** | | | |
| एन्थ्रेक्स | प्राटोजोआ | त्वचा सम्पर्क | यदि कहीं से त्वचा कट गई हो तो इनजेक्शन लगवाने से पहले त्वचा को एल्कोहल अथवा कोई अन्य जीवाणु विरोधी कारक लगाकर सदा साफ करना चाहिए। |
| पांव तथा मुंह का रोग | विषाणु | हवा/त्वचा का फटना | |
| **पौधे** | | | |
| गेहूँ का किट्ट रोग | कवक | मच्छर तथा बीज | पौधों पर कीटनाशी, कवकनाशी आदि का छिड़काव करना। यह ध्यान रखें कि यह हमारे लिए विषैला पदार्थ है। |
| **जीवाणु जनित** | | | |
| मोजेक रोग | जीवाणु | हवा | रोगयुक्त पशुओं को अलग रखें। रोगयुक्त पौधों तथा मरे हुए पशुओं को जलाना अच्छा है जिससे कि संक्रमण न फैल सके। |

## 4.5 सूक्ष्मजीवों के उपयोग (Use of Micro-Organisms)

प्रकृति में विकसित प्रत्येक सूक्ष्मजीव जैव प्रक्रिया का अद्‌भुत उदाहरण है। इनके गुणों का गहन अध्ययन करके मनुष्य इनका बहुत अच्छी प्रकार उपयोग कर सकता है। बेबीलोन तथा सुमारिया के लोगों ने ईसा से 6000 वर्ष पूर्व यीस्ट का उपयोग करके एल्कोहल बनाया था। आजकल उनका उपयोग भोजन उपचार, एल्कोहलीय पेय पदार्थ तथा फलों के रस के संसाधन में किया जा रहा है। अभी हाल ही के वर्षों में वैज्ञानिकों ने कुछ सूक्ष्मजीवों के विशेष गुणों का पता लगाया है जिनका उपयोग नई–नई दवाइयाँ बनाने तथा औद्योगिक उत्पादन को सुदढ़ करने में किया जा रहा है।

### 4.5.1 सूक्ष्मजीवों की औषधीय उपयोगिता

चीन के लोग मोल्ड युक्त सोयबीन की दही से फफोलों का उपचार और भोजन संक्रमण पर नियंत्रण करते थे। इससे यह पता लगता है कि मनुष्य को उस समय भी ज्ञात था कि एक सूक्ष्मजीव का घातक प्रभाव दूसरे सूक्ष्मजीव पर पड़ता है। लेकिन वैज्ञानिकों को अब इस बात का पता लगा है कि कुछ सूक्ष्मजीव कोई विशेष पदार्थ छोड़ते हैं जो अन्य सूक्ष्मजीवों की वद्धि कम कर देते हैं अथवा उन्हें मार देते हैं। इन पदार्थों को प्रतिजैविक कहते हैं।

सन् 1929 में, एलेक्जेंडर फ्लेमिंग जब अपनी प्रयोगशाला में रोग जनक जीवाणु संवर्धन पर अनुसंधान कर रहे थे, तब उन्होंने एक बड़ा रोचक दश्य देखा। उन्होंने देखा कि नीले–हरे मोल्ड के बीजाणु जो एक संवर्धन प्लेट में वद्धि कर रहे थे, वे संवर्धन में अन्य जीवाणुओं को वद्धि करने से रोक रहे थे। उन्होंने पता लगाया कि टॉक्सिन विषैले पदार्थ उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं को भी मार रहे थे। बाद में इसी मोल्ड से पेनिसिलीन नामक औषधि बनाई गई जिसका उपयोग बहुत से सूक्ष्मजीवी रोगों के उपचार में किया जाता है।

अन्य प्रचलित एंटिबायोटिक है स्ट्रेप्टोमाइसिन, टैटरासाइक्लिन तथा ग्रामिसिडिन। इनमें से कुछ कवक तथा कुछ अन्य जीवाणुओं से प्राप्त किए जाते हैं। विशिष्ट सूक्ष्मजीवों को औद्योगिक पैमाने पर फैक्टरी में उगाया जाता है और उनसे उपयोगी रसायन

निकाला जाता है। इनमें कुछ अणु जिनकी रचना का पता लगा लिया गया है, उन्हें प्रयोगशाला में रसायनों से बनाया जाता है।

जन्तुओं में सूक्ष्मजीवी रोगों को रोकने के लिए उनके आहार में प्रतिजैविक मिलाया जाता है। इनका उपयोग पादप रोगाणुओं की वद्धि रोकने के लिए भी किया जाता है।

### 4.5.2 टीका

अन्य सूक्ष्मजीवों के संक्रमण के उपचार के लिए सूक्ष्मजीवों से निकाले गए रासायनिक (एंटिबायोटिक) की पहचान करना एक महत्त्वपूर्ण खोज थी। इससे मनुष्य की मत्यु दर में बहुत कमी आई। लेकिन विज्ञान के क्षेत्र में उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण खोज यह थी कि जब किसी सूक्ष्मजीव की थोड़ी सी मात्रा अथवा उनके सजीव अथवा मत अंग को इन्जेक्शन द्वारा शरीर में डाला गया, तो रोगकारकों द्वारा उत्पन्न रोगों के प्रकोप में कमी आई। इसकी खोज ब्रिटेन के भौतिक विज्ञानी एडवर्ड जेनर ने की थी। उन्होंने देखा था कि ग्वालों तथा दूध दूहने वाली महिलाओं को कभी चेचक नहीं होती थी। इसका वर्णन करने के लिए उसने अनुमान लगाया कि उनके शरीर में चेचक के प्रति प्रतिरोधिता शायद इसलिए है कि वे लगातार गायों, जो प्रायः गो चेचक से पीड़ित रहती हैं, के सम्पर्क में रहते हैं। इसी अनुमान को ध्यान में रखकर उन्होंने (1798) काऊ पॉक्स से पीड़ित गाय के घाव के रस के इंजेक्शन को, चेचक पर इसका प्रभाव देखने के लिए, अपने पुत्र की बांह में लगा दिया। वे उस समय उसके प्रभाव की प्रक्रिया नहीं समझते थे। लगभग 50 वर्षों के बाद, पास्चर ने बताया कि चेचक सहित बहुत से रोग विषाणु द्वारा होते हैं। समयानुसार रोग जनकों की थोड़ी सी मात्रा को शरीर में प्रविष्ट करा कर विशिष्ट रोगों के प्रति प्रतिरोधिता विकसित करने की प्रणाली प्रचलित हो गई। ऐसे रोग हैं—रैबीज, हैजा तथा तपेदिक। पास्चर ने इस प्रणाली को 'टीका' (वैक्सिनेशन) का नाम दिया। यह शब्द लैटिन भाषा से लिया गया है। जिसमें 'बैका' का अर्थ है 'गाय'। वैक्सिन को बनाने के लिए विशिष्ट सूक्ष्मजीव को फैक्टरियों में संवर्धित किया जाता है, और आजकल सजीव अथवा अल्प सक्रिय सूक्ष्मजीवों के बनाने की बहुत सी प्रणालियाँ उपलब्ध हैं। आपको आश्चर्य होगा कि इन कोशिकाओं की थोड़ी सी मात्रा जब शरीर में प्रवेश करती है तो यह कैसे शरीर को भविष्य में होने वाले रोग के प्रति प्रतिरोधी बना देती है, जब कि इन रोगाणुओं को रोग उत्पन्न करना चाहिए। इसके विषय में आप बाद में पढ़ोगे कि जब टीका लगाया जाता है तो शरीर किस प्रकार भविष्य में रोग जनक के प्रवेश को पहचानना सीख जाता है और उससे अपनी रक्षा करता है। सरल शब्दों में, इसका वर्णन निम्नलिखित है।

जब हमारी रुधिर कोशिकाओं का विषाणु कोशिका से आमना–सामना होता है तो वे कुछ विशिष्ट रासायनिक अणु छोड़ती है जो बाहर से प्रविष्ट हुई कोशिकाओं को मार देती है। जब रक्षात्मक अणु एक बार बन जाते हैं तो शरीर में कुछ समय तक बने रहते हैं। इस अवधि में वे बड़ी सफलतापूर्वक विशिष्ट विषाणु के संक्रमण को समाप्त कर देते हैं। हमारे शरीर में उत्पन्न ऐसी प्रतिरोधिता जो संक्रमण से लड़ सके, को प्रतिरक्षा (रोग) कहते हैं और वैक्सिनेशन (टीका लगाना) की इस प्रक्रिया को प्रतिरक्षीकरण कहते हैं।

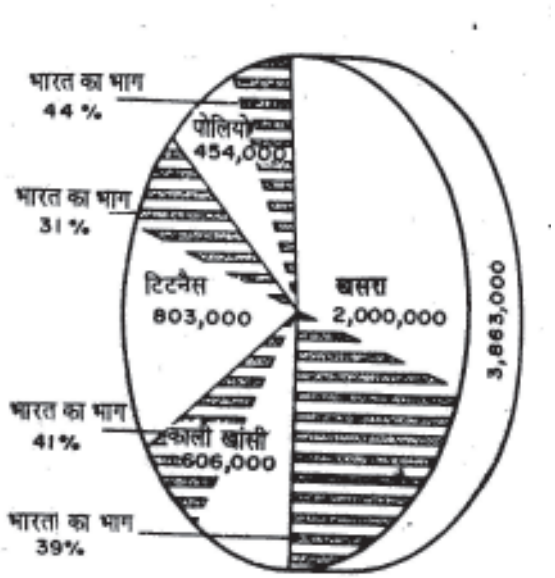


**चित्र 4.7:**
**विश्व में वैक्सिन से बचने वाली रोगों में भारत में होने वाली मत्यु तथा दोषों का प्रतिशत**

जब आप बहुत छोटे बच्चे थे तब आपने भी बहुत सी बीमारियों से बचने के लिए अवश्य टीका लगवाया होगा। बच्चों में जो आमतौर पर बीमारी हो जाती हैं, वे हैं—पोलियो, काली खांसी, खसरा, डिप्थीरिया, टायफायड तथा टिटनेस (चित्र 4.7)। बच्चों को इन बीमारियों से रोगक्षमी बनाना आवश्यक है। भारत में सभी बच्चों तथा गर्भवती महिलाओं को इन बीमारियों के प्रति रोगक्षमी बनाने का कार्यक्रम है। इसके लिए हमें अधिक टीके तैयार करने पड़ेंगे और उन्हें वितरित करना पड़ेगा। टिटनेस का टीका यदि गर्भवती महिला को दिया जाये तो यह बच्चे को माता के गर्भाशय में ही प्रतिरक्षित बना देता है। यदि छोटे–छोटे बच्चों को समय से पहले ही प्रतिरक्षित बना दें तो करोड़ों बच्चों का जीवन बच सकता है।

20वीं शताब्दी के शुरू में चेचक के प्रति लोगों को प्रतिरक्षित बनाने का सारे संसार में एक अभियान चलाया गया था जिसके कारण चेचक समूल नष्ट हो गई। आज, कोई भी इस बीमारी के विषय में सुनता तक नहीं है। इससे थॉमस जैफरसन के इन शब्दों की पुष्टि होती है जिन्होंने जैनर को 1806 में बताया थाः 'भावी राष्ट्र इतिहास द्वारा ही जान सकेगा कि कभी चेचक नामक जानलेवा रोग भी होता था और तुमने इसे समाप्त किया था।'

### 4.5.3 औद्योगिक उपयोग

सूक्ष्मजीव रसायन फैक्टरी की तरह है, प्रत्येक सूक्ष्मजीव एक विशिष्ट प्रकार का पदार्थ बनाता है। इनमें से कुछ पदार्थ हमारे लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। आप पहले से ही जानते हो कि दही, ब्रेड, पैनिसिलीन, एल्कोहल तथा कार्बनिक अम्ल बनाने में कुछ जीवाणु अथवा कवकों का उपयोग कैसे किया जाता है। एक बार उनके विशिष्ट गुणों का पता लग जाए तो जल्दी ही उन्हें अधिक मात्रा में तैयार करने की विधियां भी खोज ली जाती हैं। उदाहरण के लिए, आजकल यीस्ट का उपयोग औद्योगिक रूप में एल्कोहल तथा शराब बनाने में किया जाता है। इसके लिए यीस्ट को कार्बोहाइड्रेट जैसे मक्का तथा आलुओं पर उगाया जाता है। यह कवक कार्बोहाइड्रेट के अणुओं को अपने एंजाइम की सहायता से तोड़ देता है जिसके कारण एल्कोहल बनता है। इसी प्रकार ऐसे ही कुछ जीवाणु हैं जो आलू तथा मक्का में स्थित स्टार्च को तोड़कर कार्बनिक अम्ल जैसे लैक्टिक एसिड तथा एसीटिक एसिड (सिरका) बनाते हैं।

कुछ सूक्ष्मजीवों में वायु की मुक्त नाइट्रोजन के स्थिरीकरण की क्षमता होती है। इसलिए वे फसल–वद्धि के लिए बहुत उपयोगी हैं। यद्यपि, पौधे प्रकाश संश्लेषण द्वारा $CO_2$ का स्थिरीकरण कर सकते हैं लेकिन वे नाइट्रोजन का स्थिरीकरण नहीं कर सकते।

**चित्र 4.8:**
**लैग्यूमी पौधे में मूल ग्रंथियाँ**

मनुष्य तथा अन्य जन्तु जिन्हें वद्धि के लिए कार्बन तथा नाइट्रोजन दोनों की आवश्यकता होती है, इनमें से किसी का भी स्थिरीकरण नहीं कर सकते। इसलिए इनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें पौधों पर निर्भर रहना पड़ता है। कुछ पौधों, जिन्हें लैग्यूम कहते हैं जैसे दाल की मूल ग्रन्थियों में नाइट्रोजन स्थिर करने वाले जीवाणु (राइजोबियम) रहते हैं (चित्र 4.8)। ये जीवाणु हवा की मुक्त नाइट्रोजन को घुलनशील नाइट्रोजनी यौगिकों (नाइट्रेट) में बदल देते हैं। पौधे इनका उपयोग प्रोटीन बनाने में करते हैं। इसीलिए सभी दालों में प्रोटीन प्रचुर मात्रा में होती है।

वैज्ञानिक इन जीवाणुओं में नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं, जिससे कि प्रोटीन आपूर्ति के लिए पौधों की पैदावार को बढ़ाया जा सके। ऐसे भी अनुसंधान चल रहे हैं जिनमें सूक्ष्मजीवों के कुछ विशेष गुणों का उपयोग कर सकें। इसके अंतर्गत इन जीवाणुओं के गुणों को दूसरे सूक्ष्मजीवों में स्थानान्तरित करने का प्रयास किया जा रहा है। ये सूक्ष्मजीव मुख्यतया जीवाणु हैं क्योंकि इन पर कार्य करना आसान होता है। इस विधि द्वारा वैज्ञानिकों ने ऐसे नए जीवाणु बनाने में सफलता प्राप्त कर ली है जिनसे विशिष्ट कार्य पूरे होते हैं, जैसे वे जीवाणु जो समुद्र में जहाजों से गिरे तेल को खा लेते हैं, अथवा ऐसा जीवाणु जो जीवनदायिनी औषधि बना सके जैसे इन्सुलिन। नई एच्छिक एवं विशिष्ट गुणों वाली नई कोशिकाओं का विकास करने की विधि को आनुवंशिक इंजीनियरिंग कहते हैं।

### अपनी प्रगति जांचिए

(i) ऐसा सूक्ष्मजीव जिसे नंगी आंखों से देखा जा सकता है।

(ii) सूक्ष्मजीवों के मुख्य वर्गों के नाम बताओ।

(iii) दूध से दही बनाने में कौन सा सूक्ष्मजीव सहायक है।

(iv) इडली या डोसा बनाने में.....सूक्ष्मजीव सहायक है।

(v) .....की शारीरिक संरचना चप्पल की तरह होती है।

(vi) मलेरिया .....प्रोटोजोआ के कारण होता है।

(vii) राइजोबियम .....स्थिरीकरण करते हैं।

## 4.6 सारांश

ऐसे जीव जिनका आधार इतना छोटा होता है कि उन्हें सूक्ष्मदर्शी की सहायता के बिना नहीं देखा जा सकता, सूक्ष्मजीव कहलाते हैं। सूक्ष्मजीव लगभग सभी प्रकार के पर्यावरण—गर्म झरनों, बर्फ जैसे ठंडे पानी में, रेगिस्तानी मिट्टी में, अधिक लवण, सल्फर युक्त पानी में, मनुष्य की आंतों में पाये जाते हैं। सूक्ष्म जीवों के पांच मुख्य वर्ग हैं—जीवाणु, कवक, प्रोटोजोआ, शैवाल तथा विषाणु। इनमें से विषाणु सबसे छोटे सूक्ष्म जीव होते हैं जो सजीव तथा निर्जीव जगत की सीमा बनाते हैं। इनकी कोई कोशिकीय रचना नहीं होती और ये केवल दूसरे जीवों के शरीर में वद्धि कर सकते हैं। जीवाणु अकेली कोशिका, कोशिका समूह अ थवा श्रंखला रूप में हो सकते हैं। जीवाणु सूक्ष्मजीवों का सबसे बड़ा वर्ग है। कवक मुख्यतः यीस्ट तथा मोल्ड दो प्रकार के होते हैं। यीस्ट प्रायः एक कोशिकीय होती है जबकि मोल्ड बहुकोशिकीय और तन्तुमयी होती है! शैवाल पौधों की भांति प्रकाश–संश्लेषण द्वारा अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। ये जीवाणु की भांति बर्फ, लवणीय जल, गरम झरनों, नम मिट्टी, वक्ष की छाल तथा चट्टानों की सतह पर पाये जाते हैं। ये जलीय जीवों के शरीर में सहजीवी की भांति वद्धि भी करते हैं। प्रोटोजाआ जन्तुओं की भांति होता है। ये अधिकतर नम स्थानों पर पाये जाते हैं। अमीबा सरलतम प्रोटोजोआ है।

सूक्ष्मजीव हमारे लिए लाभदायक व हानिकारक दोनों हो सकते हैं। कुछ सूक्ष्मजीव मनुष्यों में रोग उत्पन्न करते हैं जैसे—प्लाज्मोडियम, ट्यूबरक्लोसिस बेसिलस (T.B.), पोलियो वायरस (Polio), एड्स वायरस (HIV) आदि। कुछ, सूक्ष्म जीव हमारे लिए लाभदायक होते हैं और भोजन बनाने, उद्योगों आदि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जैसे—लैक्टोबेसिलस (दूध–दही), पेनिसलीन (एंटीबायोटिक), यीस्ट (इडली, डोसे के मिश्रण में खमीर उत्पन्न करने में), राइजोबियम (नाइट्रोजन) स्थिरीकरण आदि।

### आदर्श उत्तर

(i) मशरूम (ii) जीवाणु, विषाणु, कवक, प्रोटोजोआ व शैवाल (iii) लेक्टोबेसिलस (iv) यीस्ट (v) पैरामिशीयम

(vi) प्लाज्मोडियम (vii) नाइट्रोजन

## 4.7 मुख्य शब्द

**सूक्ष्म जीवः** ऐसे जीव जिनका आकार इतना छोटा हो कि उन्हें केवल सूक्ष्मदर्शी की सहायता से देखा जा सके, सूक्ष्मजीव कहलाते हैं।

**आक्सीकारी जीवाणुः** जिन जीवाणुओं को वद्धि करने के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है, ऑक्सीकारी जीवाणु कहा जाता है।

**अनाक्सीकारी जीवाणुः** जो जीवाणु ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में वद्धि करते हैं, अनाक्सीकारी जीवाणु कहलाते हैं।

**संचरणीय रोगः** जो रोग संक्रमित मनुष्य से स्वस्थ मनुष्य में वायु, जल, भोजन तथा स्पर्श के कारण फैलते हैं उन्हें संचरणीय रोग कहा जाता है।

**प्रतिजैविकः** ऐसे पदार्थ जो एक सूक्ष्मजीव द्वारा उत्पन्न होते हैं और दूसरे सूक्ष्मजीवों को नष्ट कर देते हैं, प्रतिजैविक पदार्थ कहलाते हैं।

## 4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

'Science Text book for class VIII, NCERT, N.Delhi, 1986

'आठवीं कक्षा के लिए विज्ञान', SCERT, Gurgaon.

# इकाई–2(a)

# अध्याय-5: आहार श्रंखला (Food Chain)

**उद्देश्यः**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे किः

- जीवमण्डल में आहार श्रंखलाएं बनने के कारण बता सकें।
- आहार श्रंखला की बनावट की उदाहरण सहित व्याख्या कर सकें।
- आहार श्रंखला के महत्त्व का वर्णन कर सकें।

**संरचनाः**

5.1. जीवनमण्डल में आहार श्रंखला
5.2. आहार श्रंखला की बनावट
5.3. आहार श्रंखला का महत्त्व
5.4. सारांश
आदर्श उत्तर
5.6. मुख्य शब्द
5.7. सन्दर्भ ग्रन्थ

## 5.1 प्रस्तावना

जीवमण्डल के मुख्य घटक जैव एवं अजैव घटक हैं। अजैव घटकों में प्रकाश, नमी, वायुमण्डलीय दाब, तापमान आदि प्रमुख हैं जबकि जैव घटकों में पौधे, जन्तु, पक्षी, मनुष्य, सूक्ष्म जीव आदि सम्मिलित होते हैं। जीवमण्डल में विभिन्न जीव भोजन के लिए एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं। कुछ बड़े जीव छोटे जीवों को खाते हैं और छोटे जीव सूक्ष्म जीवों या पौधों को खाते हैं। आप इस इकाई के अध्याय 1 एवं 4 में प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया एवं सूक्ष्म जीवों के सम्बन्ध में अध्ययन कर चुके हैं। प्रस्तुत अध्याय में आप विभिन्न जीवों के भोजन संबंधी अंतर्संबंधों अर्थात् आहार श्रंखला के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगें।

## 5.2 जीवमण्डल में आहार श्रंखला (Food Chain in Biosphere)

जीवमण्डल के जैव घटकों में उत्पादक, उपभोक्ता तथा अपघटक प्रमुख हैं–

5.2.1. **उत्पादक (Producers):** खाद्य पदार्थों का उत्पादन करने वाले जीवों को उत्पादक कहा जाता है क्योंकि ये सूर्य के प्रकाश में भोजन का निर्माण करते हैं। पौधों में हरे रंग का एक पदार्थ होता है जिसे क्लोरोफिल या पर्णहरित कहा जाता है। क्लोरोफिल, सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में जल एवं कार्बन–आई–ऑक्साइड गैस को कार्बनिक पदार्थों (कार्बोहाइड्रेट) में परिवर्तित कर देता है। इस क्रिया को प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) कहा जाता है। जिन पौधों में क्लोरोफिल

नहीं होता, वे प्रकाश संश्लेषण नहीं कर सकते। प्रकाश–संश्लेषण क्रिया में सूर्य की प्रकाश ऊर्जा रासायनिक ऊर्जा में बदल जाती है। ऐसे पौधे जो प्रकाश संश्लेषण करते हैं, स्वपोषी (Autotrophs) कहलाते हैं।

5.2.2. **उपभोक्ता (Consumers):** जो जीव अपना भोजन स्वयं तैयार नहीं कर सकते और अपने भोजन के लिए उत्पादकों पर निर्भर करते हैं, उन्हें उपभोक्ता या परपोषी (Hetrotrophs) कहा जाता है। उपभोक्ता अपना भोजन पौधों से प्राप्त करते हैं या उन जन्तुओं से प्राप्त करते हैं जो अपने भोजन के लिए पौधों पर निर्भर करते हैं। उपभोक्ता एक अमीबा की तरह छोटे भी हो सकते हैं और एक हाथी की तरह बड़े भी हो सकते हैं।

जो जीव अपना भोजन पौधों से प्राप्त करते हैं, उन्हें शाकाहारी (Herbivores) या प्राथमिक उपभोक्ता (Primary Consumers) कहते हैं। इन्हें प्रथम स्तर के उपभोक्ता (Consumer of the first Order) भी कहा जाता है, उदाहरण—बकरी, गाय, हिरण आदि। जो जीव शाकाहारी जन्तुओं को अपने भोजन के रूप में उपयोग करते हैं उनहें द्वितीय उपभोक्ता (Secondary Consumers) या मांसाहारी (Carnivores) कहते हैं, उदाहरण—शेर, चीता, भेड़िया आदि। जो जीव पौधों एवं जन्तुओं दोनों को भोजन के रूप में प्रयोग करते हैं, उन्हें सर्वभक्षी (Omnivores) कहा जाता है, उदाहरण—सांप, कौआ, मनुष्य आदि।

5.2.3. **अपघटक (Decomposers):** जो जीव मत पौधों और जन्तु शरीरों का अपघटन कर देते हैं, अपघटक कहलाते हैं, उदाहरण जीवाणु, कवक आदि। ये जीव प्रकाश संश्लेषण से अपना भोजन तैयार नहीं करते एवं मत पौधों एवं जन्तु शरीरों को भोजन के रूप में प्रयोग करते हैं। अपघटक अपने शरीर में एन्जाइम पैदा करते हैं। ये एन्जाइम मत शरीरों का अपघटन करके संयुक्त यौगिकों को सरल पदार्थों में बदल देते हैं और इस प्रक्रिया में उत्पन्न सरल पदार्थोंका अवशोषण कर लेते हैं। इस प्रकार अपघटक भी परपोषी जीव होते हैं। जीवमण्डल में पदार्थों के चक्रण में अपघटकों की विशेष भूमिका है।

जीवमण्डल के उपरलिखित तीन जैव घटकों में से केवल उत्पादक अपना भोजन स्वयं बना सकते हैं, इसलिए उत्पादक एवं उपभोक्ता में पारस्परिक क्रिया होती है। जब शाकाहारी जन्तु, पौधों अथवा उत्पादक जीवों को भोजन के रूप में उपयोग करते हैं तो ये उनके शरीर में ऊर्जा उत्पन्न करके उनके शरीर का ही एक भाग बन जाते हैं। जब शाकाहारी जन्तुओं का शिकार दूसरे जन्तु करते हैं तो यह ऊर्जा शाकाहारियों से मांसाहारियों में स्थानान्तरित हो जाती है। इस प्रकार ऊर्जा का प्रवाह उत्पादकों से शाकाहारियों एवं शाकाहारियों से मांसाहारियों की ओर होता है। यह ऊर्जा प्रवाह एक ही दिशा में होता है। ऊर्जा का प्रवाह एवं उपयोग निम्नलिखित ढंग से होता है–

1. कुछ ऊर्जा श्वसन क्रियाओं में तथा कुछ ऊर्जा हरे पौधों की उपापचयी क्रियाओं में नष्ट हो जाती है।
2. कुछ ऊर्जा शाकाहारी जन्तुओं के शरीर में चली जाती है।
3. कुछ ऊर्जा एक स्तर से दूसरे स्तर तक जाने में नष्ट हो जाती है।

पथ्वी की समस्त ऊर्जा का स्रोत सूय है। सूर्य की ऊर्जा का अवशोषण एवं प्रवाह सभी जीवधारियों को जीवन उपयोगी कार्य करने की क्षमता प्रदान करता है। हरे पौधे प्रकाश संश्लेषण में सूर्य की ऊर्जा को भोजन में बदल देते हैं। जन्तु भोजन के लिए अपघटकों द्वारा अपघटित कर दिये जाते हैं। वनस्पति स्त्रोत से जीवों की एक श्रंखला में भोजन (ऊर्जा) हस्तांतरण अर्थात् बारम्बार खाना और खाया जाना, की प्रक्रिया को आहार श्रंख ाला कहा जाता है।

## 5.3 आहार श्रंखला की बनावट (Structure of Food Chain)

किसी भी आहार श्रंखला में भिन्न –भिन्न प्रकार के जीव आते हैं जिनका आपसी सम्बन्ध होता है। एक जीव दूसरे जीव पर निर्भर करता है। एक आहार श्रंखला में भिन्न–भिन्न ऊर्जा स्तर (Trophic Levels) आते हैं। कोई आहार श्रंखला बहुत छोटी भी हो सकती है और बहुत बड़ी भी। कुछ आहार श्रंखलाएं इस प्रकार हैं–

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| घास | → | बकरी | | | | | | |
| (उत्पादक) | | (उपभोक्ता) | | | | | | |
| घास | → | हिरण | → | शेर | | | | |
| (उत्पादक) | | (शाकाहारी) | | (मांसाहारी) | | | | |
| घास | → | कीट | → | मेंढक | → | पक्षी | | |
| (उत्पादक) | | (शाकाहारी) | | (प्रथम स्तर के मांसाहारी) | | (द्वितीय स्तर के मांसाहारी) | | |
| पौधे | → | कीड़े | → | पक्षी | → | बिल्ली | | |
| घास | → | कीट | → | मेंढक | → | पक्षी | → | बाज |
| (उत्पादक) | | (शाकाहारी) | | (प्रथम स्तर के मांसाहारी) | | (द्वितीय स्तर के मांसाहारी) | | (उच्च मांसाहारी) |

एक जलीय परिस्थितिक तंत्र (Aquatic Ecosystem) में उपस्थित आहार श्रंखला इस प्रकार हो सकती है—

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| शैवाल | → | प्रोटोजोआ | → | छोटी मछली | → | बड़ी मछली |
| (वनस्पति उत्पादक पल्वक) | | (प्राणी पल्वक) | | (मांसाहारी) | | (उच्च मांसाहारी) |

डायटम → अमीबा → छोटे जलीय कीट → बड़े जलीय कीट → छोटी मछली → बड़ी मछली

किसी आहार श्रंखला के विभिन्न चरण ा या तल अलग–अलग पोषी स्तर बनाते हैं। हरे पौधे (स्वपोषी) पहले पोषी स्तर हैं जो सूर्य की विकिरण ऊर्जा को शोषित करते हैं और अगले स्तर (उपभोक्ता) के लिए उपलब्ध कराते हैं। शाक भक्षी या शाकाहारी (प्रथम उपभोक्ता–कीट, खरगोश, रोडेंट, हिरन, पशु आदि) जो पौधे खाते हैं, दूसरा पौषी स्तर हैं। वे प्राणी जो शाकाहारी जीवों को खाते हैं, और द्वितीय उपभोक्ता या मांसाहारी (मेंढक, छोटी मछली आदि) कहलाते हैं, तीसरा पोषी स्तर बनाते हैं। ये सभी और बड़े मांसाहारियों द्वारा खाए जाते हैं, जो चौथा पोषी स्तर बनाते हैं।

किसी भी खाद्य श्रंखला में 6 से अधिक स्तर अथवा सोपान सम्भव नहीं है। एक पोषी स्तर से दूसरे पोषी स्तर तक ऊर्जा (भोजन) प्रवाह के दौरान कुछ ऊर्जा नष्ट हो जाती है। विभिन्न स्तरों के लिए भोजन का केवल 10 प्रतिशत भाग जैव भार में परिवर्तित होता है, शेष ऊर्जा प्राणी अपने शरीर की उपापचयी क्रियाओं तथा श्वसन में व्यय कर देते हैं। लिण्डमैन (Lindman) के दस प्रतिशत नियम (Ten Percent Law) के अनुसार एक प्राणी कुल प्राप्त ऊर्जा का केवल 10 प्रतिशत भाग ही अगले पोषी स्तर पर स्थानान्तरित कर सकता है। इस प्रकार प्रत्येक स्तर पर ऊर्जा की मात्रा में कमी आती जाती है।

मान लीजिए एक आहार श्रंखला में पौधे सूर्य द्वारा 1000 J सौर ऊर्जा प्राप्त करते हैं। पौधे इस ऊर्जाका केवल 10 प्रतिशत भाग अर्थात 100 J शाकाहारियों को स्थानांतरित करेंगे। शाकाहारी प्रथम स्तर के मांसाहारी जीवों को प्राप्त ऊर्जा का 10 प्रतिशत अर्थात 10 J स्थानांतरित करेंगे और उच्च मांसाहारी 1 J ऊर्जा प्राप्त करेंगे।

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| हरे पौधे | → | कीट | → | मेंढक | → | सांप | → | बाज |
| 1000J | | 100J | | 10J | | 1J | | 0.1J |

इस प्रकार 5वें या छठें स्तर तक ऊर्जा की मात्रा बहुत कम या नगण्य हो जाती है। अतः किसी आहार श्रंखला में छः से अधिक स्तर नहीं हो सकते।

एक आहार श्रंखला कभी भी अकेले कार्य नहीं करती। प्रकृति में कई आहार श्रंखलाएं आपस में जुड़ी होती हैं। अपनी भोजन सम्बन्धीआदतों के आधार पर एक प्राणी एक से अधिक आहार श्रंखलाओं से सम्बन्ध रख सकता है।

इस प्रकार आहार श्रंखलाएं परस्पर जुड़ कर एक जाल बनाती हैं जिसे खाद्य जाल (Food Web) कहते हैं।

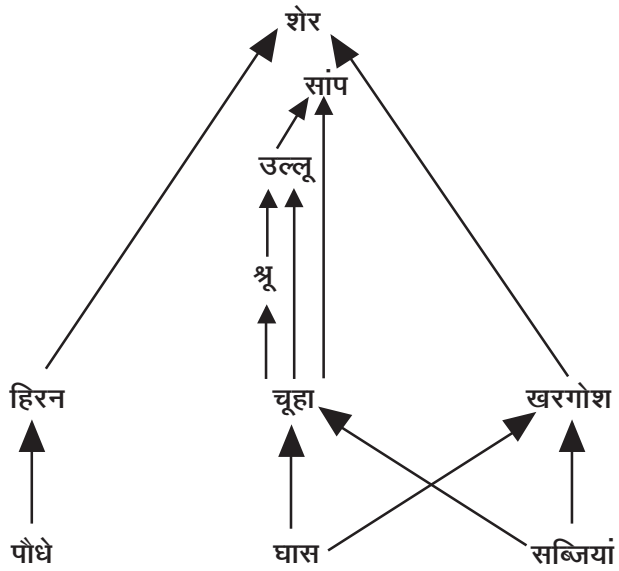


**चित्र 5.1:**
**गिर जंगल में उपस्थित खाद्य जाल**
**(Food Web of Gir Forest, Gujrat)**

## 5.4 आहार श्रंखला का महत्त्व
## (Significance of Food Chain)

आहार श्रंखला का अध्ययन एक पारितंत्र में विभिन्न जीवों के बीच आहार सम्बन्ध व पारस्परिक क्रिया को समझने में सहायता करता है। प्रकृति के विभिन्न घटकों द्वारा ऊर्जा व पोषक तत्वों की हस्तांतरण प्रक्रिया भी इस प्रकार के अध्ययन द्वारा अच्छी प्रकार समझी जा सकती है। इन अध्ययनों का एक व्यावहारिक पक्ष भी है। भोजन की तरह, हम एक पारितंत्र में विषैले पदार्थों का संचलन और उनके जैव आवर्धन की समस्या को भी समझ सकते हैं। कुछ हानिकारक व विषाक्त पदार्थ जैसे डी.डी.टी. बी.एच.सी. जैसे कीटनाशी पौधों के खाने योग्य भागों में संचित हो जाते हैं और आहार चक्र के तंत्र में प्रवेश कर जाते हैं। ऐसे पदार्थ आसानी से अवकर्षण योग्य नहीं होते इसलिए ये आहार श्रंखला के प्रत्येक पोषी स्तर पर संचित होकर आवर्धित होते जाते हैं।

इस प्रकार आहार श्रंखला के अंतिम चरण तक इनकी मात्रा इतनी बढ़ जाती है जिससे जीवन के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है। किसी आहार श्रंखला के विभिन्न पोषी स्तरों पर उपस्थित जीवों के शरीर में किसी हानिकारक पदार्थ की मात्रा में वद्धि होना जैव आवर्धन (Biological Magnification) कहलाता है।

आहार श्रंखला में ऊर्जा का प्रवाह रेखीय होता है और पदार्थों का प्रवाह चक्रीय होता है। दूसरे शब्दों में, किसी आहार श्रंखला में ऊर्जा का प्रवाह केवल एक ही दिशा में होता है और प्राप्त की गई ऊर्जा वापिस नहीं लौटाई जाती। पदार्थों का प्रवाह दोनों दिशाओं में होता है अर्थात् पौधों द्वारा मदा से अवशोषित पदार्थ (कार्बन, नाइट्रोजन, पोटैशियम, सल्फर, फास्फोरस आदि) पौधों और जन्तुओं के शरीरों एवं उत्सर्जित पदार्थों के अपघटन द्वारा पुनः मदा में मिल जाते हैं।

### अपनी प्रगति जांचिए

(i) एक आहार श्रंखला में अधिकतम कितने स्तर हो सकते हैं?

(ii) जीवमण्डल में ऊर्जा का प्रवाह किस प्रकार होता है?

(iii) 10% प्रतिशत नियम क्या है?

(iv) आहार श्रंखला में उत्पादक सदा किस पोषी स्तर पर होते हैं।

## 5.5 सारांश

जीवमण्डल के जैव घटकों—उत्पादक, उपभोक्ता एवं अपघटकों में से केवल उत्पादक ही प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा भोजन का निर्माण कर सकते हैं। शेष दोनों घटक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भोजन के लिए उत्पादकों पर निर्भर होते हैं। उदाहरण के लिए हिरन पौधों को खाते हैं और शेर हिरन को भोजन के रूप में खाते हैं। इस प्रकार प्रकृति में जीवधारियों की एक श्रंखला बन जाती है जिसमें एक प्राणी दूसरे पर भोजन के लिए आश्रित होता है। यह श्रंखला आहार श्रंखला कहलाती है। ऐसा अनुमान है कि आहार श्रंखला के एक स्तर से दूसरे स्तर पर केवल 10 प्रतिशत ऊर्जा का ही स्थानांतरण होता है। शेष ऊर्जा जीवधारी अपने जीवन की उपापचयी क्रियाओं में व्यय कर देते हैं। इस प्रकार आहार श्रंखला के पांचवें या छठें स्तर तक ऊर्जा की मात्रा लगभग नगण्य हो जाती है। यही कारण है कि आहार श्रंखला में छः से अधिक स्तर नहीं हो सकते। आहार श्रंखलाएं प्रकृति में परस्पर जुड़कर एक जाल सा बनाती हैं जिसे खाद्य जाल कहते हैं।

आहार श्रंखला का अध्ययन एक पारितंत्र में विभिन्न जीवों के आहार सम्बन्ध व पारस्परिक क्रिया को समझने में सहायक है। इसके द्वारा जीवमण्डल के विभिन्न घटकों में ऊर्जा व पोषक तत्वों की हस्तांतरण प्रक्रिया, जैव आवर्धन प्रक्रिया आदि समझने में भी सहायता मिलती है।

**आदर्श उत्तर**

(i) एक आहार श्रंखला में अधिकतम छः स्तर हो सकते हैं।

(ii) जीवमण्डल में ऊर्जा का प्रवाह रेखीय होता है।

(iii) दस प्रतिशत नियम के अनुसार एक प्राणी कुल प्राप्त ऊर्जा का केवल 10 प्रतिशत भाग ही अगले पोषी स्तर पर स्थानांतरित कर सकता है।

(iv) प्रथम पोषी स्तर

## 5.7 मुख्य शब्द

**जीवमण्डलः** सभी पारितंत्र मिलकर एक बड़ा पारितंत्र बनाते हैं जिसे जीवमण्डल कहा जाता है।

**पारितंत्रः** यह जीव मण्डल की एक स्वयं–निर्वाही, संरचनात्मक एवं कार्यात्मक इकाई है।

**पोषी स्तरः** आहार श्रंखला के विभिन्न स्तरों को पोषी स्तर कहा जाता है।

**जैव आवर्धनः** आहार श्रंखला में किसी हानिकारक पदार्थ प्रवेश करना और विभिन्न पोषी स्तरों पर उपस्थित जीवों के शरीर में उनकी मात्रा में वद्धि होना जैव आवर्धन कहलाता है।

## 5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

'विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी–कक्षा IX के लिए पाठ्यपुस्तक', NCERT, New Delhi, 2002.

Singh, Lakhmir & Kaur, Manjit – 'Science for X Class', S.Cand & Company, New Delhi, 1994.

# इकाई–2 (a)

# अध्याय-6: पारिस्थितिक सन्तुलन

# (Ecological Balance)

**उद्देश्यः**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे किः

- पारिस्थितिक तंत्र एवं पारिस्थितिक सन्तुलन की परिभाषा दे सकें।
- पारिस्थितिक सन्तुलन को भंग करने वाले कारकों की सूची बना सकें।
- पर्यावरण सुरक्षा और पारिस्थितिक सन्तुलन बनाए रखने के तरीकों को सुझा सकें।
- पर्यावरण सुरक्षा एवं पारिस्थितिक सन्तुलन बनाए रखने सम्बन्धी मुख्य वैधिक पक्षों को वर्णन कर सकें।

**संरचनाः**

6.1. प्रस्तावना
6.2. पारिस्थितिक सन्तुलन
6.3. पारिस्थितिक सन्तुलन को भंग करने वाले तत्व
6.4 पारिस्थितिक सन्तुलन की सुरक्षा एवं वैधिक पक्ष
6.5. सारांश
आदर्श उत्तर
6.6. मुख्य शब्द
6.7. संदर्भ ग्रन्थ

## 6.1 प्रस्तावना

पर्यावरण का मामला आज विश्व के प्रमुख मुद्दों में से एक है। मानव विकास के लिए स्वच्छ तथा संतुलित पर्यावरण की आवश्यकता है, पर आज प्रौद्योगिकी तथा औद्योगिक विकास ने पर्यावरण को प्रदूषण से ग्रसित कर दिया है। प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित एवं अव्यवस्थित उपयोग ने हमें एक ऐसे मोड़ पर खड़ा कर दिया है जहां से केवल विनाश का ही द्वार खुला है। औद्योगीकरण का असर प्राकृतिक संसाधनों पर ही सीमित नहीं वरन् इसका प्रदूषण सर्वत्र विद्यमान हैं। रसायनिक खाद, औद्योगिक इकाइयों से निकलता जहरीला धुआँ, उन्नत खेती, बांध, नये औद्योगिक संस्थान, कीटनाशक दवाएं, परिवहन, यातायात के साधन, अणु बिजली घर, सीमेंट उद्योग, बिजली घर आदि के कारण फैल रहे जल, वायु, ध्वनि एवं भू–प्रदूषण, बीमारियां एवं दुर्घटनाओं ने लाखों व्यक्तियों की जान ले ली है।

यदि हम इन सब बातों को गहराई से अध्ययन करें तो हम देखते हैं कि भारत में औद्योगीकरण का काल जो आजादी से पूर्व ही शुरू हुआ था उसके लिए कच्चे माल को जुटाने के लिए मानव ने प्राकृतिक संसाधनों को निरन्तर दोहन किया। इन सब बातों से यह सत्य नजर आता है कि औद्योगीकरण के दुष्प्रभाव से हमारे जीवन के मूल्यों में दिनोंदिन ह्रास हुआ जिससे हमारा समाज तथाकथित प्रगति की दिशा में जाते हुए विनाश की ओर जा रहा है। पर्यावरण का कोई भी पक्ष इस प्रदूषण के प्रभाव

से अछूता नहीं रह गया है। इन हालातों में, पारिस्थितिक तंत्र एवं पारिस्थितिक सन्तुलन बनाए रखने वाले कारकों की तरफ मानव का ध्यान जागत करना अति आवश्यक हो गया है। इस अध्याय में हम इस पर्यावरण पारिस्थितिक सन्तुलन के बारे में वर्णन करेंगे। कौन–कौन से घटक इस सनतुलन को बिगाड़ते हैं, किस प्रकार हम पारिस्थितिक सन्तुलन को बनाये रख सकते हैं और इन सब बातों के अलावा भारत सरकार ने कौन–कौन से अधिनियम व नियम बनाये हैं जो पर्यावरण में फैलने वाले प्रदूषण पर नियंत्रण रखने में कारगर सिद्ध हो सकते हैं।

## 6.2 पारिस्थितिक सन्तुलन (Ecological Blanace)

हमारी पथ्वी पर एक मिलियन से भी ज्यादा जीव समूह है जो अपनी वद्धि एवं विकास के लिए एक दूसरे पर निर्भर है। उदाहरण के लिए, मानव अपना भोजन, कपड़े आदि के लिए पौधों एवं जीव जन्तुओं पर निर्भर है वास्तव में मानव का जीवन इन जीव समूह के बिना अधूरा है।

हमारे पर्यावरण के पांच मूलभूत तत्वों पथ्वी, जल, भूमि, आकाश एवं वायु से समस्त जीवों एवं पादपों की उत्पत्ति मानी जाती है। इन्हीं जीवों या जीव समूह (प्राणी तथा पादप) के साथ भौतिक पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्धों के अध्ययन को ''पारिस्थितिकी'' (Ecology) कहा जाता है।

हम जानते हैं पर्यावरण में सजीव, पादप एवं प्राणी पाये जाते हैं। जीवन के आधर पर हम इनको दो भागों में बांट सकते हैं—निर्जीव व सजीव। इस निर्जीव पर्यावरण, वनस्पति, जगत तथा प्राणी जगत में पारस्परिक क्रिया प्रतिक्रिया, घात प्रतिघात होती रहती हैं एवं इन अवयवों के योगायोग को पारिस्थितिक तंत्र (Eco-System) कहा जाता है। प्राणी, पादप तथा निर्जीव पर्यावरण सब एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा सम्मिलित रूप से इस प्रत्यागामी तंत्र का निर्माण करते हैं। आओ हम इस पारस्परिक सम्बन्ध को नीचे दिए गए चित्र 6.1द्वारा समझने की कोशिश करें।

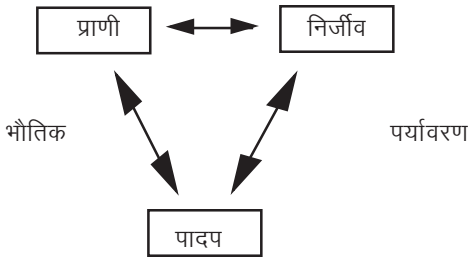


**चित्र 6.1: जीवों व पर्यावरण में आपसी सम्बन्ध**

इस चित्र 6.1 से विदित है कि प्रत्येक जीव इस पारिस्थितिक तंत्र में दूसरे जीव से जुड़ा हुआ है और उससे प्रभावित होता है। भौतिक पर्यावरण के घटक भी पादप और प्राणी जगत को प्रभावित करते हैं। आधुनिक पारिस्थितिकी के अनतर्गत हम जीवित प्राणियों तथा उनके परिवेश के बीच प्रकार्यात्मक परस्पर निर्भरता (Functional Interdependence) का अध्ययन करते हैं।

इन जटिल परिस्थितियों में, प्रकृति इस पारिस्थितिकी तंत्र के जाल में अपना सन्तुलन बनाने में कोशिश करती है जो कि 'पारिस्थितिक सन्तुलन कहलाता है। इससे पहले हम इस बारे में जान सकें कि कैसे इस पारिस्थितिक सन्तुलन को सुरक्षित रखा जा सकता है, हमें उन तत्वों एवं कारकों को जानना अति आवश्यक है। जो इस सन्तुलन को बिगाड़ते हैं।

## 6.3 पारिस्थितिक संतुलन को बिगाड़ने वाले तत्व (Factors Affecting Ecological Balance)

विगत 30–35 वर्षों से विश्व के विकास में आश्चर्यजनक क्रान्ति आयी है, यह क्रान्ति विकास के क्षेत्र में हुई महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों तथा जीवन उपयोगी आवश्यक संसाधनों की बढ़ोत्तरी को दर्शाती है। परन्तु इस क्रान्ति ने एक तरफ जहाँ मनुष्य जीवन सुखमय

किया है, वहीं दूसरी तरफ इसने पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव डाला है। लगातार बढ़ रही जनसंख्या के कारण प्राकृतिक संसाधनों तथा अन्य वस्तुओं की आवश्यकता बढ़ रही हैं जिन्हें जुटाने के प्रयास में कई प्रकार के प्रदूषण फैल रहे हैं। इन सब बातों का पारिस्थितिक सन्तुलन पर दुष्प्रभाव पड़ता है।

अब प्रश्न उठता है, कौन इन सब बातों के लिए जिम्मेदार है। कोई नहीं सिर्फ 'मानव' जिसने अपनी गतिविधियों एवं क्रिया–कलापों के कारण इस 'पर्यावरण समस्या' को जन्म दिया। 'मानव' ने अपने जीवन के लिए हवा, पानी, मिट्टी को इतना प्रदूषित कर दिया है जिसके कारण कई बीमारियां फैल रही हैं। लगातार बढ़ रही जनसंख्या ने इस प्रक्रिया को और बढ़ावा दिया है। इसके साथ ही शहरीकरण व अनियंत्रित औद्योगीकरण व ऊर्जा के अतिशय उपयोग से चारों ओर प्रदूषण फैला है, जिससे पथ्वी के पर्यावरण सन्तुलन में परिवर्तन आ रहा है। आओ कुछ महत्त्वपूर्ण तत्वों/घटकों को अध्ययन करें जिन्होंने पारिस्थितिक सन्तुलन को बिगाड़ा है।

1. जनसंख्या वद्धि (Population Explosion)
2. गंदगी (Insanitation)
3. रासायनिक कारखानों का गन्दा पानी
4. भारी संख्या में कीटनाशकों व रसायनिक पदार्थों का इस्तेमाल
5. शहरों और कस्बों की आकस्मिक बढ़ोत्तरी
6. मोटरवाहनों, रेलगाड़ियों, ट्रकों आदि द्वारा ध्वनि प्रदूषण
7. अपारम्परिक ऊर्जा स्त्रोतों (Non-Conventional Energy Sources) का अनुचित प्रयोग
8. तीव्र औद्योगीकरण
9. प्लास्टिक का निक्षेपण
10. ओजोन परत में छिद्र और
11. नाभिकीय विकिरण

आओ हम उन तत्वों का एक–करके एक अध्ययन करें–

— जनसंख्या वद्धि ने हमारे पर्यावरण पर बुरा अ सर डाला क्योंकि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव ने प्राकृतिक संसाधनों को जैसे जल, खनिज, ऊर्जा, वन सम्पदा आदि का दोहन किया। इनके अनियंत्रित एवं अव्यवस्थित उपयोग ने हमें एक ऐसे मोड़ पर खड़ा कर दिया है जहां से केवल विनाश का ही द्वार खुला है।

— नगरीकरण द्वारा नगर एवं कस्बों में जनसंख्या वद्धि ने कई नई समस्याओं को पैदा किया है जिसमें प्रमुख है–गंदगी। घरेलू अपशिष्ट जैसे पैकिंग के सामान, थैलियां, ढक्कन, रद्दी कागज, सूखा कचरा आदि जहाँ फेंके जाते हैं वहाँ दूर–दूर तक गंदगी होती है तथा इसके सड़ने से प्रदूषण उत्पन्न होता है।

मनुष्य ने अपने स्वार्थ तथा अज्ञान के द्वारा प्रकृति से प्राप्त होने वाले स्वच्छ, मदु व अहानिकारक जल को दूषित कर दिया है। मलमूत्र, मैल, कूड़ा–करकट, उद्योगों के बचे–खुले अवशेष, विषैले रसायन तथा धातुओं के जल स्रोतों के पहुँचने से आज अधिकांश झीलें, नदियाँ, झरने, कुएं, तालाब आदि प्रदूषित हो गये हैं। प्रदूषित जल से कई तरह की भयंकर बीमारियां जैसे हैजा, टायफायड, खुजली, मलेरिया, पीत ज्वर व चर्मरोग उत्पन्न हो जाते हैं।

— अनेक कीटनाशक, व्याधिनाशक एवं खर–पतवार नाशक रसायनों का उपयोग आधुनिक कृषि में बहुत बढ़ गया है। यह कीटनाशक पदार्थ उदरविष, स्पर्शविष एवं विषैली गैस के रूप में कार्य करते हैं तथा हानिकारक कीटों को समाप्त करने के साथ–साथ अनेक लाभकारी कीटों को भी समाप्त कर देते हैं। इससे पारिस्थितिक असंतुलन हो जाता है।

— पेट्रोल तथा डीजल यातायात साधनों की वद्धि ने भी वायु प्रदूषण को बढ़ाया है। इसका ज्यादा असर हमें उन इलाकों में देखने को मिलता है जो ज्यादा तंग हैं और जहाँ प्राकृतिक हवा वायु में उपस्थित प्रदूषकों को मिटा नहीं सकती।

— औद्योगीकरण एवं निरंतर यातायात साधनों की वद्धि के कारण भी पर्यावरण प्रदूषण में बढ़ोत्तरी हुई है। वर्तमान में रेडियो, टेलीविजन, हवाई जहाजों की गड़गड़ाहट, दौड़ती मोटर गाड़ियों का स्वर, ट्रकों की रेलपेल और उनके तीखे, कर्कश हार्न, रेलगाड़ियों की आवाजाही एवं लाउडस्पीकर रात में नींद नहीं लेने देते। इससे कान, नाक, गला आदि की बीमारियाँ हो जाती हैं इतना ही नहीं इस प्रकार के ध्वनि प्रदूषण से मानसिक बीमारियाँ भी हो जाती हैं।

— शहरीकरण का मुख्य कारण हमारे गांवों की जर्जरता एवं आर्थिक खोखलापन है क्योंकि वहाँ ग्रामीण इलाकों में उपयुक्त रोजगार न मिलने के कारण शहरीकरण में तीव्र गति से वद्धि हो रही है जिसका असर पर्यावरण पर पड़ता है।

— वनों के ह्रास के कारण पर्यावरण पर प्रमुख रूप से प्रभाव पड़ता है। वर्षा में कमी, मदा स्खलन, भूमि का कटाव, अतिवष्टि, बाढ़, तूफान, भयानक सूखे, ग्रीन हाउस प्रभाव, अम्लीय वर्षा, भू, वायु एवं जल प्रदूषण आदि वनों की कमी के ही परिणाम हैं।

अपारम्परिक ऊर्जा स्त्रोत, ऊर्जा के ऐसे स्त्रोत हैं जो असीमित मात्रा में हैं एवं जिनके कभी समाप्त होने का प्रश्न ही नहीं है जैसे—सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जैव ऊर्जा, बायोगैस, भू—गर्भ ऊर्जा, हाइड्रोजन ऊर्जा आदि। परन्तु इन स्त्रोतों का पूर्ण रूप से उपयोग न होने के कारण पर्यावरण में प्रदूषण फैल रहा है।

— ओजोन परत हमारी पथ्वी का ऐसा कवच है जो हमारी पथ्वी में सूर्य से प्रवेश करने वाली पराबैंगनी किरणों को रोकती है एवं जीवधारियों को हानिकारक किरणों व विकिरणों से बचाती हैं। परन्तु पर्यावरण प्रदूषण के कारण ओजोन परत का ह्रास लगातार बढ़ रहा है।

— परमाणु बमों आदि के परीक्षण पथ्वी के अन्दर या समुद्र की सतह के नीचे या वायु में किये जाते हैं। इन परीक्षणों से अत्यधिक उष्मा व रडियोधर्मी तरंगें उत्पन्न होती हैं जिससे आसपास के कई किलोमीटर क्षेत्र में पड़ने वाले प्राणी, वनस्पति, भवन व पदार्थ नष्ट होते हैं। इतना ही नहीं इन परीक्षणों से मौसम सम्बन्धी पारिस्थितिक सन्तुलन बिगड़ जाता है।

## 6.4 पर्यावरण पारिस्थितिक सन्तुलन की सुरक्षा एवं वैधिक पक्ष (Protection of Ecological Balance and Legal Aspects)

पारिस्थितिक सन्तुलन को बिगाड़ने वाले तत्वों की यदि हम समालोचना करें तो हम कह सकते हैं बीसवीं सदी में जनसंख्या विस्फोट, प्राकृतिक संसाधनों के अन्धाधुन्ध उपयोग तथा वनों की कटाई के कारण पर्यावरण का जबरदस्त ह्रास हुआ है। जल, थल व वायु के प्रदूषित होने से हमारे पारिस्थितिक तंत्र का सन्तुलन बिगड़ रहा है जिसके कारण अतिवष्टि अनावष्टि, बाढ़, सूखा, मरुस्थलीकरण बढ़ रहा है। जन्तुओं तथा पेड़—पौधों की प्रजातियों को नष्ट होने का खतरा उत्पन्न हो गया है। यह सब व्यक्तिगत तथा सामाजिक पर्यावरण को न समझ पाने तथा मानव एवं पर्यावरण की परस्पर क्रिया प्रतिक्रिया के तालमेल के अभाव के कारण हुआ है।

अब आवश्यकता पुनः पारिस्थितिक सन्तुलन बनाने की है। पर्यावरण से स्वतंत्र होने के प्रयास में मनुष्य पर्यावरण पर अधिकाधिक निर्भर होता गया है। पर्यावरण को पुनः अनुकूल बनाने के लिए प्राकृतिक संसाधनों के उचित उपयोग, प्रदूषण को नियंत्रित करने की तथा जनसंख्या व विकास को पर्यावरण के साथ संतुलित करने की अत्यधिक आवश्यकता है।

हमारे देश में पर्यावरण सम्बन्धी संकट की तरफ ध्यान चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत दिया गया। 1972 ई. में एक समिति बनाई गई जिसका काम पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं को देखना और उन्हें सुलझाना था। 1980 में पर्यावरण विभाग की स्थापना की गई जो बाद में 1985 ई. में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय में परिवर्तित हो गया।

उस समय भी और आज भी, देश के सम्मुख समस्या एक ही थी कि किस तरह से पर्यावरण को दूषित होने से बचाया जाये, किस तरह से पर्यावरण की शुद्धता एवं स्वच्छता को बरकरार रखा जाए।

इस सम्बन्ध में यह बात बिलकुल साफ है कि विकास तभी संभव है यदि हम अपने प्राकृतिक संसाधनों को लगातार नष्ट होने एवं प्रदूषित होने से बचाएं। अतः ऐसे हालात में ऊर्जा स्त्रोतों, प्राथमिक स्वास्थ्य एवं सामान्य रोगों का ज्ञान, पर्यावरण नियंत्रण, पर्यावरणीय प्रबंध की रणनीति, सामाजिक एवं पर्यावरण सम्बन्धी विधि पक्ष का ज्ञान होना अति आवश्यक है। कुल मिलाकर, आइये हम उन बातों की चर्चा करें जिनके द्वारा पारस्थितिक सन्तुलन को बनाया जा सकता है—

- बढ़ती जनसंख्या एवं संसाधनों के उपयोग को घटाकर पर्यावरण की क्षमता के अनुसार सामंजस्य स्थापित करना।
- वायु प्रदूषण पर नियंत्रण।
- जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, भूमि प्रदूषण और कीनाशक दवाइयों के उपयोग पर वांछित नियंत्रण।
- वनों की कटाई एवं वनों के विनाश पर रोक के कानून का प्रभावी क्रियान्वन।
- अपारम्परिक ऊर्जा स्त्रोतों का सुनियोजित उपयोग जो पारम्परिक ऊर्जा स्त्रोत का संरक्षण ही नहीं करेगा बल्कि पर्यावरण की स्वच्छता में भी सहयोगी रहेगा।
- खनिज पदार्थों का दोहन सरकारी कानून के अनुसार ही करें।
- पर्यावरण संरक्षण हेतु जनजागरण का वातावरण पैदा करना।
- पारिस्थितिक सन्तुलन बनाये रखने के लिए सभी प्रयासों को सरकारी प्रोत्साहन देना।
- औद्योगिक इकाइयों का प्रदूषण नियंत्रण पर जोर देना, साथ ही कच्चे माल का सदुपयोग भी आवश्यक है।
- घरेलू क्षेत्र में भी प्राकृतिक संसाधनों जैसे जल, ऊर्जा स्त्रोत एवं वन सम्पदा का सही एवं सुनियोजित उपयोग।
- वर्तमान में प्राकृतिक संसाधनों को एकीकृतरूप में विभिन्न कार्यों में उपयोग करना।

## विधिक पक्ष

भारत सरकार ने विश्व पर्यावरण नीति एवं संधियों को ध्यान में रखकर देश में पर्यावरण संतुलन बनाये रखने तथा प्रदूषण को नियंत्रित करने की दिशा में प्रशंसनीय प्रयास किये हैं। वर्ष 1952 में देश में राष्ट्रीय वन नीति पर एक प्रस्ताव पारित किया गया। जिसके अनुसार सम्पूर्ण राष्ट्र अपने भौगोलिक क्षेत्र का एक तिहाई भाग वनों से आच्छादित करने का उद्देश्य रखेगा। पर्यावरण संरक्षण के लिए कुछ अधिनियम, नियम तथा धाराएँ बनाई गयी हैं जिनमें से मुख्य इस प्रकार हैं—

1. जल अधिनियम, 1974
2. वायु अधिनिमय, 1981
3. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986
4. वन संरक्षण अधिनियम, 1980
5. वन्य जीवन सुरक्षा अधिनियम, 1972

- जल अधिनिमय, 1974 की धारा 24 के अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति या फर्म या उद्योग या संस्थान किसी भी जल स्त्रोत में कोई भी प्रदूषक या जहर या अन्य पदार्थ विसर्जन नहीं कर सकता, जिससे कि जल के गुणों में परिवर्तन होता हो। यदि कोई व्यक्ति इस अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन या अवहेलना करता है तो उसे काननून अपराधी माना जायेगा।
- वायु अधिनियम, 1981 की धारा 21 व 22 में कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति राज्य प्रदूषण नियंत्रण मण्डल के मानकों से ज्यादा प्रदूषक तत्व यदि वायु में विसर्जित करता है एवं नियमों का पालन नहीं करता है तो उसे काननू अपराधी माना जायेगा।
- पर्यावरण अधिनियम, 1986 का व्यापक उद्देश्य पर्यावरण का संरक्षण तथा उसमें सुधार करना है। यह अधिनियम बड़ा व्यापक बनाया गया तथा उन सभी पहलुओं को इससे सम्मिलित किया गया जो जल अधिनियम, 1974 या वायु अधिनियम 1981 में छूट गये थे। इस अधिनियम में प्रावधान रखा गया है यदि कोई उद्योग इस अधिनियम की अवहेलना करता है तो सरकार उस उद्योग या संयंत्र को बंद कर सकती है। उस इकाई की विद्युत, जल एवं अन्य सभी सुविधाएं बंद कर सकती है, उसे पांच वर्ष की सजा, एक लाख जुर्माना या दोनों किये जा सकते हैं।
- पब्लिक लाएबल इंश्यूरेंस अधिनियम, 1991 के अनुसार सभी कुओं एवं नालों की सफाई का ध्यान रखना है। इसके अलावा वायु की गुणवत्ता बढ़ाना तथा प्रदूषण नियंत्रण करना इस अधिनियम के कार्य हैं।

हरियाणा राज्य में पर्यावरण नियंत्रण बोर्ड की स्थापना की गई है जिसके अन्तर्ग किसी भी उद्योग या संस्थान को बहिःस्राव के विसर्जन हेतु राज्य प्रदूषण नियंत्रण मण्डल से आज्ञा लेना आवश्यक है।

हमारी राष्ट्रीय औद्योगिक नीति में पर्यावरण सुरक्षा की पालना अनिवार्यतः लागू की गई है, जो औद्योगिक इकाई जल एवं वायु प्रदूषण के प्रभाव को कम करके वातावरण में छोड़ती है जिससे पर्यावरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता उनको विशेष लाभ दिये जाते हैं। बड़े शहरों की सीमा में प्रदूषण फैलाने वाली औद्योगिक इकाइयाँ लगाने पर प्रतिबंध लगा दिये गये हैं।

इन सब के अलावा कुछ राज्यों में पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं से जूझने के लिए विशेष पर्यावरण कोर्ट है जो सिर्फ उन दोषी व्यक्तियों या संस्थान के विरूद्ध मुकदमा दायर करती है जो पर्यावरण के नियमों का उल्लंघन करते हैं।

## 6.5 सारांश

इस अध्याय में हमने जाना कि स्वच्छ वातावरण हमारे जीवन की आधारभूत आवश्यकता है। वर्तमान में पर्यावरण के समान ही पर्यावरण प्रदूषण भी काफी व्यापक पहलू है। पर्यावरण प्रदूषण एक विश्वव्यापी समस्या है और शायद ही कोई क्षेत्र बचा हो जिस पर इसका प्रभाव न पड़ा हो।

पर्यावरण प्रदूषण प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, वनों का विनाश, घटते वन्य जीव, विकिरण के जैवीय दुष्प्रभाव, कृषि रसायनों द्वारा प्रदूषण, अस्थिर पारिस्थितिक तंत्र, जनसंख्या में असामान्य वद्धि इसी विकास का परिणाम है।

अतः आवश्यकता पुनः पारिस्थितिक सन्तुलन बनाने की है। साधारण शब्दों में जीवों तथा उनके पर्यावरण के परस्पर सम्बन्धों के विज्ञान को 'पारिस्थितिक' कहते हैं। पर्यावरण को पुनः अनुकूल बनाने के लिए प्राकृतिक संसाधनों के उचित उपयोग, प्रदूषण को नियंत्रित करने की तथा जनसंख्या व विकास को पर्यावरण के साथ संतुलित करने की अहम जरूरत है।

इस इकाई में इन सबके अलावा अन्त में हमने पर्यावरण सम्बन्धित नियमों व कानूनों को पढ़ा जो कि हमारे पर्यावरण की सुरक्षा के लिए बनाये गए हैं। इन अधिनियमों के अन्तर्गत केन्द्रीय व राज्य प्रदूषण नियंत्रण मण्डल के कार्य निम्न हैं—वायु की गुणवत्ता बढ़ाना तथा प्रदूषण नियंत्रण करना, मानक तैयार करना, जानकारी प्रसारित–प्रचारित करना, पर्यावरण सम्बन्धी सलाह सरकार को प्रदान करना आदि।

## 6.6 मुख्य शब्द

**'पारिस्थितिकी':** जीवों तथा उनके पर्यावरण के परस्पर सम्बन्धों के विज्ञान को पारिस्थितिकी कहते हैं।

**पारिस्थितिक सन्तुलनः** प्रकृति के द्वारा पारिस्थितिक तंत्र के जाल में सन्तुलन बनाना पारिस्थितिक सन्तुलन कहलाता है।

## 6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

'हमारा पर्यावरण' गांधी शांति प्रतिष्ठान, विज्ञान एवं पर्यावरण केन्द्र, नई दिल्ली।

माथुर, ए.एन. राठौर, एन.एस. एवं विजय वी.के., 'पर्यावरण शिक्षा' हिमांशु पब्लिकेशन, उदयपुर–1993

Diamond, R.M.E.; 'The Prevention of Pollution', Pitman Publishing, London.

Sharma, Hemant, Lata: Environmental Protection and Law, Green News – A quarterly magazine of Environmental Awareness, Vol. 4 (3&4), 198 Pg. No. 14-15.

# इकाई–2 (b)

# अध्याय–1: अध्यापन कला विश्लेषण (Pedagogical Analysis)

**उद्देश्यः**

प्रस्तुत अध्याय को पढ़ने के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे किः

- प्रत्ययों की पहचान कर सकें।
- व्यवहारपरक परिवर्तनों को सूचीबद्ध कर सकें।
- क्रियाओं और प्रयोगों को सूचीबद्ध कर सकें।
- मूल्यांकन प्रविधियों को सूचीबद्ध कर सकें।

**संरचनाः**

1.1. प्रस्तावना
1.2. प्रत्ययों की पहचान
1.3. व्यवहारपरक परिवर्तनों को सूचीबद्ध करना
1.4. क्रियाओं और प्रयोगों को सूचीबद्ध करना
1.5. मूल्यांकन प्रविधियों को सूचीबद्ध करना
1.6. सारांश
आदर्श उत्तर
1.7. मुख्य शब्द
1.8. संदर्भ ग्रंथ

## 1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत अध्याय में हम अध्यापन–कला विश्लेषण करना सीखेंगे। इस इकाई के पिछले अध्यायों में हमने जीव विज्ञान की विषय–वस्तु से सम्बन्धित कुछ प्रकरणों का अध्ययन किया है। इकाई के प्रस्तुत भाग में हम इन प्रकरणों में से किसी एक से सम्बन्धित अध्यापन कला विश्लेषण करना सीखेंगे।

अध्यापन कला विश्लेषण से अभिप्राय उन सभी बिन्दुओं के विश्लेषण से है जिनका उपयोग अध्यापक अध्यापन क्रिया के दौरान करता है।

अध्यापन कला विश्लेषण के लिए हम यहाँ चार मुख्य बिन्दुओं का अनुसरण करेंगे।

1. प्रत्ययों की पहचान (Identification of Concepts)
2. व्यवहारपरक परिवर्तनों की सूची बनाना (Listing Behavioural Outcomes)

3. क्रियाओं और प्रयोगों को सूचीबद्ध करना (Listing activities and Experiments)
4. मूल्यांकन प्रविधियों को सूचीबद्ध करना (Listing Evaluation Techniques)

## अध्यापन कला विश्लेषण का उदाहरण

**प्रकरण–** **प्रकाश-संश्लेषण**

**कक्षा–** **X**

**Pedagogical Analysis**

I. **संप्रत्यय की पहचान**

(1) मुख्य प्रत्यय (Major Concept)

(क) प्रकाश–संश्लेषण प्रक्रिया

(ख) पत्ती की संरचना

(2) सूक्ष्म प्रत्यय (Minor Concept)

(क) प्रकाश–संश्लेषण का अर्थ

(ख) प्रकाश–संश्लेषण का महत्त्व

(ग) प्रकाश–संश्लेषण के लिए आवश्यक कच्चे पदार्थ

(घ) प्रकाश–संश्लेषण का स्थान

(ङ) प्रकाश–संश्लेषण से सम्बन्धित प्रयोग

II. **व्यवहारपरक परिवर्तनों को सूचीबद्ध करना**

इस प्रकरण की समाप्ति के पश्चात विद्यार्थी निम्नलिखित योग्यताएं प्राप्त कर लेंगे–(व्यवहारपरक उद्देश्यों का निर्माण किस प्रकार किया जाता है, यह आप पिछले यूनिट 1.4 में सीख चुके हैं।)

(1) विद्यार्थी प्रकाश–संश्लेषण को परिभाषित कर सकेंगे।

(2) विद्यार्थी प्रकाश–संश्लेषण के महत्त्व का वर्णन कर सकेंगे।

(3) विद्यार्थी प्रकाश–संश्लेषण के लिए आवश्यक कच्चे पदार्थों ($Co_2$, $H_2o$, chl., Light) आदि की व्याख्या कर सकेंगे।

(4) विद्यार्थी प्रकाश–संश्लेषण के स्थान की पहचान कर सकेंगे।

(5) विद्यार्थी प्रकाश–संश्लेषण की प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे।

(6) विद्यार्थी प्रकाश–संश्लेषण से सम्बन्धित विभिन्न प्रयोग कर सकेंगे।

(7) विद्यार्थी प्रकाश–संश्लेषण प्रक्रिया से सम्बन्धित विभिन्न चित्र बना सकेंगे।

(8) विद्यार्थी पत्ती की संरचना की चित्र सहित व्याख्या कर सकेंगे।

III. **क्रियाओं और प्रयोगों को सूचीबद्ध करना**

(1) अध्यापक प्रकाश–संश्लेषण की परिभाशा एवं रासायनिक अभिक्रिया चाक पट्ट पर लिखेगा।

(2) अध्यापक प्रकाश–संश्लेषण के स्थान की पहचान करवाने के लिए पत्ती और पत्ती की काट का चित्र/चार्ट दिखाएगा।

(3) अध्यापक प्रकाश–संश्लेषण के लिए आवश्यक कच्चे पदार्थों की उपस्थिति एवं महत्त्व का ज्ञान करवाएगा। इसके लिए अध्यापक दैनिक जीवन से सम्बन्धित उदाहरणों और विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान का प्रयोग करेगा।

(4) प्रकाश–संश्लेषण से सम्बन्धित प्रयोगों को विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता लेकर कक्षा में किया जाएगा।

(5) **प्रयोग-1**

**क्लोरोफिल की आवश्यकता के लिए परीक्षणः**

एक पौधे के गमले को निरंतर 72 घंटे तक अंधकार में रखिए। अब इसकी एवं किसी दूसरे पादप ( जो लंबे समय तक धूप में रखा जा चुका हो) की एक–एक पत्ती को लेकर कुछ मिनटों तक उबलते जल में डालिए। इस प्रक्रिया से एंजाइम का विगुणन हो जाता है। तत्पश्चात पत्तियों को ऐल्कोहल में उबालिए। इस प्रक्रिया से पर्णहरित (क्लोरोफिल) बाहर निकल जाएगी एवं पत्तियां रंगहीन हो जाएंगी। पत्तियों को मदु बनाने के लिए उन्हें पुनः गर्म जल में रखिए। अब दोनों ही पत्तियों पर आयोडीन विलयन की कुछ बूंदे डालकर रंग का अवलोकन कीजिए। धूप में रखे पादप की पत्तियों का रंग तो नीला हो जाएगा (जो स्टार्च की उपस्थिति दर्शाता है) जबकि अंधकार में रखी पत्ती भूरी हो जाती है।

**प्रयोग-2**

**प्रकाश की आवश्यकता का परीक्षणः**

एक स्टार्च रहित पौधा लें। पौधे को स्टार्च रहित करने के लिए इसे तीन दिन तक अंधेरे में रखें। इस स्टार्च रहित पौधे के एक पत्ती को कार्बन पेपर से ढंक दें जिससे पत्ती पर प्रकाश न पड़े। अब पौधे को 6 घंटे के लिए सूर्य के प्रकाश में रख दें। इसके पश्चात् कार्बन पेपर से ढके पत्ती का प्रयोग नं. 1 के अनुसार परीक्षण करें। आप देखेंगे कि पत्ता भूरा रंग का हो जाएगा। इस पत्ते को सूर्य का प्रकाश नहीं मिला है इसलिए इसमें स्टार्च की उपस्थिति लगभग नगण्य होगी जबकि दूसरे पत्ते स्टार्च की उपस्थिति का प्रमाण देंगे।

**प्रयोग-3**

**कार्बन डाईऑक्साइड की आवश्यकता का परीक्षण**

गमले में रोपा हुआ एक ऐसा पौधा लीजिए जिसकी पत्तियां लंबी हों। अब एक बोतल के आधार पर अल्पमात्रा में पोटैशियम हाइड्रॉक्साइड (KOH) रखिए। पौधे की एक पत्ती को बोतल के कॉर्क के दो भागों के बीच इस प्रकार रखिए कि पत्ती का आधा भाग बोतल के बाहर ही निकला रहे। इस प्रयोग के उपकरण को तीन चार दिनों तक प्रकाश में छोड़ दीजिए। तत्पश्चात प्रयोग–1 के अनुसार उक्त पत्ती में स्टार्च की उपस्थिति का अवलोकन कीजिए। आप क्या देखते हैं? पत्ती का केवल वह भाग जो बोतल के बाहर था, स्टार्च को दर्शाता है। ऐसा बोतल के अंदर उपस्थित कार्बन डाईऑक्साइड को पोटैशियम हाइड्रॉक्साइड द्वारा अवशोषित कर लेने के कारण होता है। इससे पत्ती के बोतल के अंदर वाले भाग में प्रकाश संश्लेषण के लिए कार्बन डाईऑक्साइड की विद्यमानता अनिवार्य है।

**प्रयोग- 4**

**ऑक्सीजन की मुक्तता संबंधी परीक्षण**

एक बीकर, कीप, परखनली, एक जलीय पौधा, पानी और थोड़ा बेकिंग सोडा लें। बीकर को पानी से आधा भर दें और जलीय पौधे को इसमें रख दें। पौधे को उल्टी कीप से ढ़क दें। परखनली को पानी से भर कीप की डंडी पर उल्टा रख दें। इस उपकरण को सूर्य के प्रकाश में रख दें। कुछ देर पश्चात आप पानी में बुलबुले निकलते हुए देखेंगे जो परखनली के ऊपरी भाग में एकत्रित हो जाते हैं और परखनली में जल स्तर नीचे गिर जाता है। परखनली में उपस्थित गैस की जांच करने पर पता चलता है कि यह ऑक्सीजन गैस है।

IV. **मूल्यांकन प्रविधियों को सूचीबद्ध करना**—विद्यार्थियों का मूल्यांकन करने के लिए अध्यापन निम्नलिखित प्रविधियों का उपयोग करेगा

(1) मौखिक परीक्षण

(2) लिखित परीक्षण—अध्यापक विद्यार्थियों से निम्नलिखित प्रश्न पूछेगा–

(क) प्रकाश–संश्लेषण की परिभाषा बताओ।

(ख) प्रकाश–संश्लेषण के महत्त्व का वर्णन करो।

(ग) प्रकाश–संश्लेषण के लिए आवश्यक कच्चे पदार्थों की व्याख्या करो।

(घ) प्रकाश–संश्लेषण किस स्थान पर होता है?

(ङ) प्रयोग द्वारा सिद्ध करो कि प्रकाश–संश्लेषण प्रक्रिया के लिए क्लोरोफिल आवश्यक है।

(च) प्रयोग द्वारा सिद्ध करो कि प्रकाश–संश्लेषण प्रक्रिया के लिए कार्बन–डाई–ऑक्साइड आवश्यक है।

(छ) प्रयोग द्वारा सिद्ध करो कि प्रकाश–संश्लेषण प्रक्रिया में ऑक्सीजन एक उपोत्पाद के रूप में निकलती है।

(ज) चित्र द्वारा स्पष्ट करो कि प्रकाश–संश्लेषण प्रक्रिया में ऑक्सीजन वायुमण्डल में मुक्त होती है।

(झ) पत्ती की संरचना की चित्र सहित व्याख्या करो।

(ा) प्रकाश–संश्लेषण प्रक्रिया का वर्णन करो।

## 1.6 सारांश

अध्यापन क्रिया विश्लेषण में पहले प्रत्ययों की पहचान की जाती है। प्रकरण से सम्बन्धित बहद एवं सूक्ष्म प्रत्ययों की पहचान करके उन्हें स्पष्ट रूप से लिखा जाता है। प्रकरण को पढ़ाने के पश्चात विद्यार्थियों के व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट शब्दावली में लिखा जाता है। इसके पश्चात शिक्षण के दौरान अध्यापक एवं विद्यार्थियों द्वारा की जाने वाली क्रियाओं, प्रयोगों आदि की सूची बनाई जाती है। विद्यार्थियों का मूल्यांकन किस प्रकार किया जाएगा, इन सब प्रविधियों को भी सूचीबद्ध कर लिया जाता है।

## 1.7 मुख्य शब्द

**संप्रत्ययः** किसी प्रकरण के सम्बन्ध में बनाई गई अवधारणा।

**पीड़ागोजीः** अध्यापक द्वारा की जाने वाली क्रियाओं का अध्ययन।

## 1.8 संदर्भ ग्रन्थ

**Singh, L.C.**– 'Pedagogical Analysis', Department of Teacher Education, NCERT, New Delhi.

# इकाई-3 (a)

# अध्याय-1: इकाई योजना बनाना (Unit Planning)

**उद्देश्य:**

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे कि:

- इकाई योजना का अर्थ बता सकें।
- अच्छी इकाई की विशेषताओं की सूची बना सकें।
- इकाई योजना के विभिन्न चरणों को पहचान सकें।

**संरचना:**

1.1 प्रस्तावना
1.2 इकाई योजना – अर्थ
1.3 अच्छी इकाई की विशेषताएं
1.4 इकाई योजना के चरण
1.5 सारांश
आदर्श उत्तर
1.6 मुख्य शब्द
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

## 1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई 3(a) के अध्ययन से हम अनुदेशनात्मक सामग्री के विकास से परिचित हो जाएंगे। इस इकाई को दो भागों में बांटा गया है। प्रथम भाग विषय–वस्तु को विद्यार्थियों तक पहुंचाने से सम्बन्धित है इस प्रथम भाग में यूनिट/इकाई योजना बनाना, पाठ योजना बनाना, सहायक सामग्री का निर्माण करना, जल–जीव घर का विकास और प्रदर्शन–प्रयोगों का विकास आदि सम्मिलित हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम इकाई योजना का अध्ययन करेंगे।

## 1.2 इकाई योजना - अर्थ (Unit Plan - Meaning)

इकाई नियोजन अथवा इकाई योजना बनाने से अभिप्राय विषय वस्तु को छोटे भागों अर्थात् इकाईयों में बांटने से है। इकाई योजना बनाने का मूल उद्देश्य विषय–वस्तु का उचित रूप से गठन करना है क्योंकि विषय–वस्तु के उचित गठन से सीखने की क्रिया मनोवैज्ञानिक दष्टि से स्वाभाविक बन जाती है। किसी कक्षा विशेष के लिए प्रस्तावित पाठ्यक्रम में बहुत से प्रकरण (Topics) होते हैं। ऐसे प्रकरण जो एक दूसरे से सम्बन्धित हों, एक जैसे उद्देश्यों की पूर्ति करते हों और जिनको सरलतापूर्वक

**समावाय** किया जा सके, एक इकाई में रखे जा सकते हैं। विद्यार्थियों के व्यापक अनुभव क्षेत्रों के आधार पर भी पाठ्यक्रम को कई इकाईयों में बांटा जा सकता है। शिक्षक कुल प्राप्त समय के साथ इन इकाइयों की तुलना करके यह ज्ञात कर सकता है कि एक इकाई को कितने दिनों या सप्ताहों में समाप्त करना है। फिर वह इकाई को पाठों की संख्या में बांट सकता है। जहाँ तक संभव हो, प्रत्येक पाठ अपने आप में पूर्ण होना चाहिए।

बासिंग के अनुसार – "एक इकाई में व्यापक रूप से सम्बधित एवं अर्थपूर्ण क्रियाओं को स्थान दिया जाता है जिससे महत्वपूर्ण शैक्षिक अनुभव प्रदान किये जा सकें, उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके जिसके फलस्वरूप विद्यार्थियों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन आ जाएं"।

## 1.3 एक अच्छी इकाई की विशेषताएं (Characteristics of a Good Unit)

एक अच्छी इकाई में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिएं–

1. इसके लक्ष्य एवं उद्देश्य स्पष्ट एवं सुनिश्चित होने चाहिए।
2. इसका दूसरे विषयों एवं दैनिक जीवन के अनुभवों से समावाय किया जा सके।
3. यह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित हो।
4. इसमें व्यक्तिगत विभिन्नताओं को उचित स्थान दिया जाए।
5. इसमें विद्यार्थियों के अनुभवों को महत्व दिया जाए।
6. यह विद्यार्थियों में अपेक्षित व्यावहारिक परिवर्तन ला सके।
7. एक अच्छी इकाई की लम्बाई बहुत अधिक नहीं होनी चाहिए।
8. यह विभिन्न प्रयोगों–प्रदर्शनों, प्रयोजन आदि के आयोजन को बढ़ावा दे।

## 1.4 इकाई योजना के चरण (Steps of a Unit Plan)

किसी इकाई योजना के निम्नलिखित चरण हो सकते हैं–

1. विषय – जीव विज्ञान
2. उपविषय – (इकाई का शीर्षक) .....
3. कक्षा (जिसे पढ़ाना है) .....
4. समय (कालांश संख्या) .....
5. सहायक सामग्री .....
6. विषय वस्तु .....
7. उपइकाई (नाम एवं. नं.) .....
   .....
8. उद्देश्य (प्रत्येक उप–इकाई के लिए) .....
   .....
9. अध्यापक क्रियाएं .....
   .....
10. विद्यार्थी क्रियाएं .....
    .....

11. अध्यापक विद्यार्थी क्रियाएं .....

.....

12. गह कार्य .....

13. अनुसरणात्मक कार्य .....

14. मूल्यांकन .....

15. संदर्भ .....

इकाई योजना बनाने के लिए आगे दो प्रारूप दिये गये हैं। प्रारूप I इकाई के विभिन्न घटकों की जानकारी प्रदान करता है जबकि प्रारूप II प्रत्येक उप–इकाई/प्रकरण से संबंधित पाठ, व्यवहारपरक उद्देश्यों, शिक्षण विधि, गह कार्य, मूल्यांकन आदि की जानकारी प्रदान करता है। पहले प्रारूप I भरा जाना चाहिए और उसके बाद प्रत्येक प्रकरण के विस्तारपूर्वक नियोजन के लिए प्रारूप II भरा जाना चाहिए।

**प्रारूप - I**

विषयः ..... कक्षा. .....

इकाई .....

इकाई के मुख्य उद्देश्य.....

| क्र.सं. S.No. | उपविषय Topics | सहायक पाठकों की संख्या No. of lessons Required | समय अवधि Time Period | विषय-वस्तु का क्षेत्र Scope of Content | शिक्षण-विधि Method of Teaching | सहायक सामग्री Teaching Aids |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | | | | | | |
| 2. | | | | | | |
| 3. | | | | | | |
| 4. | | | | | | |
| 5. | | | | | | |
| 6. | | | | | | |
| 7. | | | | | | |
| 8. | | | | | | |
| 9. | | | | | | |

**प्रारूप - II**

उपविषय (प्रारूप I से) .....

पाठ संख्या (Lesson No.) .....

| क्र.सं. S.No. | उप प्रकरण Sub-Topic | व्यवहारपरक उद्देश्य Behavioural Objectives | विधि Method ( Teacher-Pupil Activity) | विद्यार्थियों को दिया कार्य Pupil's Assignments | मूल्यांकन Evaluation |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | | | | | |
| 2. | | | | | |
| 3. | | | | | |
| 4. | | | | | |
| 5. | | | | | |
| 6. | | | | | |
| 7. | | | | | |
| 8. | | | | | |
| 9. | | | | | |

### अपनी प्रगति जांचिए

(i) इकाई योजना के विभिन्न चरण कौन–कौन से हैं ?

(ii) इकाई योजना से क्या अभिप्राय है?

## 1.5 सारांश

इकाई योजना बनाने से अभिप्राय विषय–वस्तु का छोटी–छोटी इकाईयों में गठन करने से है जिससे अधिगम मनोवैज्ञानिक एवं प्रभावशाली ढ़ंग से हो सके। इकाई योजना बनाते समय अध्यापक को विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान, अनुभवों, उपलब्ध समय और विषय–वस्तु आदि को ध्यान में रखना चाहिए। इकाई के लक्ष्य एवं उद्देश्य स्पष्ट व सुनिश्चित होने चाहिएं। एक अच्छी इकाई न तो बहुत अधिक बड़ी होती है और नही छोटी। इकाई विद्यार्थियों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाने वाली एवं मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित होनी चाहिए और इसमें व्यक्तिगत विभिन्नताओं के लिए स्थान होना चाहिए।

इकाई योजना के पहले चरण में, विभिन्न प्रकरणों, सहायक पाठों की संख्या, प्रत्येक पाठ के लिए आवश्यक समय, विषय–वस्तु के क्षेत्र, शिक्षण–विधियों, सहायक सामग्री आदि का निर्धारण किया जाता है। इसके पश्चात प्रत्येक प्रकरण से सम्बन्धित

उप–प्रकरणों, व्यवहारपरक उद्देश्यों, अध्यापक–विद्यार्थी क्रियाओं, विद्यार्थियों को दिया जाने वाला गह–कार्य, मूल्यांकन प्रविधियों आदि का निर्धारण किया जाता है।

**आदर्श उत्तर**

(i) कृपया 1.4 में देखें (ii) कृपया 1.2 में देखें।

## 1.6 मुख्य शब्द

**इकाई**– विषय–वस्तु का ऐसा block जिसमें सम्बन्धित प्रकरणों, व अर्थपूर्ण क्रियाओं को स्थान दिया जाता है जिससे शिक्षण उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके और विद्यार्थियों को महत्वपूर्ण शैक्षिक अनुभव प्रदान करके उनके व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाये जा सकें।

## 1.7 संदर्भ ग्रन्थ

**Soni, Anju :** 'Teaching of Life Science', Tandon Publications, Ludhiana.

**Sharma, R.C.:** 'Modern Science Teaching', Dhanpat Rai & Sons, New Delhi, 1975.

# इकाई-3 (a)

# अध्याय-2: पाठ योजना बनाना (Lesson Planning)

**उद्देश्यः**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे किः

- पाठ योजना का अर्थ, परिभाषा व प्रकृति को बता सकें।
- एक अच्छी पाठ योजना की विशेषताओं का वर्णन कर सकें।
- पाठ योजना की आवश्यकता एवं महत्व की सूची बना सकें।
- पाठ योजना के विभिन्न उपागमों के नाम बता सकें।
- हरबर्ट उपागम का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकें।
- जीव विज्ञान के किसी उपविषय से सम्बन्धित पाठ योजना तैयार कर सकें।

**संरचनाः**

2.1 प्रस्तावना
2.2 पाठ योजना का प्रत्यय
2.3 अच्छी पाठ योजना की विशेषताएं
2.4 पाठ योजना की आवश्यकता एवं महत्व
2.5 पाठ योजना की पूर्व आवश्यकताएं
2.6 पाठ योजना के उपागम
2.7 हरबर्ट उपागम
2.8 पाठ योजना के प्रारूप
2.9 सारांश
आदर्श उत्तर
2.10 मुख्य शब्द
2.11 संदर्भ ग्रन्थ

## 2.1 प्रस्तावना

अब तक हम इकाई योजना का अध्ययन कर चुके हैं। पिछले अध्याय में हमने पढ़ा कि इकाई योजना के दौरान यह निर्धारित किया जाता है कि किसी प्रकरण को पढ़ाने के लिए कितने पाठों, सहायक सामग्री आदि की आवश्यकता होगी एवं अध्यापक किस शिक्षण विधि, मूल्यांकन तकनीकों आदि का प्रयोग करेगा। इकाई योजना बनाने के पश्चात पाठ योजना बनाना महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत अध्याय में हम पाठ योजना का अध्ययन करेंगे। पाठ योजना बनाने से पूर्व पाठ योजना के अर्थ, संप्रत्यय, आवश्यकता एवं महत्व आदि की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है।

## 2.2 पाठ योजना का प्रत्यय
### (Concept of Lesson Plan)

पाठ योजना शिक्षण प्रक्रिया की व्यवस्था का व्यावहारिक रूप होती है। यह शिक्षण की व्यवस्था को सुदढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षण प्रक्रिया की तीन अवस्थायें होती है। पूर्व–अवस्था (Preactive stage), अन्तःक्रिया अवस्था (Interactive stage) एवं उत्तरोत्तर–क्रिया अवस्था (Post-active stage)।

पाठ–योजना का जन्म पूर्व अवस्था में होता है, अर्थात् अध्यापक के कक्षा में प्रवेश करने से पहले ही पाठ–योजना का निर्माण कर लिया जाता है। पाठ योजना में अध्यापक अपनी समस्त शिक्षण क्रियाओं का एक ढांचा तैयार करता है जिससे शिक्षण कार्य को निश्चित दिशा मिल सके। दूसरे शब्दों में, अध्यापक अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को अर्जित करने के लिए जो जो क्रियाएं कक्षा में करेगा, उन्हें एक विशेष, नियोजित ढ़ंग से लिखना ही 'पाठ योजना' कहलाता है।

पाठ योजना के जन्म के समय ही अध्यापक में आत्मविश्वास का जन्म होने लगता है। इससे अध्यापक बिना किसी हिचकिचाहट के कक्षा में शिक्षण कार्य कर सकता है तथा विद्यार्थियों के प्रश्नों के उत्तर दे सकता है। पाठ–योजना के अर्थ एवं विभिन्न पक्षों को समझने के लिए विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों ने विभिन्न परिभाषाएं दी हैं। इन सभी परिभाषाओं में यह बात निश्चित है कि 'पाठ योजना' तैयार करने की अवस्था में अध्यापक को शिक्षण से सम्बन्धित विभिन्न क्रियाओं का नियोजन करना होता है। इनमें से कुछ मुख्य परिभाषाएं इस प्रकार हैं–

1. अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा शब्दकोश के अनुसार, "पाठ योजना किसी पाठ के उन आवश्यक बिन्दुओं की रूप रेखा है जिन्हें उस क्रम में व्यवस्थित किया जाता है जिस क्रम में उन्हें अध्यापक द्वारा विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाना होता है।"

   "Lesson plan is the outline of the important points of a lesson arranged in a order in which they are to be presented to students by the teacher."

   International Dictionary of Education, Ed. G. Terry Page J.B. Thomas.

   लैस्टर बी. सैन्ड्ज के अनुसार, – "पाठ योजना वास्तव में क्रिया की योजना है। अतः इसमें अध्यापक का क्रियात्मक दर्शन, उसका दार्शनिक ज्ञान, उसका विद्यार्थियों से सम्बन्धित ज्ञान, शिक्षण सम्बन्धी सामग्री का ज्ञान तथा प्रभावशाली विधि के प्रयोग के लिये उसकी योग्यता सम्मिलित है।"

   "A lesson plan is actually a plan of action. It, therefore, includes the working philosophy of the teacher, her knowledge of philosophy, her information about and understanding of her pupils, her comprehension of the objectives of education, her knowledge of the material to be taught and her ability to utilise effective methods."

   Lester B. Sands

   बिनिंग और बिनिंग के अनुसार, – "दैनिक पाठ योजना में उद्देश्यों को परिभाषित करना, पाठ्यवस्तु का चयन करना एवं उसे क्रमबद्ध रूप से व्यवस्थित करना तथा विधियों एवं प्रक्रिया का निर्धारण करना सम्मिलित है।"

   "Daily lesson planning involves defining the objectives, selecting and arranging the subject-matter and determining the method and procedures."

   Binning and Binning

   कार्टर वी. गुड के अनुसार, – "पाठ योजना पाठ के महत्वपूर्ण बिन्दुओं की शिक्षण रूपरेखा है। ये महत्वपूर्ण बिन्दु उस क्रम में गठित किये जाते हैं जिस क्रम में उन्हें प्रस्तुत करना होता है। इसमें लक्ष्यों, अपेक्षित बिन्दुओं, पूछे जाने वाले प्रश्नों, सन्दर्भ सामग्री दत्तकार्यों आदि का समावेश होता है।"

   "A lesson plan is a teaching outline of the important points of lesson arranged in order in which they are to be presented. It may include objectives, points to be made, questions to be asked, references to materials, assignments etc."

   Carter V. Good

उपरलिखित विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि पाठ योजना पाठ के उन मुख्य बिन्दुओं की रूपरेखा होती है जिन्हें अध्यापक को निर्धारित अनुदेशनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये विशिष्ट कालांश में पढ़ाना होता है। इसमें स्पष्ट रूप से बताया जाता है कि पहले क्या किया जा चुका है, अब विद्यार्थियों ने क्या करना है, किन क्रियाओं का संचालन करना है और विद्यार्थियों को उन क्रियाओं में किस प्रकार व्यस्त रखना है। इसमें पाठ के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों तथा अध्यापक द्वारा प्रयोग की जाने वाली विधियों एवं प्रविधियों का स्पष्ट उल्लेख होता है। इसमें कक्षा में की जाने वाली क्रियाओं का भी उल्लेख होता है। वास्तव में, पाठ योजना अध्यापक के कक्षीय अनुभवों का मानसिक चित्र है जिसे वह लिखित रूप में व्यक्त करता है। यह प्रभावशाली शिक्षण का हृदय है।

इस प्रकार पाठ–योजना में अध्यापक को निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना होता है–

1. विषय के व्यापक लक्ष्य (Broader Aims of the Subject)
2. पाठ के कक्षीय उद्देश्यों को परिभाषित करना (Defining the classroom objectives of the lesson)
3. निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये पाठ से संबंधित विषय–वस्तु को गठित करना (Organisation of the subject matter to be covered in the lesson for achieving the stipulated objectives)
4. विषय वस्तु को प्रस्तुत करने की विधि, शिक्षण युक्तियों कक्षा प्रबन्ध आदि का चयन करना (Selection of method of presenting the subject matter, teaching strategies, class room management etc.)
5. मूल्यांकन एवं पष्ठपोषण की उचित व्यवस्था (Appropriate provision for evaluation and feedback)

## 2.3 अच्छी पाठ योजना की विशेषताएं (Characteristics of Good Lesson Plan)

एक अच्छी पाठ–योजना विस्तत एवं क्रमबद्ध होनी चाहिए। पाठ योजना इस बात पर निर्भर करती है कि कक्षा में क्या हो चुका है और क्या होना शेष है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'A Handbook for Secondary Colleges of Education; Student-Teaching and Evaluation' में अच्छी पाठ योजना की निम्नलिखित विशेषताओं का वर्णन किया गया है–

1. **पाठ योजना भली-भांति नियोजित हो (Good Plan is well considered plan):** एक अच्छी पाठ योजना अच्छी तरह से नियोजित होती है जिसमें विशिष्ट विषय के उपविषय या इकाई शिक्षण के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विशिष्ट सामग्री का विवरण, शिक्षण विधियां, प्रविधियां एवं युक्तियां अच्छी तरह से सोच कर चुनी होती हैं। कोई भी शिक्षक प्रतिदिन एक ही विधि का चयन नहीं कर सकता। वह शिक्षण विधियों में भिन्नता लाना चाहेगा। अतः एक अच्छी पाठ–योजना में इस प्रकार का लचीलापन होता है जिससे शिक्षक अपनी शिक्षण–विधियों में बदलाव या भिन्नता ला सके। प्रभावी शिक्षण के लिए यह आवश्यक नहीं होता कि शिक्षक हर रोज़ एक ही विधि से पढ़ाता रहे।
2. **पाठ योजना के क्रियान्वयन में विचलन नहीं (No deviation during executive of the lesson plan):** अच्छी पाठ योजना की एक विशेषता यह भी होती है कि शिक्षक पाठ–योजना के अनुसार ही चले। पूर्व नियोजित पाठ योजना लागू करते समय वास्तविक पाठ योजना से विचलित नहीं होना चाहिए। अच्छी पाठ योजना शिक्षक को पाठ–योजना के क्रियान्यवन से विचलित नहीं होने देती। अतः यह आवश्यक है कि सभी प्रकार के निर्णय कक्षा में प्रवेश करने से पहले तथा पाठ योजना बनाते समय ही ले लेने चाहिए ताकि शिक्षक पाठ योजना से कम से कम विचलित हो।
3. **अच्छी पाठ-योजना कक्षा-कक्ष गतिविधियों की सूचक होती है (A good lesson plan is indicative of what will happen in classroom):** एक अच्छी पाठ–योजना इन बातों का पहले ही संकेत दे देती है कि कक्षा में क्या कुछ होने वाला है जैसे – किस पक्ष पर प्रश्न पूछे जाने हैं, ब्लैक बोर्ड पर स्कैच कब बनाया जायेगा, शिक्षक किस समय एवं कैसे कथन करेगा, सहायक सामग्री का प्रयोग किस समय एवं किस प्रकार किया जायेगा और पाठ के विकास के लिए विद्यार्थियों की सहभागिता किस स्तर पर ली जाएगी?

पाठ योजना की यह विशेषता तब बहुत ही सहायक होती है जब कोई दूसरा शिक्षक पाठ–योजना को पढ़कर शिक्षण कार्य करता है तथा शिक्षण कार्य उसी स्तर का होता है जैसा कि पाठ लिखने वाला शिक्षक करता।

4. **अच्छी पाठ-योजना सहायक सामग्री की आवश्यकता की संकेतक है (A good lesson plan is indicative of need of teaching aids):** एक अच्छी पाठ योजना हमें यह भी स्पष्ट संकेत देती है कि कक्षा में शिक्षण कार्य के लिए कौन–कौन सीसहायक सामग्री तथा शाब्दिक सामग्री की आवश्यकता है । शाब्दिक सामग्री में सार (Abstracts) और अन्य लिखित सामग्री (Anecdotes) आदि शामिल हैं। यदि पाठ–योजना बहुत ही पहले बना ली जाती है तो इस तरह की सामग्री को एकत्रित किया जा सकता है।

5. **विद्यार्थियों की निरन्तर रूचि बनाये रखना (A good lesson plan sustains the interest of students throughout):** एक अच्छी पाठ–योजना पूरी शिक्षण प्रक्रिया के दौरान बच्चों की रूचि बनाये रखती है। इस प्रक्रिया में विभिन्न विधियों और प्रविधियों का प्रयोग आवश्यक है जिनमें विद्यार्थी सक्रियता से भाग लें। इस संदर्भ में यह कहना उपयुक्त होगा कि पाठ योजना की इस विशेषता को बनाये रखने के लिए शैक्षिक सिद्धान्त और शैक्षिक मनोविज्ञान का ज्ञान अति आवश्यक है।

6. **अच्छी पाठ योजना के विभिन्न पक्ष होते हैं (A good plan always has various aspects):** एक अच्छी पाठ योजना के विभिन्न पक्ष होते हैं जो कि निम्नलिखित हैं–

   (i) उद्देश्यों की विवेकपूर्ण अभिव्यक्ति।

   (ii) विषयवस्तु के विवरण और विधि की विस्तत रूप रेखा।

   (iii) पूर्व ज्ञान का संकेत जिसका नये पाठ में विस्तार करना हो, क्रमबद्ध करना हो या प्रयोग करना हो।

   (iv) विद्यार्थियों के लिए क्रियाओं की सुझावात्मक सूची जिसमें उनके अधिगम का मूल्यांकन भी शामिल है।

   (v) पाठ को नियोजित करने में प्रयोग की गई संदर्भ पुस्तकें (Reference Books) और सामग्री।

   एक अच्छी तथा संतुलित पाठ–योजना में इन पक्षों पर विशेष बल दिया जाता है। विद्यार्थियों की क्रियाओं, विषय वस्तु के विवरण और विधि आदि का उद्देश्यों के साथ बहुत ही गहरा सम्बन्ध होता है।

7. **शिक्षा मनोविज्ञान और अधिगम सिद्धान्तों का प्रतिबिम्ब (Reflect the knowledge of educational psychology and theories of learning):** एक अच्छी पाठ योजना में शिक्षा मनोविज्ञान और अधिगम सिद्धान्तों का आधार होना अति आवश्यक है। शिक्षक पाठ योजना बनाने मेंइतना निपुण हो कि पाठ योजना में विद्यार्थी की विशेषताओं और विकास की झलक स्पष्ट दिखाई दे। पाठ योजना में अधिक लम्बे कथन नहीं होने चाहिए तथा निरीक्षित अध्ययन (Supervised Study) पर अधिक बल देना चाहिए और छोटे–छोटे नोट तैयार किये जाने चाहिए।

8. **अच्छी पाठ योजना अध्यापक की अपनी शिक्षण शैली की खोज में सहायक (A good lesson plan helps a teacher in discovering his own style):** एक अच्छी पाठ योजना अध्यापक की अपनी विशेषताओं एवं दुर्बलताओं की ओर ध्यान दिलाती है। इससे अध्यापक को सजनात्मक शिक्षण में सहायता मिलती है और उसकी विशेष शिक्षण शैली (Teaching style) की खोज करने में भी सुविधा रहती है। पाठ का निरीक्षण करने वालों को इस बात पर विशेष बल देना चाहिए कि सभी अध्यापकों या छात्र–अध्यापकों के शिक्षण का एक ही प्रकार से मूल्यांकन न किया जाए। जैसे यदि कोई अध्यापक धीमी आवाज में बोलता है परन्तु वह चित्र बनाने में कुशल है तो वह अपने पाठ में कम से कम कथनों तथा अधिक से अधिक दष्टान्तों (Illustrations) चाकपट्ट कार्य तथा प्रश्नों का प्रयोग करेगा। इस प्रकार वह अपनी एक विशेष शैली का विकास करने में सफल होगा।

9. **भविष्य के लिए उत्तम नियोजन (To plan better in future):** एक अच्छी पाठ योजना कक्षा में क्रियान्वयन के पश्चात् अध्यापक अथवा छात्र–अध्यापक को इस बात की जानकारी देती है कि उसकी पाठ–योजना किस प्रकार से और अच्छी तरह स्थिति का सामना कर सकती है। इससे भविष्य में शिक्षण के लिए उत्तम नियोजन का रास्ता मिल सकता है।

### अपनी प्रगति जांचिए-1

(i) पाठ योजना से क्या अभिप्राय है?

(ii) एक अच्छी पाठ योजना की विशेषताओं का वर्णन करो।

## 2.4 पाठ योजना की आवश्यकता एवं महत्व (Need and Importance of Lesson Planning)

पाठ योजना की आवश्यकता एवं महत्व को स्पष्ट करते हुए डेविस (Davis) ने कहा है – कक्षा में जाने से पूर्व शिक्षक को पूरी तैयारी कर लेनी चाहिए क्योंकि शिक्षक की प्रगति के लिए कोई बात इतनी बाधक नहीं है जितनी शिक्षण की अपूर्ण तैयारी। (Lesson must be well prepared for there is nothing so fatal to a teacher's progress as unpreparedness.)

अच्छे शिक्षण के लिए पाठ योजना का निर्माण उचित रूप से किया जाना चाहिए। रायबर्न (Ryburn) ने इस संदर्भ में कहा है, "शिक्षण के लिए हमें पूर्व प्राप्त अनुभव का प्रयोग अपने कार्य को आरम्भ करने के लिए करना चाहिए।" (To teach, we must use experience already gained as starting point of our work.)

पाठ योजना की आवश्यकता एवं महत्व को निम्नलिखित तथ्यों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **आत्म-विश्वास अर्जित करना (To gain self-confidence):** कई परिस्थितियों में, विशेषकर नवीन–शिक्षण कार्य सम्भालते समय शिक्षक आत्मविश्वास रहित होते हैं। अनुभवी शिक्षक भी यह महसूस करते हैं कि पाठ–योजना के बिना उनका शिक्षण कार्य बहुत अच्छा नहीं हो सकता। स्पष्ट पाठ योजना प्रभावी शिक्षण के लिए अति आवश्यक है।

2. **शिक्षण उद्देश्यों की स्पष्टता (Clarity of teaching objectives):** कक्षा में पढ़ाई जाने वाली विषय वस्तु के शिक्षण उद्देश्यों का स्पष्ट होना बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। पाठ–योजना के प्रभाव से अध्यापक के पास निरर्थक बातें करने का समय नहीं होता क्योंकि अध्यापक के सामने शिक्षण के समस्त उद्देश्य स्पष्ट होते हैं और वह उन्हें अर्जित करने के लिए प्रयत्नशील रहता है।

3. **उद्देश्यों को परिभाषित करना (Defining objectives):** किसी भी विषय के शिक्षण के लिए उद्देश्यों को परिभाषित करने में पाठ योजना बहुत ही सहायक होती है। पूर्व परिभाषित उद्देश्यों से पाठ्यवस्तु का संगठन तथा मूल्यांकन आदि को एक मानदण्ड प्राप्त हो जाता है।

4. **अध्यापक द्वारा निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त तैयारी और सोच-विचार (Teacher's adequate preparation and consideration to achieve stipulated objectives):** प्रत्येक कक्षा शिक्षण के कुछ विशिष्ट उद्देश्य होते हैं। अध्यापक किस प्रकार से इन उद्देश्यों को प्राप्त करे इसके लिए पर्याप्त तैयारी का होना अति आवश्यक है। शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए पाठ योजना आवश्यक सामग्री तथा साधन एकत्रित करने में सहायता देती है।

5. **शिक्षण-क्रियाओं का ज्ञान (Knowledge of teaching activities):** प्रभावशाली शिक्षण के लिए अध्यापक को शिक्षण क्रियाओं तथा प्रयोग होने वाली सहायक सामग्री की पूर्ण जानकारी होना आवश्यक है। पाठ योजना इस प्रकार की जानकारी प्राप्त करने में अध्यापक की सहायता करती है। अध्यापक पहले ही तय कर लेता है कि कक्षा में उसे कौन–कौन सी शिक्षण क्रियाएं करनी हैं तथा किस प्रकार करनी हैं। इसके साथ ही सहायक सामग्री को कब तथा कैसे प्रयोग करना है – इसका निर्णय भी पाठ – योजना में कर लिया जाता है।

6. **सैद्धान्तिक पुनर्रचनाओं का उपयोग (To utilize the theoretical reconstruct for actual school work):** विद्यालय के वास्तविक कार्यों में सैद्धान्तिक पुनर्रचनाओं के प्रयोग के लिए पाठ योजना का होना बहुत आवश्यक है। इससे व्यावहारिक कौशलों (Practical Skills) और सिद्धान्तों (Principles) को समझने में सहायता मिलती है।

7. **समय का उचित विभाजन (Appropriate Budgeting of time):** पाठ्यक्रम में दी गई पाठ्य सामग्री को विद्यार्थियों की आवश्यकताओं एवं उपलब्ध समय के अनुसार विभाजित किया जाना आवश्यक है। इसके लिए पाठ्य–वस्तु को

छोटी–छोटी इकाइयों (Units) में विभाजित किया जाना आवश्यक है। अध्यापक वर्ष भर में पढ़ाये जाने वाले विषय वस्तु को कुल उपलब्ध कालांशों के आधार पर पुनः संगठित करता है। पाठ–योजना की सहायता से ही पाठ्य सामग्री को पुनः संगठित करने के कौशल का विकास किया जा सकता है।

8. **क्रमबद्ध कार्य करने की क्षमता का विकास (Development of Capacity of working systematically):** पाठ योजना में अध्यापक पाठ्यवस्तु को क्रमबद्ध रूप में संगठित करके प्रस्तुत करता है। इससे अध्यापक में क्रमबद्ध रूप से कार्य करने की आदत का विकास होता है और उसमें वे सभी कौशल विकसित हो जाते हैं जिनसे वे पाठ का एवं जीवन सम्बन्धी कार्यों का नियोजन कर सके।

9. **समस्याओं का ज्ञान (Knowledge of problems):** अध्यापक पाठ योजना के माध्यम से विषय–वस्तु से सम्बन्धित समस्याओं तथा कठिनाइयों के विभिन्न पक्षों के बारे एवं में उनके समाधान के बारे में कक्षा में जाने से पूर्व अच्छी तरह विचार कर सकता है। इससे अध्यापक और विद्यार्थियों के मधुर सम्बन्धों का विकास होता है

10. **मानसिक शक्तियों का विकास (Development of mental powers):** पाठ योजना द्वारा विद्यार्थियों की तर्क, विचार, निर्णय एवं कल्पना शक्ति आदि का विकास किया जा सकता है। पाठ–योजना बना कर अध्यापक विद्यार्थियों की विभिन्न मानसिक शक्तियों का निश्चित दिशा में विकास कर सकता है।

11. **नये ज्ञान का आधार पूर्व ज्ञान (Previous knowledge as basis of new knowledge):** शिक्षण को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि विद्यार्थी के पूर्व ज्ञान को आधार बनाया जाए और उसे नवीन ज्ञान प्रदान किया जाए। इसके लिए पाठ योजना सहायक होती है। पूर्व ज्ञान को आधार बनाने से पाठ में सरलता और निरन्तरता आती है। पाठ–योजना में सभी क्रियाएं पहले ही कक्षा स्तर तथा पाठ्य–वस्तु के अनुसार चुन ली जाती है इसलिए इससे विद्यार्थियों में पाठ के प्रति रूचि भी उत्पन्न होती है।

12. **पाठों में निरन्तरता (Continuity of lessons):** पाठ योजना के उपयोग द्वारा पढ़ाये जाने वाले विषयों के सभी उप–विषयों में एक निरन्तरता बनी रहती है। अध्यापक को इस बात का ज्ञान रहता है कि कौन–कौन से उपविषय पढ़ाये जा चुके हैं तथा कौन–कौन से पक्ष शेष रह गये हैं। इसके अतिरिक्त अध्यापक को विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान सम्बन्धी जानकारी भी प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार पाठों या प्रकरणों में निरन्तरता बनाये रखने के लिए पाठ योजना एक महत्वपूर्ण साधन है।

13. **विषय सामग्री का संगठन (Organisation of subject matter):** शिक्षण प्रक्रिया में निर्धारण उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए पाठ योजना में विषय सामग्री को संगठित करना अति आवश्यक होता है। सुसंगठित विषय सामग्री का विद्यार्थियों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। प्रस्तुतीकरण के अतिरिक्त मूल्यांकन प्रक्रिया में भी पाठ योजना एक दिशा निर्देशक का कार्य करती है।

14. **शिक्षण अधिगम में सम्बन्ध स्थापित करना (To establish relationship between teaching and learning):** शिक्षण और अधिगम में सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक है अन्यथा शिक्षण निरर्थक साबित होगा। पाठ योजना द्वारा शिक्षण और अधिगम में व्यावहारिक रूप से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। अधिगम को प्रभावशाली बनाने के लिए विभिन्न शिक्षण सिद्धान्तों, युक्तियों, कौशलों एवं तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए पाठ योजना का होना अति आवश्यक है।

15. **व्यक्तिगत विभिन्नताओं का उपयोग (Use of Individual Differences):** मनोविज्ञान के अनुसार कोई भी दो बालक या व्यक्ति एक समान नहीं होते, उनमें व्यक्तिगत विभिन्नताएं होती हैं। इतना ही नहीं, प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्ष होते हैं। इन पक्षों की ओर पाठ–योजना में ध्यान दिया जा सकता है। पाठ योजना में व्यक्तिगत विभिन्नताओं का उपयोग करके शिक्षण कार्य को व्यक्ति के व्यक्तित्व के अनुसार संचालित किया जा सकता है। कक्षा में सभी विद्यार्थी एक समान नहीं होते। कोई प्रतिभाशाली है तो कोई पिछड़ा विद्यार्थी, कोई तीव्र बुद्धि वाला है तो कोई मन्द बुद्धि। अतः ऐसे विद्यार्थियों के शिक्षण के लिए पाठ योजना एक आवश्यकता होती है ताकि अध्यापक कक्षा में जाने से पहले विद्यार्थियों की इन विभिन्नताओं के अनुरूप शिक्षण विधियों का चयन कर सके। अध्यापक कक्षा के विद्यार्थियों की विभिन्नताओं

को ध्यान में रखकर विभिन्न प्रकार की पाठ योजनाएं तैयार कर सकता है। अतः पाठ योजना की आवश्यकता का एक कारण व्यक्तिगत विभिन्नताएं भी हैं।

16. **शिक्षण को रूचिकर बनाने के लिए (For making teaching interesting):** मनोवैज्ञानिक दष्टिकोण के अनुसार पाठ को सरल, स्पष्ट तथा रूचिकर बनाना अति आवश्यक होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अध्यापक को उपयुक्त शिक्षण विधियों, तकनीकों एवं युक्तियों आदि का चयन कक्षा में जाने से पहले ही कर लेना होता है। पाठ–योजना इस कार्य में अध्यापक की सहायता करती है। अतः विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने एवं शिक्षण में उनकी रूचि बनाये रखने के लिए पाठ योजना अध्यापक की स्पष्ट रूप से सहायता करती है।

17. **अनुशासनहीनता पर नियंत्रण (To control indiscipline):** प्रायः ऐसा देखने में आता है कि यदि अध्यापक उचित रूप से शैक्षिक तैयारी किये बिना कक्षा में आता है तो कक्षा में अनुशासनहीनता उत्पन्न हो जाती है। ऐसा अध्यापक विद्यार्थियों को ज्ञान की दष्टि से सन्तुष्ट नहीं कर पाता। कक्षा में अध्यापक की अस्पष्ट क्रियाओं से विद्यार्थी उत्तेजित एवं अनुशासनहीन हो जाते हैं। इस प्रकार की समस्या के समाधान के लिए पाठ योजना अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि पाठ योजना में विद्यार्थियों को कक्षा में व्यस्त रखने की सभी विधियों पर पहले से ही विचार कर लिया जाता है।

18. **अपव्यय को रोकना (Prevention of Wastage):** पाठ योजना शिक्षण प्रक्रिया में अपव्यय को रोकती है क्योंकि यह शिक्षण को विधिवत एवं नियमित बनाती है। यह शिक्षक को अस्त–व्यस्त रूप से पढ़ाने से रोकती है और अनावश्यक दोहराई से बचाती है।

19. **सार एवं दत्त कार्यो की व्यवस्था (Provision for summaries and assignments):** पाठ योजना पर्याप्त रूप से पाठों का सार प्रस्तुत करती है और इसमें कक्षा को दिये जाने वाले कार्यों की निश्चित व्यवस्था होती है जो विद्यार्थियों की अन्तर्दष्टि तथासमझ को विकसि त करते हैं।

**अपनी प्रगति जांचिए – 2**

(i) पाठ योजना का शिक्षक के लिए क्या महत्त्व है? वर्णन कीजिए।

## 2.5 पाठ योजना की पूर्व आवश्यकताएं (Pre-requisites of a Lesson Plan)

1. **उद्देश्यों का ज्ञान (Knowledge of objectives):** अध्यापक को पाठ–योजना लिखने से पूर्व शिक्षा के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए जिससे अध्यापक उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप दे सके।

2. **विषय-वस्तु का ज्ञान (Knowledge of subject matter):** अध्यापक को अपने विषय पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए। उसे विषय वस्तु का ज्ञान होना चाहिए तथा विषय वस्तु से संबंधित क्रियाओं में निपुण होना चाहिए। यदि अध्यापक को विषय वस्तु पर पूर्ण अधिकार नहीं होगा तो वह कभी भी प्रभावशाली पाठ योजना तैयार नहीं कर सकता।

3. **बाल मनोविज्ञान का ज्ञान (Knowledge of Child psychology):** अध्यापक को बाल मनोविज्ञान का ज्ञान होना चाहिए अर्थात् उसे विद्यार्थियों के स्तर, रूचि, अभिरूचि तथा उनकी वैयक्तिकता का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए और उन्हीं के अनुकूल विषय वस्तु प्रस्तुत करनी चाहिए। यदि अध्यापक को बाल मनोविज्ञान का ज्ञान नहीं होगा तो वह पाठ योजना में विद्यार्थियों की रूचि बनाए रखने एवं व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुरूप क्रियाएं निर्धारित करने में सक्षम नहीं होगा। इस प्रकार अध्यापक के लिए मनोवैज्ञानिक अन्तर्दष्टि रखना आवश्यक है।

4. **शिक्षण विधियों एवं तकनीकों का ज्ञान (Knowledge of Teaching methods and techniques):** पाठ को उचित रूप से नियोजित करने के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक पाठ्य सामग्री के अनुरूप शिक्षण विधियों एवं तकनीकों आदि का चयन एवं निर्धारण कर सके। इसलिए अध्यापक को विभिन्न शिक्षण विधियों एवं प्रविधियों आदि का ज्ञान होना आवश्यक है।

## 2.6 पाठ योजना के विभिन्न उपागम (Various Approaches to Lesson Planning)

पाठ योजना का कोई एक ही स्वरूप नहीं है। पाठ योजना बनाने के लिए विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों ने अपने शैक्षिक अनुसंधानों से सम्बन्धित शैक्षिक सिद्धान्तों के आधार पर विभिन्न उपागमों का विकास किया है। पाठ योजना तैयार करने के कुछ प्रमुख उपागम इस प्रकार हैं–

1. हरबर्ट उपागम (Herbartian Approach)
2. मौरीसन या इकाई उपागम (Morrison's or Unit approach)
3. ब्लूम या मूल्यांकन उपागम (Bloom's or Evaluation Approach)
4. आर.सी.ई.एम. उपागम (R.C.E.M. Approach)

## 2.7 हरबर्ट उपागम (Herbartian Approach)

पाठ योजना का यह प्राचीनतम उपागम है इस उपागम का विकास जर्मनी के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री जे.एफ. हरबर्ट (J.F. Herbart) एवं उसके सहयोगियों ने किया। इसीलिए यह उपागम हरबर्ट उपागम के नाम से जाना जाता है। हरबर्ट उपागम पाठ्यवस्तु केन्द्रित (Subject matter centered) है। इसमें विद्यार्थियों की रूचि, अभिरूचि, योग्यता आदि की ओर ध्यान न देकर विषय वस्तु के प्रस्तुतीकरण को अधिक महत्व दिया जाता है। इसके अनुसार यदि नया ज्ञान पुराने ज्ञान से संबंधित करके पढ़ाया जाए तो ज्ञान अधिक स्थायी होता है इसलिए इसमें पूर्वज्ञान परीक्षण पर बल दिया जाता है। हरबर्ट ने शिक्षण की पाठ योजना को पांच पदों में बांटा है, अतः इसे पंचपदीय उपागम (Five Step Approach) भी कहा जाता है। अधिकांश शिक्षण महाविद्यालयों में पाठ योजना तैयार करने के लिए हरबर्ट उपागम का प्रयोग किया जाता है।

### 2.7.1 हरबर्ट उपागम की विशेषताएँ (Characteristics of Herbartian Approach)

यह उपागम परम्परागत मानव व्यवस्था सिद्धान्त (Classical Human Organisation Theory) पर आधारित है। इस उपागम की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं –

1. यह उपागम पाठ्यवस्तु केन्द्रित है।
2. इस उपागम में विषय वस्तु के प्रस्तुतीकरण पर अधिक बल दिया जाता है।
3. इस उपागम में विद्यार्थियों की रूचियों, अभिरूचियों, मूल्यों, अभिवत्तियों, संबंधों आदि पर ध्यान नहीं दिया जाता है।
4. इस उपागम में स्मति स्तर के शिक्षण को महत्व दिया जाता है इसलिए इससे रटने की प्रवत्ति को प्रोत्साहन मिलता है।
5. इस उपागम में संचित ज्ञान सूत्र (Aperceptive masses) पर बल दिया जाता है। इसके अनुसार ज्ञान बाहर से दिया जाता है और वह एकत्रित होता रहता है। इस एकत्रित ज्ञानको हम पूर्व–ज्ञान कहते हैं। यदि नये ज्ञान को पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित करके पढ़ाया जाये तो सीखने की प्रक्रिया अधिक प्रभावशाली ढंग से होगी।

### 2.7.2 हरबर्ट उपागम के चरण (Steps of Herbartian Approach)

हरबर्ट उपागम के निम्नलिखित पांच पद हैं–

1. **प्रस्तावना (Introduction):** यह हरबर्ट उपागम का प्रथम पद होता है। इसे तैयारी (Preparation) अथवा उद्देश्य कथन (Statement of aims) भी कहा जाता है। प्रस्तावना से अभिप्राय है – भूमिका बनाना। जिस प्रकार बीज बोने से पहले भूमि को तैयार करना आवश्यक होता हैं उसी प्रकार विद्यार्थी को नया ज्ञान प्रदानकरने से पहले उसके पूर्व ज्ञान की जानकारी प्राप्त करना और पाठ से सम्बन्धित भूमिका बनाना आवश्यक है। प्रस्तावना विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान पर आधारित होती है। विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान को नवीन ज्ञान से जोड़ने में प्रस्तावना सेतु की भांति कार्य करती है।

   प्रस्तावना करने की विभिन्न विधियों हो सकती हैं। जीव विज्ञान शिक्षक पाठ को प्रस्तावित करने के लिए विभिन्न विधियों का उपयोग कर सकता है, जैसे – चार्ट दिखाकर, कक्षा कक्ष में उपस्थित वस्तु दिखाकर, प्रश्न पूछकर, कोई सत्य घटना

सुनाकर अथवा दष्टांत देकर एवं प्रयोग करके। प्रस्तावना विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान पर आधारित होनी चाहिए जिससे विद्यार्थी नवीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए अभिप्रेरित हो सकें। प्रस्तावना बहुत अधिक लम्बी नहीं होनी चाहिए और इसमें 5–6 प्रश्नों से अधिक नहीं पूछे जाने चाहिए। जहां तक संभव हो, ऐसे प्रश्न जिनका उत्तर हां अथवा नहीं हो, न पूछे जाएं। प्रस्तावना के पश्चात् अध्यापक को पाठ के उद्देश्य की स्पष्ट, संक्षिप्त एवं सरल शब्दावली में घोषणा करनी चाहिए जैसे – आज हम प्रकाश संश्लेषण के विषय में पढ़ेंगे। उद्देश्य कथन के पश्चात् पाठ आरम्भ किया जाता है। इस प्रकार प्रस्तावना में निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाता है–

(i) छात्र अध्यापक एवं कक्षा के परिचय सम्बन्धी विवरण जैसे रोल नं., कक्षा, विषय, उपविषय, कालांश, दिनांक, विद्यार्थियों की औसत आयु आदि।

(ii) सहायक सामग्री का विवरण

(iii) सामान्य तथा विशिष्ट उद्देश्य

(iv) पूर्व ज्ञान परीक्षा

(v) उद्देश्य कथन के लिए पूर्व ज्ञान का प्रयोग

(vi) विद्यार्थियों की पाठ में रूचि जाग्रत करना।

जे. वैल्टन ने 'प्रस्तावना' का सार व्यक्त करते हुए ठीक ही कहा है – "विद्यार्थी कहां पर है और उन्हें कहाँ पहुंचाने के लिए प्रयत्न करना है, अच्छे शिक्षण की ये दो आवश्यक बाते हैं।

2. **प्रस्तुतीकरण (Presentation):** यह हरबर्ट उपागम का दूसरा चरण है। विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने एवं उद्देश्य की घोषणा के पश्चात् अध्यापक पाठ्य–सामग्री को विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत करता है। एक प्रकार से प्रस्तुतीकरण की प्रक्रिया ही शिक्षण कार्य का प्रारम्भ है। इस पद में अध्यापक अपनी सुविधा के अनुसार पाठ को कई भागों में बांटता है जो एक दूसरे से संबंधित होती हैं। अध्यापक विद्यार्थियों के स्तर के अनुकूल पाठ्य सामग्री को उचित क्रम में प्रस्तुत करता है। प्रत्येक भाग को रूचिकर बनाने के लिए अध्यापक विभिन्न शिक्षण साधनों का उपयोग करता है जैसे – व्याख्या, विवरण, वर्णन, विकासात्मक प्रश्न, प्रदर्शन, प्रयोग, दष्टान्त, दश्य श्रव्य साधन आदि। इन साधनों का चयन विद्यार्थियों की योग्यताओं, आवश्यकताओं एवं संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर किया जाता है। विषय सामग्री को मनोवैज्ञानिक क्रम में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इस पद में अध्यापक विभिन्न शिक्षण सिद्धान्तों का पालन करता है जैसे – सरल से कठिन, ज्ञात से अज्ञात, मूर्त से अमूर्त आदि।

प्रस्तुतीकरण में अध्यापक को निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए–

(i) विषय सामग्री कितनी प्रस्तुत की जाए।

(ii) विषय सामग्री को कितने भागों/इकाईयों में बांटा जाये।

(iii) विभिन्न भागों में किस प्रकार तथा कब समन्वय किया जाये।

(iv) विद्यार्थियों द्वारा कितनी क्रियाएं करवाई जायें।

(v) पाठ्य सामग्री को प्रस्तुत करने के लिए किन शिक्षण विधियों एवं प्रविधियों का प्रयोग किया जाये।

(vi) किन–किन शिक्षण सिद्धान्तों एवं सूत्रों का प्रयोग किया जाये।

3. **सम्बन्धीकरण अथवा तुलना (Association or Comparison):** यह हरबर्ट उपागम का तीसरा पद है। इसे स्पष्टीकरण भी कहा जाता है। इस पद का प्रयोग उच्च कक्षाओं में ही किया जाता है। क्योंकि उच्च कक्षाओं में विद्यार्थियों का मानसिक विकास एवं ज्ञान पर्याप्त होता है। इसमें अध्यापक विद्यार्थियों के सामने तथ्यों का मौखिक रूप से स्पष्टीकरण करता है। नये विचारों का पूर्व ज्ञान के साथ सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। अध्यापक विद्यार्थियों के सामने कुछ तथ्य एवं उदाहरण प्रस्तुत करता है और उन्हें उन पर विचार करके अन्तिम तथ्यों से उनकी तुलना करने एवं निष्कर्ष निकालने के लिए कहा जाता है। तुलना का यह चरण किसी नये सिद्धान्त को पढ़ाते समय विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होता है। कभी कभी इस पद को प्रस्तुतीकरण का ही एक भाग माना जाता है।

4. **सामान्यीकरण (Generalisation):** सम्बन्धीकरण अथवा स्पष्टीकरण के आधार पर विद्यार्थियों को कुछ न कुछ निष्कर्ष निकालने में सहायता मिलती है जो उन्हें सामान्य सिद्वान्तों, नियमों या सूत्रों की रचना करने की योग्यता प्रदान करते हैं। इस प्रक्रिया को सामान्यीकरण कहते हैं। सामान्यीकरण, जहां तक संभव हो, विद्यार्थियों से ही करवाया जाना चाहिए क्योंकि इससे विद्यार्थियों को गहराई से सोचने का अवसर मिलता है और उनकी कल्पनाशक्ति का विकास होता है। अध्यापक का कार्य विद्यार्थियों को सुनियोजित ढंग से संबंधित सामग्री से सामान्य सिद्धान्तों की रचना की योग्यता प्रदान करना है। अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि वह विद्यार्थियों को स्वयं निष्कर्ष निकालने के लिए प्रोत्साहित करे। महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि विद्यार्थी सिद्धान्तों, नियमों एवं सूत्रों को अच्छी तरह समझ लें।

5. **प्रयोग (Application):** यह हरबर्ट उपागम का पांचवां पद है। यह पद इस बात पर आधारित है कि जिस ज्ञान का प्रयोग नहीं होता, वह शीघ्र ही चेतनता से ओझल हो जाता है। ज्ञान शक्ति के रूप में तभी कार्य कर सकता है जब इसे क्रियात्मक स्थिति में प्रयोग किया जाए। इस पद में विद्यार्थियों को सीखे हुए ज्ञान को नवीन परिस्थितियों में प्रयोग करने एवं इसे स्थायी करने के अवसर प्रदान किये जाते हैं दूसरे शब्दों में इसमें सामन्यीकृत सिद्धान्तों, नियमों आदि को विशिष्ट समस्याओं के समाधान में प्रयुक्त किया जाता है। प्रयोग में विद्यार्थियों द्वारा सीखे गये सिद्धान्तों, नियमों आदि की पुनरावत्ति हो जाती है और इसका आकार विविधता की ओर भी अग्रसर हो सकता हैं जैसे – मॉडल बनाना। प्रयोग द्वारा नवीन अर्जित तथ्य विद्यार्थियों की मानसिक रचना का अभिन्न अंग बन जाते हैं।

### 2.7.3 हरबर्ट उपागम में पाठ योजना की रूप रेखा (Outline of Lesson Plan in Herbartian Approach)

हरबर्ट उपागम के उपरलिखित पांच पदों के आधार पर पाठ योजना की निम्नलिखित रूपरेखा हो सकती है। इस रूपरेखा के आधार पर किसी भी उपविषय की पाठ योजना तैयार की जा सकती है।

1. **कक्षा, विषय तथा उपविषय (Class, subject and topic):** पाठ योजना की रूप रेखा के प्रथम बिन्दु के अंतर्गत कक्षा, विषय, उपविषय, शिक्षण स्तर, दिनांक आदि का निर्धारण किया जाता है।

2. **सामान्य उद्देश्य (General objectives):** विषय तथा उपविषय को ध्यान में रख कर सामान्य उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। भौतिक विज्ञान शिक्षण के सामान्य उद्देश्य विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दष्टिकोण का विकास करना, वैज्ञानिक विधि में प्रवीणता प्रदान करना एवं मानसिक शक्तियों का विकास आदि हो सकते हैं।

3. **विशिष्ट उद्देश्य (Specific objectives):** सामान्य उद्देश्यों के पश्चात् पाठ योजना के विशिष्ट उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। इन उद्देश्यों का संबंध पढ़ाए जाने वाले उपविषय से होता है। इन उद्देश्यों का निर्धारण पाठ्यवस्तु को ध्यान में रखकर किया जाता हैं इन उद्देश्यों में जितनी अधिक स्पष्टता होगी, उतना ही शिक्षण अधिक प्रभावशाली होगा।

4. **सहायक सामग्री (Teaching aids):** सहायक सामग्री से अभिप्राय उन सभी वस्तुओं या सामग्री से है जो शिक्षण अधिगम को सरल, स्पष्ट, रोचक एवं प्रभावशाली बनाने में सहायक है जैसे – चार्ट, मॉडल, टी.वी. प्रोजेक्टर, नमूने, स्लाइडस, कम्प्यूटर आदि सहायक सामग्री पाठ्यवस्तु से सम्बन्धित एवं कक्षा के स्तर के अनुरूप होनी चाहिए।

5. **पूर्व ज्ञान (Previous knowledge):** अध्यापक को शिक्षण कार्य आरम्भ करने से पूर्व विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान के बारे में स्पष्ट जानकारी होनी चाहिए। इस पूर्व ज्ञान का ज्ञान होना मनोवैज्ञानिक है। हरबर्ट के अनुसार नवीन ज्ञान में सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए। इससे पाठ सरल और रूचिकर होगा तथा ज्ञान क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित होगा।

6. **प्रस्तावना (Introduction):** प्रस्तावना के अंतर्गत अध्यापक विद्यार्थियों का ध्यान केन्द्रित करता है और उन्हें नवीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए अभिप्रेरित करता है। प्रस्तावना में अध्यापक विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित प्रश्न पूछता है। प्रश्न पूछते समय अध्यापक का दष्टिकोण सकारात्मक होना चाहिए। प्रस्तावना नये पाठ की भूमिका बांधने का कार्य करती हैं।

7. **उद्देश्य कथन (Statement of aim):** प्रस्तावना के पश्चात् अध्यापक अपने शिक्षण कार्य के उद्देश्य की घोषणा करता है। वह सरल तथा स्पष्ट शब्दों में विद्यार्थियों के सामने उपविषय की घोषणा करता है।

8. **प्रस्तुतीकरण (Presentation):** उद्देश्य कथन के पश्चात् अध्यापक पाठ्यवस्तु को विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत करता है। पाठ योजना में पाठ्यवस्तु को सुविधानुसार छोटे छोटे भागों में बांट लिया जाता है जिससे ज्ञान को क्रमबद्ध रूप में विद्यार्थियों को प्रदान किया जा सके। प्रस्तुतीकरण में अध्यापक उपयुक्त शिक्षण विधियों एवं सहायक सामग्री का उपयोग करता हैं पाठ को विकसित करने के लिए अध्यापक विद्यार्थियों का सक्रिय योगदान लेता है और उनसे विकासात्मक प्रश्न (Development Questions) पूछता है। विद्यार्थियों द्वारा दिए गए उत्तरों के अनुसार अध्यापक कथनों द्वारा स्पष्टीकरण देता है अथवा कथनों एवं क्रियाओं की पुनरावत्ति करता है। प्रस्तुतीकरण में अध्यापक को विद्यार्थियों की मानसिक क्रियाओं को प्रेरित करना चाहिए। इसी चरण में तुलना, सम्बन्धीकरण अथवा स्पष्टीकरण भी किया जाता है।

9. **श्यामपट्ट सारांश (Blackboard Summary):** शिक्षण प्रक्रिया में श्यामपट्ट शिक्षक के मित्र के रूप में कार्य करता है। श्यामपट्ट के बिना शिक्षक अर्थहीन है। शिक्षक शिक्षण बिन्दुओं (Teaching points) एवं उनकी व्याख्या साथ साथ श्यामपट्ट पर लिखता है जिससे पाठ के अन्त में श्यामपट्ट सार तैयार हो जाता है। कई बार पाठ की समाप्ति के पश्चात् भी श्यामपट्ट सार लिखा जाता है। श्यामपट्ट सार की भाषा कक्षा के स्तर के अनुसार संक्षिप्त तथा स्पष्ट होनी चाहिए।

10. **पुनरावत्ति (Recapitulation):** पढ़ाए गए पाठ को दोहराना पुनरावत्ति कहलाता है। पुनरावत्ति से यह ज्ञात किया जाता है कि विद्यार्थी पढ़ाए गए पाठ को कितना ग्रहण कर पाये हैं। पुनरावत्ति से पूर्व अध्यापक को श्यामपट्ट सारांश मिटा देना चाहिए और विद्यार्थियों की पुस्तकें, कापियां आदि बन्द करवा देनी चाहिए। पुनरावत्ति में अध्यापक पढ़ाए गए पाठ से सम्बन्धित प्रश्न विद्यार्थियों से पूछता है और पूछे गए प्रश्नों के उत्तरों के आधार पर शिक्षण की सफलता अथवा असफलता का अनुमान लगाता है।

11. **गह कार्य (Home work):** गह कार्य का पाठ योजना में महत्वपूर्ण स्थान है। गह कार्य से विद्यार्थियों में अभ्यास तथा पुनरावत्ति की प्रवत्ति का विकास होता है। इससे विद्यार्थियों के ज्ञान में स्थायित्व आता है, उनमें स्वक्रिया (Self activity) की आदत का विकास होता है। गहकार्य रूचिकर एवं दैनिक जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए। गहकार्य का मूल्यांकन नियमित रूप से किया जाना चाहिए जिससे वह सार्थक सिद्ध हो सके।

### 2.7.4 हरबर्ट उपागम के गुण (Merits of Herbartian Approach)

1. **मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित (Based on Psychological Principles):** हरबर्ट उपागम मनोविज्ञान एवं अधिगम के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें पाठ योजना के प्रत्येक सोपान की तर्कसंगत ढंग से व्यवस्था की जाती है।

2. **सभी विषयों में उपयोगी (Useful in all subjects):** यह उपागम सभी विषयों एवं उपविषयों के शिक्षण के लिए उपयोगी है। इसका प्रयोग किसी भी प्रकरण के लिए सुगमता से किया जा सकता है।

3. **सुव्यवस्थित एवं नियंन्त्रित स्वरूप (Well organized and controlled pattern):** यह उपागम सुनियोजित सुव्यवस्थित एवं सुनियन्त्रित है। इसमें प्रत्येक पद का स्वरूप निश्चित है।

4. **पूर्व ज्ञान का प्रयोग (Use of Previous knowledge):** यह उपागम विद्यार्थियों के पूर्व अर्जित ज्ञान पर आधारित है अर्थात् इस उपागम द्वारा पाठ आरम्भ करने से पहले विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान का परीक्षण किया जाता है तथा पूर्व ज्ञान का नवीन ज्ञान से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

5. **आगमन एवं निगमन विधि का प्रयोग (Use of inductive and deductive method):** इस उपागम में शिक्षण की आगमन एवं निगमन दोनों विधियों का प्रयोग किया जाता है। इसमें नया ज्ञान प्रस्तुत करते समय विभिन्न उदाहरणों की सहायता ली जाती है और सामान्यीकरण में सिद्धान्तों, नियमों आदि की व्युत्पत्ति की जाती है। यह आगमन विधि है। प्रयोग में इन नियमों का क्रियान्वयन किया जाता है, यह निगमन विधि है।

6. **समन्वय (Co-ordination):** हरबर्ट उपागम में समस्त ज्ञान को समन्वित रूप में पढ़ाया जाता है। विषय को स्पष्ट करने के लिए इसे अन्य विषयों से समन्वित किया जाता है।

7. **ज्ञान की व्यावहारिकता (Practability of knowledge):** इसमें विद्यार्थियों द्वारा अर्जित ज्ञान को नई परिस्थितियों में प्रयोग करना सिखाया जाता है।

8. **ज्ञानात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति (Achievement of cognitive objectives):** हरबर्ट उपागम शिक्षण के ज्ञानात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये उपयोगी है।

9. **शिक्षक-प्रधान उपागम (Teacher dominated approach):** हरबर्ट उपागम में अध्यापक को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। क्या पढ़ाना है?, कैसे पढ़ाना है?, कब पढ़ाना है? आदि सभी बातें अध्यापक निर्धारित करता है। इस प्रकार यह शिक्षक प्रधान उपागम है।

### 2.7.5 हरबर्ट उपागम के दोष (Demerits of Herbartian Approach)

1. **सभी पाठों के लिए उपयोगी नहीं (Not useful in all types of lessons):** हरबर्ट उपागम का प्रयोग केवल ज्ञानात्मक पक्ष से सम्बन्धित पाठों के लिए ही किया जा सकता है, कौशल या क्रियात्मक पाठों के लिए नहीं।

2. **शिक्षण पर अधिक बल (More emphasis on teaching):** हरबर्ट उपागम में शिक्षण पर अधिगम की अपेक्षा अधिक ध्यान दिया जाता है। इसमें विद्यार्थियों को आत्मप्रेरणा तथा विचार विमर्श का अवसर प्रदान नहीं किया जाता। इसमें अधिगम पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है जबकि शिक्षण अधिगम केन्द्रित होना चाहिए।

3. **प्रस्तुतीकरण पर अधिक बल (More emphasis on presentation):** इस उपागम में पाठ्यवस्तु के प्रस्तुतीकरण पर अधिक बल दिया जाता है और अन्य पक्षों की ओर कम जिससे अन्य पक्ष दुर्बल रह जाते हैं।

4. **कठोरता एवं एकरसता (Rigidity and uniformity):** हरबर्ट उपागम के चरणों से पाठ में कठोरता एवं एकरसता उत्पन्न होती है। अध्यापक को इन चरणों के अनुसार पाठ पढ़ाने में यदि कठिनाई अनुभव हो तो भी उसे इन्हीं चरणों का अनुसरण करना पड़ता है, वह कक्षा में अचानक परिवर्तन नहीं कर सकता। परिणामस्वरूप पाठ नीरस हो जाता है और विद्यार्थियों की उसमें रूचि समाप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त हरबर्ट उपागम के पदों का अनुसरण करने से अध्यापक एवं विद्यार्थी स्वतन्त्र चिन्तन से वंचित रह जाते हैं।

5. **तैयारी चरण में अस्पष्टता (Vagueness in preparation phase):** इसमें तैयारी का चरण अस्पष्ट है। इस उपागम में यह स्पष्ट नहीं किया गया कि तैयारी अध्यापक को करनी है या विद्यार्थियों को अथवा दोनों को।

6. **स्मति स्तर का शिक्षण (Memory Level teaching):** हरबर्ट उपागम द्वारा केवल स्मति स्तर का शिक्षण संभव है, बोध स्तर का नहीं।

7. **सम्बन्धीकरण एवं तुलना-अलग चरण नहीं (Association and comparison - not separate steps):** हरबर्ट उपागम में सम्बन्धीकरण एवं तुलना को अलग स्थान देना उपयुक्त नहीं है। वास्तव में ये दोनों क्रियाएं प्रस्तुतीकरण में ही निहित हैं न कि उससे अलग हैं।

8. **सामान्यीकरण - एक कठिन प्रक्रिया (Generalisation - a difficult process):** हरबर्ट उपागम के अनुसार सम्बन्धीकरण एवं तुलना के आधार पर सामान्यीकरण करना चाहिए परन्तु व्यावहारिक परिस्थितियों में ऐसा करना सरल नहीं होता। अन्तिम रूप से किसी सामान्य सिद्धान्त पर पहुंचने से पहले कई सम्भावित निष्कर्षों की रचना करनी होती है और उनमें से अनावश्यक निष्कर्षों को अस्वीकार करना होता है।

### अपनी प्रगति जांचिए–3

(i) पाठ योजना के हरबर्ट उपागम के अनुसार एक पाठ योजना में कौन–कौन से चरण होना चाहिए ?

(ii) हरबर्ट उपागम के गुणों एवं दोषों का विवेचन कीजिए।

## 2.8 पाठ योजना का प्रारूप–I (व्याख्यान युक्त प्रदर्शन विधि पर आधारित)
## (Format of a Lesson Plan based on Lecture-cum-Demonstration Method)

सं.अ. अनुक्रमांक ..... कक्षा .....

विषय ..... कालांश .....

उपविषय ..... दिनांक .....

अनुदेशनात्मक सामग्री (Instructional Materials) .....

सामान्य उद्देश्य (General Aims) .....

व्यवहारपरक उद्देश्य (Behavioural Objectives) .....

अनुमानित पूर्व ज्ञान (Previous Knowledge Assumed) .....

पूर्व ज्ञान परीक्षा / प्रस्तावना (Previous Knowledge Testing / Introduction) .....

उद्देश्य कथन / उपविषय की घोषणा (Statement of Aim/Announcement of Topic) .....

प्रस्तुतीकरण (Presentation) .....

| पाठ्यवस्तु (Subject Matter) | विधि (Method) | चाकपट्ट सारांश (Chalk-board summary) |
|---|---|---|
| | | |

पुनरावत्ति (Presentation) .....

गहकार्य (Home Work) .....

## पाठ योजना का प्रारूप–II (प्रयोगशाला विधि पर आधारित)
## (Format of a Lesson Plan based on Laboratory Method)

## (प्रयोगशाला विधि के लिए)

सं.अ. अनुक्रमांक ..... कक्षा .....

विषय ..... कालांश .....

उपविषय ..... दिनांक .....

अनुदेशनात्मक सामग्री (Instructional Materials) .....

सामान्य उद्देश्य (General Aims) .....

व्यवहारपरक उद्देश्य (Behavioural Objectives) .....

अनुमानित पूर्व ज्ञान (Previous Knowledge Assumed) .....

तैयारी (Preparation) .....

विद्यार्थियों का समूहीकरण (Grouping of students) .....

अध्यापक द्वारा प्रदर्शन (Demonstration by the Teacher) .....

विद्यार्थियों को निर्देश (Instructions to the Students) .....

प्रयोगशाला कार्य का निरीक्षण (Supervision of Laboratory Work) .....

मूल्यांकन (Evaluation) .....

## पाठ योजना का प्रारूप–III ञ (समस्या समाधान विधि के लिए)
## (Format of a Lesson Plan based on Problem Solving Method)

सं.अ. अनुक्रमांक ..... कक्षा .....

विषय ..... कालांश .....

उपविषय ..... दिनांक .....

अनुदेशनात्मक सामग्री (Insturctional Materials) .....

सामान्य उद्देश्य (General Aims) .....

व्यवहारपरक उद्देश्य (Behavioural Objectives) .....

अनुमानित पूर्व ज्ञान (Previous Knowledge Assumed) .....

प्रस्तावना (Introduction by posing a problem or creating a situation) .....

समस्या को परिभाषित एवं सीमित करना (Defining and Delimiting the Problem) .....

परिकल्पनाओं का निर्माण करना (Formulation of Hypotheses) .....

आंकड़ों का संग्रह (Collection of Data) .....

परिकल्पनाओं का परीक्षण (Testing the Hypothesis) .....

निष्कर्ष निकालना (Drawing conclusions) .....

## आदर्श पाठयोजना

अनुक्रमांक – क, ख, ग

कक्षा – सातवीं

विषय –जीव विज्ञान

कालांश – प्रथम

उपविषय – खाद्य श्रंखला

दिनांक – DD/MM/YY

**अनुदेशनात्मक सामग्री**- वन की व सामान्य खाद्य श्रंखला दर्शाते हुए चार्ट।

**व्यवहारपरक उद्देश्यः**

1. छात्र खाद्य श्रंखला का प्रत्यास्मरण कर सकते हैं।
2. छात्र उत्पादक, उपभोक्ता का व द्वि उपभोक्ता का प्रत्याभिज्ञान कर सकते हैं।
3. खाद्य श्रंखला में सभी जन्तु भोजन के लिए पादपों पर निर्भर करते हैं। छात्र इस बात की व्याख्या कर सकते हैं।
4. छात्र खाद्य श्रंखला में उत्पादन व उपभोक्ता के बीच में विभेद कर सकते हैं।
5. छात्र प्रथम उपभोक्ता व द्वि उपभोक्ता में विभेद कर सकते हैं।
6. छात्र खाद्य श्रंखला का दैनिक जीवन में महत्व बता सकते हैं।

**पूर्व ज्ञानः** छात्र मांसाहारी व शाकाहारी जन्तुओं से परिचित हैं।

**प्रस्तावनाः**

प्र.1 पेड़–पौधे अपना भोजन कहाँ से प्राप्त करते हैं ?

उ. पेड़ पौधे अपना भोजन सूर्य की रोशनी व अपने में उपस्थित एक हरे रंग के पदार्थ पर्णहरित (क्लोरोफिल) की सहायता से स्वयं बनाते हैं

प्र.2 शाकाहारी जन्तु किसे कहते हें?

उ. जो अपना भोजन पेड़ पौधों से प्राप्त करते हैं

प्र.3 मांसाहारी जन्तु किसे कहते हैं?

उ. जो कमजोर व छोटे शाकाहारी प्राणियों को खाते हैं।

सभी प्राणी किसी न किसी रूप में भोजन के लिए पेड़ पौधों पर निर्भर रहते हैं। शाकाहारी अपना भोजन सीधे पेड़ पौधों से प्राप्त करते हैं। मांसाहारी कमजोर व छोटे शाकाहारी प्राणियों को खाते हैं। प्राणियों तथा पौधों के पोषण का यह सम्बन्ध बहुत ही रोचक है।

**उद्देश्य कथनः**

आज हम इसी सम्बन्ध में यानि खाद्य श्रंखला के बारे में अध्ययन करेंगे।

**प्रस्तुतीकरण–**

| पाठ्य वस्तु | पाठ्य विधि | चाकपट्ट सारांश |
|---|---|---|
| उत्पादक–पौधे अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। पौधों के द्वारा अपना भोजन स्वयं बनाने की क्रिया को प्रकाश संश्लेषण कहते हैं। प्रकाश संश्लेषण के लिए आवश्यक घटक $CO_2$, $H_2O$, सूर्य का प्रकाश व पर्णहरित (Cholorophyll) है। इन चारों घटकों की सहायता से पौधे अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। | छात्राध्यापक प्रक्रियाएं<br>प्र. पादपों के भोजन बनाने की क्रिया को क्या कहते हैं?<br>उ. प्रकाश संश्लेषण<br>प्र. प्रकाश संश्लेषण के लिए आवश्यक घटक कौन–कौन से हैं?<br>उ. $CO_2$, $H_2O$, सूर्य का प्रकाश तथा क्लोरिफिल। | खाद्य श्रंखला की कड़ियां–<br>1. उत्पादक – कसी भी खाद्य श्रंखला की पहली कड़ी पेड़ पौधे हैं। पेड़ पौधे अपना भोजन स्वयं बनाते हैं अतः इन्हें उत्पादक कहते हैं। |

| | | |
|---|---|---|
| क्योंकि पौधे प्रकाश संश्लेषण की सहायता से अपना भोजन स्वयं बनाते हैं इसलिए इन्हें उत्पादक कहते हैं।<br><br>प्राथमिक उपभोक्ता जो जन्तु अपने भोजन के लिए खाद्य श्रंखला में उत्पादक यानि पेड़ पौधों पर निर्भर रहते हैं खाद्य श्रंखला में उन्हें प्राथमिक उपभोक्ता कहा जाता है। कैटरपिलर, खरगोश, चूहा, हिरण आदि प्राथमिक उपभोक्ता के उदाहरण हैं। | प्र. सभी जन्तु भोजन के लिए किस पर निर्भर करते हैं?<br>उ. पौधों पर<br>प्र. पौधे अपना भोजन स्वयं बनाते हैं इसलिए इन्हें क्या कहा जाता है?<br>उ. ?<br>**छात्राध्यापिका कथन-**<br>चूंकि पौधे $CO_2$, $H_2O$ क्लोरोफिल व सूर्य के प्रकाश की सहायता से अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। इसलिए इन्हें खाद्य श्रंखला के उत्पादक कहते हैं। खाद्य श्रंखला का चार्ट दिखाते हुए चित्र में बने कैटरपिलर की तरफ इंगित करते हुए छात्राध्यापिका निम्न प्रश्न पूछेगी।<br><br>प्र. यह किसका चित्र है?<br>उ. कैटरपिलर का<br>प्र. कैटरपिलर का भोजन क्या है?<br>उ. पत्तियां<br>अब छात्राध्यापिका दूसरा चार्ट दिखाते हुए–<br>प्र. यह चित्र किसका है?<br>उ. खरगोश का<br>प्र. खरगोश का भोजन क्या है?<br>उ. घास, वनस्पति आदि।<br>प्र. हिरण क्या खाता है?<br>उ. हरी घास व पत्तियां।<br><br>छात्राध्यापिका कथन–<br>इस प्रकार हम देखते हैं कि ये सभी जन्तु अपने भोजन के लिए सीधे ही पादपों पर निर्भर रहते हैं। | **द्वितीयक उपभोक्ता-**<br>जो जन्तु पेड़ पौधे खाने वाले अन्य छोटे–छोटे जन्तुओं पर अपने भोजन के लिए निर्भर रहते हैं |

| | | |
|---|---|---|
| | प्र. जो जन्तु भोजन के लिए पौधों पर निर्भर रहते हैं, खाद्य श्रंखला में उन्हें प्राथमिक उपभोक्ता कहा जाता है। | उन्हें द्वितीयक उपभोक्ता कहा जाता है। |
| द्वितीय उपभोक्ता जो जन्तु पेड़ पौधे खाने वाले अन्य छोटे–छोटे जन्तुओं पर अपने भोजन के लिए निर्भर रहते हैं उन्हें द्वितीयक उपभोक्ता कहा जाता है।<br>**उदाहरण-** शेर, चीता, बिल्ली, बाज, सांप आदि। | छात्राध्यापिका खाद्य श्रंखला का चार्ट दिखाते हुए शेर की तरफ इशारा करते हुए प्रश्न पूछेगी–<br>प्र. यह किसका चित्र है?<br>उ. शेर का<br>प्र. शेर का भोजन क्या है?<br>उ. हिरण<br><br>छात्राध्यापिका खाद्य श्रंखला का दूसरा चार्ट दिखाते हुए प्रश्न पूछेगी<br>प्र. यह किसका चित्र है?<br>उ. बाज का<br>प्र. बाज का भोजन क्या है?<br>उ. चिड़िया<br>प्र. सांप का भोजन क्या है?<br>उ. चूहे<br>प्र. खाद्य श्रंखला में जो जीव प्रा. उपभोक्ता पर निर्भर रहते हैं, उन्हें क्या कहा जाता है?<br>उ. ?<br><br>छात्राध्यापिका कथन – खाद्य श्रंखला में जो जीव प्राथमिक उपभोक्ता यानि खाने वाले दूसरे जीवों पर निर्भर रहते हैं उन्हें द्वितीयक उपभोक्ता कहते हैं।<br>प्र. ईगल (गिद्ध) का भोजन क्या है?<br>उ. मत जन्तु | **उदाहरण-**<br>शेर, चीता, बिल्ली, सॉप, आदि।<br><br>**अपमार्जक-** जो जीव अपने भोजन के लिए मत जीवों पर |

| | | |
|---|---|---|
| **अपमार्जक-** जो जीव अपने भोजन के लिए मत जीवों पर निर्भर रहते हैं उन्हें अपमार्जक कहा जाता है।<br><br>यह अपमार्जक खाद्य श्रंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।<br>**उदाहरण-** कौआ, गिद्ध, बीटल, केंचुआ आदि। | प्र. कौआ का भोजन क्या है?<br>उ. मत जन्तु<br>प्र. बीटल का भोजन क्या है?<br>उ. मत जन्तु<br>प्र. जो जन्तु दूसरे मत जन्तुओं से अपना भोजन प्राप्त करते हैं उन्हें क्या कहते हैं?<br>उ. ?<br>**छात्राध्यापिका कथन**<br>जो जन्तु अपने भोजन के लिए दूसरे मत जन्तुओं पर निर्भर रहते हैं उन्हें खाद्य श्रंखला में अपमार्जक कहते हैं<br>इस प्रकार हम देखते हैं कि खाद्य श्रंखला की चार कड़ियां हैं।<br>उत्पादक, प्राथमिक उपभोक्ता अपमार्जक, द्वितीयक उपभोक्ता।<br>खाद्य श्रंखला अत्यन्त नाजुक है और इसे आसानी से तोड़ा जा सकता है। एक सम्बन्ध तोड़ने से सम्पूर्ण कड़ी के लिए खतरा पैदा हो जाता है।<br>इस खाद्य कड़ी में मनुष्य भी शामिल है, क्योंकि वह पेड़ पौधों से भी भोजन प्राप्त करता है और मांस मछली और अंडे आदि भी खाता है खाद्य कड़ी टूटने न पाए, इसलिए हमें जंगली जीवन के सरंक्षण में जानवरों की भोजन प्रवतियों एवम् पोषण (भोजन) सम्बन्धों की जानकारी हासिल करके पथ्वी पर प्रकृति का संतुलन बनाए रखने के लिए अपना योगदान देना चाहिए। | अर्थात् द्वितीयक उपभोक्ता पर निर्भर रहते हैं उन्हें अपमार्जक कहा जाता है।<br><br>**उदाहरण-**<br>कौआ, गिद्ध, बीटल, केंचुआ आदि।<br><br>**खाद्य श्रंखला की चार कड़ियां**<br>– उत्पादक<br>– प्राथमिक उपभोक्ता<br>– अपमार्जक<br>– द्वितीयक उपभोक्ता |

**पुनरावत्ति**

1. खाद्य श्रंखला की चार कड़ियों के नाम बताइये।
2. प्राथमिक उपभोक्ता किसे कहते हैं?
3. द्वितीयक उपभोक्ता किसे कहते हैं?
4. खाद्य श्रंखला का क्या महत्व है?

**गह कार्य**

प्र. खाद्य श्रंखला किसे कहते हैं? किसी एक खाद्य श्रंखला का सचित्र वर्णन कीजिए।

## 2.9 सारांश

पाठ को पढ़ाने से पूर्व वैज्ञानिक रूप से की गई क्रमबद्ध तैयारी को ही पाठ योजना कहा जाता है। पाठ योजना के अभाव में योग्यतम शिक्षक भी कक्षा में असफल हो जाते हैं। पाठ योजना में विद्यार्थी के अर्जित ज्ञान, नवीन ज्ञान, प्रश्न विधि, साधन, सामग्री, आदि का विवरण होता है। पाठ योजना विद्यार्थियों की रूचि बनाने, उनके पूर्व ज्ञान को नवीन ज्ञान से सम्बन्धित करने में सहायता करती है। यह अध्यापक का पथ–प्रदर्शन करने, उसमें आत्मविश्वास उत्पन्न करने, शिक्षण विधि एवं सहायक सामग्री का चयन करने और शिक्षण का मूल्यांकन करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पाठ योजना बनाते समय कुछ सावधानियां रखनी चाहिए अन्यथा यह केवल औपचारिकता, बोझ और शिक्षक की स्वतन्त्रता में बाधक बन जाती है। पाठ योजना बनाने से पूर्व अध्यापक को विद्यार्थियों की मानसिक आयु, स्तर, पूर्व ज्ञान, उपलब्ध संसाधनों एवं शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान होना चाहिए। पाठ योजना बनाने के सम्बन्ध में विभिन्न शिक्षाविदों ने उपागम प्रस्तुत किए हैं। इनमें से हरबर्ट उपागम अत्याधिक महत्वपूर्ण है। हरबर्ट उपागम परम्परागत मानव व्यवस्था सिद्धान्त पर आधारित है। इस उपागम के पांच पद हैं— प्रस्तावना, प्रस्तुतीकरण, सम्बन्धीकरण या तुलना करना, सामान्यीकरण एवं प्रयोग। हरबर्ट उपागम के इन पांच पदों के आधार पर हम पाठ योजना बनाते हैं। हरबर्ट उपागम की कुछ सीमाएं हैं इसलिए आधुनिक समय में हरबर्ट उपागम के पदों में थोड़ा सा परिवर्तन करके पाठ योजना के विभिन्न चरण निर्धारित किए गए हैं। पाठ योजना के मुख्य चरण इस प्रकार हैं – अनुदेशनात्मक सामग्री, व्यवहारपरक उद्देश्य, पूर्व ज्ञान (अनुमानित), प्रस्तावना, उद्देश्य कथन, प्रस्तुतीकरण, पुनरावत्ति एवं गह कार्य। विभिन्न शिक्षण विधियों के उपयोग के अनुसार प्रस्तुतीकरण में थोड़ा सा परिवर्तन लाया जाता है।

### आदर्श उत्तर

1. (i) पाठ योजना किसी पाठ के उन आवश्यक बिन्दुओं की रूप रेखा है जिन्हें उस क्रम में व्यवस्थित किया जाता है जिस क्रम में उन्हें अध्यापक द्वारा विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाना होता है। पाठ योजना शिक्षण प्रक्रिया की व्यवस्था का व्यवहारिक रूप होती है।

   (ii) कृपया 2.3 में देखें।
2. (i) कृपया 2.4 में देखें।
3. (i) प्रस्तावना, प्रस्तुतीकरण, सम्बन्धीकरण अथवा तुलना, सामान्यीकरण एवं प्रयोग।

   (ii) कृपया 2.7 में देखें।

## 2.10 मुख्य शब्द

**पाठ योजनाः** अध्यापक द्वारा कक्षा में की जाने वाली क्रियाओं को नियोजित ढंग से लिखना।

**प्रस्तुतीकरणः** विषय वस्तु को विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत करना।

## 2.11 संदर्भ ग्रन्थ

अग्रवाल जे.सी. –शिक्षा के सिद्धान्त तथा तकनीक, आर्य बुक डिपो, मेरठ, 1989

शर्मा, आर.ए– 'शिक्षण अधिगम के मूल तत्व, लायल बुक डिपो डिपो, मेरठ, 1989

ओबराय, एस.सी. – अनुदेशन तकनीक, लायल बुक डिपो, मेरठ, 1988

Soni, Anju - 'Teaching of Life Science', Tandon Publications, Ludhiana, 2002.

# इकाई-3 (a)

# अध्याय-3: सहायक सामग्री का निर्माण

# (Preparation of Teaching Aids)

**उद्देश्यः**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि—

- सहायक सामग्री का अर्थ एवं महत्त्व बता सकें।
- सहायक सामग्री के निर्माण में रखी जाने वाली सावधानियों की सूची बना सकें।
- सहायक सामग्री को तैयार करने के लिए आवश्यक सामग्री की व्याख्या कर सकें।
- विभिन्न सहायक सामग्री को तैयार करने की विधियों का वर्णन कर सकें।

**संरचनाः**

3.1. प्रस्तावना
3.2. सहायक सामग्री—अर्थ एवं महत्त्व
3.3. सहायक सामग्री के निर्माण में सावधानियां
3.4. सहायक सामग्री तैयार करने की आवश्यकताएं
3.5. सहायक सामग्री तैयार करना
3.6. सारांश
आदर्श उत्तर
3.7. मुख्य शब्द
3.8. सन्दर्भ ग्रन्थ

## 3.1 प्रस्तावना

आज हम सूचना–क्रान्ति के युग से गुजर रहे हैं। आधुनिक समय में जनसंख्या विस्फोट, ज्ञान के विस्फोट तथा सूचना क्रान्ति एवं संप्रेषण तकनीकी के क्षेत्र में हुई क्रान्ति ने शिक्षाविदों तथा विचारकों के सम्मुख अनेक समस्याओं को प्रस्तुत किया है। इन समस्याओं में से प्रमुख समस्या है—कम समय में अधिक छात्रों को प्रभावशाली ढंग से 'अधिगम अनुभव' प्रदान करना। विद्यार्थियों को प्रभावशाली ढंग से अधिगम अनुभव प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक प्रभावी संप्रेषण करे। संप्रेषण को प्रभावी बनाने के लिए अध्यापक को विद्यार्थियों की ज्ञानेन्द्रियों का अधिकतम उपयोग करना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अध्यापक शिक्षण में विभिन्न साधनों का प्रयोग कर सकता है। इन साधनों को **शिक्षण साधन या सहायक सामग्री** कहा जाता है। आओ इस अध्याय में हम सहायक सामग्री एवं उनके निर्माण के सम्बन्ध में अध्ययन करें–

## 3.2 सहायक सामग्री-अर्थ एवं महत्त्व (Teaching Aids - Meaning and Significance)

सहायक सामग्री एक व्यापक धारणा है। सहायक सामग्री से अभिप्राय उस शिक्षण सामग्री से है जो लिखित या मौखिक पाठ्य सामग्री को समझने में सहायता प्रदान करती हैं। सहायक सामग्री विषय–वस्तु को स्पष्ट एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत करने में सहायता करती है। आधुनिक शिक्षा में बालक को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यदि बालक को ज्ञान प्रदान करना है तो ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। सहायक सामग्री विद्यार्थियों की ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करती है, ज्ञान को ग्रहण करना सरल बनाती है, विद्यार्थियों को कल्पनाशील तथा जिज्ञासु बनाती हैं और शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में उनकी रुचि बनाये रखती है।

शिक्षण एक जटिल प्रक्रिया है। इसमें विभिन्न प्रकार की क्रियाओं का समावेश होता है। यदि अध्यापक केवल पाठ्य पुस्तक विधि अथवा व्याख्यान विधि (Lecture method) का प्रयोग करता है तो कक्षा का वातावरण नीरस एवं उबाऊ हो जाता है, विद्यार्थियों का मन पाठ्य–सामग्री में केन्द्रित नहीं होता। सहायक सामग्री के प्रयोग से शिक्षण में नवीनता व रोचकता आती है। इससे अधिगम को प्रभावशाली बनाया जा सकता है। पाठ्य पुस्तकों का शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अपना विशेष महत्त्व है। पाठ्य पुस्तकों से अध्यापक और विद्यार्थियों को दिशा मिलती है। सहायक सामग्री पाठ्य पुस्तक का स्थान नहीं ले सकती अपितु यह तो पुस्तक में लिखी सामग्री को समझने में सहायता करती है इसलिए सहायक सामग्री साधन है, साध्य नहीं।

सहायक सामग्री विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष अनुभवों द्वारा अधिगम करने में सहायता करती है। सहायक सामग्री को दश्य–श्रव्य सामग्री (Audio-visual Aids) अथवा शिक्षण सामग्री भी कहा जाता है। इसमें चार्ट, मॉडल, चित्र वास्तविक पदार्थ, श्यामपट्ट, फ्लैशकार्ड आदि सम्मिलित होते हैं।

## 3.3 सहायक सामग्री के निर्माण में सावधानियाँ (Precautions in Preparation of Teaching Aids)

सहायक सामग्री के निर्माण का कार्य शुरू करने से पहले निम्नलिखित सावधानियाँ रखनी आवश्यक हैं।

- सहायक सामग्री तैयार करने के लिए उन्हीं चीजों को चुनना चाहिए जो सुविधा से मिल सकें।
- सहायक सामग्री अधिक कीमती नहीं होनी चाहिए।
- सहायक सामग्री शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को रूचिपूर्ण एवं सरस बनाने में सहायता करे।
- सहायक सामग्री विद्यार्थियों की आयु के अनुसार बनानी चाहिए।
- सहायक सामग्री विद्यार्थियों को अभिप्रेरित कर सके।
- आसपास के वातावरण से जो वस्तुएं उपलब्ध हो सकें, सहायक सामग्री साधन आदि उसी से बनाने चाहिएं।
- सहायक सामग्री विद्यार्थियों की रूचि एवं स्तर के अनुरूप हो।

## 3.4 सहायक सामग्री तैयार करने की आवश्यकताएं (Requisites for Preparing Teaching Aids)

सहायक सामग्री के निर्माण में बहुत सी वस्तुओं की आवश्यकता होती है। लेकिन बहुत कुछ ऐसे साधन हैं जिनका निर्माण प्रत्येक वातावरण में किया जा सकता है और उनके निर्माण की सामग्री लगभग हर स्थान पर उपलब्ध हो सकती है। इस सामग्री में जैसे कागज, रंग, स्केल, रबड़ आदि में निम्नलिखत सावधानियां बरतनी चाहिए–

1. **कागज (Paper):** कागज आवश्यकतानुसार होना चाहिए। यह अधिक खर्चीला ना हो। कागज की मोटाई आवश्यकतानुसार ही होनी चाहिए। कागज सफेद रंग का ही हो ताकि जो भी उस पर अंकित किया जाए, स्पष्ट नजर आए। कागज कई प्रकार का होता है जैसे सादा कागज, चार्ट कागज, हाथ से बना कागज़, तैलीय पेपर, गलेज़ पेपर आदि। दश्य सामग्री आदि बनाने के लिए इसमें से किसी भी माध्यम का प्रयोग कर सकते हैं। सादे कागज पर पैंसिल या स्कैच पैन की सहायता से चित्र बनाए जा सकते हैं चार्ट पेपर सादे कागज से मोटा होता है। यह एक तरफ से चिकना तथा दूसरी तरफ से खुरदरा होता है। इस पर रंगों तथा स्कैच पैन से चित्र बनाए जा सकते हैं। हाथ से बना कागज़ महंगा कागज है लेकिन पानी के रंगों का प्राकृतिक चित्र बनाने में प्रयोग करने के लिए अच्छा माध्यम है। तैलीय पेपर पर तैलीय रंगों का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा काली शीट या चार्ट है जिन पर कुछ अन्य सामग्री लगाकर भी चित्र बनाए जा सकते हैं।

2. **रंग (Colour):** चार्ट तैयार करने के लिए रंगों की आवश्यकता होती है। रंग तीन प्रकार के होते हैं–

   (i) प्राथमिक रंग

   (ii) सहायक रंग

   (iii) निरपेक्ष रंग

   (i) ***प्राथमिक रंग:*** यह लाल, पीला, नीला रंग है। जो प्रकृति में पाए जाते हैं इन्हें मनुष्य नहीं बना सकता।

   (ii) ***सहायक रंग:*** यह दो या दो से अधिक सहायक रंगों के मेल से बनते हैं जैसे गुलाबी, बैंगनी, हरा, सन्तरी आदि।

   (iii) ***निरपेक्ष रंग:*** यह काला तथा सफेद रंग हे जो रंगों को हल्का या गहरा करने के काम में आते हैं। स्लेटी रंग भी इन्हीं रंगों में आएगा।

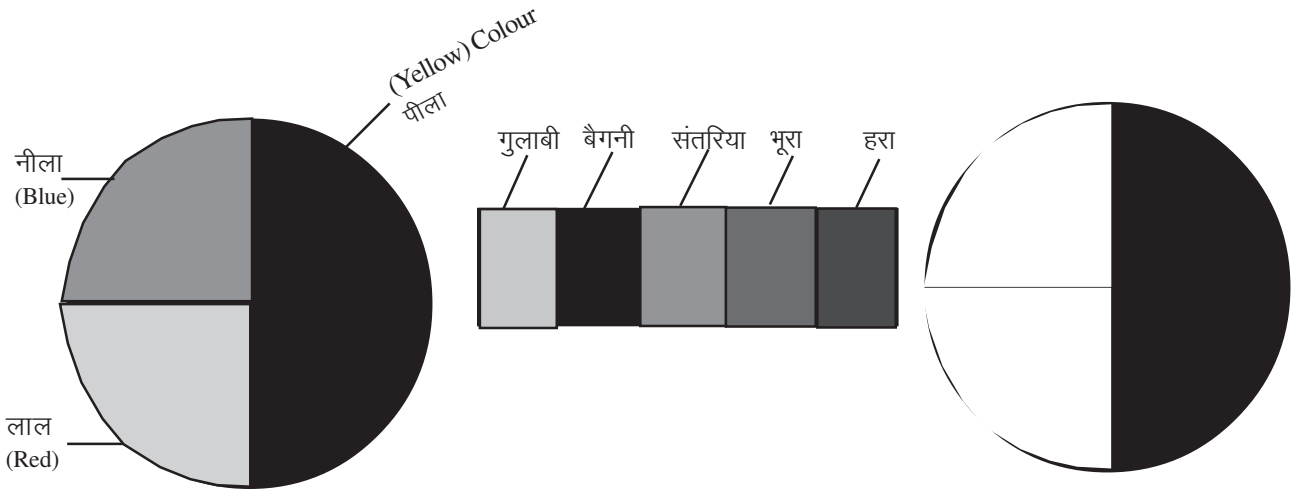


**प्राथमिक रंग** **सहायक रंग** **निरपेक्ष रंग**

3. **स्केलः** सीधी रेखाओं को खींचने में तथा नाप एवं अनुपात में दश्य–श्रव्य सामग्री बनाने के लिए स्केल या फुटा का प्रयोग किया जाता है। इसके एक तरफ इंच और दूसरी तरफ सेंटीमीटर का नाप दिया हुआ होता है।

4. **पेंसिलः** चार्ट बनाने के लिए पेंसिल का प्रयोग किया जाता है। पेपर पर पहले पेंसिल से बनाया जाता है। बढ़िया पेंसिल का प्रयोग करना चाहिए। H.B. की पेंसिल सबसे बढ़िया रहती है। घटिया पेंसिल का प्रयोग करने से कागज फट सकता है। पेंसिल न तो ज्यादा कठोर और न ही ज्यादा नरम होनी चाहिए। नरम पेंसिल जल्दी टूट जाती है। पेंसिल का रंग ज्यादा हल्का नहीं होना चाहिए।

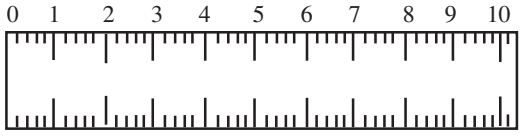

5. **रबडः** रबड़ का प्रयोग चार्ट आदि बनाते समय किया जाता है किसी भी चित्र को सही ढंग देने के लिए बार–बार रबड़ से मिटाना पड़ता है। रबड़ बढ़िया होना चाहिए। रबड़ न तो ज्यादा कठोर हो जिससे कागज फट जाए और न ही ऐसा होना चाहिए कि जल्दी–जल्दी टूट जाए। रबड़ ऐसा होना चाहिए जिससे अच्छे से साफ हो जाए। ऐसा रबड़ नहीं होना चाहिए जिससे मिटाने के बाद काला रंग हो जाता है।

**अपनी प्रगति जांचिए–1**

(i) सहायक सामग्री से क्या अभिप्राय है?

(ii) सहायक सामग्री तैयार करने की आवश्यकताओं की सूची बनाओ।

## 3.5 सहायक सामग्री तैयार करना (Preparing Teaching Aids)

विभिन्न सहायक सामग्री को तैयार करने की विधियाँ निम्नलिखित हैं–

### 3.5.1 श्याम पट्ट (Black Board)

श्यामपट्ट जैसा कि नाम से स्पष्ट है, एक ऐसी श्याम (काली) आयताकार आकृति जो लकड़ी, प्लाईवुड, गत्ते, सीमेन्ट अथवा धातु का टुकड़ा है जिस पर आवश्यकतानुसार लिखा व मिटाया जा सके। अध्यापक के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण सहायक सामग्री है जिसकी सहायता से वह मौखिक वर्णन के साथ–साथ विषय–वस्तु से सम्बन्धित लिखता या चित्र भी बनाता रहता है। श्यामपट्ट का उपयोग सभी विषयों, जैसे–गणित, विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, कला वाणिज्य इत्यादि में पूरी तरह किया जाता है। भाषा शिक्षण में तो उचित पठन–पाठन एवं लेखन की शिक्षा देने में ब्लैक–बोर्ड पर किया गया कार्य विद्यार्थियों को प्रेरणा व भाषा का आदर्श प्रस्तुत करता है।

#### श्यामपट्ट के प्रकार (Kinds of Black-Board)

श्यामपट्ट निम्न प्रकार के होते हैं–

1. **दीवारी श्यामपट्ट (Wall Black-Board):** यह श्यामपट्ट कक्षा–कक्ष की दीवार पर बना होता है। इसके निर्माण में प्रायः स्लेटी पत्थर एवं मसाले का प्रयोग किया जाता है और तैयार बोर्ड पर काला पेंट कर दिया जाता है। आमतौर पर इसका आकार 72' x 48' होता है। इसका निर्माण करते समय निम्नलिखित सावधानियाँ रखनी चाहिए–

   (i) श्यामपट्ट बनाते समय कक्षा की स्थिति को ध्यान में रखना जरूरी है। श्यामपट्ट की ऊंचाई इतनी हो कि सभी विद्यार्थियों को आसानी से स्पष्ट दिखाई दे सके।

(ii) श्यामपट्ट बनाने में उच्च कोटि का सामान लगाना चाहिए ताकि श्यामपट्ट के खराब होने का भय न रहे।

(iii) श्यामपट्ट पर प्रतिवर्ष काला रोगन (paint) करवाना चाहिए।

2. **लकड़ी का श्यामपट्ट (Wooden Black-Board):** यह एक लकड़ी का पट्टा होता है जिस पर काला रंग करके स्टैण्ड पर टांग दिया जाता है। इस स्टैण्ड को आवश्यकतानुसार ऊंचा–नीचा भी किया जा सकता है। इस प्रकार के बोर्डों का आकार छोटा होने के कारण गणित एवं विज्ञान के विषयों के लिये ये उपयुक्त नहीं हैं।

3. **श्याम पट्टिकाएं (Roll Up Boards):** श्याम पट्टिकाएं कपड़े के वे बोर्ड होते हैं जिन्हें लपेटा जा सकता है व दीवार पर टांगा जा सकता है। शिक्षण महाविद्यालयों में बी.एड के विद्यार्थियों की अधिक संख्या के अध्यापन अभ्यास के लिए दीवार पर श्याम–पट्टिकाओं को लटका कर काम चलाया जाता है। इनको बाहर जाने–ले जाने में सुगमता रहती है।

4. **चुम्बकीय बोर्ड (Magnetic Board):** यह श्याम पट्ट इस्पात का बना होता है जिसमें चाक के स्थान पर चुम्बक लगाए जाते हैं। प्राथमिक कक्षाओं में रोचकता बनाये रखने के लिए ये बहुत उपयोगी हैं। पाठ को दोहराते समय विद्यार्थी अभ्यास के लिए चुम्बकीय श्यामपट्ट पर चीजों को चिपका देते हैं। यह बोर्ड अध्यापकों के लिए उपयोगी हैं, क्योंकि वह चुम्बकों की सहायता से इन पर चित्र, रेखाचित्र एवं चार्ट आदि अच्छे ढंग से लगा सकता है।

## श्यामपट्ट के प्रयोग सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण बातें
## (Important points to be taken into account while using Black-Board)

1. **उपयोग (Use):** श्यामपट्ट का उपयोग निम्नलिखित बातों के लिए किया जाता है–
   - रेखाचित्र या मानचित्र द्वारा किसी तथ्य को समझाने के लिए।
   - नए तथ्यों व नियमों को प्रस्तुत करने के लिए।
   - अभ्यास के लिए।
   - सार के लिए।
2. **स्थिति (Location):** श्यामपट्ट की स्थिति ऐसी हो कि सभी विद्यार्थियों को स्पष्ट दिखाई दे।
3. **लेखन (Writing):** श्यामपट्ट पर अक्षर बड़े व सीधी रेखा में लिखने चाहिए।
4. **रंग (Colour):** श्यामपट्ट का रंग गहरा काला होना चाहिए ताकि लिखा हुआ स्पष्ट दिखाई दे सके।
5. **समय-समय पर रोगन करवाना (To get Painted Frequently):** श्यामपट्ट पर समय–समय पर गहरे काले रंग का रोगन (Paint) करवाना चाहिए ताकि स्पष्ट पढ़ा जा सके।
6. **चमकीले अक्षर (Bright Letters):** श्यामपट्ट पर रंगीन चाक की अपेक्षा सफेद चाक से लिखना चाहिए ताकि अक्षर स्पष्ट दिखाई दे सकें।
7. **झाड़न का प्रयोग (Use of Duster):** श्यामपट्ट को झाड़न (Duster) से ही साफ करना चाहिए। झाड़न का प्रयोग ऊपर से नीचे की ओर किया जाना चाहिए ताकि चाक पाउडर नीचे गिरे व कक्षा में न उड़ सके।
8. **रंगदार चाक का प्रयोग (Use of Coloured Chalks):** दो वस्तुओं अथवा शब्दों के बीच स्पष्ट अन्तर के लिए रंगदार चॉक का प्रयोग करना चाहिए।
9. **सार (Summary):** श्यामपट्ट पर केवल महत्त्वपूर्ण बातें जैसे–पाठ का सार इत्यादि ही लिखा जाना चाहिए।
10. **प्रकाश (Light):** श्यामपट्ट के ऊपर उचित प्रकाश की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि विद्यार्थियों को साफ दिखाई दे।
11. **सीधी रेखा (Straight Line):** अध्यापक को श्यामपट्ट पर सीधी रेखा में लिखना चाहिए।
12. **क्रमबद्ध लेखन (Systematic Writing):** अध्यापक को महत्त्वपूर्ण बातें बीच में लिखते हुए लिखने का क्रम ठीक रखना चाहिए।

13. **अध्यापक की स्थिति (Location of the Teacher):** अध्यापक को श्यामपट्ट के सामने इस प्रकार खड़ा होना चाहिए ताकि विद्यार्थियों को श्यामपट्ट पर लिखा हुआ साफ नजर आ सके।

14. **सहायक-सामग्री:** श्यामपट्ट पर लिखने की आवश्यक सामग्री जेसे चाक, डस्टर, स्टैंसिल इत्यादि पहले से तैयार रखने चाहिए।

15. **लिखने में फुर्तीलापन (Briskness in Writing):** अध्यापक को श्यामपट्ट पर साफ–साफ और फुर्ती से लिखना चाहिए ताकि विद्यार्थियों में रोचकता बनी रहे।

16. **लिखी सामग्री को कार्य समाप्ति के बाद मिटा देना (Rubbbing off the written material after the completion of work):** श्यामपट्ट पर लिखी सामग्री को कार्य की समाप्ति के पश्चात् मिटा देना चाहिए।

17. **संकेतक का प्रयोग (Use of pointer):** श्यामपट्ट पर लिखी गई सामग्री को अंकित करने के लिए अध्यापक को संकेतक अवश्य प्रयोग में लाना चाहिए।

18. **लिखते समय बोलते रहना (Talking while writing):** अध्यापक को श्यामपट्ट पर लिखते समय, लिखे हुए वाक्यों को बोलते रहना चाहिए। इससे विद्यार्थियों की दश्य–श्रव्य इन्द्रियाँ सक्रिय रहती हैं।

19. **छात्रों द्वारा योगदान (Contribution by the students):**—गणित, भूगोल, विज्ञान आदि विषयों में शिक्षण प्रक्रिया के दौरान सवाल हल करने, मानचित्र, चित्र आदि बनाने के लिए विद्यार्थियों को श्यामपट्ट पर बुलाना चाहिए, इससे विद्यार्थी क्रियाशील रहते हैं।

20. **त्रुटिपूर्ण विषय-वस्तु (Wrong Subject matter):** कभी भूल से भी गलत बात या त्रुटिपूर्ण ड्राइंग श्यामपट्ट पर नहीं लिखनी व बनानी चाहिए।

## 3.5.2 फ्लैनल बोर्ड (Flannel Board)

फ्लैनल बोर्ड कक्षा शिक्षण में प्रयुक्त, लिखी हुई तथा चित्रात्मक सामग्री के तत्काल प्रदर्शन हेतु काम में लाये जाने वाला सबसे अच्छा साधन है। फ्लैनल बोर्ड का प्रदर्शन उन कार्यों में बहुत उपयोगी सिद्ध होता है जिनमें विद्यार्थियों से पहचान का कार्य करवाना हो। इस प्रकार के बोर्ड की विशेषता यह है कि इस पर किन्हीं शब्दों अथवा चित्रों को खींचने की आवश्यकता नहीं। पूर्वनिर्मित सामग्री को इसके ऊपर टिकाया जा सकता है। जब कार्य समाप्त हो जाता है तो उसे वहाँ से हटाया जा सकता है। प्राथमिक कक्षा में विद्यार्थियों को विषय सामग्री सम्बन्धी वस्तुएं फ्लैनल बोर्ड पर जमाने के लिए दी जाती हैं ताकि उनकी रचनात्मक रुचि जागत हो सके।

### फ्लैनल बोर्ड का निर्माण (Perparation of Flannel Board)

फ्लैनल बोर्ड लकड़ी या प्लाईवुड का एक बोर्ड या पट्टा होता है जिसे उचित आकार में काटा जाता है। फिर इस पर फ्लैनल कस कर चिपका दिया जाता है। फ्लैनल एक कपड़ा होता है, जिसमें ऊन के रेशे होने के कारण उसमें खुरदरापन आ जाता है। इसके पश्चात फ्लैनल बोर्ड पर प्रदर्शित किए जाने वाले चित्रों और मानचित्रों को रेगमार (Sand Paper) पर गोंद से चिपकाया जाता है। अब फ्लैनल बोर्ड को उपयुक्त जगह पर कक्षा में टांगकर अथवा मेज पर रखकर कक्षा शिक्षण के समय काम में लाया जा सकता है।

### फ्लैनल बोर्ड का महत्त्व (Importance of Flannel Board)

फ्लैनल बोर्ड के निम्नलिखित महत्व हैं—

1. प्राथमिक कक्षाओं के बच्चे फ्लैनल बोर्ड की सहायता से मनोरंजक कहानियां अच्छे ढंग से समझ सकते हैं।

2. फ्लैनल बोर्ड कक्षा–कक्षा में विविधता लाता है।
3. इस सहायक सामग्री का प्रयोग छोटी कक्षाओं में भाषा, गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल इत्यादि के शिक्षण के लिए सुगमता से किया जा सकता है।
4. फ्लैनल बोर्ड पर विचार या प्रविधि बड़ी आसानी से प्रस्तुत किए जाते हैं।
5. फ्लैनल बोर्ड का प्रयोग प्रभावशाली ढंग से किया जाए तो प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।
6. फ्लैनल बोर्ड पर प्रदर्शित होने वाली जानकारी पहले से ही तैयार की जाती है अतः वह सुन्दर व आकर्षक होती है।

**सावधानियाँ**
**(Precautions)**

फ्लैनल बोर्ड का प्रयोग करते समय निम्नलिखित सावधानियाँ रखनी चाहिएः–

1. फ्लैनल बोर्ड पर प्रदर्शित होने वाले चित्रों के पीछे नम्बर डाल देने चाहिए ताकि प्रदर्शन के समय किसी प्रकार की भूल न हो।
2. प्रदर्शित की जाने वाली सामग्री को फ्लैनल बोर्ड पर दबा कर चिपकाया जाना चाहिए ताकि दोनों खुरदरे तल अच्छी तरह स्पर्श प्राप्त करके चिपक सकें।
3. पढ़ाने से पूर्व उन्हें एक बार बोर्ड पर क्रमानुसार चिपका कर देख लेना चाहिए।
4. प्रदर्शित किए जाने वाले चित्र बढ़िया और बड़े आकार के होने चाहिए।
5. फ्लैनल का रंग गाढ़ा (Dark) होना चाहिए क्योंकि हल्के रंग जल्दी गन्दे हो जाते हैं।
6. कटिंग व चित्र पाठ्य–वस्तु से सम्बन्धित होने चाहिए।
7. ऐसे रंगों को प्रयोग में लाना चाहिए जो वैष्मय (Contrast) उत्पन्न कर सकें।
8. फ्लैनल बोर्ड पर प्रदर्शित सामग्री को पुनः प्रयोग में लाते रहने की दष्टि से उचित देखभाल एवं सुरक्षा भी आवश्यक है।

### 3.5.3 बुलेटिन बोर्ड (Bulletin Board)

विद्यालयों में लेखन और चित्रात्मक दश्य सामग्री का प्रदर्शन करने के लिए काम में लाया जाने वेाला एक सुलभ साधन बुलेटिन बोर्ड है। यह एक प्रदर्शन पट्ट (Display Board ) होता है जो मुख्यतया बुलेटिन, विज्ञप्तियों, समाचारों, विद्यालय की कक्षा शिक्षण तथा अन्य गतिविधियों की सूचना देने के लिए काम में लाया जाता है। अर्थाभाव के कारण भारत में अनेक विद्यालयों में बुलेटिन बोर्ड की सुविधा उपलब्ध नहीं है। बुलेटिन बोर्डों पर शिक्षक समाचार पत्र और पत्रिकाओं की कटिंग, मानचित्र, नवीन प्रकाशित पुस्तक का टाईटल, पेज, पोस्टर इत्यादि को विद्यार्थियों के ज्ञान में वद्धि करने के लिए टांग सकते हैं। सूचना पट्ट पर सामग्री का प्रदर्शन ड्राइंग पिनों से टांग कर दिया जा सकता है। बुलेटिन बोर्ड को विद्यालय की निरन्तर पत्रिका भी माना जा सकता है। यह पूर्ण रूप से विद्यार्थियों के रचनात्मक प्रयत्नों का परिणाम होता है।

**बुलेटिन बोर्ड का निर्माण**
**(Preparation of a Bulletin Board)**

सामान्य बुलेटिन बोर्ड को आफिस, पुस्तकालय और प्रयोगशाला आदि की दीवारों पर स्थापित किया जा सकता है। इसके निर्माण के लिए प्रायः लकड़ी और प्लाईवुड इत्यादि से बने उपयुक्त फ्रेमों का इस्तेमाल किया जाता है। लकड़ी और प्लाईवुड की शीट पर ऐसे मुलायम पदार्थ जैसे सोफ्टवुड, कार्क मैटेरियल आदि की शीट लगाई जाती है जिसमें पिन वगैरह अच्छी तरह से गाड़ी जा सकें इसके ऊपर हिफाजत की दष्टि से किसी उपयुक्त गहरे रंग का कोई मोटा कपड़ा लगा देते हैं, जो प्रदर्शित सामग्री को उपयुक्त धरातल देने का भी कार्य करता है। अंत में उस पर शीशे अथवा जालीयुक्त फ्रेम लगाकर बन्द कर देते हैं।

## बुलेटिन बोर्ड का प्रयोग कैसे किया जाए (How to Use the Bulletin Board?)

1. बुलेटिन बोर्ड की व्यवस्था का उत्तरदायित्व अनुभवी व उत्साही अध्यापक को सौंपना चाहिए।
2. प्रदर्शित की जाने वाली सामग्री अधिक नहीं होनी चाहिए।
3. विशेष शैक्षिक उद्देश्य की ही सूचना प्रदर्शित की जानी चाहिए।
4. प्रदर्शित की जाने वाली सामग्री को स्वच्छता, व्यवस्था व क्रम से लगना चाहिए।
5. प्रदर्शित की जाने वाली सामग्री ऐसी हो कि विद्यार्थियों द्वारा अच्छी तरह देखी व समझी जा सके।
6. विद्यार्थियों की बनाई हुई संग्रहित सामग्री के प्रदर्शन को इसमें अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए।
7. प्रदर्शित की हुई सामग्री को उपयुक्त शीर्षक देकर अलग–अलग बुलेटिन बोर्डों पर विभाजित कर देना चाहिए।
8. प्रदर्शित की हुई सामग्री को लगातार बदलते रहना चाहिए।
9. रुचि बढ़ाने और ध्यान आकर्षित व केन्द्रित करने के लिए नवीनतम सूचनाओं और गतिविधियों का विवरण ही बुलेटिन बोर्ड पर दिया जाना चाहिए।

## बुलेटिन बोर्ड के लाभ (Advantages of Bulletin Board)

बुलेटिन बोर्ड के विद्यालय में लाभ निम्नलिखित हैं–

1. **विद्यार्थियों की रुचि परिष्कृत करने में सहायक (Helpful in arousing the curiosity and interest in students):** बुलेटिन बोर्ड पर लगे चित्रों को देखकर विद्यार्थियों में जिज्ञासा उत्पन्न होती है। जिससे उनमें स्वयं कुछ करने की इच्छा पैदा होती है।
2. **प्रतिभा को आगे लाना (Helpful in polishing the talents):** यह विद्यार्थियों की प्रतिभा को आगे लाने के अवसर प्रदान करता है।
3. **ज्ञान बढ़ाना (To increase the knowledge):** यह विद्यार्थियों के ज्ञान एवं बोध स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक है।
4. **उपयुक्त वातावरण बनाने में सहायक (Creates appropriate atmosphere):**–बुलेटिन बोर्ड कक्षा–कक्ष व विद्यालय में उपयुक्त वातावरण पैदा करता है।
5. **सुन्दर व आकर्षित सामग्री (Beautiful and attractive aid):** विद्यार्थियों के प्रोत्साहन के लिए पुरस्कृत विद्यार्थियों के फोटो लगाकर व सुन्दर प्रदर्शित सामग्री द्वारा इसे आकर्षक बनाया जा सकता है।
6. **मौलिकता को मूर्त रूप देना (Provides orginality):** बुलेटिन बोर्ड के लिए विद्यार्थियों द्वारा बनाये गए चित्र अथवा लिखी गई कविता या लेख मौलिकता को मूर्त रूप प्रदान करते हैं।
7. **विशेष विषयों के लिए लाभदायक (Useful for special subjects):** कुछ विषय ऐसे होते हैं जिन्हें आसानी से कक्षा में नहीं लाया जा सकता, जैसे जनसंख्या वद्धि इत्यादि। बुलेटिन बोर्ड के द्वारा अध्यापक इन विषयों को विद्यार्थियों को सरलता से समझा सकता है।
8. **क्रमानुसार प्रदर्शन (Systematically arranged display):** बुलेटिन बोर्ड पर ऐसे विचार जिनमें क्रम का महत्त्व हो, स्वाभाविकता से प्रदर्शित किये जा सकते हैं।
9. **सामूहिक कार्य करने के अवसर प्रदान करना (Provides opportunity for group work):** बुलेटिन बोर्ड की सामग्री को विद्यार्थी सामूहिक रूप से तैयार करते हैं जिससे सहयोग की भावना का विकास होता है।

10. **समय की बचत (Economy of Time):** बुलेटिन बोर्ड के माध्यम से विषय–वस्तु को शीघ्र समझाया जा सकता है जिससे समय की बचत होती है।

11. **रचनात्मक कार्य (Creative Work):** इससे विद्यार्थियों को रचनात्मक कार्य करने की प्रेरणा मिलती है।

12. **सूचना प्रदान करने का उपयुक्त स्थान (Suitable place for the posting of announcements):** बुलेटिन बोर्ड पर सूचनाएं, दत्तकार्य इत्यादि की प्रभावशाली ढंग से घोषणा की जा सकती है।

13. **स्थायी और प्रभावशाली ज्ञान प्रदान करना (Provides permanent and everlasting knowledge):** बुलेटिन बोर्ड द्वरा प्रदान किया गया ज्ञान भली प्रकार से समझ में आने वाला होता है।

### 3.5.4 चित्र (Picture)

चित्रात्मक साधनों में सबसे सुलभ और बहुप्रचलित साधन चित्रों का प्रयोग है। इन्हें सभी प्रकार के विषय और विषय–वस्तुओं की शिक्षा के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। जिन चीजों को विद्यार्थी प्रत्यक्ष रूप से अनुभव नहीं कर सकते, चित्रों द्वारा उन्हें आसानी से समझा जा सकता है। एक बार देखना सौ बार सुनने से अधिक लाभदायक होता है। अध्यापक किसी क्षेत्र के बारे में कितना भी मौखिक वर्णन करता रहे पर बात नहीं बनती। यदि उस क्षेत्र से सम्बन्धित चित्र दिखाया जाए तो विद्यार्थी अच्छे ढंग से सीख लेते हैं। इतिहास पढ़ाने में, ऐतिहासिक हस्तियों जैसे अकबर, शिवाजी आदि का चित्र दिखाकर, उनकी वेशभूषा, व्यक्तित्व और कार्यों का चित्रण कर इतिहास का शिक्षण करने में बहुत सहायता मिल सकती है। ऐतिहासिक स्थलों व भवनों के चित्र दिखाकर उनसे सम्बन्धित तथ्यों को अच्छी तरह से समझाया जा सकता है। विज्ञान में विभिन्न पेड़–पाधे, पशु–पक्षी, कीड़े–मकोड़ों का ज्ञान, मानव शरीर की रचना एवं कार्य प्रणाली तथा ऐसी ही अनेक प्रकार की वैज्ञानिक जानकारी को ग्रहण करने में चित्रों से पूरा–पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

#### चित्र बनाने की तैयारी (Preparation of a Picture)

चित्र बनाने के लिए जन्मजात गुण व अभ्यास दोनों ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 'करत–करत अभ्यास से जड़मति होत सुजान' वाली कहावत चित्र बनाने वाले के साफ हाथ पर पूरी तरह चरितार्थ होती है। चित्र बनाने के लिए कल्पनाशक्ति का होना बहुत जरूरी है। चित्र फ्रीहैंड ड्राइंग व पेंटिंग द्वारा बनाये जा सकते हैं। जिन विद्यार्थियों या अध्यापकों में प्रतिभा कम होती है वे ट्रेनिंग का सहारा लेते हैं। अधिकतर बी.एड. व जे.बी.टी. के छात्र समाचार पत्र, कलैण्डर या पत्रिका में से प्रकरण सम्बन्धी चित्रों को काटकर अलग ड्रांईंग पेपर पर चिपका कर चित्र तैयार करते हैं। अध्यापक कई बार एपीडायस्कोप द्वारा छोटे–छोटे चित्रों, मानचित्रों, पोस्टरों तथा पुस्तक में छपे हुए चित्रों को कमरे में अंधेरा करके स्क्रीन पर बिना स्लाइड बनाए हुए भी बड़ा करके दिखा सकता है।

#### चित्रों को कहाँ से प्राप्त किया जाए? (From where to get picture)

चित्रों की प्राप्ति के सम्बन्ध में निम्न स्त्रोतों पर ध्यान दिया जाना चाहिएः

1. विभिन्न विषयों से बने हुए चित्र बाजार से खरीदे जा सकते हैं।
2. अखबार, कामिक्स, पत्र–पत्रिकाओं में से काटकर किसी गत्ते अथवा बोर्ड पर चिपकाकर इन्हें काम में लाया जा सकता है।
3. विभिन्न दश्य–श्रव्य पुस्तकालयों के सदस्य बनकर इन्हें प्रयोग में लाने के लिए उधार लिया जा सकता है।
4. विभिन्न मंत्रालयों, पर्यटन विभाग तथा विदेशी दूतावासों द्वारा जारी की गई प्रकाशन सामग्री में से इन्हें एकत्रित किया जा सकता है।
5. विद्यार्थियों की सहायता से इन्हें विद्यालय में बनाया जा सकता है।

6. कैमरे की सहायता से फोटोग्राफी के रूप में बहुत से चित्रों का संकलन किया जा सकता है। इन फोटोग्राफों को किसी गत्ते, प्लास्टिक, चमड़े तथा लकड़ी के बोर्ड आदि पर अच्छी तरह चिपकाकर या फ्रेम में जड़वाकर काम में लाया जा सकता है।

## अच्छे चित्रों के लाभ
## (Advantages of Good Pictures)

अच्छे चित्रों के निम्नलिखित लाभ हैं:

1. **सस्ते तथा सुगमता से उपलब्ध (Cheap and easily available):** चित्र प्रायः पदार्थों व नमूनों से सस्ते होते हैं तथा बाजार में आसानी से मिल सकते हैं इसलिए इनका उपयोग कक्षा में प्रभावशली ढंग से किया जा सकता है।
2. **विवरण (Details):** स्थिर चित्रों से विद्यार्थी अच्छे ढंग से विवरण प्राप्त कर सकते हैं।
3. **स्पष्टता व रोचकता (Clarity):** बच्चों को स्पष्ट व रोचक ज्ञान देने में चित्रों का विशेष महत्त्व है।
4. **वास्तविकता का ज्ञान देने में सहायक (Helpful in giving knowledge):** चित्रों का प्रयोग बालकों को वास्तविकता का ज्ञान देने व कल्पना शक्ति को बढ़ाने में सहायता करता है।
5. **विचार शक्ति बढ़ाना (Increasing the thinking power):** चित्रों द्वारा विद्यार्थियों के विचारों में शुद्धता, स्पष्टता और संगठन करने की शक्ति उत्पन्न की जा सकती है।

## अच्छे चित्रों के गुण व उपयोग
## (Quality and uses of Good Pictures)

1. **उद्देश्य (Objective):** चित्रों का दश्य साधन के रूप में उपयोग शिक्षण सम्बन्धी विशेष उद्देश्यों को लेकर ही करना चाहिए।
2. **आकार (Size):** चित्रों का आकार इतना हो कि पूर्ण कक्षा उसे स्पष्ट रूप से देख सके।
3. **स्पष्टता (Clarity):** चित्रों का रंग वैसा ही हो जैसा कि वास्तविक पदार्थों का। चित्रों का स्पष्ट होना बहुत आवश्यक है।
4. **प्रदर्शन के लिए उपयुक्त स्थान (Appropriate place for display):** चित्र कक्षा में उपयुक्त स्थान पर ही टांगे जाएं जहाँ से प्रत्येक छात्र उसे देख सके।
5. **समानुपात (Proper Proportion):** जिस किसी वस्तु या पदार्थ का चित्र प्रदर्शित करना है, वह उसी अनुपात के अनुसार चित्रित किया जाना चाहिए।
6. **प्रयोग उचित समय तथा स्थान पर (Use at appropriate time and place):** चित्रों का प्रयोग उचित समय व स्थान पर किया जाना चाहिए।
7. **सार्थकता (Reality):** चित्रों में सार्थकता होनी चाहिए ताकि विद्यार्थी वास्तविक पदार्थों के रूप को भली–भांति समझ सके।
8. **उपयुक्तता (Appropriateness):** चित्र कक्षा में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की आयु व स्तर के अनुसार होना चाहिए।
9. **चित्र में अधिक भीड़ नहीं होनी चाहिए (Picture should not have a jumble of lot many facts):** चित्रों में मुख्य–मुख्य बातें ही होनी चाहिए ताकि छात्र स्पष्ट रूप से चित्र को समझ सके।
10. **सौन्दर्यपूर्ण (Aesthetic):** चित्र में छात्रों की अवस्था के अनुसार चटकीले अथवा हल्के रंग प्रयोग में लाने चाहिए।
11. **अर्थपूर्ण चित्र (Meaningful Pictures):** चित्र इस प्रकार के हों कि शिक्षक को व्याख्या करने के लिए अधिक न कहना पड़े, सिर्फ मुख्य बातें ही बतानी पड़ें।
12. **रचनात्मक प्रवत्ति (Creative nature):** चित्रों के द्वारा विद्यार्थियों में रचनात्मक प्रवत्ति का विकास करना चाहिए।

13. **संग्रह (Collection):** चित्रों को जहाँ तक हो सके, अध्यापक को अपनी देख–रेख में छात्रों से ही संग्रहित कराने या बनवाने का प्रयत्न करना चाहिए।

14. **छोटे बच्चों के लिए रंगीन चित्र (Coloured picture for younger children):** बच्चे रंगीन चित्र अधिक पसन्द करते हैं, इसलिए बच्चों के लिए रंगीन चित्र बनाने चाहिए।

15. **शैक्षिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग (Integral part of educative Process):** चित्र पाठ का एक अंग होना चाहिए। ऐसा न हों कि विद्यार्थियों को ये लगे कि चित्र उन पर थोपे गये हैं।

16. **विश्लेषण शक्ति का विकास (Development of the power of critical judgement):** चित्र इस प्रकार के बनाए जाने चाहिए कि विद्यार्थियों में विश्लेषण शक्ति का विकास हो और उनकी कल्पना शक्ति व क्रियाशीलता को बढ़ाएं।

### 3.5.5 चार्ट (Chart)

चित्र या ग्राफों के रूप में जो कुछ अलग–अलग प्रदर्शित किया जा सकता है उस सभी को सुविधापूर्वक अलग–अलग या इकट्ठे रूप में प्रदर्शित करने का कार्य चार्टों द्वारा अच्छी तरह किया जा सकता है। डॉ. डेल के अनुसार "चार्ट एक दश्य सामग्री चिन्ह है जो विषय–वस्तु के सार, तुलना या किसी दूसरी क्रिया की व्याख्या करने में सहायता देता है"।

#### चार्टों का महत्त्व (Importance of Charts)

कक्षा शिक्षण के प्रत्येक स्तर पर चाहे वह पूर्व ज्ञान परीक्षा या प्रस्तावना से सम्बन्धित हो या विषय–वस्तु के क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण, पुनरावत्ति, अभ्यास अथवा गहकार्य प्रदान करने से, चार्ट सभी स्तर पर एक अध्यापक को उसके कार्य में यथेष्ट सहायता प्रदान करते हैं। यही कारण है कि सभी विषयों से सम्बन्धित पाठ्य सामग्री के शिक्षण–अधिगम कार्यों में चार्टों से पूरी सहायता लेने का प्रयास किया जाता है। तथ्यों या विचारों को एक क्रमबद्ध श्रंखला में प्रस्तुत करने के कार्य में चार्ट, फोटोग्राफ और आलेख से भी अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं।

#### चार्टों के प्रकार (Types of Charts)

शैक्षिक कार्यों में बहुधा निम्न प्रकार के चार्टों का प्रयोग किया जाता हैः

1. **वक्ष की आकृति वाले चार्ट (Tree Chart):** इन चार्टों में बनी आकृति वक्ष जैसी होती है। वक्ष का मूल या मुख्य तना जहाँ किसी संगठन या विकास के उद्‌भव को प्रकट करता है वहीं शाखायें, तने तथा पत्तियों द्वारा उनके बहुआयामी विकास को प्रदर्शित किया जाता है।

2. **तालिका चार्ट (Table Chart):** इन चार्टों में तथ्य एवं सूचनाओं को तालिका के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। तालिका चार्ट में कई प्रकार के विभाग बना कर विचारों, घटनाओं तथा विवरणों को क्रमानुसार व्यवस्थित किया जाता है। विद्यालय समय सारणी इसका सबसे अच्छा उदाहरण है।

3. **समय चार्ट (Time Chart):** घटनाओं के कालक्रम को बताने के लिए इन चार्टों को काम में लाया जाता है। किसी भी राष्ट्र अथवा प्रक्रिया के विकास से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण घटनाओं को इनमें कालक्रम के आधर पर व्यवस्थित कर दिया जाता है। घटना चक्र या विकास क्रम का कौन सा दौर गुजरा, इसकी जानकारी सुगमता से इन चार्टों द्वारा प्राप्त होती है।

4. **प्रवाह चार्ट (Flow Chart):** इन चार्टों द्वारा किसी भी आन्दोलन, प्रक्रिया, विचारधारा, संगठन आदि के क्रमिक विकास और प्रबन्ध को भली–भांति दिखाया जा सकता है। इसे दिखाने के लिए प्रायः इनमें रेखाओं, तीरों, आयतों आदि का प्रयोग किया जाता है।

5. **समस्या चार्ट (Issue Chart):** इन चार्टों का प्रयोग महत्त्वपूर्ण विषयों अथवा समस्याओं पर व्यक्ति विशेष या संगठनों के विचारों की तुलनात्मक जानकारी प्रदान करने के लिए किया जाता है।
6. **वत्ताकार चार्ट (Circle Charts):** इन चार्टों में वत्त को आवश्यकतानुसार भागों में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक वत्त किसी प्रतिशत को व्यक्त करता है।
7. **चित्रात्मक चार्ट (Pictorial Charts):** इन चार्टों में पढ़ाई जाने वाली विषय–वस्तु को ग्राफ रेखाकृत्तियों, शब्दों तथा परम्परागत चित्रों के माध्यम से प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया जाता है।

### चार्ट निर्माण की सामग्री
### (Materials to be used for Preparation)

चार्ट में एक मजबूत ड्राईंग शीट ली जाती है जिस पर विभिन्न रंगों, पंसिलों, रूलर स्टैंसिल इत्यादि का उपयोग किया जाता है। चार्ट का निर्माण करते समय ऐसी स्याही उपयोग में लानी चाहिए जो चार्ट को रोल करते वक्त न फैले। बनाए गए चित्र, चार्ट के अथवा सामग्री के समानुपाती होनी चाहिए।

### चार्टों का प्रभावपूर्ण उपयोग कैसे किया जाये ?
### (How to use charts as an effective Aid?)

1. **शैक्षिक उद्देश्य (Educational Aim):** चार्टों के द्वारा निश्चित शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता मिलती है।
2. **चार्ट के निर्माण में विद्यार्थियों का सहयोग (Participation of Students):** अध्यापक को चार्टों का निर्माण अपनी देख–रेख में विद्यार्थियों से करवाना चाहिए।
3. **प्रभावपूर्ण ढंग (Effective method):** जिस विचार, तथ्य, सूचना अथवा प्रक्रिया को चार्ट द्वारा प्रदर्शित करना हो उसको चार्ट पर दश्य सामग्री द्वारा इस प्रकार दिखाया जाना चाहिए कि उससे विषय को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया जा सके।
4. **विषय वस्तु (Subject matter):** चार्ट के लिए विषय–वस्तु विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप होनी चाहिए।
5. **एक उद्देश्य (Single Aim):** एक चार्ट का केवल एक ही उद्देश्य होना चाहिए। जिससे विद्यार्थी आसानी से समझ सकें।
6. **स्पष्ट करना (To Clarify):** जिस उद्देश्य से चार्ट को प्रदर्शित किया जा रहा है, उसी को स्पष्ट करने से सम्बन्धित सामग्री चार्ट में होनी चाहिए।
7. **आकार (Size):** चार्ट का आकार उपयुक्त होना चाहिए जिससे कि उसका सम्पूर्ण भाग विद्यार्थियों को अच्छी तरह दिखाई दे सकें।
8. **आवश्यकतानुसार प्रयोग (To be used when required):** कक्षा में चार्ट की जिस समय आवश्यकता हो उसे उसी समय प्रदर्शित किया जाना चाहिए।
9. **रंग (Colour):** चार्ट में दश्य सामग्री को उत्तम बनाने के लिए रंगों का पूरा ध्यान रखना चाहिए।
10. **मजबूत (Strong enough):** चार्ट मोटे कागज पर बनाना चाहिए ताकि वे जल्दी से फट न जाए।

## 3.5.6 पोस्टर
## (Poster)

पोस्टरों में चित्रात्मक अभिव्यक्ति चित्रों की तरह बिल्कुल स्पष्ट व प्रत्यक्ष ढंग से नहीं होती बल्कि एक खास अंदाज में अप्रत्यक्ष तथा संकेतात्मक रूप में की जाती है। पोस्टर द्वारा किसी एक विचार को ही केन्द्र बिन्दु बनाकर सशक्त संवेगात्मक अपील की जाती है कि जो भी विशेष संदेश या खास बात दर्शकों को प्रेषित करनी होती है, वह उनके दिल और दिमाग पर पूरी तरह छा जाती है। पोस्टर कक्षा शिक्षण में विद्यार्थियों को सीखने की दिशा में अभिप्रेरित करते हैं। किसी भी पाठ को प्रस्तावित करते समय उसके प्रति आकर्षित होकर विद्यार्थियों द्वारा उसे पढ़ने की आवश्यकता पोस्टरों द्वारा अच्छी तरह अनुभव कराई जा सकती है। पाठ्य वस्तु का दूसरे विषयों से समन्वय करने के उद्देश्य से भी अध्यापक पोस्टरों की मदद ले सकता है। पोस्टरों

द्वारा विद्यार्थियों की बुरी आदतों को समाप्त कर अच्छी आदतें विकसित करने और अच्छे व्यवहार को प्रोत्साहित करने में भी सहायता ली जा सकती है।

### पोस्टर प्राप्त करने के स्त्रोत (Sources of Getting Posters)

पोस्टर प्राप्त करने के मुख्य दो स्त्रोत निम्नलिखित हैं—

1. **बाहरी स्त्रोत (External Sources):** समुदाय व समाज में प्रचार और विज्ञापन के संसार से जो कुछ भी उपयुक्त संकलन हो सके, उसे निजी अनुभव का उपयोग करके, अध्यापक को संग्रहित करना चाहिए।
2. **निजी स्त्रोत (Internal Sources):** विद्यालय में विद्यार्थियों की रचनात्मक शक्तियों का सदुपयोग पोस्टर तैयार करने में किया जा सकता है।

### पोस्टर का निर्माण (Preparation of Poster)

पोस्टर के निर्माण के लिए रेशमी पटल पद्धति का प्रयोग किया जाता है। पोस्टरों के डुपलिकेशन के लिए यह एक सरल प्रक्रिया है। सागवान की लकड़ी से पोस्टर का फ्रेम बनाया जा सकता है। लकड़ी के हत्थे में रबड़ लगी होती है। जिसकी दाब से रोशनाई पटल के पार कर दी जाती है। स्टेंसिल को छापने वाले फ्रेम को कस कर तने हुए रेशम के पटल पर चिपका दिया जाता है। इसके पश्चात स्टैंसिल के पार कागज के तख्तों पर स्याही पहुंचाई जाती है। यदि एक पोस्टर में एक से अधिक रंग है तो प्रत्येक रंग का मुद्रण अलग–अलग ढंग से किया जाता है।

### पोस्टरों का प्रयोग कैसे किया जाए ? (How to use posters?)

पोस्टरों के प्रयोग से सम्बन्धित कुछ विशेष बातें निम्नलिखित हैं—

1. **शैक्षिक महत्त्व (Educational Importance):** पोस्टरों की शैक्षिक उपयोगिता को महत्त्व देते हुए ऐसे पोस्टरों का निर्माण करना चाहिए जिनसे विशिष्ट शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके।
2. **चयन (Selection):** उन्हीं पोस्टरों का चयन किया जाना चाहिए जिन्हें विद्यार्थी अच्छे ढंग से समझ सकें तथा जिनके द्वारा अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाने की भूमिका अच्छी तरह से निभाई जा सके।
3. **स्पष्टता (Clarity):** पोस्टर इस प्रकार के हों कि वे विचार संप्रेषण तथा संवेगात्मक अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से कर सकें।

## 3.5.7 फोटोग्राफी (Photography)

वस्तुओं, व्यक्तियों, स्थानों तथा घटनाओं से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण बातों के अध्ययन में फोटोग्राफिक कैमरे के द्वारा लिए गए चित्रों को फोटोग्राफ कहा जाता है। ये प्रभावपूर्ण दश्य साधन की भूमिका अच्छी तरह से निभा सकते हैं। इन फोटोग्राफों को सुरक्षा की दष्टि से शीशे के फ्रेम में जड़ा जाता है अथवा किसी मोटे गत्ते, कार्ड बोर्ड, लकड़ी तथा धातु के पष्ठ पर चिपकाकर या कीलों से जड़कर प्रदर्शित किया जाता है। इन्हें किसी फाइल में संग्रहित किया जा सकता है अथवा फ्लैनल बोर्ड पर दिखाया जा सकता है।

फोटोग्राफस को स्कूल स्तर के सभी विषयो के शिक्षण में अच्छी तरह उपयोग में लाया जा सकता है। इतिहास शिक्षण में फोटोग्राफस का विशेष महत्त्व है। ऐतिहासिक स्थलों, घटनाओं, प्रक्रियाओं, वस्तुओं, व्यक्तियों आदि के फोटोग्राफ, पढ़ने–पढ़ाने की सामग्री प्रदान कर सकते हैं। प्राकृतिक दश्यों, घटनाओं इत्यादि के फोटोग्राफ, भूगोल तथा विज्ञान आदि विषयों के अध्ययन अध्यापन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

शैक्षिक उपयोग से सम्बन्धित फोटोग्राफस बाजार में आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। भ्रमण के दौरान अध्यापक अथवा विद्यार्थी फोटोग्राफिक कैमरे की सहायता से प्राकृतिक दश्यों के फोटोग्राफ ले सकते हैं। शैक्षिक मेलों, प्रदर्शनियों तथा संग्रहालय में संग्रहित वस्तुओं एवं प्रक्रियाओं के फोटोग्राफ भी शैक्षिक प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

### 3.5.8 मॉडल (Model)

मॉडल से तात्पर्य किसी वस्तु का ऐसा प्रतिरूप है जिसे देखकर उस वस्तु के बारे में अच्छी तरह जानकारी प्राप्त की जा सके। जब वास्तविक वस्तुएं उपलब्ध कराना कठिन या असम्भव हो (जैसे मानव आँख की संरचना, ज्वालामुखी, मानव दिल इत्यादि) तब उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से मॉडल द्वारा प्रभावशाली ढंग से प्रदर्शित किया जा सकता है।

#### शैक्षिक महत्त्व (Educational Importance)

शैक्षिक उपयोगिता की दष्टि से मॉडल के प्रयोग के निम्नलिखित लाभ हैं—

1. **सजनात्मक शक्ति का विकास (Development of creative power):** मॉडल विद्यार्थियों की सजनात्मक शक्ति का विकास करने में सहायक होते हैं। मॉडल को देखकर उनके दिमाग में उस वस्तु की स्पष्ट आकृति बन जाती है।
2. **अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाना (Makes the learning process effective):** मॉडल अधिगम प्रक्रिया को रोचक तथा सजीव बनाते हैं। फलस्वरूप विद्यार्थियों की पाठ में रूचि जागत होती है।
3. **जहाँ विकल्प सम्भव नहीं है (Where alternate is not feasible):** विभिन्न विषयों में त्रिआयामी पदार्थों के बारे में ज्ञान प्रदान करने के लिए मॉडल का सहारा लेना पड़ता है। जैसे आंख की बनावट व कार्य प्रणाली का अध्ययन करना हो तो उपयुक्त मॉडल की सहायता ली जा सकती है।
4. **जहाँ वास्तविक पदार्थ बहुत छोटा या बड़ा हो (Where the actual object is either too big or too small):** मॉडल बड़ी वस्तुओं को छोटे रूप में व अत्यधिक छोटी वस्तुओं को बड़े रूप में दर्शाता है, जिससे समझने में आसानी रहती है। जैसे पथ्वी के लिए छोटा प्रतिरूप ग्लोब का व अमीबा जैसे एक कोशकीय जीव के लिए बड़ा प्रतिरूप, मॉडल के रूप में प्रयोग में लाया जाता है।
5. **कार्यकारी मॉडल (Working models):** इन मॉडलों से वस्तुओं की प्रक्रियाओं के अध्यन के लिए हमें बहुत सहायता मिलती है। इन मॉडलों में वस्तुओं के भागों को अलग–अलग खोलकर व जोड़कर दिखाया जा सकता है। जीव–विज्ञान विषय में हृदय आदि जीवित और कार्यशील भागों की रचना और कार्यप्रणाली को इस प्रकार के मॉडलों की सहायता से अच्छी तरह से समझाया जा सकता है।

### 3.5.9 स्लाईड (Slides)

स्लाइड प्रक्षेपित दश्य सामग्री के अन्तर्गत आती है। इन्हें एपीडायस्कोप, मैजिक लैन्टर्न तथा प्रोजैक्टरों आदि दश्य उपकरणों की सहायता से पर्दे पर प्रक्षेपित कर कक्षा शिक्षण में प्रयुक्त किया जा सकता है। स्लाईड किसी पारदर्शी तत्व जैसे घिसा हुआ शीशा या प्लास्टिक सेल्यूलोज, ऐसिटेट फिल्म तथा सिल्होइट आदि का ऐसा भाग है जो एक विशिष्ट आकार वाला होता है। इस पर तस्वीरें या रेखाचित्र होते हैं जिन्हें प्रेषित प्रकाश के माध्यम से अच्छी प्रकार से देखा जा सकता है तथा प्रोजैक्टर आदि प्रक्षेपित उपकरणों द्वारा परदे पर बड़ा करके दिखाया जा सकता है।

#### शैक्षिक महत्त्व (Educational Importance)

स्लाईडस अपने में निहित विशेष गुणों के कारण शिक्षण प्रक्रिया में निम्नलिखित रूप से प्रभावशाली सिद्ध हो सकती हैं—

1. ये पाठ की प्रस्तावना और प्रस्तुतीकरण में सहायक हैं।
2. ये ध्यान आकर्षित करने में सहायक हैं।
3. पढ़ाई गई सामग्री में से विद्यार्थी कितना समझ सके हैं, इसकी जांच में सहायक सिद्ध होती हैं।
4. ये रूचि उत्पन्न करने में सहायक हैं।

5. ये विषयवस्तु को सरल, आकर्षक व स्पष्ट बनाती हैं।
6. ये पढ़ाई गई सामग्री के पुनः प्रस्तुतीकरण व अभ्यास में सहायक है।
7. कक्षा के वातावरण को सरस, क्रियाशील बनाने में सहयोग देती है।
8. ये रचनात्मक अनुशासन पैदा करने में सहायक हैं।
9. ये एक साथ पूरी कक्षा के विद्यार्थियों के ज्ञानार्जन में सहायक होती हैं।
10. ये छात्रों को शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय साझीदार बनाने में सहायक होती है।

**स्लाईड्स के प्राप्ति स्त्रोत**
**(Sources of Slides)**

1. व्यावसायिक फर्मों से खरीदी जा सकती है।
2. अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों और दश्य श्रव्य पुस्तकालयों से उधार ली जा सकती हैं।
3. अध्यापकों की देख–रेख में विद्यार्थियों की सहायता से निर्मित की जा सकती है।

### 3.5.10 आडियो तथा विडियो टेप (Audio and Video Tapes)

टेप आधुनिक युग की दश्य–श्रव्य सहायक सामग्री के रूप में उभर कर सामने आई है। टेप दो प्रकार की होती हैं–

1. **ओडियो टेप (Audio Tape):** पूर्व प्रसारित रेडियो प्रसारण तथा कोई विशेष वार्ता इत्यादि को ज्यों की त्यों ध्वनि उपकरण में भरकर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में आवश्यकतानुसार प्रयुक्त किया जा सकता है। यह ध्वनि उपकरण आडियो टेप है। आडियों टेप से रिकार्ड की गई ध्वनि को टेपरिकार्डर द्वारा फिर सुनवाया जाता है। कक्षा–शिक्षण में टेप–रिकार्डर प्रभावपूर्ण सिद्ध होता है।

   **ओडियो रिकार्डिंग करते समय सावधानियाँ (Precautions to be taken while Audio Recording)** टेपरिकार्डर में ध्वनि रिकार्ड करते समय निम्नलिखित सावधानियां बरतनी चाहिए–

   (i) टेपरिकार्डर को चालू करने से सम्बन्धित जानकारी अध्यापक को होनी चाहिए ताकि वह सम्बन्धित बटनों का उपयोग सरलता से कर सकें।

   (ii) जैसे ही वक्ता बोलना प्रारम्भ करें, टेपरिकार्डर पर अंकित रिकार्ड बटन को एकदम से दबा देना चाहिए ताकि ध्वनि सही रिकार्ड हो सके।

   (iii) रिकार्डिंग करते समय ध्यान रखा जाना चाहिए कि वक्ता की आवाज के सिवाय कोई और ध्वनि न हो।

   (iv) ध्वनि नियंत्रक पेच का उपयोग करते हुए धीमी आवाज को भी स्पष्ट रूप से रिकार्ड किया जाना चाहिए।

2. **विडियो टेप (Video Tape):** विडियो टेप के लिए विडियो कैसेट रिकार्डर की मदद लेनी पड़ती है। इसमें सभी संकेत चिन्ह जैसे (STOP, FOR WARD, RECORD, REWIND) आदि दिये जाते हैं। इससे न केवल देखा जा सकता है बल्कि सुना भी जा सकता है। इस प्रकार विडियो टेप हमें दश्य–श्रव्य फिल्मों को टेलीविजन पर एक साथ देखने व सुनने की सुविधा प्रदान करती है। इससे शिक्षण प्रक्रिया रोचक व प्रभावशाली हो जाती है।

**अपनी प्रगति जांचिए-2**

(i) चार्ट तैयार करने की विधि का वर्णन कीजिए।

(ii) मॉडल से क्या तात्पर्य है।

## 3.6 सारांश

प्रस्तुत अध्याय में हमने जाना कि जीव विज्ञान शिक्षण में सहायक सामग्री का उपयोग नितान्त आवश्यक है क्योंकि शिक्षण में भिन्न प्रकार के साधनों का प्रयोग करके जीव विज्ञान अध्यापक पाठ को सार्थक एवं रूचिकर बना सकता है। सहायक सामग्री विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष अनुभवों द्वारा अधिगम करने में सहायता करती है।

सहायक सामग्री तैयार करने के लिए कागज, रंग, स्केल, स्टैंसिल, पेंसिल, रबड़ इत्यादि की आवश्यकता होती है। सहायक सामग्री में श्यामपट्ट, फ्लैनल बोर्ड, बुलेटिन बोर्ड, चित्र, चार्ट, पोस्टर, मानचित्र, ग्लोब, तस्वीरें, मॉडल, स्लाइड, आडियो तथा वीडियो टेप आदि सम्मिलित होते हैं।

सहायक सामग्री तैयार करते समय अध्यापक को विद्यार्थियों की आयु, रूचि, मानसिक स्तर, उपलब्ध संसाधन आदि को ध्यान में रखना चाहिए। सहायक सामग्री बहुत अधिक कीमती नहीं होनी चाहिए। सहायक सामग्री शिक्षण उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होनी चाहिए। स्वयं तैयार की गई सहायक सामग्री से अध्यापक विद्यार्थियों को अभिप्रेरित कर सकता है और विद्यार्थियों से भी उसी प्रकार की सामग्री तैयार करवा सकता है। इससे विद्यार्थियों की रचनात्मक, कलात्मक रूचियों व योग्यताओं का विकास होता है। सारांश में हम कह सकते हैं कि सहायक सामग्री के निर्माण एवं उपयोग द्वारा अध्यापक विद्यार्थियों की अधिगम सम्बन्धी कठिनाइयां दूर कर सकता है, कम समय में अधिक विद्यार्थियों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन ला सकता है और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सरस, स्वाभाविक, मनोरंजक तथा उपयोगी बना सकता है।

### आदर्श उत्तर

1. (i) सहायक सामग्री से अभिप्राय इस शिक्षण–सामग्री से है जो विषय–वस्तु को स्पष्ट रूप से समझने में सहायता करती है।

   (ii) सहायक सामग्री तैयार करने की आवश्यक वस्तुएं निम्नलिखित हैं–

   कागज, रंग, पेंसिल, रबर, स्केल।

2. (i) कृपया 3.5 में देखें।

   (ii) मॉडल से तात्पग्र किसी वस्तु के ऐसे प्रतिरूप से है जिसे देखकर उस वस्तु के बारे में अच्छी तरह जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

## 3.7 मुख्य शब्द

**सहायक सामग्रीः** वे सभी साधन जिनका उपयोग अध्यापक द्वारा शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में पाठ को स्पष्ट, रोचक एवं सुबोध बनाने के लिए किया जाता है।

**दश्य श्रव्य सामग्रीः** वह सामग्री या साधन जिनमें हमारी देखने और सुनने की ज्ञानेन्द्रियों का एक साथ प्रयोग किया जाता है।

**व्याख्यान विधिः** ऐसी शिक्षण विधि जिसमें केवल शिक्षक बोलता है और विद्यार्थी मूक श्रोता की भांति निष्क्रय रहते हैं। इसमें केवल एकतरफा संप्रेषण होता है।

## 3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

कुलश्रेष्ठ, एस. पी. –'जीव विज्ञान शिक्षण', लायल बुक डिपो, मेरठ

कोहली, विजय कुमार– 'विज्ञान कैसे पढ़ाएं' विवेक पब्लिशर्ज अमतसर

शुक्ल, आर. एस.– 'विज्ञान का अध्यापन', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा

भूषण, शैलेन्द्र – 'जीव विज्ञान शिक्षण', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

# इकाई-3 (a)

# अध्याय- 4: जलजीवशाला एवं वायुजीवशाला का विकास

# (Development of Aquarium and Vivarium)

**उद्देश्यः**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे किः

- जल जीवशाला का वर्णन कर सकें।
- वायुजीवशाला का वर्णन कर सकें।

**संरचनाः**

4.1. प्रस्तावना
4.2. जलजीवशाला
4.3. वायुजीवशाला
4.4. सारांश
आदर्श उत्तर
4.5. मुख्य शब्द
4.6. संदर्भ ग्रन्थ

## 4.1 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में हमने पढ़ा कि जीव विज्ञान शिक्षण में सहायक सामग्री का प्रयोग अनिवार्य है। जीव–विज्ञान के सैद्धान्तिक मौखिक एवं नीरस पाठों को सहायक उपकरणों के प्रयोग से अधिक स्वाभाविक, मनोरंजक तथा उपयेागी बनाया जा सकता है। दश्य–श्रव्य सामग्री का उपयोग करके अध्यापक अधिगम को प्रतिभाशाली एवं प्र भावशाली बना सकता है। जीव विज्ञान शिक्षण में जीवों को उनके वास्तविक रूप में दिखा कर प्रत्यक्ष अनुभव कराए जा सकते हैं।

इस अध्याय में हम मछली आदि जलीय जीवों और पक्षियों को जीव–विज्ञान प्रयोगशाला में रखने–सम्बन्धी विधियों का अध्ययन करेंगे। जीवों को प्रयोगशाला में उनके रहने के स्थान जैसी परिस्थितियां देना आवश्यक है अन्यथा वे अधिक समय जीवित नहीं रह पाएंगे। जीवों का निरीक्षण करके विद्यार्थी उनके रहन–सहन, भोजन, वद्धि आदि के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करते हैं।

## 4.2 एक्वेरियम अथवा जल जीवशाला (Aquarium)

एक्वेरियम एक कांच का बक्सा या आयताकार बर्तन होता है जिसमें जल में रहने वाले जीव–जन्तुओं को जीवित रूप में सुरक्षित रखा जाता है। एक्वेरियम कांच का इसलिए बनाया जाता है ताकि उसमें रखे जलीय जीव–जन्तु बाहर से दिखाई देते रहें और उन जीव–जन्तुओं के खाने–पीने, रहने आदि गतिविधियों का अध्ययन किया जा सके। एक्वेरियम को नदी या नल के पानी से भर देते हैं। इसके तल में कुछ बालू रेत, रंगीन कंकड़, जलीय पौधे जैसे–हाइड्रिला (Hydrilla) वेलिसिनेरिया (Vallisenaria) शैवाल (Algae) आदि डाल देते हैं। इसके साथ ही इसमें मछली के अण्डे, बच्चे, कुछ घोंघे, केचुएं तथा सूखी कलेजी के टुकड़े आदि डाले जाते हैं जो मछली का भोजन है। एक्वेरियम की छत को घास या तार की पतली जाली से ढंक दिया जाता है जिससे धूल अन्दर न जा सके। एक्वेरियम में उपस्थित जलीय पौधे प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा ऑक्सीजन छोड़ते हैं जो जलीय जीवों के श्वसन में उपयोगी होती है। एक्वेरियम के पानी को समय–समय पर बदलते रहना चाहिए। एक्वेरियम को खिड़की के पास रखना चाहिए ताकि उसे पर्याप्त मात्रा में प्रकाश तथा हवा मिलती रहे। एक्वेरियम में प्रकाश तथा पानी के तापमान का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

आरम्भ में जीवों को एक्वेरियम में गमन (Movement) करने में कठिनाई होती है क्योंकि उनकी खाने–पीने की आदतें ज्ञात नहीं होती परन्तु कुछ समय पश्चात जीव एक्वेरियम के परिवेश (Environment) के अनुरूप स्वयं को ढाल लेते हैं। यदि कोई मछली बीमार या रोगग्रस्त हो जाय तो उसे तुरन्त बाहर निकाल देना चाहिए जिससे अन्य मछलियों में रोग न फैल सके। घोंघों को शैवाल, जलीय पौधे, गोश्त के टुकड़े तथा कटल फिश, बोन पाउडर खाने के लिए देना चाहिए। मछलियों को खाना प्रत्येक दूसरे दिन देना चाहिए। इसमें केंचुआ, गोश्त के टुकड़े, पानी के कीड़े–मकौड़े एवं उबले हुए आलू हो सकते हैं।

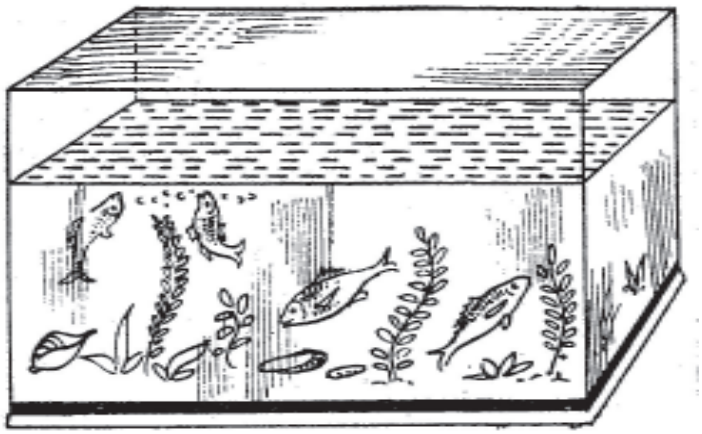

**चित्र 4.1: एक्वेरियम**

## 4.3 वाइवेरियम अथवा वायु-जीवशाला (Vivarium)

जिस प्रकार जल में रहने वाले जीव–जन्तुओं को एक्वेरियम में सुरक्षित रूप में रखा जा सकता है उसी प्रकार वाइवेरियम में वायु में रहने वाले जीव–जन्तुओं को सुरक्षित रूप से रखा जा सकता है। वाइवेरियम में वायु में रहने वाले जीव–जन्तुओं के जीवन इतिहास (Life History) से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। वाइवेरियम तैयार करने के लिए किसे ऐसे पौधे को जिसमें वायु में रहने वाले जीव–जन्तुओं के अण्डे हों एक बेलजार से इस प्रकार ढक देते हैं कि बेलजार का मुँह ऊपर की ओर हो। बेलजार के मुँह को एक पतले कपड़े से, जिसमें से वायु का संचरण हो सके, ढंक देते हैं। इसके द्वारा हम जीव–जन्तुओं

के जीवन की विभिन्न दशाओं का निरीक्षण कर सकते हैं। वाइवेरियम को प्रयोगशाला में ऐसे स्थान पर रखना चाहिए जहाँ धूप, वायु एवं प्रकाश का उचित प्रबन्ध हो।

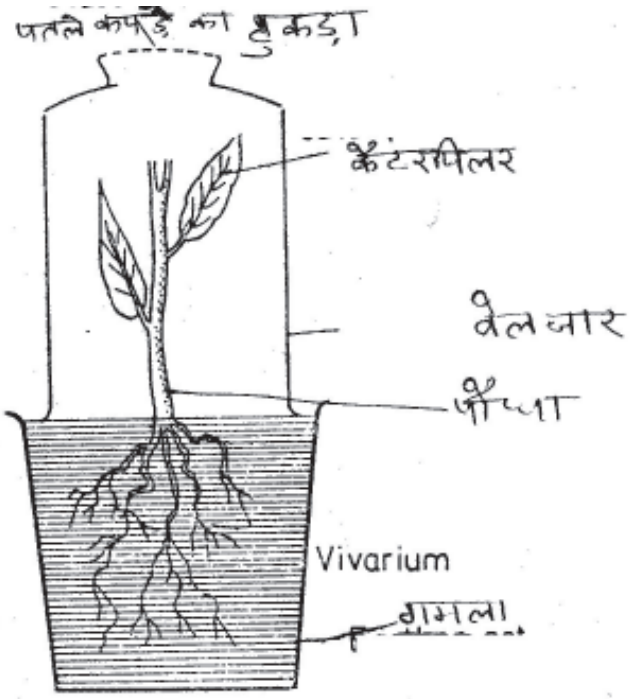


**चित्र 4.2: वाइवेरियम**

### अपनी प्रगति जांचिए

(i) जल जीवशाला किसे कहते हैं ?

(ii) आप जल जीवशाला को किस प्रकार तैयार करेंगे?

(iii) वाइवेरियम पर एक नोट लिखो।

(iv) वायु में रहने वाले जीव जन्तुओं को ..... में सुरक्षित रूप से रखा जा सकता है।

## 4.4 सारांश

जल जीवशाला एक प्रकार का सुरक्षित तालाब होता है जिसके चारों ओर कांच लगे होते हैं। इस प्रकार से यह धूल आदि से बचा रहता है। इसके अंतर कुछ बालू, कंकड़, जलीय पौधे, शैवाल, खाना एवं सांस लेने का प्रावधान होता है। इसमें मछली व घोंघे के अण्डे व बच्चे रख देते हैं इसका जल बदलते रहना चाहिए और जीवों के लिए प्रकाश एवं वायु की व्यवस्था की जानी चाहिए।

वायु जीवशाला, शुद्ध प्रकाश, वायु, धूप आदि की व्यवस्था करके बनाई जाती है जिसमें वायु में रहने वाले जीव–जन्तु सुरक्षित रह सकें। ऐसे पौधों को जिन पर वायु–जीवों के अण्डे हों, बेलजार से ढक कर पतले कपड़े से मुंह ढक दिया जाता है।

**आदर्श उत्तर**

(i) जल जीवशाला एक कांच का बक्सा है जिसमें पानी में रहने वाले जीव जन्तुओं को जीवित रूप में सुरक्षित रखा जाता है।

(ii) कृपया 4.2 में देखें।

(iii) कृपया 4.3 में देखें।

(iv) वाइवेरियम

## 4.5 मुख्य शब्द

**जल जीवशाला:** ऐसा स्थान जहाँ प्रयोगशाला में जलीय जीवों को रखा जाता है।

**वायु जीवशाला:** ऐसा स्थान जहाँ वायु जीवों को प्रयोगशाला में रखा जाता है।

## 4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

मंगल, एस.के. — 'विज्ञान शिक्षण' आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, 1990.

शर्मा, एल.एम. — 'जीव विज्ञान शिक्षण' धनपतराय सन्स, दिल्ली 1989.

कुलश्रेष्ठ, एस.पी. — 'जीव विज्ञान शिक्षण' लायल बुक डिपो, मेरठ, 1993.

# इकाई-3 (a)

# अध्याय–5: प्रदर्शन प्रयोगों का विकास

# (Development of Demonstration Experiments)

**उद्देश्यः**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे किः

– प्रदर्शन प्रयोगों के विकास से सम्बन्धित बिन्दुओं का वर्णन कर सकें।

**संरचनाः**

5.1. प्रस्तावना
5.2. प्रदर्शन प्रयोगों का विकास
5.3. सारांश
आदर्श उत्तर
5.4. मुख्य शब्द
5.5. संदर्भ ग्रन्थ

## 5.1 प्रस्तावना

विज्ञान एक व्यावहारिक विषय है। इसे केवल सुन कर या पढ़ कर समझना कठिन है। इस विषय के अध्ययन के लिए आवश्यक है कि विद्यार्थी जो कुछ भी सीखें, प्रयोगों के आधार पर सीखें। परन्तु प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अलग–अलग प्रयोग करने तथा स्वयं ज्ञान प्राप्त करने की व्यवस्था भारतीय विद्यालयों की वर्तमान परिस्थितियों में संभव नहीं है। इसलिए अध्यापक विद्यार्थियों के समक्ष प्रयोग–प्रदर्शन करता है। अध्यापक विषयवस्तु का सैद्धान्तिक ज्ञान प्रदान करने के साथ उससे सम्बन्धित प्रयोग स्वयं करके दिखाता है। विद्यार्थी अपने स्थान पर बैठे हुए विभिन्न प्रकार के उपकरणों, प्रयोगों ओर क्रियाओं को देखते हैं और वे विषय वस्तु के सम्बन्ध में कानों से सुनते रहते हैं। इस प्रकार ज्ञानेन्द्रियों का एक साथ प्रयोग होने से अधिगम प्रभावशाली होता है। अध्यापक प्रदर्शन करते समय विद्यार्थियों से आवश्यकतानुसार प्रश्न पूछता है और विद्यार्थियों की रूचि, योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार प्रदर्शन में सहायता भी लेता रहता है जिससे वे प्रदर्शन में उत्साहपूर्वक सक्रिय भाग ले सकें।

## 5.2 प्रदर्शन प्रयोगों का विकास (Development of Demonstration Experiments)

प्रदर्शन–प्रयोगों से पूर्व अध्यापक कक्षा में विषय से संबन्धित सैद्धान्तिक (Theoritical) ज्ञान का विवेचन करता है। इसके पश्चात प्रदर्शन–प्रयोगों की सहायता से सैद्धान्तिक ज्ञान का सत्यापन किया जाता है। इसमें अध्यापक विद्यार्थियों को प्रयोग करके दिखाता है और विद्यार्थी प्रयोग–प्रदर्शन का निरीक्षण करते हुए ज्ञान प्राप्त करते हैं। अध्यापक प्रयोग–प्रदर्शन में विद्यार्थियों की

सक्रिय भागीदारी ले सकता है। विद्यार्थी अपनी शंकायें भी अध्यापक के सामने प्रस्तुत कर सकते हैं और अध्यापक उनकी शंकाओं का समाधान करता है।

एक प्रदर्शन प्रयोग का प्रभावशाली ढ़ंग से विकास करने के लिए अध्यापक को उसकी पर्याप्त रूप से तैयारी कर लेनी चाहिए और कक्षा परिस्थितियों के अनुसार उस प्रयोग की पहले रिहर्सल (Rehearsal) कर लेनी चाहिए। एक सफल प्रदर्शन–प्रयोग के लिए अध्यापक को निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए–

1. **उचित व्यवस्था (Appropriate Arrangement):** प्रदर्शन–प्रयोग सामग्री से पूर्व ही अध्यापक का यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि विद्यार्थियों को प्रत्येक उपकरण एवं प्रयोग अच्छी तरह दिखाई दे। यदि लैक्चर–गैलरी की व्यवस्था हो तो इस दिशा में कठिनाई कम होगी। परन्तु लैक्चर–गलैरी, न होने पर भी विद्यार्थी प्रत्येक वस्तु एवं क्रिया को उचित रूप से देख सकें, इसके लिए निम्नलिखित साधनों का उपयोग किया जाना चाहिए–

   (i) ***मेज़ का उपयोग (Use of Table):*** अध्यापक किसी मेज़ अथवा आगे बैठने वाले विद्यार्थी की मेज़ पर प्रयोग कर सकता है जिसे विद्यार्थी मेज़ के चारों ओर खड़े होकर देख सकते हैं। जिन कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या कम है, उन कक्षाओं में यह विधि उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

   (ii) ***दर्पण का उपयोग (Use of Mirror):*** अध्यापक की मेज़ के उचित उचित कोण पर एक दपर्ण लगाना चाहिए जिसमें पड़ती हुई परछाई से सभी विद्यार्थी प्रत्येक वस्तु एवं क्रिया को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। दपर्ण के उपयोग से पीछे बैठे हुए विद्यार्थी अपने स्थान पर बैठे हुए ही प्रयोग को भली–भाँति देख सकते हैं। बड़ी कक्षाओं में, विशेष रूप से जहाँ, लैक्चर गैलरी नहीं होती, दपर्ण का उपयोग, प्रयोग–प्रदर्शन को प्रभावशाली बनाने में सहायता करता है।

   (iii) ***पर्याप्त प्रकाश (Sufficient Sunlight):*** अध्यापक को इस बात की व्यवस्था कर लेनी चाहिए कि प्रदर्शन मेज पर पर्याप्त प्रकाश हो। यदि आवश्यकता हो तो कृत्रिम प्रकाश अथवा अतिरिक्त प्रकाश सामग्री का प्रयोग करना चाहिए। प्रदर्शन मेज की पष्ठभूमि का भी ध्यान रखना चाहिए। उचित पष्ठभूमि के अभाव में वस्तुएँ स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देती। उदाहरण के लिए श्यामपट्ट के आगे काली चीज़ें नहीं दिखानी चाहिएं।

   (iv) ***प्रदर्शन उपकरणों का आकार (Size of Demonstration Equipments):*** अध्यापक को प्रयत्न करना चाहिए कि प्रदर्शन उपकरण कक्षा के आकार एवं विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुरूप उचित आकार के हों जिससे विद्यार्थी उन्हें स्पष्ट रूप से देख सकें। जैसे– छोटे बीकर, छोटे मापांकित सिलैण्डर के स्थान पर बड़ा बीकर, बड़ा सिलैण्डर आदि का उपयोग करना। परन्तु कुछ उपकरणों को बड़े आकार में दिखाना संभव नहीं होता जैसे– आपेक्षिक घनत्व बोतल (Specific Gravity Bottle), कैपीलरी टयूब (Capillary tube) आदि। ऐसी स्थिति में अध्यापक विद्यार्थियों को निकट बुलाकर अथवा स्वयं विद्यार्थियों के बीच में जाकर विद्यार्थियों को उन्हें दिखा सकता है।

   (iv) ***उपकरण क्रम (Arrangement of Equipments):*** उपकरण प्रदर्शन मेज़ पर उचित क्रम में व्यवस्थित होने चाहिए। जिन उपकरणों का प्रयोग किया जाना है, उन्हें मेज़ के बायीं ओर उसी क्रम में रखा जाना चाहिए, जिस क्रम में उन्हें प्रदर्शित किया जाना हैं। किसी उपकरण को प्रदर्शित अथवा उपयोग करने के पश्चात् उसे मेज़ पर दायीं ओर रख देना चाहिए। प्रदर्शन मेज़ पर उपकरणों का ढ़ेर विद्यार्थियों को प्रभावित करने की अपेक्षा उन्हें उलझन में डाल सकता है अतः अनावश्यक उपकरणों को प्रदर्शन मेज पर नहीं रखा चाहिए। केवल पाठ से सम्बन्धित उपकरण ही निश्चित क्रम में प्रदर्शन मेज़ पर रखे जाने चाहिएं।

2. **लक्ष्यों व उद्देश्यों का ज्ञान:** अध्यापक को इस बात का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए कि प्रदर्शन किस प्रयोजन से किया जा रहा है। अध्यापक को प्रदर्शन के लक्ष्यों और प्राप्य उद्देश्यों से अच्छी तरह अवगत होना चाहिए।

3. **प्रदर्शन का पूर्व अभ्यास:** प्रदर्शन को सफलतापूर्वक आयोजित करने के लिए प्रदर्शन–प्रयोग को पहले से ही करके देख लेना चाहिए। प्रदर्शन के दौरान विद्यार्थियों को सबसे अधिक निराशा तब होती है जब उन्हें अध्यापक से यह सुनना पड़ता

है कि 'इसे ऐसा होना था परन्तु यह हो नहीं सका।' इससे समय एवं शक्ति का अपव्यय तो होता ही है, अध्यापक अपने विद्यार्थियों का विश्वास भी खो सकता है। इस परिस्थिति में उपकरणों का अच्छा न होना, वस्तुएँ शुद्ध मिलना आदि इस प्रकार के बहाने भी अध्यापक द्वारा बनाए जाएं तो उनका कोई महत्व नहीं होता। ऐसी प्रत्येक परिस्थिति अध्यापक को अपने बुद्धि कौशल का प्रयोग करने का अवसर प्रदान करती है। यह आवश्यक है कि अध्यापक प्रदर्शन से पूर्व उपकरणों तथा सामग्री की जांच कर ले।

प्रदर्शन का पूर्व अभ्यास भी अत्यधिक आवश्यक है। इससे अध्यापक में आत्मविश्वास विकसित होता है और वह प्रदर्शन प्रयोग को सफलतापूर्वक कर सकता है। अगर कक्षा में अचानक ही किसी कारणवश किसी प्रयोग से सम्बन्धित उपकरण में टूट फूट या कोई अन्य खराबी उत्पन्न हो जाए और प्रदर्शन करना संभव न हो तो अध्यापक को संयम एवं धैर्य रखना चाहिए। ऐसी अवस्था में अध्यापक को प्रयोग की असफलता को एक समस्या के रूप में विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए– ऐसा क्यों हुआ? प्रयोग के दौरान क्या सावधानियाँ रखनी आवश्यक थीं? आदि। इसके पश्चात विद्यार्थियों को वास्तविकता से परिचित करवाकर प्रयोग की पुनरावत्ति करनी चाहिए।

4. **विषय-वस्तु से सम्बद्धता:** अध्यापक को विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में दिये गए प्रकरणों से संबंधित प्रयोग–प्रदर्शनों का आयोजन करना चाहिए। जो प्रकरण विद्यार्थियों को पढ़ाए जा रहे हों, प्रदर्शन उनसे संबंधित क्रम में होना चाहिए।

5. **विद्यार्थी-केन्द्रिता:** जिन प्रयोगों अथवा वस्तुओं का प्रदर्शन किया जाए वे विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप होने चाहिएं। अध्यापक को यथासंभव प्रयत्न करना चाहिए कि विद्यार्थियों के परिवेश में उपस्थित वस्तुओं से संबंधित प्रयोग तथा सामग्री ही प्रदर्शन के लिए उपयोग की जाए।

   अध्यापक को प्रदर्शन में विद्यार्थियों की रूचि जाग्रत करनी चाहिए और प्रयत्न करने चाहिएं कि प्रदर्शन के अंत तक उनकी रूचि बनी रहे। अध्यापक का प्रदर्शन करने का ढ़ंग ऐसा होना चाहिए जैसे जादूगर अपना जादू दिखा रहा हो। उसे विभिन्न उद्दीपकों, सहायक सामग्री आदि का प्रयोग करके प्रदर्शन को रोचक बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। विद्यार्थियों को निष्क्रिय मूक श्रोता न बना कर प्रदर्शन में सहभागी बनाने का अवसर दिया जाना चाहिए जिससे वे प्रदर्शन में पूर्ण रूचि ले सकें और उनमें प्रयोग संबंधी कार्यकुशलता भी उत्पन्न हो सके।

6. **सकारात्मक दष्टिकोण :** प्रदर्शन–प्रयोग की सफलता के लिए अध्यापक का दष्टिकोण सकारात्मक होना चाहिए। अध्यापक को विद्यार्थियों में अन्वेषणात्मक प्रवत्तियों व उचित दष्टिकोण का विकास करना चाहिए। प्रयोग के पश्चात परिणाम विद्यार्थियों द्वारा विकसित करने चाहिएं। प्रदर्शन करते समय पहले नियम या सिद्धान्त बता कर प्रयोग करने का विद्यार्थियों पर उचित प्रभाव नहीं पड़ता। अध्यापक को प्रयोग–प्रदर्शन के लिए आगमन–निगमन विधि का उपयोग करना चाहिए। अर्थात् पहले उदाहरण या प्रयोग या प्रदर्शन करके नियम प्रस्तुत करना चाहिए और उसके पश्चात अन्य उदाहरण विद्यार्थियों से पूछे जाने चाहिएं।

### अपनी प्रगति जांचिए

(i) प्रदर्शन–प्रयोग से संबंधित मुख्य बिन्दुओं की सूची बनाइये।

## 5.3 सारांश

विज्ञान एक व्यावहारिक विषय है। इस विषय में विद्यार्थियों को प्रयोग प्रदर्शन द्वारा अधिगम करवाना आवश्यक है। प्रदर्शन प्रयोग से पूर्व अध्यापक विद्यार्थियों को विषय से संबंधित सैद्धान्तिक ज्ञान प्रदान करता है। उसके साथ ही वह उस विषय/वस्तु/नियम आदि को प्रदर्शित करके उसकी रचना एवं कार्य प्रणाली का वास्तविक रूप में ज्ञान कराता है। विद्यार्थी अपने स्थान पर बैठ कर विभिन्न उपकरणों, क्रियाओं और प्रयोगों को देखते हैं। प्रदर्शन प्रयोगों के विकास के लिए अध्यापक को विभिन्न बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए जैसे–प्रदर्शन कक्ष एवं उपकरणों की उचित व्यवस्था, विद्यार्थी केन्द्रिता, पर्याप्त प्रकाश, लक्ष्यों व उद्देश्यों का ज्ञान, सकारात्मक दष्टिकोण एवं प्रदर्शन–प्रयोग का अभ्यास आदि।

अध्यापक को प्रदर्शन–प्रयोग में विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता लेनी चाहिए जिससे वे उत्साहपूर्वक एवं सक्रिय रूप से प्रदर्शन–प्रयोग में भाग ले सकें।

**अपनी प्रगति जांचिए - आदर्श उत्तर**

(i) प्रदर्शन प्रयोग से संबंधित मुख्य बिन्दु निम्नलिखित हैं–

– उचित व्यवस्था, लक्ष्यों व उद्देश्यों का ज्ञान, प्रदर्शनि का पूर्व अभ्यास, विषय–वस्तु से सम्बद्धता, विद्यार्थी केन्द्रिता, सकारात्मक दष्टिकोण आदि।

## 5.4 मुख्य शब्द

**प्रदर्शन-प्रयोगः** विषय–वस्तु को स्पष्ट करने के लिए प्रयोग करना और विद्यार्थियों को दिखाना।

## 5.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

मंगल, एस.के. — 'भौतिक एवं जीव विज्ञान शिक्षण' आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली।

सोनी, अंजु — 'भौतिक विज्ञान शिक्षण' टंडन पब्लिकेशन, लुधियाना।

# इकाई-3 (b)

# अध्याय-1: स्व-अधिगम सामग्री का विकास

# (Development of Self-Learning Materials)

**उद्देश्य:**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

- स्व–अधिगम सामग्री का अर्थ एवं महत्त्व बता सकें।
- स्व–अधिगम सामग्री के विकास के आधार को बता सकें।
- रेखीय अभिक्रम की संरचना का वर्णन कर सकें।
- रेखीय अभिक्रम के निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकें।

**संरचना:**

1.1. प्रस्तावना
1.2. स्व अधिगम सामग्री का अर्थ एवं महत्त्व
1.3. स्व–अधिगम सामग्री के विकास का आधार
1.4. रेखीय अभिक्रम की संरचना
1.5. रेखीय अभिक्रम के निर्माण की विभिन्न अवस्थाएं
1.6. सारांश
आदर्श उत्तर
1.7. मुख्य शब्द
1.8. सन्दर्भ ग्रन्थ

## 1.1 प्रस्तावना

पिछले अध्यायों में हमने जाना कि विषय–वस्तु को विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए उसका नियोजन करना आवश्यक है। यूनिट तीन के प्रथम भाग में हम इकाई योजना, पाठ योजना एवं सहायक सामग्री के निर्माण सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। कक्षा शिक्षण में अध्यापक विषय–वस्तु को अपनी गति से प्रस्तुत करता है और विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिनताओं को विशेष महत्त्व नहीं देता। प्रत्येक कक्षा में सभी विद्यार्थी एक समान नहीं होते। कुछ विद्यार्थी जल्दी सीखते हैं और कुछ देर से। कक्षा शिक्षण के दौरान विद्यार्थियों को उनकी स्वयं की गति से अधिगम करने का अवसर नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त पाठ्यपुस्तकों की अपनी सीमाएं हैं। पाठ्यपुस्तकों में विषयवस्तु को जटिल एवं नीरस रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इससे विद्यार्थियों की विषय में रूचि एवं उत्साह कम हो जाता है। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए यह समझा गया कि ऐसी अधिगम सामग्री का निर्माण किया जाए जिससे विद्यार्थी स्वयं की गति से प्रभावशाली ढंग से अधिगम कर सकें। प्रस्तुत अध्याय में हम स्व–अधिगम सामग्री के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे।

## 1.2 स्व-अधिगम सामग्री–अर्थ एवं महत्त्व (Self Learning Materials - Meaning and Significance)

आदिकाल से शिक्षण–अधिगम की मुख्य समस्या विद्यार्थियों को उनकी व्यक्तिगत विभिन्नताओं एवं क्षमताओं के आधार पर अधिगम सुविधाएं प्रदान करना रही है। भारतीय कक्षाओं में तो विशेष रूप से यह संभव नहीं है कि विद्यार्थियों की रूचियों, अभिरूचियों, अभिवत्तियों एवं क्षमताओं आदि के अनुरूप शिक्षण–अधिगम क्रियाओं का आयोजन किया जाए इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों को उपलब्ध पाठ्यपुस्तकों में भी दोष है। पाठ्यपुस्तकों में तत्वों की व्यवस्था मनोवैज्ञानिक विधि की अपेक्षा तार्किक विधि से की जाती है। विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने, उनकी रूचि एवं ध्यान को केन्द्रित करने के लिए किसी प्रविधि का प्रयोग नहीं किया जाता है। इससे विद्यार्थियों को अधिगम में कठिनाई होती है, तथ्यों एवं प्रत्ययों की बोधगम्यता उचित से नहीं हो पाती तथा सुधारात्मक शिक्षण (Remedial Teaching) का आयोजन भी नहीं किया जाता। इसीलिए आधुनिक काल में स्व–अधिगम सामग्री के निर्माण एवं प्रयोग पर बल दिया जा रहा है जिससे विद्यार्थियों को प्रत्ययों का सही ढंग से बोध करवाया जा सके और अधिगम प्रभावशाली हो। इस सामग्री का निर्माण मनोविज्ञान के आधार पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त जिन विद्यालयों में योग्य शिक्षकों का अभाव है,, उनके लिए यह अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। पत्राचार पाठ्यक्रमों (Correspondence Courses) से शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को पाठ्य सामग्री इसी रूप में भेजी जाती है।

स्व–अधिगम सामग्री का निर्माण अभिक्रमित अधिगम (Programmed Learning) के सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। अभिक्रमित अधिगम में शिक्षण सामग्री को ऐसे क्रम में नियोजित किया जाता है जिससे विद्यार्थियों में सतत् अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन (Desired Behavioural Changes) लाये जा सके और उनका मापन भी किया जा सके। इसीलिए स्वअधिगम सामग्री (SLM) को अभिक्रमित अधिगम सामग्री (Programmed Learning Material) अथवा अभिक्रमित अनुदेशन सामग्री (Programmed Learning Material) भी कहा जाता है। इस सामग्री के निर्माण का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को उनकी व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुरूप सीखने के अवसर प्रदान करना है। विद्यार्थी इस सामग्री का स्वयं अध्ययन करके सीखता है। सीखने की इस प्रक्रिया में विद्यार्थी लगातार सक्रिय रहता है और उसे अपनी ज्ञान प्राप्ति का बोध भी होता रहता है।

स्व–अधिगम सामग्री में पाठ्य–वस्तु को छोटे–छोटे पदों (फ्रेमों) में संगठित किया जाता है और प्रत्येक पद से सम्बन्धित प्रश्न फ्रेम के अन्त में पूछे जाते हैं। अधिगमकर्त्ता प्रश्न का सही उत्तर देने के पश्चात ही दूसरे फ्रेम की ओर अग्रसर होते हैं।

उपरोक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि स्व अधिगम सामग्री से अभिप्राय ऐसी सामग्री से है जिसका उपयोग करके विद्यार्थी या अधिगम कर्त्ता, शिक्षक की अनुपस्थिति में अपनी गति एवं क्षमताओं के अनुरूप अधिगम करता है और अपनी ज्ञानप्राप्ति का बोध भी करता है।

## 1.3 स्वअधिगम सामग्री (रेखीय अभिक्रम) के विकास का आधार (Development of Self-Learning Material (Linear Programme)

(नोट–स्वअधिगम सामग्री का विकास अभिक्रमित अधिगम के तीनों रूपों–रेखीय, शाखीय एवं मैथेटिक्स के अनुसार किया जा सकता है परन्तु यहाँ हम केवल रेखीय अभिक्रम के विकास का क्रम सीखेंगे)।

इस सामग्री का निर्माण एवं विकास विख्यात शिक्षाविद् एवं मनोवैज्ञानिक श्री बी.एफ. स्किनर (B.F.Skinner) द्वारा प्रतिपादित 'आपरेन्ट प्रतिबद्ध अनुक्रिया प्रतिमान (Operant Conditioning Model of Teaching) के आधार पर किया जाता है। स्किनर ने जानवरों एवं पक्षियों पर किये विभिन्न प्रयोगों से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर आपरेण्ट प्रतिबद्ध अनुक्रिया सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इसके अनुसार यदि किसी प्राणी को उसके द्वारा किये गए कार्य के प्रतिफल की पुष्टि तुरन्त मिल जाए तो उस व्यक्ति के लिए वह पुष्टि अभिप्रेरक का कार्य करती है जिससे उसे प्रोत्साहन मिलता है और वह सीखने के क्षेत्र में अग्रसर होता जाता है। स्किनर के अनुसार अधिगम में अभिप्रेरक के साथ–साथ पुनर्बलन भी दिया जाना चाहिए जिससे प्राप्त ज्ञान स्थाई हो सके।

स्कनर के इस सिद्धान्त एवं प्रतिमान का प्रयोग रेखीय अभिक्रम के निर्माण के लिए किया जाता है। रेखीय अभिक्रम के निर्माण के विभिन्न सोपानों को समझने से पूर्व इसकी संरचना को समझना आवश्यक है। एक रेखीय अभिक्रम की संरचना इस प्रकार है—

## 1.4 रेखीय अभिक्रम की संरचना (Structure of a Linear Programme)

रेखीय अभिक्रम एक सरल रेखा में चलने वाला अभिक्रम या कार्यक्रम है जिसमें विद्यार्थी प्रारम्भिक व्यवहार (Entering Behaviour) से अन्तिम व्यवहार (Terminal Behaviour) तक सीधी रेखा की तरह चलता रहता है। इसमें पाठ्यसामग्री कोछोटे–छोटे पदों में विभाजित करके एक विशिष्ट क्रम में व्यवस्थित कर दिया जाता है। इन पदों को फ्रेम (Frames) कहा जाता है। ये फ्रेम आपस में सम्बन्धित होते हैं। इन फ्रेमों को सरल से कठिन के क्रम में अधिगमकर्त्ता के सामने प्रस्तुत किया जाता है। प्रत्येक फ्रेम एक उद्दीपक के रूप में कार्य करता है। फ्रेम में कुछ नवीन ज्ञान प्रस्तुत किया जाता है और फ्रेम के अन्त में प्रदत ज्ञान से सम्बन्धित एक प्रश्न पूछा जाता है। विद्यार्थी उस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करता है अर्थात् प्रतिक्रिया करता है। उचित प्रतिक्रिया करने के उपरान्त अधिगमकर्त्ता के सामने दूसरा फ्रेम प्रस्तुत किया जाता है जिस पर प्रथम फ्रेम के प्रश्न का उत्तर, उद्दीपक, नवीन ज्ञान एवं प्रश्न एक निश्चितक्रम में दिये होते हैं। उत्तर से अधिगमकर्त्ता को पुनर्बलन (Reinforcement) प्राप्त होता है। इस प्रकार वह एक फ्रेम से दूसरे फ्रेम, दूसरे फ्रेम से तीसरे फ्रेम पर पहुँचता हुआ अन्तिम फ्रेम तक पहुँच जाता है।

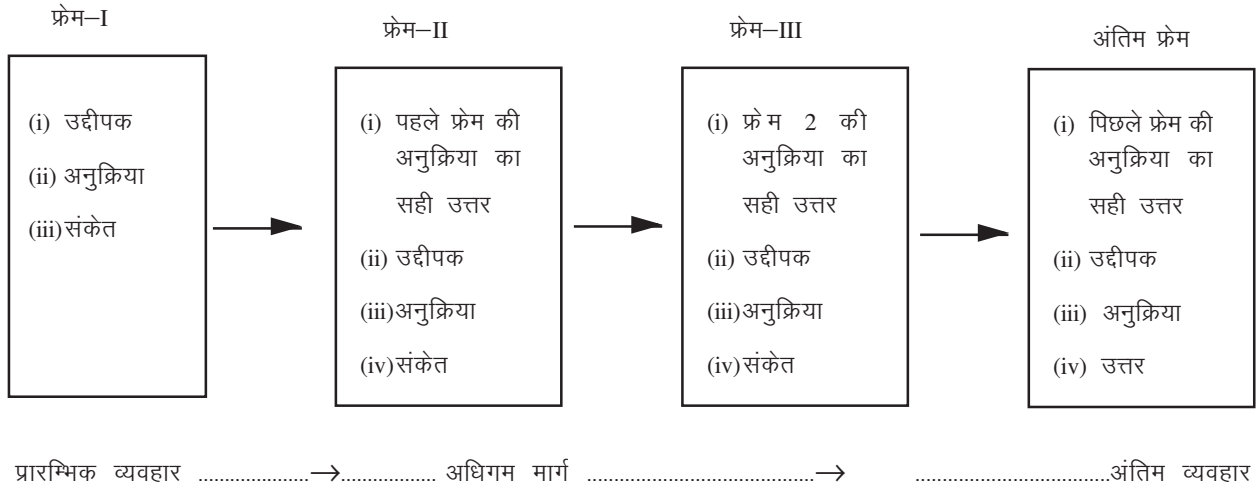


प्रत्येक फ्रेम में इतनी पाठ्य सामग्री दी जाती है जिससे विद्यार्थी एक बिन्दु को समझ सकें एवं उचित प्रतिक्रिया कर सके। प्रत्येक फ्रेम में दी गई सूचना अपने आप में पूर्ण होती है। प्रत्येक फ्रेम के अन्त में एक प्रश्न दिया जाता है जिसका उत्तर एक या दो शब्दों में दिया जा सकता है। विद्यार्थी प्रश्न का उत्तर देता है अर्थात् प्रतिक्रिया करता है। कभी–कभी प्रश्न से सम्बन्धित संकेत भी दिया जाता है जिससे विद्यार्थी को उचित प्रतिक्रिया करने में सहायता मिले। विद्यार्थी अपने उत्तर की पुष्टि अगले फ्रेम के आरम्भ में कर सकता है। उत्तर की पुष्टि से उसे पुनर्बलन प्राप्त होता है जिससे वह उद्दीपक–प्रतिक्रिया (Stimulus-Responses) में नये सम्बन्ध स्थापित करता है। इसे पुष्टि करण (Verification) कहा जाता है।

## 1.5 अभिक्रम के निर्माण की विभिन्न अवस्थाएं (Stages of Construction of a Programme)

रेखीय अभिक्रम के निर्माण की निम्नलिखित अवस्थाएं हैं—

A. तैयारी की अवस्था (Stage of Preparation)

B. लेखन की अवस्था (Stage of Writing)

C. परीक्षण की अवस्था (Stage of Try-out)

D. मूल्यांकन की अवस्था (Stage of Evaluation)

## A. तैयारी की अवस्था (Stage of Preparation)

अभिक्रम की तैयारी एक प्रभावशाली अभिक्रम के निर्माण के लिए आधार के रूप में कार्य करती है। इसमें विषय–सामग्री का चयन, उद्देश्यों का निर्धारण, प्रारम्भिक व्यवहार को परिभाषित करना, मानदण्ड परीक्षण आदि सम्मिलित हैं–

1. **इकाई का चयन (Selection of Unit):** पाठ्य वस्तु के उचित चयन पर अभिक्रम की सफलता आधारित है इसलिए सबसे पहले उचित इकाई अर्थात् पाठ्य सामग्री का चयन करना पड़ता है। इकाई का चयन करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए–
   (i) अध्यापक का विषय–वस्तु पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए।
   (ii) अध्यापक या अभिक्रमक को वही इकाई चुननी चाहिए जिसकी व्यवस्था समुचित रूप से की जा सके।
   (iii) इकाई की लम्बाई इतनी होनी चाहिए कि उससे इच्छित उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके।
   (iv) इकाई का चयन विद्यार्थियों के सम्मुख आने वाली बाधाओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।
   (v) इकाई का स्वरूप ऐसा हो जिससे तत्वों को तर्कपूर्ण ढंग से क्रमबद्ध किया जा सके।
   (vi) इकाई का सम्बन्ध विशिष्ट अध्ययन के क्षेत्र से होना चाहिए जिससे विद्यार्थियों की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।

2. **पाठ्य सामग्री की रूपरेखा तैयार करना (To Prepare Content Outline):** उपयुक्त इकाई के चयन के पश्चात उसमें निहित पाठ्य सामग्री की रूपरेखा निर्धारित की जाती है। इसके लिए अध्यापक या अभिक्रमक उपलब्ध संसाधनों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करता है। यदि अध्यापक ने वह इकाई अथवा उपविषय स्वयं न पढ़ाया हो तो उसे किसी अनुभवी अध्यापक से विचार–विमर्श कर लेना चाहिए।

3. **उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखना (Writing Objectives in Behhavioural Terms):** उपयुक्त इकाई के चयन एवं पाठ्य सामग्री की रूपरेखा तैयार करने के पश्चात इससे सम्बन्धित शैक्षिक उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखने से अभिप्राय है—उद्देश्यों को इस प्रकार लिखना जिससे विद्यार्थियों के अन्तिम व्यवहार अथवा व्यवहार परिवर्तन का स्पष्ट रूप से पता चल सके। व्यवहारपरक उद्देश्य शिक्षण–अधिगम एवं अनुदेशन की सफलता ज्ञात करने, परीक्षण प्रश्नों का निर्माण करने तथा विद्यार्थियों के मूल्यांकन में सहायता करते हैं।

4. **प्रारम्भिक व्यवहार को परिभाषित करना (Defining Entering Behaviour):** प्रारम्भिक व्यवहार से अभिप्राय विद्यार्थियों के उस व्यवहार से है जो विद्यार्थी अनुदेशन आरम्भ होने से पूर्व करते हैं। इसे पूर्व ज्ञान एवं कौशल भी कहा जाता है। अध्यापक अथवा अभिक्रमक के लिये यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों के प्रारम्भिक व्यवहार का उचित निर्धारण करके स्पष्ट रूप से परिभाषित करे। प्रारम्भिक व्यवहार अभिक्रम निर्माण के लिये आधार का कार्य करता है। यही वह बिन्दु है जहाँ से अभिक्रम आरम्भ होता है। विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान, कौशल आदि के आधार पर ही अन्तिम व्यवहारों को सुनिश्चित किया जा सकता है।

5. **मानदण्ड परीक्षण का निर्माण (Constructon of a Criterion Test):** ''एक अच्छा मानदण्ड परीक्षण वह है जिसमें अन्तिम व्यवहार के प्रतिनिधि तत्व प्रतिबिम्बित हों।''

   डॉ. के. पी. पाण्डेय– मानदण्ड परीक्षण में अभिक्रम द्वारा विकसित किये जाने वाले अन्तिम व्यवहारों को दर्शाया जाता है। इस परीक्षण में वस्तुनिष्ठ प्रश्नों को सम्मिलित किया जाता है।मानदण्ड परीक्षण की सहायता से उद्देश्यों की प्राप्ति के सम्बन्ध में निर्णय लिया जाता है जिससे अभिक्रम की सफलता अथवा असफलता ज्ञात की जा सकती है।

## B. लेखन की अवस्था
## (Stage of Writing)

लेखन अवस्था अभिक्रम निर्माण की द्वितीय अवस्था है। इसमें अभिक्रम को एक व्यवस्थित क्रम में लिखा जाता है। पाठ्यसामग्री का फ्रेमों में प्रस्तुतीकरण, फ्रेमों की क्रमबद्धता एवं सम्पादन आदि इस चरण में सम्मिलित हैं। इनका वर्णन निम्नलिखित है—

1. **पाठय-सामग्री का फ्रेमों में प्रस्तुतीकरण (Presentation of Subject matter into frames):** इसमें सम्पूर्ण इकाई अथवा पाठ्य सामग्री को छोटी–छोटी उप इकाइयों अथवा भागों विभाजित में किया जाता है। प्रत्येक छोटी उपइकाई में थोड़ी सी विषय–वस्तु रखी जाती है और इसे 'फ्रेम' (Frame) कहा जाता है। 'फ्रेम' अभिक्रम की सबसे छोटी, सरल एवं व्यावहारिक इकाई होती है जो एक समय में विद्यार्थी के सामने प्रस्तुत की जाती है। इससे विद्यार्थी के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन ज्ञात किया जाता है। प्रत्येक फ्रेम के तीन तत्व होते हैं—उद्दीपक (Stimulus), प्रतिक्रिया (Response), तथा पुनर्बलन (Reinforcement)।

   उद्दीपक से अभिप्राय उस पाठ्य सामग्री से है जो फ्रेम में प्रस्तुत की जाती है। प्रतिक्रिया से अभिप्राय उस प्रश्न से होता है जिसे पढ़कर विद्यार्थी को उत्तर देना होता है तथा विद्यार्थी के उत्तर की पुष्टि के लिये दिया गया सही उत्तर पुनर्बलन प्रदान करता है। पहले एवं अन्तिम फ्रेम के अतिरिक्त किसी फ्रेम में इन तत्वों का क्रम निम्नलिखित हो सकता है—

   — पुनर्बलन (पिछले फ्रेम के प्रश्न का उत्तर)

   — उद्दीपक

   — प्रतिक्रिया

   रेखीय अभिक्रम में फ्रेम में उद्दीपक का आकार छोटा होता है। यह कुछ शब्दों अथवा कुछ वाक्यों का ही बना होता है। संगठन के आधार पर फ्रेम मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं—

   (i) ***शिक्षण फ्रेम (Teaching Frames):*** शिक्षण फ्रेम में विद्यार्थियों के समक्ष नवीन ज्ञान प्रस्तुत किया जाता है। नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिए इन फ्रेमों में अनुबोधकों का प्रयोग किया जाता है। किसी अभिक्रम में शिक्षण फ्रेमों की संख्या 70–75 प्रतिशत तक होती है।

   (ii) ***प्रस्तावना फ्रेम (Introductory Frames):*** प्रस्तावना फ्रेम पाठ्य वस्तु को उचित रूप से प्रस्तावित करने में सहायता करते हैं। इनमें विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान को नवीन ज्ञान से सम्बन्धित किया जाता है। इन फ्रेमों में अनुबोधकों एवं उभारकों (Primers) का प्रयोग किया जाता है। किसी अभिक्रम में प्रस्तावना फ्रेमों की संख्या 10–15 प्रतिशत तक हो सकती है।

   (iii) ***अभ्यास फ्रेम (Practice Frames):*** अभ्यास फ्रेमों में नवीन ज्ञान का अभ्यास करवाया जाता है। इनमें विद्यार्थियों द्वारा सीखी गई पाठ्य सामग्री की पुनरावत्ति करवाई जाती है। इन फ्रेमों में अनुबोधकों का कम से कम प्रयोग किया जाता है। किसी अभिक्रम में अभ्यास फ्रेमों की संख्या 15–25 प्रतिशत तक हो सकती है।

   (iv) ***परीक्षण फ्रेम (Testing Frames):*** परीक्षण फ्रेमों द्वारा विद्यार्थियों के नवीन ज्ञान का परीक्षण किया जाता है। इन फ्रेमों को एक इकाई के अन्त में रखा जाता है। इन फ्रेमों का उद्देश्य सीखे हुए ज्ञान की जांच करना होता है इसलिए इनमें अनुबोधकों का प्रयोग नहीं किया जाता। किसी अभिक्रम में परीक्षण फ्रेमों की संख्या 10–15 प्रतिशत तक हो सकती है।

2. **फ्रेमों की क्रमबद्धता (Sequencing of Frames):** पाठ्य सामग्री को छोटी–छोटी उपइकाइयों अर्थात् फ्रेमों के रूप में प्रस्तुत करने के पश्चात् फ्रेमों को व्यवस्थित किया जाता है। फ्रेमों को तार्किक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से उचित क्रम में व्यवस्थित किया जाता है जिससे विद्यार्थी प्रारम्भिक व्यवहार से अन्तिम व्यवहार की ओर अग्रसर हो सके।

   फ्रेमों को मुख्यतः तार्किक अथवा व्यावहारिक क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। तार्किक क्रमव्यवस्था में अध्यापक पाठ्य सामग्री को तर्कपूर्ण ढंग से क्रमबद्ध करता है तथा व्यावहारिक क्रमव्यवस्था में अध्यापक पाठ्यसामग्री को व्यावहारिक रूप से क्रमबद्ध करता है।

तार्किक क्रम (Logical Sequence) व्यवस्था में अध्यापक निम्नलिखित तीन उपागमों (Approach) का प्रयोग करता है–

(i) ***नियम-उदाहरण उपागम (Ruleg Approach):*** इस उपागम में पहले उन फ्रेमों को स्थान दिया जाता है जिनमें नियम होते हैं उसके पश्चात उन फ्रेमों को स्थान दिया जाता है जिनमें उन नियमों से सम्बन्धित उदाहरण होते हैं। इस प्रकार नियम–उदाहरण उपागम में फ्रेमों को व्यवस्थित करने के लिए निगमन विधि का प्रयोग किया जाता है। इसीलिए इस उपागम को निगमानात्मक उपागम (Deductive Approach) भी कहा जाता है।

(ii) ***उदाहरण-नियम उपागम (Egrule Approach):*** इस उपागम में पहले उन फ्रेमों को स्थान दिया जाता है जिनमें उदाहरण होते हैं। इसके पश्चात उन फ्रेमों को स्थान दिया जाता है जिनमें उदाहरणों द्वारा नियमों को सामान्यीकृत किया गया हो। इस प्रकार उदाहरण–नियम उपागम में फ्रेमों को व्यवस्थित करने के लिए आगमन विधि का प्रयोग किया जाता है इसीलिए इस उपागम को आगमनात्मक उपागम (Inductive Approach) भी कहा जाता है।

(iii) ***मैट्रिक्स उपागम (Matrix Approach):*** इस उपागम में अधिगम बिन्दुओं (Learning Points) तथा मुख्य प्रत्ययों (Main Concepts) की मैट्रिक्स तैयार की जाती है। मैट्रिक्स के एक सिरे पर अधिगम बिन्दु, मुख्य प्रत्यय, उप–प्रत्यय तथा सूचना बिन्दु आदि होते हैं और दूसरे सिरे पर कार्यक्रम होता है। इस प्रकार मैट्रिक्स से विषय–सामग्री और उसके द्वारा प्राप्त होने वाले परिणामों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

3. **फ्रेमों का सम्पादन (Editing the Frames):** फ्रेमों का निर्धारण एवं क्रमबद्ध व्यवस्था करने के उपरान्त उनका सम्पादन किया जाता है। सम्पादन करने के लिए विषय–विशेषज्ञ की सेवाएं ली जाती हैं। विषय–विशेषज्ञ (Subject Expert) फ्रेमों की विषय–वस्तु की नवीनता (Novelty), शुद्धता (Accuracy), स्पष्टता (Clarity) आदि की जांच करता है और उसमें आवश्यक संशोधन करता है।

इसके पश्चात अभिक्रम तकनीक का सम्पादन करने के लिए ऐसे शिक्षा–तकनीकी विशेषज्ञ (Educational Technology Expert) की सेवाएं ली जाती हैं जो अनुदेशन (Instruction) एवं अभिक्रमित अनुदेशन (Programmed Insturction) के क्षेत्र में कार्यरत हो। वह विभिन्न फ्रेमों के क्रम एवं उनकी संरचना की जांच करता है और आवश्यक संशोधन करता है। शिक्षा तकनीकी विशेषज्ञ विशेष रूप से फ्रेम में प्रयोग किये गए उद्दीपकों, अनुबोधकों, उभारकों, प्रतिक्रिया आदि की जांच करता है और तकनीकी कमियों को दूर करता है। अन्त में फ्रेमों (अभिक्रम) का सम्पादन भाषा विशेषज्ञ (Language Expert) से करवाया जाता है जिससे पाठ्य वस्तु में उपस्थित भाषा सम्बन्धी अशुद्धियों को दूर किया जा सके।

## C. परीक्षण की अवस्था (Stage of Try-out)

अभिक्रम के तैयार होने के पश्चात उसका परीक्षण किया जाता है। परीक्षण के लिए अभिक्रम को निम्नलिखित तीन प्रयोगात्मक चरणों से गुजारा जाता है–

1. **व्यक्तिपरक परीक्षण (Individual Try-out):** व्यक्तिपरक परीक्षण में तैयार किये गये अभिक्रम का एक समय में एक व्यक्ति पर परीक्षण किया जाता है। जिस कक्षा एवं स्तर के विद्यार्थियों के लिए अभिक्रम का निर्माण किया गया है, उस स्तर के चार–पांच विद्यार्थियों का चयन (Random Selection) करके उन पर अभिक्रम का परीक्षण किया जाता है। व्यक्तिपरक परीक्षण करने के लिए फ्रेमों को अलग–अलग कार्डों पर लिख लिया जाता है। एक कार्ड पर केवल एक ही फ्रेम लिखा जाता है। परीक्षण आरम्भ करने से पूर्व विद्यार्थियों को मानसिक रूप से तैयार किया जाता है। विद्यार्थी को यह स्पष्ट रूप से बता दिया जाता है कि उसकी परीक्षा नहीं ली जा रही अपितु उसे अभिक्रम के संशोधन में सहायता देनी है। विद्यार्थी को कार्डों के साथ एक उत्तरपुस्तिका दी जाती है जिस पर वह अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर सकता है। विद्यार्थी कार्ड पर लिखे फ्रेम को पढ़ता है और उत्तर–पुस्तिका पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। वह फ्रेम सम्बन्धी कठिनाइयों एवं सुझावों को भी उत्तरपुस्तिका में लिखता है।

   एक अभिक्रम के सभी फ्रेमों/कार्डों को पढ़ने एवं प्रतिक्रिया व्यक्त करने के पश्चात अभिक्रमक (Programmer) विद्यार्थी से विचार–विमर्श करता है। वह उसकी टिप्पणियों, कठिनाइयों एवं सुझावों आदि को रिकार्ड करता है। विद्यार्थी द्वारा प्रत्येक फ्रेम को पूरा करने में लिये गये समय को भी नोट किया जाता है। यह प्रक्रिया सभी पांच विद्यार्थियों पर की जाती

है और इससे प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर अभिक्रम में आवश्यक संशोधन किए जाते हैं।

साधरणतया फ्रेमों में निम्नलिखित त्रुटियां होती हैं–

(i) अस्पष्ट एवं अपर्याप्त सूचना (Vague and Insufficient Information)

(ii) उद्दीपकों का अनुचित प्रस्तुतीकरण (Inapropriate Presentation of Stimuli)

(iii) उद्दीपक से असम्बन्धित अनुक्रिया (Irrelevant response to stimulus)

(iv) अनुबोधकों का अभाव (Lack of Prompts)

(v) अत्याधिक अनुबोधकों का प्रयोग (Over use of Prompts)

(vi) शिक्षण एवं अभ्यास फ्रेमों में अस्पष्ट विभेदीकरण (Unclear differentiation between Teaching and Practice Frames)

2. **लघु समूह परीक्षण (Small group Try-out):** लघु समूह परीक्षण 5–10 विद्यार्थियों के एक समूह पर किया जाता है। ये विद्यार्थी मध्यम योग्यता के और उसी स्तर के होने चाहिए जिनके लिए अभिक्रम तैयार किया गया है। लघु समूह परीक्षण में सभी विद्यार्थियों पर एक साथ परीक्षण किया जाता है। समूह पर परीक्षण करने से पूर्व विद्यार्थियों के ज्ञान एवं अधिगम–स्तर का पता लगाने के लिए उनका पूर्व–परीक्षण (Pre-Test) किया जाता है। इसके पश्चात व्यक्तिपरक परीक्षण के आधार पर संशोधित किया गया अभिक्रम उनके सामने प्रस्तुत किया जाता है। अभिक्रमक विद्यार्थियों को अनौपचारिक वातावरण (Informal atmosphere) प्रदान करता है जिससे वह विद्यार्थियों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर सके प्रत्येक विद्यार्थी को कार्डों पर लिखे संशोधित फ्रेम एवं उत्तर पुस्तिका दी जाती है और अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त करने के लिए कहा जाता है। जिस समय विद्यार्थी फ्रेमों को पढ़ते हैं उस समय अभिक्रमक विद्यार्थियों के व्यवहार, हाव–भाव, प्रतिक्रियाओं तथा लिये गए कुल समय को नोट करता है। अभिक्रम की समाप्ति के पश्चात विद्यार्थियों का उत्तर–परीक्षण किया जाता है। पूर्व–परीक्षण एवं उत्तर–परीक्षण के परिणामों के अन्तर से अभिक्रम की प्रभावशीलता का पता लगाया जाता है। विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं तथा सुझावों आदि के आधार पर अभिक्रम में आवश्यक संशोधन किये जाते हैं।

3. **क्षेत्र परीक्षण (Field Try-out):** क्षेत्र–परीक्षण से अभिप्राय है–अभिक्रम का विद्यार्थियों के एक बड़े समूह पर वास्तविक शिक्षण–अधिगम परिस्थितियों में परीक्षण करना। यह कार्य अभिक्रमक के स्थान पर अध्यापक द्वारा किया जाता है। क्षेत्र परीक्षण 40–50 विद्यार्थियों के समूह पर किया जाता है। लघु–परीक्षण की भांति क्षेत्र परीक्षण में भी विद्यार्थियों के ज्ञान एवं अधिगम स्तर का पता लगाने के लिए पूर्व–परीक्षण किया जाता है। पूर्व परीक्षण के पश्चात अध्यापक विद्यार्थियों को समूह में निर्देश देता है और लघु–परीक्षण के परिणामों के आधार पर संशोधित अभिक्रम उनके सामने प्रस्तुत करता है। विद्यार्थी अभिक्रम के प्रति अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त करते हैं और अध्यापक उनके कार्यों का निरीक्षण करता है, कठिनाइयों के समाधान में उनकी सहायता करता है और उनके द्वारा लिये गए कुल समय को नोट करता है। अभिक्रम की समाप्ति के पश्चात उत्तर–परीक्षण किया जाता है। उत्तर परीक्षण एवं पूर्व–परीक्षण के परिणामों के अन्तर के आधार पर अभिक्रम की प्रभावशीलता एवं विद्यार्थियों के ज्ञान व अधिगम स्तर में वद्धि का पता लगाया जाता है। क्षेत्र परीक्षण के निष्कर्षों के आधार पर अभिक्रम में पुनः आवश्यक संशोधन किये जाते हैं।

## D. मूल्यांकन की अवस्था (Stage of Evaluation)

अभिक्रम के निर्माण एवं परीक्षण के पश्चात अभिक्रम का मूल्यांकन किया जाता है। मूल्यांकन के लिए क्षेत्र परीक्षण से प्राप्त परिणामों तथा आंकड़ों की सहायता ली जाती है। मूल्यांकन का उद्देश्य अभिक्रम की वैधता (Validity) की जांच करके उसकी गुणवत्ता में वद्धि करना तथा उसे शिक्षण–अधिगम के क्षेत्र में प्रयोग करने के लिए एक प्रभावशाली आधार प्रदान करना है। अभिक्रम का मूल्यांकन आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के मानदण्डों के अनुसार किया जाता है। इनका वर्णन निम्नलिखित है–

1. **आन्तरिक मानदण्ड पर आधारित मूल्यांकन (Evaluation Based on Internal Criterion):** यह मूल्यांकन अभिक्रम के आन्तरिक तत्वों, शक्तियों तथा अक्षमताओं से सम्बन्धित होता है। इसमें क्षेत्र परीक्षण से प्राप्त आंकड़ों के माध्यम से निम्न चार मापों की गणना की जाती है–

   (i) त्रुटि दर (Error Rate)

   (ii) अभिक्रम घनत्व (Programme Desnity)

   (iii) आरोही क्रम (Sequence Progression)

   (iv) फ्रेम सूची (Frame Inventory)

   (i) ***त्रुटि दर (Error Rate):*** क्षेत्र परीक्षण के समय विद्यार्थियों द्वारा अभिक्रम के विभिन्न फ्रेमों के सम्बन्ध में प्रतिक्रियाएं की जाती हैं। विद्यार्थियों द्वारा की गई गलत प्रतिक्रियाओं की दर त्रुटि दर कहलाती है। त्रुटि दर दो प्रकार की होती है।

      (a) अभिक्रम त्रुटि दर (Programme Error Rate)

      (b) फ्रेम त्रुटि दर (Frames Error Rate)

   अभिक्रम त्रुटि दर से अभिप्राय सम्पूर्ण अभिक्रम में विद्यार्थियों द्वारा की गई त्रुटियों से है और फ्रेम त्रुटि दर से अभिप्राय विद्यार्थियों द्वारा किसी एक फ्रेम में की जाने वाली समस्त त्रुटियों से है। त्रुटि दरों को ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्रों का प्रयोग किया जाता है–

$$\text{अभिक्रम त्रुटि दर / Programme Error Rate} = \frac{\text{त्रुटियों की कुल संख्या X 100}}{\text{फ्रेमों की संख्या X विद्यार्थियों की संख्या}}$$

$$\text{फ्रेम त्रुटि दर / Frame Error Rate} = \frac{\text{फ्रेम विशेष की त्रुटियों का योग X 100}}{\text{विद्यार्थियों की संख्या}}$$

   यदि त्रुटि दर अत्याधिक हो तो इसका अर्थ है कि अभिक्रम में संशोधन की आवश्यकता है परन्तु त्रुटि दर कम होने का सदा यह अभिप्राय नहीं होता कि अभिक्रम पूर्ण रूप से सही है। त्रुटि दर में कमी अभिक्रम के अत्याधिक सरल होने तथा अनुबोधकों एवं उभारकों के अत्याधिक प्रयोग के कारण हो सकती है।

(ii) **अभिक्रम घनत्व (Programme Density):** अभिक्रम घनत्व अभिक्रम के कठिनाई स्तर (difficulty level) का सूचक होता है। अभिक्रम का सही मूल्यांकन करने के लिए कठिनाई स्तर को ज्ञात करना आवश्यक है जिसे अभिक्रम घनत्व द्वारा ज्ञात किया जाता है। अभिक्रम घनत्व का मापन टाइप टोकन अनुपात (Type Token Ratio) के रूप में किया जाता है। इस अनुपात को ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

$$\text{टाइप टोकन अनुपात (Type Token Ratio or TTR)} = \frac{\text{अभिक्रम में वांछित विभिन्न प्रतिक्रियाओं की संख्या}}{\text{कुल प्रतिक्रियाओं की संख्या}}$$

**उदाहरण**

यदि 24 फ्रेमों के अभिक्रम में विद्यार्थी कुल 16 प्रतिक्रियाएं करता है तो अभिक्रम घनत्व $= \frac{16}{24} = 0.6$ होता है। अभिक्रम घनत्व का मान सदा 0 से 1 के मध्य ही हो सकता है, 1 से अधिक नहीं हो सकता।

(iii) **आरोही क्रम (Sequence Progression):** आरोही क्रम के मूल्यांकन से अभिप्राय अभिक्रम के विभिन्न भागों की तर्कसंगत व्यवस्था के अध्ययन से है। इसमें यह जानने का प्रयत्न किया जाता है कि अभिक्रम के विभिन्न फ्रेमों के प्रस्तुतीकरण की क्रम व्यवस्था विद्यार्थियों के अधिगम स्तर के अनुरूप है या नहीं।

आरोही क्रम का मूल्यांकन प्रवाह चित्र (Flow Diagram) अथवा रैंक अन्तर विधि (Rank difference Method) द्वारा किया जाता है।

(iv) **फ्रेम सूची का विश्लेषण (Frame Inventory Analysis):** अभिक्रम मूल्यांकन की यह एक प्रभावशाली विधि है। इसमें फ्रेम सूची तैयार करके उसका विश्लेषण किया जाता है। यह एक पूरक विधि है जिसकी सहायता से फ्रेमों की संरचना, उनकी क्रम–व्यवस्था की उपयोगिता तथा फ्रेमों में अनुबोधकों के प्रयोग से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त किया जाता है। फ्रेम सूची को तैयार करने के लिए उसमें विभिन्न प्रतीकों (Symbols) का प्रयोग किया जाता है। ये प्रतीक निम्नलिखित हैं–

पूर्ण अनुबोधित फ्रेम (Full Prompted Frame)

अर्द्ध अनुबाधित फ्रेम (Half Prompted Frame)

अनुबोधेन रहित फ्रेम (Unpromted Frame)

सूचना फ्रेम (Information Frame)

एक फ्रेम सूची इस प्रकार हो सकती है।

**फ्रेम संख्या**

| इकाई | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 | सूची |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| क | | | | | | | | | | | नं. 1 |
| ख | | | | | | | | | | | नं. 2 |
| ग | | | | | | | | | | | नं. 3 |

2. **बाह्य मानदण्डों पर आधारित मूल्यांकन (Evaluation based on External Criteria):** बाह्य मानदण्डों पर आधारित मूल्यांकन का सम्बन्ध विद्यार्थियों की अधिगम उपलब्धि अर्थात् व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों से है। जो अभिक्रम विद्यार्थियों के अधिगम स्तर को जितना ऊँचा उठाता है उसे उतना ही अच्छा माना जाता है। इस मूल्यांकन में निम्नलिखित मापनों का प्रयोग किया जाता है।

(i) निष्पत्ति स्तर (Performance Level)

(ii) उपलब्धि अनुपात (Gain Ratio)

(iii) 90/90 स्तर मानदण्ड (90/90 Standard Criterion )

(iv) अभिवत्ति गुणक (Attitude Coefficient)

(i) ***विद्यार्थियों का निष्पत्ति स्तर (Performance level of Students):*** निष्पत्ति स्तर से अभिप्राय विद्यार्थियों की अभिक्रम में निष्पत्ति से है। निष्पत्ति स्तर की सहायता से अभिक्रम की प्रभावशीलता का मूल्यांकन किया जाता है। उत्तर–परीक्षण में विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान ज्ञात किया जाता है और इसे प्रतिशत में परिवर्तित कर दिया जाता है।

उदाहरण के लिए यदि किसी उत्तर परीक्षण में 25 प्रश्न हैं और विद्यार्थियों के प्राप्त अंकों का मध्यमान 20 है तो इस मध्यमान का प्रतिशत है 80 प्रतिशत अर्थात् अभिक्रम प्रभावशाली है।

(ii) ***उपलब्धि अनुपात (Gain Ratio):*** उपलब्धि अनुपात से अभिप्राय है वास्तविक उपलब्धि तथा अपेक्षित उपलब्धि का अनुपात। यह अभिक्रम की कार्यकुशलता का सर्वोत्तम माप है। इससे हमें विद्यार्थियों की सीखने की संभावनाओं में से सीखे गये ज्ञान का पता लगता है।

$$\text{उपलब्धि अनुपात} = \frac{\text{उत्तर परीक्षण व पूर्व परीक्षण प्राप्तांकों के अन्तर का औसत}}{\text{उत्तर परीक्षण पूर्णांक व पूर्व–परीक्षण पूर्णांकों के अन्तर का औसत}}$$

(iii) ***90/90 स्तर मानदण्ड (90/90 Standard Criterion):*** इस मानदण्ड का प्रयोग यह जानने के लिए किया जाता है कि विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति हुई या नहीं। इस मानदण्ड से अभिप्राय है कि उत्तर–परीक्षण में 90 प्रतिशत विद्यार्थी 90 प्रतिशत अंक अवश्य प्राप्त करें अथवा विद्यार्थी 90 प्रतिशत फ्रेमों के सही उत्तर देने में सक्षम हों।

(iv) ***अभिवत्ति गुणांक (Attitude Cofficent):*** इसमें अभिक्रम के उचित मूल्यांकन के लिए विद्यार्थियों की अभिक्रम के प्रति अभिवत्तियों का मापन किया जाता है। इसके लिए एक अभिवत्ति मापनी का निर्माण किया जाता है जिससे अभिक्रम के प्रति विद्यार्थियों की अभिवत्तियों को ज्ञात किया जाता है। इस मूल्यांकन में अधिक वस्तुनिष्ठत लाने के लिए प्राप्त आंकड़ों के आधार पर अभिवत्ति गुणांक की गणना की जाती है। अभिवत्ति गुणांक की गणना निम्नलिखित सूत्र की सहायता से की जाती है।

$$\text{अभिवत्ति गुणांक (Attitude Coefficient)} = \frac{F_{Yes} - F_{No}}{F_{Yes}+F?+F_{No}}$$

$F_{yes}$ = हाँ प्रतिक्रियाओं की कुल आवत्ति

$F_{No}$ = नहीं प्रतिक्रियाओं की कुल आवत्ति

$F_{?}$ = अनिश्चयपूर्ण प्रतिक्रियाओं की कुल आवत्ति

## अपनी प्रगति जांचिए–

(i) स्व अधिगम सामग्री के निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।

(ii) स्व अधिगम सामग्री किस सिद्धान्त पर आधारित है?

## 1.6 सारांश

स्वअधिगम सामग्री से अभिप्राय ऐसी सामग्री से है जिसका उपयोग करके विद्यार्थी या अधिगमकर्त्ता अपनी गति एवं क्षमताओं के अनुरूप अधिगम करता है और अपनी ज्ञान–प्राप्ति का बोध भी करता है। स्वअधिगम सामग्री का निर्माण स्किनर द्वारा प्रतिपादित 'आपरेन्ट प्रतिबद्ध अनुक्रिया' के आधार पर किया जाता है। स्किनर के इस सिद्धान्त का प्रयोग रेखीय अभिक्रम के निर्माण के लिए किया जाता है। रेखीय अभिक्रम में विद्यार्थी प्रारम्भिक व्यवहार से अन्तिम व्यवहार तक एक सरल रेखा में अधिगम करता है। रेखीय अभिक्रम में पाठ्यवस्तु को छोटी–छोटी इकाइयों अर्थात् फ्रेमों में बांटा जाता है इन फ्रेमों को सरल से कठिन के क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। प्रत्येक फ्रेम के अन्त में एक प्रश्न होता हे जिसका उत्तर दूसरे फ्रेम के आरम्भ में दिया जाता है जिससे अधिगमकर्त्ता को प्रतिपुष्टि मिल सके। अभिक्रम का निर्माण चार अवस्थाओं में किया जाता है।

अभिक्रम की तैयारी में पाठ्य–वस्तु का चयन, पाठ्य–वस्तु की रूपरेखा तैयार करना, उद्देश्यों को व्यवहारपरक शब्दावली में लिखना, प्रारम्भिक व्यवहार को परिभाषित करना एवं मानदण्ड परीक्षण का निर्माण आदि बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाता है। अभिक्रम की लेखन अवस्था में पाठ्यसामग्री को पहले विभिन्न फ्रेमों में बांटा जाता है इन फ्रेमों को व्यावहारिक क्रम में व्यवस्थित करके इनका संपादन किया जाता है। अभिक्रम का परीक्षण करने के लिए उसे विभिन्न प्रयोगात्मक परीक्षणों से गुजारा जाता है। परीक्षणों से प्राप्त परिणामों के आधार पर अभिक्रम में आवश्यक संशोधन किये जाते हैं। अंत में अभिक्रम का मूल्यांकन किया जाता है। मूल्यांकन आंतरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के मानदण्डों के अनुसार किया जाता है।

## आदर्श उत्तर

(i) (a) तैयारी की अवस्था (b) लेखन की अवस्था (c) परीक्षण की अवस्था (d) मूल्यांकन की अवस्था

(ii) मनोविज्ञान के आपरेण्ट प्रतिबद्ध अनुक्रिया सिद्धान्त

## 1.7 मुख्य शब्द

**स्व-अधिगमः** स्वयं सीखने की प्रक्रिया।

**सुधारात्मक शिक्षणः** ऐसी शिक्षण प्रक्रिया जिसका उद्देश्य विद्यार्थियों की कमियों को दूर करना होता है।

**प्रारम्भिक व्यवहारः** शिक्षण आरम्भ करने से पूर्व विद्यार्थी का व्यवहार।

**अन्तिम व्यवहारः** शिक्षण के पश्चात विद्यार्थी का व्यवहार।

**अभिक्रमित अनुदेशनः** वह प्रक्रिया जिसमें अधिगम सामग्री को क्रमिक पदों की श्रंखला में इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है जिससे प्रत्येक विद्यार्थी के व्यवहार में व्यक्तिगत रूप से मापनीय और विश्वसनीय परिवर्तन लाया जा सके।

**निष्पत्तिः** विद्यार्थियों की उपलब्धि

**अनुबोधकः** अभिक्रम के प्रकार्यात्मक तत्व जिनका परिपूरक उद्दीपक के रूप में शिक्षण फ्रेमों में प्रयोग किया जाता है। इसके द्वारा शुद्ध अनुक्रिया की संभावना बढ़ जाती है।

## 1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

शर्मा, आर. ए.—'शिक्षण अधिगम के मूल तत्व, लायल बुक डिपो, मेरठ, 1989.

वालिया, जे. एस.—'शिक्षण अधिगम के मूल तत्व, पाल पब्लिशर्ज, अमतसर, 1996.

Chauhan, S.S., – 'A Text Book of Programmed Instruction', 1978.

Market, Surtan Meyer – 'Good, Frames – A Grammer of Frame 1978, writing, John Wiley & Sons.

# इकाई-4 (a)

# अध्याय–1: शिक्षण विधियाँ

# (Methods of Teaching)

**उद्देश्य :**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि:

– शिक्षण विधियों के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन कर सकें।

– मुख्य शिक्षण विधियों के नाम बता सकें।

**संरचना :**

1.1 प्रस्तावना

1.2 शिक्षण विधियों के विकास का संक्षिप्त इतिहास

1.3 मुख्य शिक्षण विधियां

1.4 सारांश

आदर्श उत्तर

1.5 मुख्य शब्द

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

## 1.1 प्रस्तावना

मनुष्य के जीवन की प्रत्येक अवस्था की कुछ निश्चित विशेषताएँ होती हैं आधुनिक मनोवैज्ञानिक दष्टिकोण के अनुसार किसी भी विषय का शिक्षण तब तक सफल एवं पूर्ण नहीं हो सकता जब तक उसे अधिगमकर्त्ता की आयु, उसकी विशेषताओं एवं आवश्यकताओं पर आधारित न किया जाये। जीव–विज्ञान शिक्षण का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों में इच्छित सामाजिक परिवर्तन लाना है। यह केवल प्रभावशाली शिक्षण से प्राप्त किया जा सकता है। प्रभावशाली शिक्षण अध्यापक एवं उसके द्वारा अपनायी गई विधि पर निर्भर करता है। अतः जीव–विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में विषय–वस्तु के साथ–साथ उसकी शिक्षण की विधियाँ भी पर्याप्त महत्व रखती हैं, जिनका निर्धारण अध्यापक अपनी तथा अपने विद्यार्थियों की योग्यता एवं विषय–वस्तु के स्वरूप के आधार पर करता है। इस प्रकार इन विधियों के माध्यम से अध्यापक विषय–वस्तु के ज्ञान के साथ–साथ विद्यार्थियों को जीव विज्ञान से सम्बन्धित अधिगम अनुभव भी प्रदान करता है।

शिक्षण विधियाँ शिक्षक को यह बताती हैं कि वह अपने छात्रों को किसी प्रकार शिक्षा प्रदान करे। यह सत्य है "जिस प्रकार से सत्य मार्ग के अभाव में एक व्यक्ति निर्दिष्ट स्थान पर नहीं पहुँच सकता, उसी प्रकार उचित शिक्षण विधि के अभाव में विद्यार्थी को सही ज्ञान नहीं दिया जा सकता।"

## 1.2 शिक्षण-विधियों के विकास का संक्षिप्त इतिहास (Brief History of Development of Teaching Methods)

**'तमसो मा ज्योतिर्गमय'**

यह वेद–वाक्य है। इसका तात्पर्य है–''अंधकार से प्रकाश में जाने की उत्सुकता।'' किन्तु अंधकार (अविद्या) से प्रकाश (विद्या) की ओर कैसे जाया जा सकता है, यह अनादि काल से एक जटिल समस्या है। प्रत्येक देश में इसका प्रयोग किया गया है।

शिक्षण का प्रयोग बहुत–कुछ मानव के जीवन–यापन की विधियों से संबंध रखता है। प्रारंभिक काल में मनुष्य अपना पेट आखेट द्वारा भरता था। उस समय अनुकरण द्वारा ही तीर चलाना, आदि क्रियाओं को सीखता था। कालांतर में मनुष्य का जीवन सुसंगठित होता गया। मानव जीवन नियम बद्ध होता गया। सर्वप्रथम पुरोहित द्वारा प्रचलित रीतियों, संस्कारों तथा उत्सवों की शिक्षा दी जाती थी। धीरे–धीरे आचार्यों का स्थान शिक्षा में आने लगा।

प्राचीन युग में भारतवर्ष में जीवन को चार आश्रमों में विभक्त किया गया और सबसे अधिक मूल्यवान् समय ब्रह्मचर्य आश्रम को मान गया। इस अवधि में बालक गुरुकुलों में रहकर आचार्यों के चरणों में बैठकर उनके पवित्र आचरण का अनुकरण कर अपने आचरण को गढ़ते थे तथा कथन–विधि द्वारा उपदेश भी सुनते थे। इस तरह बड़े–बड़े वेद, उपनिषद् आदि का ज्ञान शिष्य मौखिक रूप से प्राप्त करते थे तथा उन्हें कंठस्थ कर जाते थे। शास्त्रार्थ ही ज्ञानार्जन की जाँच–प्रणाली थी। छात्र दूसरे गुरु के शिष्यों के साथ शास्त्रार्थ करते थे। जिस छात्र की विजय होती थी, उसके गुरु की विजय समझी जाती थी। कहानी प्रणाली का भी प्रयोग होता था। पंचतंत्र, हितोपदेश जैसे अनेक कहानी–संग्रह मिलते हैं। व्याकरण तथा दर्शन के गूढ़ तत्वों को कंठस्थ कराने के लिए 'सूत्रों' एवं 'श्लोकों' का प्रयोग होता था। सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'सुभाषितरत्न भंडार' के रचयिता ने कहा है:–

**पुस्तकास्थ तु या विद्या परहस्तगतं धनम्।**

**कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम्।।**

अर्थात् ''पुस्तक में लिखा ज्ञान दूसरे के हाथ के धन सदश्य है। आवश्यकता पड़ने पर न तो वह विद्या और न वह धन काम में आता है।'' तात्पर्य यह है कि कंठस्थ ज्ञान ही काम आ सकता है। कंठस्थ करने में आवत्ति–प्रणाली की आवश्यकता होती है अतः विद्यार्थियों को किसी भी पाठ को बारबार दुहराना पड़ता है। मिश्र देश में भी यही प्रणाली चलती थी। यूनान में स्पार्टा नगर में फौजी शिक्षा अनुकरण से दी जाती थी। भारतवर्ष में भी शास्त्रास्त्रों का प्रयोग करना भी अनुकरण में सीखा जाता था तथा निरन्तर अभ्यास से सुदढ़ता प्राप्त की जाती थी।

प्राचीन भारत में विधिपूर्वक शिक्षण–प्रयोग होता था। मनुस्मति में ऐसा उल्लेख मिलता है कि वेदों की पढ़ाई में प्रश्नोत्तर तथा व्याख्यान–प्रणालियों का प्रयोग होता था। भाषा की शिक्षा में शब्द–ज्ञान पर जोर दिया जाता था। माध्वाचार्य ने किसी विषय को पूर्णरूपेण समझने के लिए विषय, संशय, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष और संगति पांच बातों को आवश्यक बताया है। इस प्रकार कामन्दकी आदि आचार्यों ने शिक्षा के कई सोपान बताये हैं (एस. के. दास : प्राचीन हिन्दुओं की शिक्षा–प्रणालियाँ, पष्ठ 128)। हजारों वर्ष बाद में होनेवाले हरबार्ट साहब के शिक्षण के पंच सोपान से प्राचीन भारत की प्रणालियाँ मिलती हैं। उस युग में आगमन (Induction) तथा निगमन (Deduction) का प्रयोग होता था। पीछे चलकर 'टीका–प्रणाली' और 'शास्त्रार्थ–प्रणाली' का भी प्रयोग होने लगा।

पाश्चात्य देशों में शिक्षण–विधि अनुकरण मात्र ही थी, जिससे बालकों के मस्तिष्क में नवीन एवं मौलिक सूझ के विकास की उत्प्रेरणा नहीं मिलती थी। इसलिए यूनान में कुछ ऐसे शिक्षक पैदा हुए जिन्होंने प्रचलित प्रणाली की कड़ी आलोचना की। उन्होंने आलोचना–विधि का प्रयोग किया। कट्टर पंथियों ने उनका नाम सोफिएट रखा। आलोचना–विधि से विद्यार्थियों की विचार–शक्ति जाग्रत होती थी। इस विधि में परिवर्त्तन लाकर Socrates और Plato ने तर्क–विधि (Dialetic method) की रचना की। इस विधि की आधार–शिला संदेह और जिज्ञासा है। शिष्य पूर्व–संस्कारों के प्रति संदेह की भावना लेकर जाता है और नये विचारों के प्रति जिज्ञासा प्रकट करता है। गुरु शिष्य के प्रश्नों का उत्तर देकर उसके संदेह को दूर करता है और दूसरी जिज्ञासा की तुष्टि करता है। इस विधि के आदि गुरु सुकरात और प्लेटो माने जाते हैं और उनके बहुत से शिष्य भी थे। किन्तु, इन मनीषियों की मत्यु के बाद इस विधि का ह्रास यूनान में हुआ। पुनश्च अनुकरण एवं कंठस्थ–विधि का प्रयोग होने लगा। इसके पश्चात भाषण–कथा का प्रयोग होने लगा।

पाश्चात्य देश में महात्मा ईसा का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने मनुष्य के भीतर श्रद्वा और विश्वास के बीज बोये। गुरु जो कुछ कहता है उस पर ही विश्वास करना चाहिए। अतः कथन–विधि का प्रयोग होने लगा और शिक्षा के केन्द्र गिरिजाघर बने रहे। आज भी पादरियों द्वारा अनेक शिक्षालय चलाए जाते हैं जिनमें कथन–विधि का कुछ हद तक प्रयोग होता है। महात्मा ईसा मुख्यतः धर्मोपदेशक थे। धर्म की शिक्षा वे प्रभावोत्पादक उपमाओं और कहानियों के द्वारा प्रायः देते थे। वे श्रोताओं के दैनिक जीवन की घटनाओं को चुनकर उदाहरण देते थे और उनके भीतर में होनेवाली शंकाओं का प्रश्नोत्तर–प्रणाली द्वारा समाधान कर देते थे। भारतवर्ष में भी धर्मोपदेश में महात्मा बुद्ध आदि ने कहानियों का प्रयोग किया है। उनकी कहानियों का संग्रह 'जातक–कथा' में मिलता है। **सेंट आगस्टाइन साहब** ने कहा कि ''चाहे कितनी भी अच्छी बात हो, परन्तु कोई मनुष्य अपनी इच्छा के विरुद्ध नहीं सीख सकता है।'' इस तरह उन्होंने शिक्षण में शिष्य की इच्छा और अभिरुचि का महत्त्व स्वीकार किया है जिसको आधुनिक युग का मनोविज्ञान भी स्वीकार करता है। उन्होंने यह भी कहा कि भाषा का ज्ञान शब्द एवं व्याकरण के नियमों के कंठस्थ करने से नहीं हो सकता है, बल्कि विद्वानों के सम्पर्क से, उनकी शुद्ध एवं साहित्यिक वाणी से हो सकता है।

मध्ययुग में पुरानी शिक्षण–विधियाँ चलती रहीं। **सैंट थॉमस ऐक्वीनाज** (1223–1274) साहब ने इस बात पर जोर दिया कि बालक को अपने आप सीखना चाहिए। अध्यापक का काम पथ–प्रदर्शन करना होता है। बालक को बाहर से ज्ञान भरा नहीं जा सकता, बल्कि बालक की सहज योग्यताओं के सहारे उसे अनुरूप बना देना है। यह कार्य अनुमान–शास्त्र द्वारा सम्पन्न किया जा सकता है, क्योंकि अनुमान–शास्त्र बताता है कि मनुष्य का मस्तिष्क कैसे काम करता है? शिक्षक पाठ्य–विषय को प्रश्नों द्वारा शिष्यों के सामने उपस्थित करे ? इस तरह शिक्षण में विचार–विमर्श और शास्त्रार्थ–विधि का भी प्रयोग हुआ। ऐक्वीनाज के इस विचार में आधुनिक युग के शिक्षण–शास्त्र के बीज का दिग्दर्शन होता है।

विश्वविद्यालयों में शास्त्रार्थ और भाषण–विधि का प्रयोग किया जा रहा है। गवेषणात्मक (Research) कार्य करने के बाद आलेख (Thesis) प्रस्तुत करने का भी प्रमाण मिलता है।

14 वीं शताब्दी के प्रारंभ में यूरोप में 'ज्ञान का पुनरोदय (Renaissance) हुआ। शिक्षा का महत्त्व बढ़ने लगा। बाल–शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाने लगा। इस युग में एक महान् शिक्षा शास्त्री ल्वायला (Loyla) नाम के पैदा हुये जिन्होंने शिक्षण–विधि को वैज्ञानिक रूप देने की ओर सर्वप्रथम संकेत किया। उन्होंने अध्यापक के प्रशिक्षण पर भी जोर दिया। उन्होंने पाठ पढ़ाने की एक साधारण रूप–रेखा की ओर संकेत किया। उनके अनुसार पाठन–विधि की चार सीढ़ियाँ होती हैं–

1. सम्पूर्ण पाठ को एक पढ़ना,
2. पूर्व ज्ञान के साथ तर्कों को स्पष्ट करते हुए उसका संबंध जोड़ना,
3. प्रत्येक वाक्य का अनुवाद सरल करना ताकि भाव समझ में आ जाय और
4. सम्पूर्ण पाठ की पुनरावत्ति।'

हरबार्ट के शिक्षण के पंचपदीय चरणों में ये बातें पायी जाती हैं।

रस्क ने अपनी पुस्तक 'The Doctrines of great educators' के अध्याय चतुर्थ, पष्ठ– 79–80 में ल्वायला के बारे में लिखा है ''कि ल्वयल ने यह बात बड़ी उपयोगी बताई है कि भावी शिक्षकों को कोई अनुभवी व्यक्ति कम–से–कम दो या अधिक महीनों तक पढ़ने–पढ़ाने, लिखने तथा कक्षा का अनुशासन करने का अभ्यास कराये। यदि शिक्षक इन बातों का पहले से ज्ञान नहीं प्राप्त कर लेते, तो उन्हें ये बातें विद्यार्थियों को हानि पहुँचाकर सीखनी पड़ती है। वे चतुर और निपुण शिक्षक उस समय बन पायेंगे, जब वे अपनी अज्ञानता के कारण बदनाम हो चुकेगे। सम्भवतः तब उनकी बुरी आदतें छूटेगी भी नहीं। इसीलिए शिक्षण–विधि की शिक्षा प्रारम्भ में ही देना आवश्यक है।'' यह भी शिक्षण–विधि में बड़ी देन है।

ल्वायला जेस्वीट लोगों में था और रस्क ने जेस्वीट लोगों को शिक्षण–विधि का जनक माना है। सुधारवादियों के प्रभाव को रोकने के लिए रूढ़िवादियों ने एक संगठन का निर्माण किया था, उसी संगठन का नाम जेस्वीट था। इस संगठन में अनेक शिक्षाशास्त्री हुए थे। उन्होंने इतिहास–शिक्षण में अभिनय प्रणाली तथा भाषा–शिक्षण में डायरेक्ट–विधि का प्रयोग किया। उन्होंने टीका–विधि का प्रयोग भी किया जिसके अनुसार श्लोक की भाषा की व्याख्या, उसकी व्याकरण–संबंधी गुत्थियाँ सुलझाना, अलंकार आदि का उल्लेख करना है। इस प्रकार अनेक विधियों का प्रयोग किया। उस युग में होने वाले अनेक शिक्षकों ने बच्चों की रुचि की ओर ध्यान रखने का संकेत किया। इसमें आधुनिक युग के शिक्षण का कुछ तत्त्व मिलता है।

कालान्तर में कोपरनिकस (Copernicus) और गैलीलियों आदि विद्वानों ने सफलता पूर्वक पुरानी बातों का खंडन किया और विज्ञान का जन्म दिया। इसका प्रभाव शिक्षा शास्त्र पर भी पड़ा। शिक्षा में तीन नये विचार आयें

1. सुचारूपता (Systematisation),
2. प्रयोगात्मकता (Experimentation)
3 इन्द्रिय–जनित ज्ञान पर विश्वास (Trust on sense perception)

कोमेनियस में वैज्ञानिक ढंग से शिक्षण–विधि को तैयार करने का प्रयत्न किया।

विज्ञान में पर्यवेक्षण का बड़ा महत्त्व होता है। पर्यवेक्षण द्वारा किसी वस्तु का सूक्ष्मातिसूक्ष्म और विस्तत ज्ञान प्राप्त होता है। पर्यवेक्षण का आधार ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। शिक्षा में इसका प्रयोग होने लगा और ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञान–द्वार माना जाने लगा। प्राचीन युग में ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ज्ञान प्राप्त करना हेय समझा जाता था। अरस्तू ने ज्ञान को सहज माना था। उसको इन्द्रिय–जनित नहीं माना था। शिक्षा केवल उस सहज परन्तु सुप्त ज्ञान को जाग्रत करती है। उस समय के चिन्तकों ने मस्तिष्क के अनेक विभागों में विश्वास किया जिन्हें 'फैक्टरी' कहते हैं, जैसे–स्मति, तर्क–शक्ति, ध्यान, दढ़–इच्छाशक्ति आदि। शिक्षा द्वारा उन शक्तियों को मुफ्त किया जाता है। किन्तु लॉक (Lock) सबसे प्रथम शिक्षणशास्त्री था जिसने इन्द्रिय–जनित ज्ञान पर विचार करना प्रारम्भ किया था। उसके अनुसार ज्ञान सहज नहीं है, बल्कि इन्द्रिय–जनित है। उन्होंने मानव–समझ के लेखों (essays of Human understanding) में लिखा है 'ज्ञान अनुभव द्वारा उत्पन्न होता है। बाह्य पदार्थों एवं भौतिक जगत् का संबंध मानव मन से उसकी इन्द्रियों द्वारा स्थापित होता है'। वस्तुओं के सम्पर्क से मानव–मस्तिष्क में संवेदनाएँ पैदा होती हैं। संवेदनाओं से विचार का जन्म होता है। अनुभव से विचार जटिल बनते हैं। विचारों के बीच स्थापित होने वाले संबंध को ज्ञान कहते हैं।

लॉक के अनुसार ज्ञान–प्राप्ति के लिए मनुष्य पूर्णरूपेण बाह्य–जगत् पर निर्भर करता है। इसमें मस्तिष्क की क्रियाशीलता का कुछ भी महत्त्व नहीं रहता है। शिक्षा बाह्य प्रभाव से समुचित ढंग से प्रभावित करने का नियोजन करती है। शिक्षा द्वारा ज्ञान नियमित तथा सुव्यवस्थित बनता है। लॉक के इस विचार से प्रभावित होकर शिक्षाशास्त्री जैसे हरबर्ट, कोमेनियस, पेस्तालाजी, फ्रोबेल आदि ने अनेक शिक्षण–विधियों का निर्माण किया।

हरबर्ट ने शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण माना है। चरित्र–निर्माण में सफलता प्राप्त करने के लिए अध्यापक को क्रमशः विचारवत्त (Circle of ideas), इच्छा (Desire), रुचि (Interest) और दढ़ता (Will) की स्थितियों को पार कराते हुए चरित्र–निर्माण तक पहुँचाना होता है। अतः बाह्य वस्तुओं को, जिनका प्रभाव बालक के चरित्र पर पड़ता है योजना के रूप में बालक के सम्मुख रखा जाना चाहिए। वस्तुओं को प्रस्तुत करने का मनोवैज्ञानिक ढंग हरबर्ट ने निकाला। शिक्षण के पंचपदीय पाठन (Five steps of teaching) हरबर्ट की सबसे बड़ी देन शिक्षा–जगत् को मिली जिनका वर्णन अन्यत्र विस्तार–पूर्वक मिलेगा।

लॉक के विचार के कारण शिक्षा में पर्यवेक्षण तथा इन्द्रियों के अभास पर विशेष जोर दिया जाने लगा। पर्यवेक्षण द्वारा अनुभव–क्षेत्र को अधिक व्यापक बनाने के लिए सहायक उपकरण, जैसे–रंगबिरंगे चित्र, मॉडेल आदि का प्रयोग होने लगा। कोमिनियस ने सर्वप्रथम शब्द–ज्ञान को चित्रों द्वारा करने की शैली की खोज की है। उन्होंने पाठ्य–विषयों को ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से पढ़ाने के सामान्य नियम प्रस्तुत किए। पेस्तालाजी ने वस्तु–पाठ (object lesson) की विधि निकाली, जिसके द्वारा बालक के सामने एक वस्तु रखकर उससे संबंधित विचारों का बोध कराया जाता है। फ्रोबेल साहब ने किंडरगार्टेन–विधि में उपहारों (gifts) को इसलिए स्थान दिया कि बालक को बचपन से ही पर्यवेक्षण का अभ्यास पड़ जाय। मारियामॉंटेसरी की शिक्षण–विधि में ज्ञानेन्द्रियों के अभ्यास पर विशेष जोर दिया जाता है। इस प्रकार लॉक आधुनिक मनोविज्ञान का जन्मदाता माना जा सकता है। मनोविज्ञान में प्रयोगात्मक मनोविज्ञान पर अधिक जोर दिया जाने लगा। बालक की रुचि, संवेदना, सविकल्पज्ञान, पर्यवेक्षण आदि की जाँच होने लगी और शिक्षण–विधि में परिवर्तन होने लगा। इसके अतिरिक्त बालक के शरीर, मस्तिष्क तथा भाव के विकास का अध्ययन होने लगा, जिससे विकासात्मक मनोविज्ञान का विकास हुआ। बालक के विकास की स्थितियों का पता चल गया। विकास की प्रत्येक स्थिति में बालक की शारीरिक, मानसिक और भाव संबंधी दशाएँ भिन्न होती है। अतः शिक्षा देते समय बालक की मनोदशाओं का ध्यान रखना आवश्यक होता है। शिक्षाशास्त्रियों ने पता लगाया कि बालक की विशेष आयु के अनुसार विशेष प्रकार की शिक्षण–विधि होनी चाहिए, जैसे–किन्डरगार्टन विधि तीन या चार वर्ष के बालक के लिए, मॉंटसयरी विधि पाँच वर्ष से सात वर्ष के बालकों के लिए उपयोगी होती है।

जैसे–जैसे बालाध्ययन होता गया, वैसे–वैसे बालकों की व्यक्तिगत भिन्नता की बात का भी पता चला। पहले ऐसी धारणा थी कि आयु–विशेष में सभी बालक समान होते हैं और परिस्थितियों एवं शिक्षा के कारण उनमें अन्तर होता है। बाद की मनोवैज्ञानिक खोजों ने इस धारणा को भ्रान्तिपूर्ण प्रमाणित किया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में पेरिस में शिक्षा के स्तर की जाँच के लिए मनोविज्ञान के महान! पंडित बिने (Binet) साहब को वहाँ की सरकार ने नियुक्त किया। उनहोंने बुद्धि–परीक्षा के लिए कुछ जाँच (Test) तैयार की जो बिनेट टेस्ट (Binet Test) से विख्यात है। उन्होंने बालकों को बौद्धिकक्षमता की दष्टि से पाँच श्रेणियों में विभाजित किया। जैसे –1. जड़ (Idiot), 2. मूढ़ (Imbecile), 3. मूर्ख (Moron), 4. साधारण (Normal) और 5. प्रतिभावान (Genius)। एक ही वर्ग में सभी प्रकार के बालक पाये जाते हैं और अतः किसी भी शिक्षा का प्रभाव सामान्य रूप से सभी बालकों पर एक–सा नहीं पड़ता है इसलिए यह आवश्यक है कि समूह–शिक्षण में भी व्यक्तिगत शिक्षण पर जोर देना चाहिए। हेलेन पारर्वर्स्ट ने डाल्टन नगर (संयुक्त राज्य अमेरिका) में इसका प्रयोग किया। उसने डाल्टन–विधि का जन्म दिया।

मध्यकाल में दर्शन के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हुआ। प्राचीन धर्म में मनुष्य के जन्म का कारण पूर्ववास बताया गया थां अतः शिक्षा में ऐसा विश्वास चल रहा था कि बालक कुसंस्कार लेकर पैदा होता है। वह स्वभावतः दुष्ट और पापी होता है। उस पर कठोर अनुशासन तथा नियंत्रण की जरूरत होती है। उसी हालत में उसका संस्कार ठीक होता है। अतः प्राचीन युग में शिक्षालय में मारना, बेंच पर खड़ा करना आदि दंडो का प्रचार था। किन्तु कतिपय ऐसी शिक्षाशास्त्री पैदा हुए जिन्होंने बालक के प्रति इस अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठायी। इरास्मस ने बालक की 'सहज शक्तियों' के अनुकूल शिक्षा देने पर जोर दिया। मार्टिन लूथर ने भी आवाज उठायी। किन्तु कोमेनियस ने बालकों के प्रति स्नेहपूर्ण दष्टिकोण अपनाने पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि ''जब वीणा के तारों से कर्णकटु स्वर निकलते हैं, तो गायक उसे घूँसे या डंडे से तोड़ नहीं डालता या उसे दीवार या पथ्वी पर पटक नहीं देता। परन्तु वह वैज्ञानिक तरीके से उसके स्वरों को सुधारते हुए, उसे ठीक कर देता हैं उसी तरह बालकों के ह्रदय में ज्ञान का प्रेम जाग्रत करने के लिए उनके साथ सहानुभूति और चतुरता से काम लेना चाहिए, किसी अन्य उपाय से तो उनकी अरुचि, बजाय घटने के उदासीनता' आलस्य और मूर्खता का रूप धारण कर सकती है।''

रूसो का शिक्षा–जगत् में प्रार्दुभाव हुआ। उसने एक बहुत बड़ा परिवर्तन लाया। रूसो ने कहा कि बालक में जन्म से नैसर्गिक गुण पाये जाते हैं। उसका स्वभाव कोमल, निष्कपट तथा स्नहेहपूर्ण होता है। वह बुरी बातों को समाज से सीखता है। शिक्षा पर रूसो के प्रतिवाद का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि शिक्षा में बच्चों की स्वतंत्रता पर जोर दिया जाने लगा और शिक्षक अपने पाठ को रोचक और आकर्षक बनाने लगे। रूसो ने एक काल्पनिक पुत्र 'एमिल' और काल्पनिक पुत्री 'सोफी' की शिक्षा–व्यवस्था तथा शिक्षण–विधि का वर्णन बड़े रोचक ढंग से किया है। आदर्शवादी समकालीन कान्ट ने भी रूसो के विचार का समर्थन किया है। उन्होंने कहा है कि शिक्षा का उद्देश्य बालक को अपनी स्वतंत्रता का ठीक से उपयोग करते हुए नियम का पालन करना सीखाना है। इस प्रकार कान्ट रूसो जैसी बाल–स्वतंत्रता में तो विश्वास नहीं करते थे, किन्तु इतना अवश्य चाहते थे कि नियमों के पालन में बालक की स्वतंत्रता अवश्य बनी रहे।

रूसो के प्रभाव से शिक्षण में चित्र, खेल–कूद आदि का प्रयोग होने लगा। हाल तथा ग्रूम साहब की खोजों के फलस्वरूप 'खेल' की शैक्षिक महत्ता का पता लगा। खेल द्वारा शिक्षण–विधि (Play-way method) का प्रयोग होने लगा। रूसों ने दमनपूर्ण शिक्षण–विधि को बुरा बताया था, किन्तु उसने इसका कोई वैज्ञानिक कारण नहीं दिया था। फ्रायड साहब ने सर्वप्रथम दमनपूर्ण विधि की मनोवैज्ञानिक खोज की। उन्होंने कहा कि बाल्यकाल में किसी प्रकार की प्रवत्ति के दमन करने से मनुष्य का जीवन विकारग्रस्त हो जाता है, क्योंकि दमन से प्रवत्तियों का वेग नष्ट नहीं होता है बल्कि द मन की गयी प्रवत्तियाँ सुप्तमन की गहराई में जा छिपती हैं और नाना प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न करती हैं। अतः प्रवत्तियों का संतुष्टीकरण तथा ऊर्जस्वीकरण होना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य प्रवत्तियों को सुसंस्कृत करना होता है। फ्रायड के अनुसार उत्सुकता, प्रेम, सहवास और प्रतियोगिता को शिक्षा की दष्टि से मुख्य प्रवत्तियों में माना गया है। बालक को पूरी स्वतंत्रता देने पर ही इन प्रवत्तियों के प्रदर्शन एवं संतुष्टीकरण का मौका मिलता है। अतः स्कूल का वातावरण परिवार जैसा होना चाहिए। बालक की समस्याओं को सुलझाना ही विद्यालय का काम होना चाहिए। विद्यालय के वातावरण में बालक स्वयं अनुभव करें और अन्वेषण द्वारा ज्ञान प्राप्त करें, इस पर जोर दिया जाने लगा। इस तरह 'अनुभव द्वारा शिक्षण' सिद्धांत का जन्म हुआ और शिक्षा में अन्वेषण–द्वारा ज्ञान–प्राप्त की विधि के कारण ह्यूरिस्टिक–विधि (Heuristic method) का भी जन्म हुआ।

शासन में प्रजातंत्र प्रणाली के प्रचार के कारण शिक्षण की दमन–विधि का ओर जोरों से तिरस्कार होने लगा। हक्सले ने कहा है, ''यदि आप का उद्देश्य स्वतंत्रता है तो जनता को स्वतंत्र बनने तथा स्वशासन की कल सिखायें। यदि आप, इसके बजाय, उन्हें दमन द्वारा भेंड़ें बना देंगे तो आपकी अभीष्ट स्वतंत्रता तथा प्रजांतत्र आप को प्राप्त न होगा। गलत ढंग से अच्छे उद्देश्य की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती है'' इस विचार का प्रभाव शिक्षण पर पड़ा। शिक्षण का केन्द्र–बिन्दु बालक बना और शिक्षक का कार्य शिक्षण का स्वतंत्र वातावरण, शिक्षण–उपक्रम, शिक्षण–सामग्री आदि उपस्थित करना तथा आवश्यकता पड़ने पर निर्देशन करना मात्र हो गया।

अमेरिका में विज्ञान के आविष्कारों के फलस्वरूप एक नये जीवन–दर्शन का जन्म हुआ जिसको प्रयोजनवाद कहते हैं। इस दर्शन के अनुसार कोई भी जीवन का शाश्वत मूल्य नहीं होता है। मनुष्य सत्य को बना और बिगाड़ सकता है। सत्य परिवर्त्तनशील है। उसकी परख बारबार होनी चाहिए। कल का सत्य आज का असत्य हो सकता है। सत्य वह सत्य है जो उपयोगी है। इस विचार के प्रतिपादक पियर्स और जेम्स हैं। शिक्षण–विधि पर भी इसका प्रभाव पड़ा। जौनडीवी और किलपैट्रिक साहब ने पुरानी पद्धति की आलेचना की और कहा कि छात्र किसी सिद्धान्त को ग्रहण करने के पूर्व प्रयोगात्मक ढंग से देख ले कि जो कुछ वह सीख रहा है सत्य है। इस प्रकार अमेरिका में योजना–विधि (Project Method) का जन्म हुआ।

भारतवर्ष में आधुनिक युग में स्वर्गीय राष्ट्रपिता बापू ने एक नयी शिक्षण–विधि का जन्म दिया, जो शिक्षा–जगत् में सबसे बड़ी देन माना जाता है। उन्होंने ज्ञान का आधार जीवन की उपयोगी क्रियाएँ तथा सामाजिक एवं भौतिक उत्प्रेरणाओं को ही माना। उनकी शिक्षा का उद्देश्य आदर्शवादी है तथा शिक्षण–विधि प्रयोजनवादी है। वे जीवन की उन्हीं योजनाओं को लेना चाहते थे जो जीवनोपयोगी हैं।

## 1.3 मुख्य शिक्षण विधियाँ (Main Teaching Methods)

जीव विज्ञान में निम्नलिखित शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता है–

1. व्याख्यान विधि (Lecture Method)
2. निरीक्षण विधि (Observation Method)
3. प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method)
4. प्रदर्शन विधि (Demonstration)
5. व्याख्यान–प्रदर्शन विधि (Lecture-Cum-Demonstration Method)
6. निरीक्षण–अध्ययन विधि (Supervised Study Method)
7. अन्वेषण विधि (Heuristic Method)
8. प्रयोजन विधि (Project Method)
9. दत्त कार्य विधि (Assignment Method)
10. तर्क या वार्तालाप विधि (Discussion Method)
11. समस्या–समाधान विधि (Problem Solving Method)
12. पुनरावत्ति विधि (Review Method)
13. ट्यूटोरियल विधि (Tutorial Method)
14. ऐतिहासिक विधि (Historical Method)
15. प्रश्नोत्तर विधि (Question-Answer Method)
16. पात्र–अभिनय विधि (Role-Playing Method)
17. आगमन–निगमन विधि (Inductive-Deductive Method)

इन विधियों में से निम्नलिखित तीन विधियों का अध्ययन हम इस यूनिट के अगले भागों में करेंगे–

1. व्याख्यान–प्रदर्शन विधि

2. प्रयोजन विधि

3. समस्या समाधान विधि

**अपनी प्रगति जांचिए**

(i) शिक्षण विधियों के विकास पर निबंध लिखिए।

(ii) पांच मुख्य शिक्षण विधियों की सूची बनाइये।

## 1.4 सारांश

जीव विज्ञान शिक्षण में शिक्षण–विधियों का विशेष महत्व है। शिक्षण विधियों का निर्धारण विषय–वस्तु के स्वरूप, विद्यार्थियों की योग्यता तथा अध्यापक की क्षमताओं के अनुरूप किया जाता है। शिक्षण विधियों के सही उपयेग द्वारा अध्यापक विषय वस्तु के ज्ञान के साथ–साथ विद्यार्थियों को विषय से सम्बन्धित अधिगम–अनुभव भी प्रदान करता है।

शिक्षण–विधियों का उपयोग प्राचीन काल से किया जा रहा है। मनुस्मति में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि वेदों की पढ़ाई में प्रश्नोत्तर तथा व्याख्यान प्रणालियों का प्रयोग होता था। प्राचीन भारत की शिक्षण प्रणालियों एवं आधुनिक काल की हरबर्ट प्रणाली में काफी समानता देखने को मिलती है। हरबर्ट की पंचपदीय शिक्षण–प्रणाली को शिक्षा जगत में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

लॉक के विचारों के कारण शिक्षा में पर्यवेक्षण तथा इन्द्रियों के अनुभव पर विशेष बल दिया जाने लगा। कोमिनियस ने सर्वपथम चित्रों द्वारा शब्द ज्ञान कराने की शैली की खोज़ की। उन्होंने पाठ्यविषयों को ज्ञानेद्रियों की सहयता से पढ़ाने के सामान्य नियमों का विकास किया। पेस्तालाजी ने वस्तु–पाठ की विधि की खोज़ की जिसमें विद्यार्थी के सामने एक वस्तु रखकर उससे संबंधित विचारों का बोध कराया जाता है। फ्रोबेल ने किंडगार्टेन विधि एवं मारिया मांटेसरी ने मांटेसरी विधि के प्रयोग पर बल दिया। रूसो ने खेल शिक्षण विधि (Playway Method) के प्रयोग को विशेष महत्व दिया। जॉन डेवी के दर्शन के आधार पर किलपैट्रिक एवं स्टीवेन्सन ने प्रयोजन विधि का विकास किया।

**आदर्श उत्तर**

(i) कृपया 1.2 में देखें

(ii) व्याख्यान–प्रदर्शन विधि, समस्या समाधान विधि, प्रयोजन विधि, आगमन–निगमन विधि, अनुसंधान विधि।

## 1.5 मुख्य शब्द

**शिक्षण विधिः** अध्यापक द्वारा कक्षा में विषय–वस्तु को विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत करने की विधि जिससे विद्यार्थियों को विषय से संबंधित अधिगम–अनुभव प्रदान किए जा सकें।

## 1.6 संदर्भ ग्रन्थ

**कोहली, विवेक** – 'विज्ञान कैसे पढ़ांए', विवेक पब्लिशर्ज, अम्बाला

**मंगल, एस. के.** – 'भौतिकी एवं जीव विज्ञान शिक्षण', आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, 1995

**soni, Anju** - 'Teaching of life Science' , Tandon Publications, Ludhiana.

# इकाई-4 (a)

# अध्याय–2: व्याख्यान प्रदर्शन विधि

# (Lecture-Demonstration Method)

**उद्देश्य :**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जायंगे किः

- व्याख्यान–प्रदर्शन विधि का स्वरूप बता सकें।
- व्याख्यान–प्रदर्शन विधि के विभिन्न चरणों का वर्णन कर सकें।
- व्याख्यान–प्रदर्शन में होने वाली सामान्य भूलों की सूची बना सकें।
- व्याख्यान–प्रदर्शन विधि के गुणों की व्याख्या कर सकें।
- व्याख्यान–प्रदर्शन की सीमाओं का वर्णन कर सकें।

**संरचना :**

2.1 प्रस्तावना
2.2 व्याख्यान–प्रदर्शन विधि का स्वरूप
2.3 व्याख्यान–प्रदर्शन विधि के चरण
2.4 व्याख्यान–प्रदर्शन में सामान्य भूलें
2.5 व्याख्यान–प्रदर्शन विधि के गुण
2.6 व्याख्यान–प्रदर्शन विधि की सीमायें
2.7 सारांश
आदर्श उत्तर
2.8 मुख्य शब्द
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

## 2.1 प्रस्तावना

इकाई 4 के प्रथम भाग में हमने शिक्षण विधियों के संक्षिप्त इतिहास का अध्ययन किया है। हम जानते हैं कि शिक्षण–विधियों के उचित प्रयोग द्वारा अध्यापक विषय–वस्तु को प्रभावशाली ढ़ंग से विद्यार्थियों तक पहुंचा सकता है शिक्षण–विधि की उपयुक्तता अनेक तथ्यों पर निर्भर करती है जैसे–शिक्षक की अपनी योग्यता, अनुभव, विद्यार्थियों की आयु तथा मानसिक स्तर, प्रकरण का स्वरूप, समय तथा प्रकरण को पढ़ाने के उद्देश्य आदि। इस अध्याय में आओ हम जीव विज्ञान शिक्षण की व्याख्यान–प्रदर्शन विधि का अध्ययन करें।

## 2.2 व्याख्यान-प्रदर्शन विधि का स्वरूप (Form of Lecture-Demonstration Method)

यह विधि दो विधियों–व्याख्यान विधि एवं प्रयोग प्रदर्शन विधि का मिश्रण है। इसमें दोनों विधियों के गुण सम्मिलित हैं। इस विधि में व्याख्यान विधि के दोषों को दूर करके प्रदर्शन विधि के गुणों को ओर भी अधिक प्रभावशाली बना दिया जाता है। इस विधि में शिक्षक कक्षा में विद्यार्थियों के सामने प्रयोग करता है और प्रयोग के दौरान वह विद्यार्थियों से सम्बन्धित प्रश्न भी पूछता है। इस विधि में विद्यार्थी सभी वस्तुओं, उपकरणों, प्रक्रियाओं आदि को सावधानीपूर्वक देखने के लिए विवश हो जाते हैं क्योंकि उन्हें प्रयोग के प्रत्येक चरण की ठीक–ठीक व्याख्या करनी पड़ती है। साथ ही निष्कर्ष भी निकालने होते हैं। इस विधि में विद्यार्थी सक्रिय भाग लेते हैं और उनका सहयोग आवश्यक भी होता है। यह विधि महत्वपूर्ण सूत्र 'स्थूल से सूक्ष्म की ओर' पर आधारित है। इसमें विद्यार्थी स्थूल वस्तुएं देखते हैं इसलिए अधिगम प्रभावशाली होता है। जीव विज्ञान शिक्षण में यह विधि उत्तम हो सकती है यदि प्रदर्शन अच्छी प्रकार से किया जाए। यदि कक्षा में प्रदर्शन असफल होता है तो विद्यार्थियों पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता और यदि असफलता बार–बार हो तो विद्यार्थियों का शिक्षक से विश्वास समाप्त हो जाता है।

### अच्छे प्रदर्शन की कसौटी (Criteria of Good Demonstration)

1. शिक्षक को प्रदर्शन का उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए।
2. प्रदर्शन विस्तत रूप से नियोजित होना चाहिए। प्रदर्शन से सम्बन्धित विभिन्न सावधानियों को याद रखना चाहिए।
3. प्रदर्शन में उपकरण एक निश्चित क्रम में रखने चाहिएं। प्रयोग किये जाने वाले उपकरण बाये–हाथ की ओर एवं प्रयुक्त उपकरण दायीं ओर रखे जाने चाहिएं।
4. प्रदर्शन विद्यार्थियों की आयु एवं मानसिक स्तर के अनुकूल होना चाहिए। प्रदर्शन में विद्यार्थियों के सम्मुख समस्या उत्पन्न की जानी चाहिए और साथ ही उसका समाधान भी प्रस्तुत करना चाहिए जिससे शिक्षक में आत्मविश्वास उत्पन्न हो और कक्षा में प्रदर्शन के दौरान कोई समस्या न उत्पन्न हो।
6. प्रदर्शन सरल एवं गति से होना चाहिए।
7. प्रदर्शन करते समय मौसम का ध्यान रखना चाहिए। बरसात के मौसम में बहुत से प्रयोग करना संभव नहीं होता।
8. प्रदर्शन को रुचिकर एवं प्रभावशाली बनाने के लिए विभिन्न शिक्षण–सामग्री का उपयोग भी किया जाना चाहिए।
9. विद्यार्थी प्रदर्शन में जो कुछ भी सीखते हैं उसे कॉपी में लिखें। इसके लिए शिक्षक को उन्हें पहले से ही निर्देश दे देने चाहिए।
10. प्रदर्शन के समय विद्यार्थियों की रुचि और ध्यान बनाये रखा जाना चाहिए।
11. प्रदर्शन की प्रक्रिया कक्षा में सभी विद्यार्थियों को दिखाई देनी चाहिए। ऐसा न हो कि कुछ विद्यार्थी प्रदर्शन देखनें से वंचित रह जायें।
12. शिक्षक को प्रदर्शन के उद्देश्य स्पष्ट होने के साथ–साथ प्रदर्शन से किए जाने वाले सामान्यीकरण का ज्ञान होना भी आवश्यक है। शिक्षक को प्रदर्शन के उद्देश्यों के अनुरूप ही प्रदर्शन करना चाहिए।

13. प्रदर्शन में विद्यार्थियों और शिक्षक का आपसी सहयोग आवश्यक है। इसके बिना प्रदर्शन सफल नहीं हो सकता। शिक्षक उपकरणों आदि की व्यवस्था करने में विद्यार्थियों की सहायता ले सकता है।
14. प्रदर्शन के मुख्य बिन्दुओं पर बल दिया जाना चाहिए। शिक्षक इन बिन्दुओं को श्यामपट्ट पर लिख दे तो उत्तम होगा।

### अच्छे प्रदर्शन की आवश्यकताएं
### (Requisites for a good Demonstration)

एक अच्छे व्याख्यान–युक्त–प्रदर्शन की सफलता के लिए कुछ मूलभूत आवश्यकताएं होती हैं जो कि निम्नलिखित हैं–

1. एक अच्छा व्याख्यान–प्रदर्शन कक्ष जिसमें प्रकाश की उचित व्यवस्था हो।
2. प्रयोग किये जाने वाले उपकरण उपयुक्त आकार के होने चाहिएं।
3. प्रयोग किये जाने वाले उपकरण स्वच्छ एवं कार्यशील होने चाहिएं।
4. प्रदर्शन में टूटने के भय के कारण कुछ अतिरिक्त उपकरण कक्षा में ले जाने चाहिएं।
5. शिक्षक को उपकरणों के साथ कार्य करने एवं दोषपूर्ण उपकरणों को ठीक करने में कुशल होना चाहिए।
6. प्रदर्शन मेज़ के पीछे एक बड़ा श्यामपट्ट होना आवश्यक है जिस पर सिद्धान्तों का सारांश लिखा जा सके एवं चित्र आदि बनाये जा सकें।
7. विद्यार्थियों की चिन्तन शक्ति को प्रेरित करने वाले प्रश्न पूछे जाने चाहिएं।
8. आंकड़ों को रिकाड्र करने के लिए उपयुक्त समय दिया जाना चाहिए।

## 2.3 व्याख्यान-प्रदर्शन विधि के चरण
## (Steps of Lecture-Demonstration Method)

व्याख्या–प्रदर्शन विधि के निम्नलिखित पांच चरण हैं–

1. योजना एवं तैयारी (Planning and Preparation)
2. पाठ का प्रस्तुतीकरण (Introducing the Lesson)
3. शिक्षण (Teaching)
4. प्रयोगीकरण (Experimentation)
5. चाकपट्ट कार्य (Chalk Board Work)

### 2.3.1 योजना और तैयारी
### (Planning and Preparation)

व्याख्यान–प्रदर्शन विधि का सबसे पहला पद है–प्रदर्शन की योजना बनाना और उसकी तैयारी करना। तैयारी करते समय निम्नलिखित बिन्दुओ पर ध्यान देना चाहिए–

(क) विषय–वस्तु (Subject-Matter)

(ख) पाठ संकेत (Lesson Notes and Questions)

(ग) आवश्यक उपकरणों का संकलन एवं प्रबन्ध

(घ) प्रयोंगों की रिहर्सल

जिस उपविषय को व्याख्यान–प्रदर्शन विधि से पढ़ाया जाना है, शिक्षक को उसका पूर्ण परिचय होने पर भी विद्यार्थियों की पाठ्य–पुस्तक में से सम्बन्धित पष्ठ अवश्य पढ़ने चाहिएं। इससे वह सम्बन्धित विषय–वस्तु पर केन्द्रित रह सकेगा। पाठ योजना बनाना भी उतना ही आवश्यक है और इसके अन्तर्गत वे सिद्धान्त सम्मिलित होने चाहिएं जिनकी व्याख्या करनी है, उन प्रयोगों का उल्लेख होना चाहिए जिन्हें प्रदर्शित करना है तथा उन प्रश्नों का वर्णन होना चाहिए जिन्हें क्रमानुसार विद्यार्थियों से पूछना है। शिक्षक को प्रदर्शन–प्रयोग के लिए आवश्यक उपकरणों को इकट्ठा करके प्रयोग की उन स्थितियों में रिहर्सल करनी चाहिए

जो प्रदर्शन के समय प्राप्त होनी हैं। यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक उपकरण व सामग्री की प्रदर्शन मेज पर उचित रूप से व्यवस्था की जाए जिससे प्रदर्शन के समय कोई कठिनाई न आये।

### 2.3.2 पाठ का प्रस्तुतीकरण (Introducing the Lesson)

विद्यार्थियों के सम्मुख पाठ को निम्नलिखित आधारों पर प्रस्तुत किया जाना चाहिए–

(क) विद्यार्थियों के पूर्व अनुभव

(ख) विद्यार्थियों का जीव–विज्ञान सम्बन्धी पूर्व ज्ञान।

(ग) पाठ को समस्यात्मक ढ़ंग (Problematic way) से प्रस्तुत करना जिससे विद्यार्थी मानसिक रूप से तैयार हों और उनका ध्यान केन्द्रित रहे।

### 2.3.3 शिक्षण (Teaching)

शिक्षण रुचिकरण होना चाहिए। किसी भी उपविषय (Topic) को पढ़ाते समय अध्यापकको व्यापक दष्टिकोण अपनाना चाहिए। जहाँ संभव हो, उपविषय को दूसरे विषयों से संबंधित करने का प्रयत्न करना चाहिए। शिक्षक को दष्टांतों का प्रयोग करना चाहिए। विद्यार्थियों में और अधिक सीखने की इच्छा उत्पन्न की जानी चाहिए। अध्यापक को विद्यार्थियों से सुविचारित एवं उचित प्रश्न पूछने चाहिएं। प्रश्नों का रूप ऐसा हो कि प्रत्येक प्रश्न का उत्तर अपने आप में शिक्षण की एक पूर्ण इकाई हो। शिक्षक को सोच–समझ कर, धीमी गति से बोलना चाहिए। शिक्षक को साधारण भाषा का प्रयोग करना चाहिए एवं निरर्थक व अस्पष्ट कथनों से बचना चाहिएं। शिक्षक की आवाज़ न तो धीमी हो न ही बहुत अधिक तेज़। शिक्षक का उच्चारण शुद्ध होना चाहिए।

### 2.3.4 प्रयोगीकरण (Experimentation)

प्रदर्शन मेज पर किया गया काम विद्यार्थियों के लिए आदर्श होना चाहिए। अस्वच्छ तथा गन्दा प्रदर्शन–मेज विद्यार्थियों पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। प्रदर्शन–प्रयोग से संबंधित बिन्दु निम्नलिखित हैं–

**(a) सरल प्रयोग (simple experiments)** – प्रयोग सरल एवं तेज़ गति से चलने चाहियें। जटिल उपकरणों से लम्बे समय तक चलने वाले प्रयोग से प्रदर्शन का उद्देश्य नष्ट हो जाता है। उदाहरण के लिये –लोहे का जंग लगाने में हवा की मात्रा जैसे लम्बे प्रयोग छोड़ देने चाहिएं।

**(b) प्रयोग का उचित समय (Appropriate time of Experiment)** – प्रयोग उचित समय पर किया जाना चाहिए। सभी प्रयोग पाठ के प्रारम्भ में करना उचित प्रभाव नहीं डालता।

**(c) स्पष्ट परिणाम (Clear Results)** – प्रयोगों के परिणाम स्पष्ट तथा प्रभावशाली होने चाहिएं। अध्यापक को अनुचित साधनों द्वारा कोई प्रयोग सफल करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। प्रयोग विषय से सम्बन्धित होना चाहिए और इसमें विद्यार्थियों को विषय वस्तु स्पष्ट रूप से समझने में सहायता मिलनी चाहिए।

**(d) उपकरणों का क्रम (Sequence of Apparatus)** – उपकरणों को उसी क्रम में प्रदर्शन मेज़ पर रखा जाना चाहिए जिस क्रम में उनका प्रयोग किया जाना है।

### 2.3.5 चॉकपट्ट कार्य (Chalkboard Work)

चाक–बोर्ड का प्रयोग बहुत ही कुशलतापूर्वक होना चाहिए। चाक–बोर्ड पर लिख गया सारांश (Summary) संक्षिप्त एवं सुगम होना चाहिए। शीर्षक एवं मुख्य बिन्दु बड़े–बड़े शब्दों में लिखे जाने चाहिएं। ब्लैक बोर्ड पर शब्द शुद्ध रूप में लिखे जायें तथा जहा आवश्यक हो, वहाँ रंगीन–चॉक का प्रयोग करना चाहिए। शब्दों के ऊपर शब्द नहीं लिखे जाने चाहियें और न ही ब्लैक बोर्ड पर अस्पष्ट एवं तिरछे शब्द लिखने चाहिएं। आवश्यकतानुसार रेखांचित्र तथा आकृतियाँ भी बनाई जानी चाहियें। ब्लैक

बोर्ड पर सदा सीधी पंक्तियों में बायीं से दायीं ओर लिखना चाहिए। एक पंक्ति के समाप्त होने से दूसरी पंक्ति आरम्भ नहीं करनी चाहिए।

विद्याथ्री प्रायः अध्यापक की नकल करते हैं अध्यापक चॉक बोर्ड पर जितना सुन्दर अथवा असुन्दर लिखेगा, विद्यार्थी भी उसी प्रकार के लेखन का अनुसरण करेंगे। चॉकपट्ट के संक्षिप्त विवरण विद्यार्थियों के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं क्योंकि इनमें प्रयुक्त भाषा विद्यार्थियों की अपनी होती है। इससे विद्यार्थियों को नोट्स बनाने में सहायता मिलती है। अध्यापक को रेखाचित्रों का उचित रूप से नामांकन करना चाहिए।

## 2.4 व्याख्यान -प्रदर्शन पाठ में सामान्य भूलें (Common Errors in lecture-demonstration lesson)

व्याख्यान युक्त प्रदर्शन पाठों में की जाने वाली कुछ सामान्य भूलें निम्नलिखित हैं—

1. प्रयोग के लिए आवश्यक उपकरण तैयार न रखना।
2. अध्यापक का इस बिन्दु को स्पष्ट करने में असफल होना कि प्रयोग पाठ में ली गई समस्या को कैसे स्पष्ट करता है।
3. अध्यापक का प्रयोग के आवश्यक तथ्यों की ओर विद्यार्थियों को आकर्षित न कर सकना।
4. चाक–बोर्ड का उचित प्रयोग न करना।
5. मुख्य बातों की अपेक्षा छोटी–छोटी बातों को अधिक महत्व देना।
6. अध्यापक द्वारा कठिन भाषा का प्रयोग
7. उचित प्रश्न न पूछना एवं प्रश्नों को उचित ढ़ंग से न पूछना।
8. विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता न लेना।
9. अध्यापक का आवश्यकता से अधिक या कम बोलना।
10. निगमन विधि का उचित ढ़ंग से प्रयोग न करना।
11. प्रदर्शन की रिहर्सन न करना।
12. विद्यार्थियों को संकलित सामग्री का रिकार्ड रखने के लिए पर्याप्त समय न देना।

## 2.5 व्याख्यान प्रदर्शन विधि के गुण (Merits of Lecture Demonstration Method)

1. यह विधि भारतीय विद्यालयों एवं परिस्थितियों के अनुरूप सबसे अधिक व्यावहारिक एवं उपयोगी है। विज्ञान को केवल बोलकर या लिख कर नहीं पढ़ाया जा सकता। (Science can be taught by chalk and talk only) विद्यार्थी विज्ञान को प्रयोग के द्वारा सीखें परन्तु भारतीय विद्यालयों में प्रत्येक विद्यार्थी को व्यक्तिगत रूप से प्रयोग करने की सुविधा देना संभव नहीं है इसलिए यह विधि अधिक उपयुक्त है।
2. इस विधि में विद्यार्थी केवल निष्क्रिय श्रोता या मूक दर्शक बनकर नहीं बैठे रहते तथा अध्यापक भी केवल शब्दों की बौछार नहीं करता। अध्यापक पाठ्य–विषय को पढ़ाने के साथ–साथ उससे सम्बन्धित सभी आवश्यक प्रयोग स्वयं करके दिखाता है। विद्यार्थी अपने स्थान पर बैठे हुए ही विभिन्न प्रकार के उपकरणों, प्रयोगों और क्रियाओं को देखते रहते हैं। अध्यापक आवश्यकतानुसार उनसे प्रदर्शन में सहायता लेता रहता है और प्रश्न भी पूछता रहता है। इससे कक्षा का वातावरण पूर्ण रूप से सज़ंग व सक्रिय रहता है।
3. इस विधि में विद्यार्थियों को प्रयोग तथा प्रदर्शन को ध्यानपूर्वक देखते रहना पड़ता है। इससे उनकी निरीक्षण, तर्कशक्ति तथा विचारशक्ति आदि मानसिक शक्तियों को विकसित करने का पर्याप्त अवसर मिल जाता है।
4. इस विधि द्वारा विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दष्टिकोण का विकास करने एवं वैज्ञानिक ढ़ंग से सोचने की क्षमता का विकास करने में सहायता मिलती है।

5. यह विधि मनोवैज्ञानिक है क्योंकि इसमें विद्यार्थियों को किसी चीज़ की कल्पना नहीं करनी पड़ती, अपितु उन्हें ठोस चीजें तथा जीवित नमूने दिखाये जाते हैं। इससे उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव (Direct Experiences) प्राप्त होते हैं और विज्ञान में उनकी रुचि जाग्रत होती है।
6. यह विधि कम खर्चीली (Economical) है। यह समय तथा संसाधनों की बचत करने में सहायता करती है। ऐसे प्रयोगों में, जिनके लिये मंहगे उपकरणों अथवा रसायनों की आवश्यकता होती है, यह विधि विशेष रूप से सहायक है। इस विधि से कक्षा समय में ही प्रयोग किये जा सकते हैं जिससे समय की बचत होती है।
7. यह विधि मध्यवर्गीय, मन्दबुद्धि तथा बुद्धिमान–सभी प्रकार के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होती है।
8. इस विधि द्वारा विद्यार्थियों को स्पष्ट एवं स्थायी ज्ञान प्राप्त होता है। इससे विद्यार्थी विज्ञान के कठिन प्रसंग आसानी से समझ सकते हैं। विद्यार्थी जो कुछ सुनते हैं, उसे प्रत्यक्ष रूप में देखते भी हैं तथा अपनी मानसिक शक्तियों का पूरी तरह से उपयोग करते हुए सक्रिय होकर ज्ञान प्राप्ति में भाग लेते हैं। इससे एक ओर तो ज्ञान को ग्रहण करने में आसानी होती है और दूसरी ओर प्राप्त किया ज्ञान स्थायी एवं उपयोगी भी होता है।

## 2.6 व्याख्यान प्रदर्शन विधि की सीमाएँ (Limitations of Lecture-Demonstration Method)

1. इस विधि में विद्यार्थी स्वयं प्रयोगात्मक कार्य करने से वंचित रह जाता है। इसलिए उनमें प्रयोग करने तथा स्वयं ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता का विकास नहीं हो पाता।
2. यह विधि मनोविज्ञान के सिद्धांतों की अवहेलना करती हे। 'करके सीखो' (Learning by doing) शिक्षण का प्रमुख सिद्धान्त है परन्तु इस विधि में विद्यार्थियों को स्वयं प्रयोग करेन का अवसर नहीं मिलता। इस विधि में कक्षा का वातावरण सक्रिय रहता है परन्तु यह सक्रियता अध्यापक की ओर से होती है।
3. इस विधि द्वारा प्रयोग–प्रदर्शन के पश्चात विद्यार्थियों के मन में जिज्ञासा पूर्ववत बनी रहती है। उन्हें स्वयं प्रयोग करके सीखने का अवसर न मिलने से उनकी अन्वेषणात्मक व रचनात्मक प्रवत्तयों का उचित रूप से विकास नहीं होता।
4. इस विधि द्वारा प्रयोगशाला सम्बन्धी कौशलों का उचित विकास नहीं होता।
5. इस विधि में यह आवश्यक नहीं है कि विद्यार्थी व्याख्यान को उचित रूप से सुन रहे हों और प्रदर्शन को समझ रहे हों।
6. इस विधि के सफल होने के लिए अध्यापक के पास तैयारी के लिए पर्याप्त समय एवं प्रदर्शन के लिए पर्याप्त सामग्री का उपलब्ध होना आवश्यक है। परन्तु भारतीय विद्यालयों में अध्यापकों पर शिक्षण के अतिरिक्त बहुत से कार्यों का बोझ होता है जिससे उनमें न तो प्रदर्शन के लिए उत्साह होता है और न ही समय।
7. इस विधि का प्रयोग करने के लिए सक्रिय एवं अनुभवी अध्यापकों की आवश्यकता हेाती है। परन्तु दुर्भागयवश केवल वही लोग अध्यापक कार्य को अपनाते हैं जो जीवन में किसी क्षेत्र में सफलता नहीं प्राप्त कर सकते। ऐसे निरुत्साही अध्यापकों के कारण पूर्ण शिक्षण प्रक्रिया प्रभावित होती है।

**अपनी प्रगति जांचिए**

(i) व्याख्यान–प्रदर्शन को प्रभावशाली बनाने के लिए अध्यापक को किन बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए।

(ii) व्याख्यान प्रदर्शन विधि के गुण लिखिए।

## 2.7 सारांश

व्याख्यान–प्रदर्शन विधि में व्याख्यान विधि के दोषों को दूर करके एवं प्रदर्शन से उसका समन्वय करके प्रदर्शन विधि के गुणों को और भी अधिक प्रभावशाली बनाया जाता है यह विधि 'स्थूल में सूक्ष्म' के शिक्षण सूत्र पर आधारित है। व्याख्यान–प्रदर्शन विधि की सफलता अच्छे प्रदर्शन पर आधारित होती है इसलिए अध्यापक को प्रदर्शन से सम्बन्धित तैयारी करके ही उसका कक्षा

में आयोजन करना चाहिए। व्याख्यान–प्रदर्शन विधि के मुख्य पांच चरण हैं–योजना एवं तैयारी, पाठ का प्रस्तुतीकरण, शिक्षण, प्रयोगीकरण तथा चाकपट्ट कार्य।

व्याख्यान प्रदर्शन विधि की कुछ सीमाएं है जैसे–इस विधि द्वारा विद्यार्थी स्वयं प्रयोग नहीं करते है अतः उनमें प्रयोगात्मक कौशलों का विकास नहीं हो पाता और उनकी अन्वेषणात्मक एवं रचनात्मक प्रवत्तियों का भी उचित विकास नहीं होता। इस विधि के लिए अनुभवी एवं कुशल अध्यापक का होना भी आवश्यक है जिनका दुर्भागयवश हमारे विद्यालयों में अभाव है। इन सभी सीमाओं के बावजूद यह विधि भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप अपेक्षाकृत अधिक व्यावहारिक एवं उपयोगी है क्योंकि इसमें विद्यार्थी सक्रिय रूप से भाग लेते हैं और उनकी निरीक्षण शक्ति, तर्क शक्ति, विचार शक्ति आदि मानसिक शक्तियों के विकास का अवसर मिलता है। यह विधि प्रत्यक्ष अनुभव, स्पष्ट व स्थाई ज्ञान प्रदान करने में एवं कक्षा में विभिन्न प्रकार के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक है।

**आदर्श उत्तर**

(i) कृपया 2.3 में देखें

(ii) कृपया 2.5 में देखें

## 2.8 मुख्य शब्द

**व्याख्यान-प्रदर्शनः** ऐसी विधि जिसमें व्याख्यान एवं प्रदर्शन दोनों विधियों के गुणों का समन्वय किया जाता है जिससे अधिगम प्रभावशाली ढ़ंग से हो सके।

## 2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

Bhandula, N. & Chadha, P.C. -'Teaching of Science', Tandon Publication, Ludhiana.

Soni, Anju - 'Teaching of Life Science', Tandon Publications, Ludhiana.

मंगल, एस.के. – 'भौतिक एवं जीव विज्ञान शिक्षण', आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, 1995.

भूषण, शैलेन्द्र – 'जीव विज्ञान शिक्षण', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1989.

कुलश्रेष्ठ, एस. पी.– 'जीव–विज्ञान शिक्षण, लायल बुक डिपो, मेरठ, 1993.

# इकाई-4 (a)

# अध्याय–3: प्रयोजन विधि

# (Project Method)

**उद्देश्य :**

इस अध्याय के अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि –

- प्रयोजन विधि के संप्रत्यय का वर्णन कर सकें।
- प्रयोजन विधि के आधारभूत सिद्धान्तों की व्याख्या कर सकें।
- प्रयोजन विधि के विभिन्न चरणों का वर्णन कर सकें।
- प्रयोजन विधि के गुण एवं सीमाएं बता सकें।
- जीव विज्ञान से सम्बन्धित कुछ प्रोजेक्ट कार्यों की सूची बना सकें।
- प्रयोजन विधि में अध्यापक की भूमिका बता सकें।

**संरचना :**

3.1 प्रस्तावना
3.2 प्रयोजन विधि का प्रत्यय
3.3 प्रयोजन विधि के आधारभूत सिद्धान्त
3.4 प्रयोजन विधि के चरण
3.5 प्रयोजन विधि के गुण
3.6 प्रयोजन विधि की सीमाएं
3.7 जीव–विज्ञान में कुछ प्रोजेक्ट कार्य
3.8 प्रयोजन विधि में अध्यापक की भूमिका
3.9 सारांश
आदर्श उत्तर
3.10 मुख्य शब्द
3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

## 3.1 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में हमने शिक्षण विधियों एवं व्याख्यान–प्रदर्शन विधि का अध्ययन किया। जीव–विज्ञान शिक्षण की दूसरी महत्वपूर्ण विधि प्रयोजन विधि है। प्रयोजन विधि का उद्‌भव अमेरिका में हुआ और जैसा कि नाम से स्पष्ट होता है, यह 'प्रयोजनवाद' दार्शनिक विचारधारा पर आधारित है। प्रस्तुत अध्याय में हम प्रयोजन विधि का अध्ययन करेंगे।

## 3.2 प्रयोजन विधि का प्रत्यय (Concept of Project Method)

प्रोजेक्ट विधि प्रसिद्ध अमेरिकन शिक्षा–शास्त्री जॉन डेवी (John Dewey) के प्रयोजनवाद पर आधारित है। इस विधि के प्रवर्त्तक जॉन डेवी के शिष्य, कोलंबिया यूनिवर्सिटी के डॉ. डब्ल्यू. एच. स्टीवेन्सन (Dr. William Heard Kilpatrick) थे। प्रो. जे.ए. स्टीवेन्सन (Prof. J.A. Stevenson) ने इसे पूर्णता प्रदान की।

डेवी के अनुसार जो कार्य भोजन ग्रहण तथा सन्तानोत्पादन की क्रिया शारीरिक जीवन के लिए शिक्षा करती है। शिक्षा की प्रक्रिया सामाजिक है अर्थात् व्यक्ति को सामाजिक वातावरण में रखकर ही शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया जा सकता है। इसीलिए डेवी ने विद्यालय को समुदाय का एक अभिन्न अंग माना है। परन्तु विद्यालय में जिन बहुत से विषयों की शिक्षा दी जाती है तथा जिस प्रकार का योजनारहित वातावरण होता है वह बाह्य संसार में वांछित सामाजिक जीवन से मेल नहीं खाता। प्रयोजन विधि इस पुस्तकीय तथा अकर्मण्य पद्धति के विरुद्ध एक खुला विद्रोह है क्योंकि इस विधि द्वारा विद्यार्थियों को सावधानीपूर्वक प्रशिक्षित किया जाता है। उन्हें वास्तविक जीवन से सम्बन्धित बातों का उचित रूप से ज्ञान करवाया जाता है जिससे वे श्रेष्ठ सामाजिक जीवन यापन कर सकें तथा सामाजिक विकास मेंयोगदान दे सकें।

प्रोजेक्ट विधि के स्वरूप को समझने से पूर्व प्रोजेक्ट का अर्थ समझना आवश्यक है। प्रोजेक्ट के अर्थ को समझाने के लिए विभिन्न शिक्षा–शास्त्रियों ने इसकी अपने–अपने ढ़ंग से व्याख्या की है। कुछ मुख्य परिभाषाएं इस प्रकार हैं–

1. डॉ. विलियम किलपैट्रिक के अनुसार, ''प्रोजेक्ट अथवा प्रयोजन एवक तन्मयतापूर्ण तथा उद्देश्यपूर्ण क्रिया है जिसका सामाजिक वातावरण में विकास होता है।''

   "A project is a whole-hearted purposeful activity proceeding in a social environment."

   Dr. William Kilpatrick

2. प्रो. जे. ए. स्टीवेन्सन के अनुसार, ''प्रोजेक्ट एक समस्यामूलक कार्य है जो अपनी स्वाभाविक परिस्थितियों में पूर्णता को प्राप्त करता है।''

   "A project is a problematic act carried to completion in its natural setting."

   Prof. J.A. Stevenson

3. बेलार्ड के अनुसार, '' प्रोजेक्ट वास्तविक जीवन का वह छोटा सा भाग है जिसे विद्यालय में लाया गया है।''

   "A project is a bit of real life that has been imported in School."

   Ballard.

4. स्नेडेन के अनुसार, ''प्रोजेक्ट शिक्षात्मक कार्य की वह कड़ी है जिसका महत्वपूर्ण तत्व है निश्चित तथा ठोस निष्पत्ति।''

   "A project is that part of educational act whose important element is specific and solid performance."

   Snedden

इन परिभाषाओं के विश्लेषण आधार पर प्रोजेक्ट की निम्नलिखित विशेषताएं कही जा सकती हैं–

1. **समस्यामूलक क्रियाशीलता (Problematic Activity):** प्रोजेक्ट का आधार एक समस्या होती है जिसके परिणामस्वरूप क्रियाशीलता उत्पन्न होती है। किसी समस्या का समाधान ढूंढ़ने के लिए प्रोजेक्ट की रचना की जाती है और उसी समस्या

के स्वरूप के आधार पर प्रोजेक्ट में की जाने वाली क्रियाओं का आयोजन किया जाता है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि समस्या ही प्रोजेक्ट है जिसका परिणाम होता है क्रियाशीलता। परन्तु यह बात ध्यान देनी चाहिए कि केवल यांत्रिक तत्वों से ही कोई कार्य प्रोजेक्ट नहीं हो सकता अपितु किसी स्वाभाविक समस्या को कार्यशील रहकर सुलझाने से ही कोई प्रोजेक्ट बनता है।

2. **उद्देश्य क्रियाशीलता (Purposeful Activity):** प्रत्येक प्रोजेक्ट का कुछ निश्चित उद्देश्य होता है और इन पूर्वनिश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न क्रियाओं का आयोजन किया जाता है।
3. **तन्मयतापूर्ण क्रियाशीलता (Whole-Hearted Activity):** प्रोजेक्ट को पूरे मनोयोग से अर्थात् पूरी लगन के साथ किया जाता है जिससे इच्छित परिणामों की प्राप्ति हो सके।
4. **प्राकृतिक वातावरण में क्रियाशीलता (Activity in a Natural setting):** प्रोजेक्ट वास्तविक जीवन से जुड़ी समस्याओं पर आधारित होता है इसीलिए प्रोजेक्ट को कृत्रिम परिस्थितियों में आयोजित करने से कोई लाभ नहीं हो सकता। जहाँ तक संभव हो, प्रोजेक्ट से सम्बन्धित सभी क्रियाओं को प्राकृतिक वातावरण में ही करना चाहिए।
5. **सामाजिक वातावरण में क्रियाशीलता (Activity in a social environment):** प्रोजेक्ट में व्यक्ति को वास्तविक जीवन सम्बन्धी ज्ञान प्रदान किया जाता है जिससे वह सामाजिक कुशलता प्राप्त कर सके और श्रेष्ठ सामाजिक जीवनयापन कर सके। इसीलिए प्रोजेक्ट को सामाजिक वातावरण में किया जाता है।
6. **स्कूल में वास्तविक जीवन की प्रस्तावना (A bit of real-life introduced in school)**
7. **व्यावहारिक समस्याओं का समाधान (Solving Practical Problems)**
8. **ठोस तथा निश्चित उपलब्धि (Positive and concrete Achievement)**
9. **एक ऐसी क्रियाशीलता जिसके द्वारा अनेकानेक समस्याओं के हल निकाले जाते हैं। (An activity through which solution of various problems are found out.):** प्रोजेक्ट विद्यार्थियों के वास्तविक जीवन से सम्बन्धित किसी समस्या का समाधान खोजने के लिये अच्छी प्रकार से चुना हुआ तथा पूर्ण लगन से किया जाने वाला वह कार्य है जिसे स्वाभाविक परिस्थितियों में समाजिक वातावरण में पूरा किया जाता है।

### प्रोजेक्ट विधि का स्वरूप

इस विधि का केन्द्र प्रोजेक्ट होता है। विद्यार्थी किसी समस्या के समाधान के लिये किसी प्रोजेक्ट का चयन करते हैं तथा योजनाबद्ध रूप से उसे पूरा करने का प्रयत्न करते हैं। प्रोजेक्ट पर कार्य करते समय उन्हें जिस प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता होती है, वह उसी समय ग्रहण कर लिया जाता है चाहे वह किसी भी विषय से सम्बन्धित क्यों न हो। इस प्रकार इस विधि में प्रासंगिक (Incidental) ढ़ंग से पढ़ाई की जाती है। विज्ञान सम्बन्धी जिन तथ्यों, सिद्धांतों, नियमों एवं व्यावहारिक ज्ञान आदि की भी जहाँ आवश्यकता होती है, वह ज्ञान उसी समय विद्यार्थियों को प्रदान कर दिया जाता है।

## 3.3 प्रयोजन विधि के आधारभूत सिद्धान्त (Fundamental Principles of Project Method)

प्रोजेक्ट विधि व्याहारिकतावाद दर्शन पर आधारित है। व्यावहारिकतावादी उपयोगिता को सबसे अधिक महत्व देते हैं इसलिए इस विधि में उपयोगी प्रोजेक्टों को ही चुना जाता हे। जॉन डेवी की भाँति किलपैट्रिक का भी यह विश्वास था कि मनुष्य में कुछ जन्मजात शक्तियाँ होती है जिनका वांछित विकास उचित सामाजिक परिस्थितियों में ही किया जा सकता है। किलपैट्रिक के अनुसार यह विधि शिक्षण के निम्नलिखित मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है–

1. **प्रयोजन अथवा निश्चित उद्देश्य का सिद्धान्त (Principle of purpose or specific objective)** विद्यार्थी प्रयोजनयुक्त क्रियाओं में अधिक रुचि लेते हैं। इसलिए ऐसे प्रोजेक्ट का चयन किया जाना चाहिए जिसको पूरा करने से विद्यार्थियों का कोई प्रयोजन सिद्ध होता हो अथवा किसी उद्देश्य की प्राप्ति हो सके। उद्देश्यपूर्ण क्रियाओं की ओर विद्यार्थी स्वाभाविक रूप से आकृष्ट होते हैं और उन्हें रुचि एवं लगन के साथ करते हैं।

2. **क्रियाशीलता का सिद्धान्त (Principle of activity):** मनोविज्ञान के अनुसार 'स्वयं करके सीखना' सबसे अधिक प्रभावशाली और स्थायी सीखना होता है। प्रोजेक्ट विधि 'स्वयं करके सीखने' के सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें विद्यार्थी किसी भी प्रोजेक्ट को चुनने, पूरा करने के लिए स्वयं विचार करते हैं और स्वयं क्रिया करते हैं। अध्यापक इस कार्य में केवल विद्यार्थियों की सहायता करता है।

3. **वास्तविकता का सिद्धान्त (Principle of Reality):** प्रयोजन विधि में किसी भी ऐसे कार्य का चयन नहीं किया जाता जो वास्तविकता से सम्बन्धित न हो। इसमें विद्यार्थियों के जीवन से सम्बन्धित' वास्तविक प्रोजेक्ट ही चुने जाते हैं और उन्हें इस प्रकार पूरा किया जाता है जैसे विद्यार्थी अपने वास्तविक जीवन की क्रियाएं करते हैं।

4. **सह-सम्बन्ध का सिद्धान्त (Principle of correlation):** ज्ञान अपने आप में पूर्ण इकाई है। हमने अपनी सुविधा के लिए एवं विशिष्ट ज्ञान प्रदान करने के लिए इसे विभिन्न विषयों में बाँटा है। प्रोजेक्ट विधि में सभी विषयों के ज्ञान एवं क्रियाओं के प्रशिक्षण को एक इकाई के रूप में प्रदान किया जाता है। एक प्रोजेक्ट को पूरा करने के लिए अनेक विषयों के ज्ञान को एक–दूसरे से सम्बन्धित करके दिया जाता है।

5. **स्वतन्त्रता का सिद्धान्त (Principle of Freedom):** विद्यार्थी स्वतन्त्र रहना चाहते हैं। उनकी स्वतंत्रता में किसी भी प्रकार की बाधा उनके व्यक्तित्व के विकास में अवरोध पैदा करती है। इसलिए आधुनिक शिक्षा में विद्यार्थियों को अपना विकास अपने तरीके से करने की स्वतंत्रता देने के पक्ष में हैं। प्रोजेक्ट विधि में विद्यार्थी अपनी रुचि, योग्यता, आवश्यकता एवं अभिवत्ति के अनुसार प्रोजेक्ट का चयन कर सकते हैं। इससे प्राप्त अधिगम स्थाई रहता है और विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का विकास भी उचित ढ़ंग से होता है।

6. **सामाजिक विकास का सिद्धान्त (Principle of Social Development):** किलपैट्रिक के अनुसार विद्यार्थियों का विकास उचित सामाजिक पर्यावरण में ही सम्भव होता है और सामाजिक पर्यावरण को उचित बनाने के लिए समाज के प्रत्येक व्यक्ति में सामाजिक गुणों का विकास करना आवश्यक होता है। कोई भी राष्ट्र तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक उसके नागरिकों में सामाजिक भावना का विकास न हो। प्रोजेक्ट विधि में विद्यार्थी एक–दूसरे के सहयोग से प्रोजेक्ट को पूरा करते हैं और सामाजिक भावना के आधार प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, स्वस्थ प्रतिस्पर्धा आदि का व्यावहारिक पाठ पढ़ते हैं।

7. **उपयोगिता का सिद्धान्त (Principle of Utility):** ज्ञान तभी वास्तविक जीवन में उपयोग किया जा सकता है जब वह क्रियात्मक तथा उपयोगी हो। शिक्षण के परम्परागत सिद्धान्त में मौखिक शिक्षा एवं पुस्तकीय ज्ञान को ही महत्व दिया जाता था जो किसी भी रूप में उपयोगी नहीं था। प्रोजेक्ट विधि द्वारा विभिन्न रुचियों तथा मूल्यों का निर्माण होता है जों व्यावहारिक तथा रचनात्मक दष्टि से अत्याधिक लाभदायक सिद्ध होती है। इस प्रकार प्रोजेक्ट विधि द्वारा अर्जित ज्ञान वास्तविक जीवन में उपयोगी होता है।

8. **अनुभव का सिद्धान्त (Principle of Experience)** कहा जाता है कि अनुभव एक श्रेष्ठ अध्यापक है। जो कुछ वास्तविकता है वह अनुभव से सिद्ध होना चाहिए। प्रोजेक्ट विधि में विद्यार्थी स्वयं अनुभव करके ज्ञान अर्जित करता हैं यही कारण है कि प्रोजेक्ट विधि द्वारा प्राप्त किये गए ज्ञान को रटना नहीं पड़ता और यह अपेक्षाकृत अधिक स्थायी रहता है।

## 3.4 प्रयोजन विधि के चरण (Steps of Project Method)

किसी प्रोजेक्ट के आयोजन के मुख्यतः छः चरण होते हैं। ये चरण निम्नलिखित हैं–

1. स्थिति प्रदान करना (Providing a Situation)
2. चुनाव तथा उद्देश्य (Choosing and Purposing)
3. नियोजन (Planning)

4. योजना का क्रियान्वन (Evaluation)

5. अभिलेखन (Recording)

1. **स्थिति प्रदान करना:** विद्यार्थियों पर किसी भी प्रोजेक्ट को जबरदस्ती थोपना अहितकर हो सकता है। प्रोजेक्ट का आरम्भ करने के लिये यह आवश्यक है कि विद्यार्थी प्रोजेक्ट पर काम करने के लिए अभिप्रेरित हों और स्वयं प्रोजेक्ट का चयन करें। अध्यापक के लिये यह आवश्यक है कि वह उचित स्थिति का आयोजन करे। अध्यापक विद्यार्थियों की रुचियों, योग्यताओं, अभिरुचियों, अभिवत्तियों आदि का अध्ययन करके इस प्रकार की स्थिति का आयोजन करेगा जिसमें विद्यार्थी अपनी आवश्यकताओं के अनुसार स्वयं कार्य करने के लिए प्रेरित होंगे। उचित स्थिति विभिन्न साधनों के प्रयोग द्वारा प्रदान की जा सकती है जैसे सामान्य रुचि से सम्बन्धित वस्तुओं द्वारा Prof. Stevenson ने बिजली की घण्टी का प्रयोग विद्यार्थियों को प्रोजेक्ट विधि द्वारा ही सिखाया था। स्कूल में घण्टी को पूर्णतया Overhaul करने की आवश्यकता पड़ी और उसने इसी अवसर को एक स्थिति के रूप में उपस्थित कर दिया।

2. **चुनाव तथा उद्देश्य (Choosing and Purposing):** किसी भी कार्य को करने से पूर्व उसका उद्देश्य निश्चित करना बहुत आवश्यक है। उद्देश्य ही वह केन्द्र–बिन्दु है जिस पर प्रोजेक्ट आधारित होता है। जिस प्रोजेक्ट का चुनाव किया जाये, वह किसी न किसी उद्देश्य अथवा आवश्यकता की पूर्ति करने में सक्षम होना चाहिए। जहाँ तक संभव हो, ऐसे उद्देश्य –आधारित प्रोजेक्ट का चयन करना चाहिये जिसे सभी विद्यार्थी स्वीकार करें। डा. किलपैट्रिक के अनुसार, ''स्कूल के कार्यों में अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के कार्यों के वही निश्चित करता है जो उद्देश्य को निश्चित करता है"। क्रियात्मक रूप से यही मूल कार्य है। विद्यार्थियों को प्रोजेक्ट स्वयं चुनना चाहिए। अध्यापक को जल्दी–जल्दी अधीर हो कर स्वयं प्रोजेक्ट का चुनाव नहीं कर देना चाहिए। श्रेष्ठ परिणाम तथा पूर्ण सन्तुष्टि तभी होती है यदि विद्यार्थी प्रोजेक्ट स्वयं सुनें।''

   प्रोजेक्ट का निश्चय प्रजातन्त्रात्मक ढ़ंग से होना चाहिए। अध्यापक को केवल विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करना चाहिए न कि अपनी राय विद्यार्थियों पर थोपनी चाहिए। अध्यापक विद्यार्थियों को प्रेरणा तो दे सकता है परन्तु अन्तिम चुनाव विद्यार्थियों द्वारा ही होना चाहिये। अध्यापक को यह ध्यान रखना चाहिए कि विद्यार्थियों को प्रोजेक्ट का उद्देश्य उचित रूप से समझ आ जाये। यदि विद्यार्थियों का चुनाव बुद्धिमतापूर्ण न हो तो अध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि वह चतुरता से किसी अन्य स्थिति द्वारा विद्यार्थियों का किसी अन्य उत्तम प्रोजेक्ट की ओर मार्गदर्शन करे।

3. **नियोजन (Planning):** प्रोजेक्ट के चुनाव एवं उद्देश्य निर्धारण के पश्चात प्रोजेक्ट का नियोजन किया जाता है। अच्छी योजना अच्छे परिणाम के ओर ले जाती है। एक अच्छी योजना बनाना अत्यन्त कठिन कार्य है। अध्यापक को विद्यार्थियों से विचार–विमर्श करके, उनके कार्य क्षमताएं, उपलब्ध संसाधनों, प्रोजेक्ट से सम्बन्धित कार्यक्रम इस प्रकार बनाना चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी उसमें हाथ बंटा सके। सबसे पहले मौखिक विचार–विमर्श किया जाना चाहिए, उसके पश्चात् विद्यार्थियों को पूरी योजना अपनी कॉपी में लिखने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

   यह आवश्यक है कि अध्यापक पहले से ही योजना के सम्बन्ध में कुछ धारणायें निश्चित कर ले ताकि वह योजना बनाने में विद्यार्थियों की श्रेष्ठ ढ़ंग से सहायता कर सके।

4. **योजना का क्रियान्वन (Executing the Plan):** यह प्रोजेक्ट का चौथा एवंअत्यन्त महत्वपूर्ण चरण होता है। योजना के क्रियान्वन से अभिप्राय है–योजना को कार्यरूप में परिणित करना। यह चरण सबसे अधिक लम्बा होता है और इसमें पर्याप्त परिश्रम करना पड़ता है। इस चरण में सभी विद्यार्थी सहयोगात्मक रूप से प्रोजेक्ट को पूरा करने में प्रयत्नशील रहते हैं। अध्यापक कक्षा के विभिन्न विद्यार्थियों को उनकी रुचियों, अभिरुचियों, योग्यताओं, क्षमताओं आदि के अनुसार कार्य निर्धारित करता है प्रोजेक्ट में प्रत्येक विद्यार्थी को उसकी क्षमता के अनुसार कुछ–न–कुछ काम दिया जाना चाहिए। एक विद्यार्थी किसी क्षेत्र में कमजोर हो सकता है परन्तु किसी दूसरे क्षेत्र में वह अपनी क्षमता का उचित प्रदर्शन कर सकता है। उदाहरण–एक विद्यार्थी गणना करने में कठिनाई अनुभव कर सकता है परन्तु वह चित्र बनाने, मानचित्र का अध्ययन करने जैसे काम कुशलतापूर्वक कर सकता है। अध्यापक का कार्य केवल इतना है कि वह विद्यार्थियों को उचित रूप से उत्साहित करें, उनका मार्गदर्शन करे, उनकी क्षमता के अनुरूप उन्हें कार्य निर्धारित करे और प्रोजेक्ट कार्यों को पूरा करने के अवसर प्रदान करे।

5. **मूल्यांकन (Evaluation):** यह प्रोजेक्ट विधि का पांचवां एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण चरण है। प्रोजेक्ट पर कार्य करते हुए यदि कोई त्रुटि रह गई है तो उसे पहचान कर उससे शिक्षा ग्रहण की जाती है। विद्यार्थी अपने कार्य की स्वयं आलोचना करना सीखते हैं। आत्मालोचन प्रशिक्षण का एक बहुमूल्य रूप है। विद्यार्थी अपनी उपलब्धियों एवं सफलताओं का भी आंकलन करते हैं।

6. **अभिलेखन (Recording):** यह प्रोजेक्ट विधि का छटा एवं अन्तिम चरण होता है। प्रोजेक्ट से सम्बन्धित सभी क्रियाओं जैसे–सुझाव, योजना सम्बन्धी विचार–विमर्श, कार्य–निर्धारण, पुस्तकें, रेखा–चित्र, सर्वेक्षित स्थानों, भवनों आदि का पूरा रिकार्ड रखा जाना चाहिए। विद्यार्थियों को सभी क्रियाओं को अपनी कॉपी में लिखना चाहिए। विभिन्न चरणों में आई सूक्ष्मताओं का पूरा लेखा–जोखा रखना चाहिए। प्रोजेक्ट की कॉपी या 'प्रोजेक्ट रिपोर्ट' ऐसी हो जो प्रोजेक्ट का विस्तत चित्र प्रस्तुत कर सके। यह स्थिति का निर्माण, प्रोजेक्ट का चुनाव, उत्तरदायित्वों का निर्धारण, प्रोजेक्ट में आई कठिनाइयों तथा प्राप्त किये गए अनुभवों आदि का स्पष्ट वर्णन करने योग्य होनी चाहिए।

## 3.5 प्रयोजन विधि के गुण (Merits of Project Method)

1. यह विधि मनोविज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें शिक्षण के मुख्य सिद्धान्त, रुचि का सिद्धान्त, करके सीखने का सिद्धान्त और जीवन से सम्बन्ध स्थापित करने का सिद्धान्त, सभी का पालन किया जाता है। विद्यार्थी स्वयं प्रोजेक्ट का चयन करते हैं, उसको पूरा करने में कोई उद्देश्य निहित होता है और यह विद्यार्थियों की रुचि बनी रहती है प्रोजेक्ट को पूरा करने के लिए सभी विद्यार्थी शारीरिक और मानसिक दोनों रूपों से क्रियाशील रहते हैं और स्वयं करके सीखते हैं। जो कुछ भी विद्यार्थी करते हैं उसका उनके जीवन से सम्बन्ध भी होता है। दूसरे शब्दों में यह विधि थार्नडाइक द्वारा प्रतिपादित सीखने के नियमों के अनुसार है। सीखने का पहला नियम 'तत्परता का नियम' (Law of Readiness) है। समस्या को उपस्थिति कर उसे हल करने के लिए विद्यार्थी प्रोजेक्ट को पूरा करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। सीखने का दूसरा नियम 'अभ्यास का नियम' (Law of Exercise) है। स्वयं करके सीखना इस विधि का सबसे बड़ी विशेषता है। सीखने का तीसरा नियम 'प्रभाव का नियम' (Law of effect) होता है। प्रोजेक्ट की समाप्ति पर विद्यार्थी अपने परिश्रम का फल देखकर सन्तोष अनुभव करते हैं। इससे सीखा हुआ ज्ञान स्थायी होता है और विद्यार्थी नये प्रोजेक्टों को पूरा करने के लिए तैयार होते हैं

2. यह विधि में विद्यार्थियों को स्वतंत्र रूप से सोचने, विचारने तथा कार्य करने का अवसर प्रदान करती है अर्थात् इस विधि में विद्यार्थी निष्क्रिय रहकर ज्ञान के तथ्यों, संप्रत्ययों आदि को दूसरों के कहने मात्र से नहीं मान लेते अपितु उन्हें खोज़ कर ग्रहण करते हैं। इस प्रकार यह विधि विद्यार्थियों को अन्वेषण करने का अवसर प्रदान करती है। इस विधि से कार्य करके विद्यार्थी उस ज्ञान और कौशल को स्वयं ही प्राप्त करता है जिसकी वास्तविक जीवन में आवश्यकता पड़ती है। इससे–विद्यार्थियों को स्वयं निर्णय करने का अवसर मिलता है। इस प्रकार इस विधि द्वारा विद्यार्थियों की अनेक शक्तियों का विकास करती है।

3. इस विधि में रटने की प्रवत्ति का कोई स्थान नहीं है। इसमें रटने तथा स्मरण करने की क्रिया की अपेक्षा सोचने तथा कार्य करने की प्रवत्ति पर बल दिया जाता है। कार्य करके जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है, वह अधिक स्थायी होता है।

4. इसके अनुसार पाठ्य विषयों का विभाजन और उनका पथक–पथक् रूप से पढ़ाया जाना अवांछनीय है। यह विधि पाठ्य–क्रम के विषयों में परस्पर तथा पाठ्यक्रम का जीवन से संबंध स्थापित करती है। इसमें पाठ्यक्रम के समस्त विषय समन्वित रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। समन्वित शिक्षा का विचार नया नहीं है किन्तु क्रिया द्वारा समन्वय स्थापित करने का विचार इस विधि की विशेषता हे। किसी विशेष समस्या के हल करने में विद्यार्थी अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। पाठ्यविषयों के स्थान पर विद्यार्थी को शिक्षा का केन्द्र माना जाता है और उसकी आवश्यकताओं के अनुसार उसे प्रोजेक्ट दिया जाता है। इससे विद्यार्थी पाठ्य विषयों में अधिक रुचि लेता है और अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है।

5. प्रोजेक्ट विधि में विद्यार्थियों को मिलजुल कर कार्य करने के अवसर प्रदान किए जाते हैं। विद्यार्थी साझे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मिलजुल कर प्रयत्न करते हैं। सभी कार्य प्रजातान्त्रिक ढ़ंग से किये जाते हैं। विद्यार्थी जो कार्य करते हैं या जो योजना बनाते हैं, उस विषय में अपनी सहमति अथवा असहमति प्रकट कर सकते हैं। अध्यापक विद्यार्थियों की इच्छाओं एवं क्षमताओं के अनुरूप प्रोजेक्ट का चयन करता है और कार्यों का बँटवारा करता है। विद्यार्थियों के मिल–जुल कर काम करने से उनमें सहिष्णुता, आत्मनिर्भरता, उदारता, सहयोग भावना आदि गुणों का विकास होता है। इस प्रकार यह विधि प्रजातन्त्रात्मक जीवनयापन का प्रशिक्षण देती है।
6. यह विधि पिछड़े एवं कमज़ोर विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से सहायक है क्योंकि इसमें प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी रुचि एवं क्षमता के अनुसार रचनात्मक कार्य करने की सुविधा प्रदान की जाती है। ऐसे विद्यार्थी जो अमूर्त परिभाषाओं एवं प्रत्ययों पर सोच–विचार नहीं कर सकते, वे मूर्त प्रत्ययों तथा रचनात्मक कार्य में व्यस्त रहते हैं।
7. इससे विद्यालय का बाह्म संसार के साथ सम्बन्ध स्थापित होता है और विद्यालयी शिक्षा सजीव एवं जीवन से जुड़ी हुई प्रतीत होती है। सीखने की स्थितियों और विद्यार्थियों के परिवेश में संबंध स्थापित हो जाता है जिससे अधिगम अधिक स्थायी होता है।
8. इससे उपक्रम तथा आत्मक्रिया (Self-activity) का विकास होता है। इसमें विद्यार्थी स्वयं अपने हाथों से कार्य करते हैं और कार्य में आनन्द का अनुभव करते हैं। विद्यार्थी केवल निष्क्रिय ग्रहणकर्त्ता (Passive Recipent) न रहकर सक्रिय बनते हैं और उनमें कार्य के प्रति सम्मान (Dignity of Labour) का भी विकास होता है।

## 3.6 प्रोजेक्ट विधि की कुछ सीमाएँ (Limitations of Project Method)

1. प्रोजेक्ट विधि में प्रयोजन को पूरा करने में बहुत अधिक समय व्यय होता है।
2. इस विधि में अध्यापक पर काम का अत्यधिक बोझ बढ़ जाता है। अध्यापक पूरा समय योजना बनाने, तैयारी करने, निरीक्षण तथा मूल्यांकन करने में व्यस्त रहता है।
3. भारतीय विद्यालयों में प्रोजेक्ट के लिये आवश्यक सन्दर्भ–सामग्री (Reference Material) का अभाव रहता है।
4. उच्च कक्षाओं का पाठ्यक्रम प्रोजेक्ट द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता।
5. प्रोजेक्ट के लिये सुसज्जित प्रयोगशालाओं एवं पुस्तकालयों की आवश्यकता होती है अतः यह विधि अत्यधिक खर्चीली है।
6. भौतिक विज्ञान में प्रोजेक्ट के लिए अध्यापक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सभी विषयों का ज्ञाता हो और सभी विषयों एवं प्रकरणों को समावयवित करके पढ़ाये। यह बहुत कठिन कार्य है और इसके लिये विशेष कौशलयुक्त अध्यापकों की आवश्यकता होती है। हमारी शिक्षण–व्यवस्था में ऐसे अध्यापकों का अभाव है।
7. प्रोजेक्ट विधि द्वारा शिक्षण कार्य संगठित रूप से और निरन्तर नहीं हो सकता। इसमें विषय–वस्तु का विकास भी क्रमबद्ध रूप से न होकर अंशों में एवं अस्तव्यस्त (Haphazard) रूप से होता है।
8. प्रोजेक्ट के विभिन्न कार्यों से सम्बन्धित कौशलों के अभ्यास के लिये अवसर प्रदान नहीं किये जाते। विज्ञान विषयों के लिये ये अभ्यास अति आवश्यक होते हैं। इस प्रकार यह विधि विज्ञान विषयों के लिए उपयुक्त नहीं है।
9. प्रोजेक्ट विधि से पढ़ाने के लिए विद्यालय की सम्पूर्ण समय–सारणी (Time-Table) में परिवर्तन करना पड़ता है जिससे दूसरे विषयों अथवा कक्षाओं में बाधा पहुंचती है।
10. इस विधि द्वारा किसी प्रकरण का विस्तत ज्ञान नहीं दिया जा सकता। केवल प्रारम्भिक ज्ञान (Superficial knowledge) ही दिया जा सकता है।
11. प्रोजेक्ट विधि के विभिन्न चरणों के अनुरूप लिखी गई पुस्तके उपलब्ध नहीं हैं। इससे विद्यार्थियों एवं अध्यापक को प्रोजेक्ट की स्पष्ट दिशा निर्धारित करने में कठिनाई होती है।

## 3.7 जीव विज्ञान में कुछ प्रोजेक्ट कार्य (Some Project Works)

विद्यालय में जीव–विज्ञान शिक्षण के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रकरणों से सम्बन्धित प्रोजेक्ट किये जा सकते हैं–

I. कृषि यन्त्रों का निर्माण।

II. वायुजीवशाला का निर्माण।

III. जल जीव घर का निर्माण।

IV. जल प्रदूषण एवं उसके घटक।

V. विज्ञान संग्रहालय की स्थापना।

VI. विज्ञान प्रदर्शनी का आयोजन।

VII. विद्यालय में मौसम सम्बन्धी जानकारी की व्याख्या करना।

VIII. हस्तनिर्मित विज्ञान–उपकरणों का निर्माण।

## 3.8 प्रयोजन विधि में अध्यापक की भूमिका (Role of Teacher in Project Method)

प्रोजेक्ट विधि विद्यार्थी–केन्द्रित विधि है। इसमें विद्यार्थी को सक्रिय करना अत्यन्त आवश्यक होता है। विद्यार्थी की सक्रियता के बिना प्रोजेक्ट की सफलता अनिश्चित होती है। विद्यार्थियों को सक्रिय बनाने एवं अभिप्रेरित करने में अध्यापक की विशेष भूमिका होती है।

1. अध्यापक प्रोजेक्ट में एक मार्गदर्शक, सहयोग तथा मित्र के रूप में कार्य करता है न कि तानाशाह के रूप में।
2. अध्यापक विद्यार्थियों के साथ घनिष्ठ एवं स्वस्थ सम्बन्ध (Healthy relations) स्थापित करता है। वह उनकी समस्याओं को ध्यानपूर्वक सुनता है, समझता है और उन्हें हल करने में सहायता करता है।
3. अध्यापक प्रोजेक्ट के किसी भी भाग को स्वयं कार्यान्वित नहीं करता, वह अपनी इच्छा को विद्यार्थियों पर थोपता नहीं है अपितु वह उन्हें उनकी त्रुटियों और सफलताओं के कारणों के बारे में बताता है। वह उन्हें यह भी बताता है कि किन उत्तम प्रणालियों या शैलियों को अपनाया जाये।
4. इस विधि में अध्यापक शर्मीले, पिछड़े हुए तथा कम बुद्धि वाले विद्यार्थियों को भी अवसर प्रदान करता है कि वे अपने सहपाठियों के साथ मिल कर प्रोजेक्ट के सम्पन्न होने में अपना योगदान दें।
5. अध्यापक कक्षा में प्रजातन्त्रात्मक वातावरण का विकास करता है और विद्यार्थियों को स्पष्ट एवं स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिये प्रेरित करता है।
6. अध्यापक विद्यार्थियों के साथ–साथ स्वयं भी सीखता है। वह कभी भी स्वयं सब कुछ जानने का दावा नहीं करता।
7. वह विद्यार्थियों को जिम्मेवारी सौंप कर उनके चरित्र एवं व्यक्तित्व के विकास में सहयता करता है।
8. वह सारा समय सक्रिय एवं सचेत रहता है और इस बात का ध्यान रखता है कि प्रोजेक्ट से सम्बन्धित कार्य उचित रूप से विकसित हो।
9. अध्यापक विद्यार्थियों को उनकी क्षमता के अनुसार कार्य सौंपता है। वह कक्षा में विद्यार्थियों की स्वतन्त्रता बनाये रखता है और उनके भय एवं हिचकिचाहट को दूर करता है।

### अपनी प्रगति जांचिए

(i) प्रयोजन विधि से क्या अभिप्राय है? इसके आधारभूत सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

(ii) प्रयोजन विधि के विभिन्न चरणों की व्याख्या कीजिए?

(ii) प्रयोजन विधि के गुण एवं दोषों का विवेचन कीजिए।

## 3.9 सारांश

प्रयोजन विधि पुस्तकीय ज्ञान के विपरीत विद्यार्थियों के वास्तविक जीवन की समस्याओं के समाधान से सम्बन्धित होती है जिससे वे सफलतापूर्वक जीवन यापन कर सकें और समाज के विकास में योगदान दे सकें। इस विधि में किसी समस्या का समाधान ढूंढ़ने के लिए एक प्रोजेक्ट की रचना की जाती है। प्रोजेक्ट वास्तविक जीवन से सम्बन्धित समस्या पर आधारित होता है और इसके निश्चित उद्देश्य होते हैं।

प्रयोजन विधि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इस विधि के मुख्य छः चरण होते हैं– स्थिति प्रदान करना, चयन तथा उद्देश्य, नियोजन, योजना का क्रियान्वन, मूल्यांकन तथा अभिलेखन। प्रयोजन विधि में अध्यापक की विशेष भूमिका होती है। उसे विद्यार्थियों से मित्र, सहयोगी एवं मार्गदर्शक के रूप में व्यवहार करना चाहिए। इस विधि की सफलता विद्यार्थियों के सक्रिय सहयोग पर निर्भर करती है। इसमें अध्यापक विद्यार्थियों पर अपनी इच्छा को नहीं थोपता और न ही प्रोजेक्ट के किसी भाग को स्वयं क्रियान्वित करता है। वह विद्यार्थियों से घनिष्ठ संबंध बना कर उन्हें प्रोजेक्ट पर कार्य करने के संबंध में मार्गदर्शन प्रदान करता है। वह प्रत्येक विद्यार्थी को उसकी क्षमता के अनुरूप कार्य सौंपता है जिससे सभी विद्यार्थियों को उनके व्यक्तित्व के विकास का पर्याप्त अवसर मिल सके।

प्रयोजन विधि विद्यार्थी केन्द्रित विधि है। इसमें विद्यार्थियों को स्वयं करके सीखने, मिलजुल कर कार्य करने, क्रिया द्वारा समन्वित शिक्षा, नवीन ज्ञान प्राप्त करने एवं रचनात्मक प्रवत्तियों का विकास करने में सहायता मिलती है। परन्तु यह विधि भारतीय विद्यालयों के लिए उपयुक्त नहीं कही जा सकती क्योंकि इसमें अत्याधिक समय, धन तथा ऊर्जा का व्यय होता है। पाठ्यक्रम को पूरा करने मेंकठिनाई होती है, शिक्षण असंगठित रूप से होता है और अध्यापक का कार्य अत्याधिक बढ़ जाता है। इसे विद्यालय की समय–सारणी के अनुसार कार्यन्वित करने में भी कठिनाई होती है।

**आदर्श उत्तर**

(i) कृपया 3.3 में देखें

(ii) कृपया 3.4 में देखें।

(iii) कृपया 3.5 एवं 3.6 में देखें।

## 3.10 मुख्य शब्द

**प्रोजेक्ट/प्रयोजनः** विद्यार्थियों के वास्तविक जीवन से सम्बन्धित किसी समस्या के समाधान से सम्बन्धित अच्छी तरह चयनित एवं पूर्ण लगन से किया जाने वाला कार्य जिसे वास्तविक परिस्थितियों में सामाजिक वातावरण में पूर्ण किया जाता है।

## 3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

Bhandula, N. And Chadha, P.C. - 'Teaching of Science', Tandon Publication, Ludhiana

Soni, Anju- 'Teaching of Life Science, Tandon Publications, Ludhiana.

मंगल, एस. के.–'भौतिक एवं जीव–विज्ञान शिक्षण', आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, 1995.

भूषण, शैलेन्द्र –'जीव–विज्ञान शिक्षण', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1989.

# इकाई-4 (a)

# अध्याय-4: समस्या समाधान विधि

# (Problem Solving Method)

**उद्देश्य :**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि:

- समस्या समाधान विधि के प्रत्यय का वर्णन कर सकें।
- समस्या समाधान विधि के विभिन्न चरणों की व्याख्या कर सकें।
- समस्या समाधान विधि के गुण बता सकें।
- समस्या समाधान विधि की सीमाएँ बता सकें।

**संरचना :**

4.1 प्रस्तावना
4.2 समस्या समाधान विधि का प्रत्यय
4.3 समस्या समाधन विधि के चरण
4.4 समस्या समाधान विधि के गुण
4.5 समस्या समाधान विधि की सीमाएँ
4.6 सारांश
आदर्श उत्तर
4.7 मुख्य शब्द
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

## 4.1 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में आप विज्ञान शिक्षण की दो विधियों – व्याख्यान प्रदर्शन एवं प्रयोजन विधि का अध्ययन कर चुके हैं। इस अध्याय में आप विज्ञान शिक्षण की महत्वपूर्ण विधि–समस्या समाधान विधि का अध्ययन करेंगे। यह विधि विज्ञान की महत्वपूर्ण विधि है और वैज्ञानिकों द्वारा उपयोग में लाई जाती है इसलिए इसे वैज्ञानिक विधि भी कहा जाता है। इस विधि में समस्या का समाधान वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध रूप से किया जाता है।

## 4.2 समस्या समाधान विधि का प्रत्यय (Concept of Problem Solving Method)

जीवन संघर्ष का दूसरा नाम है। हमारे जीवन में प्रतिदिन किसी न किसी प्रकार की समस्या आती है तथा हमारी यह इच्छा होती है कि हमारी समस्या जल्दी से जल्दी हल हो जाए। हम अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर समस्याओं को चुनौती के रूप में लेकर उनके समाधान के लिए प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार किये गए प्रयत्नों द्वारा हम सीखते हैं और अपने व्यवहार में परिवर्तन लाते हैं। वास्तविक जीवन में समस्या का समाधान इतना सरल नहीं होता जितना पढ़ने या सुनने में प्रतीत होता है और प्रत्येक व्यक्ति समस्या को चुनौती के रूप में लेकर उसका समाधान भी नहीं कर सकता।

समस्या समाधान विधि विद्यार्थियों में इसी योग्यता का विकास करती है जिससे वे जीवन में आने वाली समस्याओं का सामना करते हुए निरन्तर उनके समाधान के लिए प्रयत्नशील रहें। समस्या समाधान विधि का जन्म प्रयोजनवाद के फलस्वरूप हुआ। इस विधि में गहन चिन्तन और तर्क सम्मिलित होता है। यह विधि विज्ञान की महत्वपूर्ण देन है और विद्यार्थियों का इस का उचित प्रकार से प्रशिक्षण देना चाहिए। यदि एक बार विद्यार्थी इस विधि में प्रशिक्षित हो जाते हैं तो वे सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान कर सकते हैं। यहाँ तक कि ऐसी स्थिति में भी जिससे वे सर्वथा अनिभज्ञ हों।

### 4.2.1 समस्या समाधान विधि का स्वरूप

समस्या समाधान विधि में विद्यार्थियों के समक्ष विषय से सम्बन्धित किसी समस्या को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है जिससे वे उद्देश्यपूर्ण गहन चिन्तन (Reflective Thinking) कर सकें।

विद्यार्थी अपने पूर्व ज्ञान एवं अनुभवों के आधार पर समस्या समाधान सम्बन्धी विकल्प प्रस्तुत कर सकते हैं। इस कार्य में अध्यापक उनकी सहायता करता है। विद्यार्थी प्रयोग अथवा अनुभव द्वारा विकल्पों की पुष्टि करने का प्रयत्न करते हैं और इस प्रकार वे समस्या के समाधान का मार्ग खोजकर नीवन ज्ञान और कौशल अर्जित करते हैं। इससे विद्यार्थी न केवल समस्या का समाधान करने का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं अपितु इससे उनमें वैज्ञानिक दष्टिकोण का विकास होता है, वे वैज्ञानिक विधि में कार्य करने का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, विषय–सम्बन्धी ज्ञान एवं अनुभव अर्जित करते हैं और जीवन के प्रति उनमें एक स्वस्थ विचारधारा विकास होता है।

### 4.2.2 समस्या की विशेषताएं (Characteristics of a Problems)

अध्ययन के लिए चुनी गई समस्या में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिएं–

1. विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत की गई समस्या का शिक्षात्मक मूल्य होना चाहिए। यह यथासंभव उनके वास्तविक जीवन अथवा परिवेश से सम्बन्धित होनी चाहिए जैसे–आकाश में इन्द्रधनुष का अध्ययन, वर्षा के समय बिजली की चमक एवं बादल का गरजना।
2. समस्या विद्यार्थियों की शारीरिक क्षमताओं तथा मानसिक स्तर के अनुकूल होनी चाहिए।
3. समस्या विद्यार्थियों की रूचि तथा दष्टिकोण के अनुरूप होनी चाहिए।
4. समस्या चुनौतीपूर्ण होनी चाहिए जिससे विद्यार्थियों की तर्क एवं चिन्तन शक्ति का विकास हो सके।
5. समस्या पाठ्यक्रम के अनुसार, तर्कसंगत व्यावहारिक तथा उपयोगी होनी चाहिए।

6. समस्या विद्यार्थियों के पूर्वज्ञान से सम्बन्धित होनी चाहिए जिससे उसका समाधान करने में अत्यधिक कठिनाई न हो।
7. समस्या के समाधान में उपयोग किये जाने वाले उपकरण विद्यालय की प्रयोगशाला में उपलब्ध होने चाहिएं।
8. समस्या विद्यार्थियों पर एक भार की तरह नहीं होनी चाहिए। समस्या ऐसी हो जिसे विद्यार्थी प्रसन्नतापूर्वक समाधान करने के लिए प्रयत्न करें।

## 4.3 समस्या समाधान विधि के चरण (Steps of Problem Solving Method)

विज्ञान शिक्षण में प्रयुक्त समस्या समाधान विधि में विद्यार्थी किसी भी समस्या का समाधान करने के लिए किसी प्रकार के पूर्वाग्रहों अथवा दूसरों द्वारा कही गई बातों पर आश्रित न हो कर अपने प्रयत्नों एवं पूर्व अनुभवों द्वारा समस्या का हल ढूंढता है।

इस विधि के निम्नलिखित चरण हैं:

1. **समस्या को महसूस करना (Sensing a Problem):** अध्यापक को इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न करनी चाहिए जिससे विद्यार्थी प्रश्न पूछने की आवश्यकता अथवा समस्या को महसूस करें। अध्यापक स्वयं भी ऐसे प्रश्न पूछ सकता है जिसमें गहन चिन्तन की आवश्यकता हो और इस प्रकार विद्यार्थी समस्या को पहचान सकें। कभी–कभी विद्यार्थी स्वयं भी पुस्तकालय में पुस्तक पढ़ते हुए, प्रयोगशाला में कार्य करते समय अथवा प्रकृति में होने वाली घटनाओं से सम्बन्धित कोई शंका होने पर समस्या को महसूस कर सकते हैं। कक्षा में समस्या का प्रस्तुतीकरण अध्यापक एवं विद्यार्थियों के सहयोग से होना चाहिए। समस्या का चयन करते समय विद्यार्थियों की आयु, रूचि, उद्देश्य, योग्यता आदि का ध्यान रखना चाहिए।
2. **समस्या को परिभाषित करना (Defining a Problem):** समस्या को ठीक प्रकार से समझने एवं उसका समाधान करने से पूर्व यह आवश्यक है कि इसे स्पष्ट, सरल एवं सुनिश्चित भाषा में परिभाषित किया जाए। समस्या को परिभाषित करते समय उसकी सीमाओं और विस्तार (Limitations and Boundries) पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। समस्या की परिभाषा, सीमाओं आदि को स्पष्ट रूप से लिखा जाना चाहिए।
3. **समस्या का विश्लेषण (Analysis of Problem):** समस्या को परिभाषित करने के पश्चात् उसका सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया जाना चाहिए जिससे विद्यार्थियों को समस्या की प्रकृति (Nature) और मुख्य बिन्दुओं का ज्ञान हो जाए। इसके अतिरिक्त वे समस्या समाधान की दष्टि से उपलब्ध संसाधन, पूर्व ज्ञान आदि से सम्बन्धित जानकारी भी प्राप्त कर सकते हैं।
4. **उपयुक्त आंकड़ों का संकलन (Collection of Relevant Data):** इस चरण में विद्यार्थियों को समस्या से संबंधित आंकड़ों या सूचनाओं को एकत्रित करने के लिए प्रेरित किया जाता है। इस संबंध में अध्यापक विद्यार्थियों को निर्देश या संदर्भ देता है। ये आंकड़े पुस्तकालय निरीक्षण, प्रयोग, मॉडलों, भ्रमण, विचार–विनिमय द्वारा एकत्रित किये जाने चाहिएं। इससे विद्यार्थियों में विभिन्न कौशलों का विकास होता है। आंकड़ों का संकलन करते समय विद्यार्थियों को निम्नलिखित त्रुटियों से सावधान रहना चाहिए–
   (i) **यांत्रिक त्रुटियां (Mechanical Errors):** यांत्रिक त्रुटियों से अभिप्राय ऐसी त्रुटियों से है जो उन उपकरणों अथवा सामग्री से संबंधित हो जिनका उपयोग समस्या समाधान के लिए किया जाता है।
   (ii) **व्यक्तिगत त्रुटियां (Personal Errors):** इसमें व्यक्ति द्वारा की जाने वाली त्रुटियां जैसे पक्षपात, उद्वेगपूर्ण निर्णय, असम्बन्धित तथ्यों या आंकड़ों का संग्रह आदि सम्मिलित हैं।
5. **परिकल्पनाओं का निर्माण (Formulation of Hypotheses):** परिकल्पना से अभिप्राय, समझदारीपूर्वक लगाए गए अनुमान अथवा कल्पित समाधान से है। समस्या से सम्बन्धित सूचनाओं एवं आंकड़ों के विश्लेषण और पूर्व ज्ञान एवं अनुभवों के आधार पर समस्या के कल्पित समाधान का निर्माण किया जाता है। विद्यार्थियों को अपने–अपने ढ़ंग से परिकल्पना का निर्माण करने की स्वतंत्रता प्रदान की जाती है जिससे समस्या के एक से अधिक कल्पित समाधान मिल जाते हैं।

6. **परिकल्पनाओं का परीक्षण (Testing of Hypotheses):** विद्यार्थी जितनी भी परिकल्पनाओं अर्थात् किसी समस्या के संभावित समाधानों का निर्माण करते हैं उनमें से कौन सा उचित एवं सार्थक है, इस का निर्णय इस चरण में किया जाता है। इसमें एक–एक करके सभी परिकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है। यह कार्य स्वाध्याय, गोष्ठी, सामूहिक विचार–विनिमय तथा प्रयोगशाला परीक्षणों आदि के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त सबसे सार्थक परिकल्पना अथवा समाधान को निष्कर्ष रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। परिकल्पनाओं का परीक्षण करते समय निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए–

   (i) समाधान पूर्व स्थापित तथ्यों एवं सिद्धान्तों के अनूकूल हो।

   (ii) ऐसे सभी नकारात्मक उदाहरणों तथा परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए जिससे परिकल्पना की सत्यता पर संदेह उत्पन्न होता हो।

7. **निष्कर्ष निकालना:** प्रयोग तथा परीक्षण के पश्चात जो परिकल्पनाएं सही पायी जाती हैं, उन्हें स्वीकार कर लिया जाता है तथा असत्य व अपूर्ण परिकल्पनाओं को अस्वीकार कर दिया जाता है।

   इस प्रकार समस्या का समाधान निष्कर्ष रूप में प्राप्त किया जाता है। यह समाधान किन–किन परिस्थितियों अथवा साधनों की उपस्थिति में किस प्रकार की समस्याओं के लिए उपयोगी रहेगा, यह सामान्यीकरण भी इसी चरण में किया जाता है। इस सामान्यीकरण का प्रयोग दैनिक जीवन में आने वाली समस्याओं के समाधान में किया जा सकता है।

## 4.4.समस्या समाधान विधि के गुण (Merits of Problem Solving Method)

1. समस्या समाधान विधि में समस्या के समाधान का प्रयत्न किया जाता है। जिससे यह विधि विज्ञान की प्रकृति से मिलती जुलती है। इसलिए विज्ञान विषय को समझने के लिए यह विधि सहायक सिद्ध होती है।
2. यह विधि विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दष्टिकोण का विकास करने में सहायक है।
3. यह विधि विद्यार्थियों को वैज्ञानिक विधि में कार्य करने का प्रशिक्षण प्रदान करती है।
4. इस विधि में विद्यार्थियों की मानसिक शक्तियों के विकास के लिए अवसर प्रदान किया जाता है।
5. यह विधि विद्यार्थियों और अध्यापक के मध्य मधुर सम्बन्धों के निर्माण में सहायता करती है।
6. यह विधि मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें विद्यार्थी समस्या को स्वयं महसूस करके उसके समाधान से सम्बन्धित आंकड़े एवं सूचनाएं एकत्रित करते हैं। इन आंकड़ों व सूचनाओं के विश्लेषण के आधार पर वे परिकल्पनाओं का निर्माण एवं पुष्टि करके निष्कर्ष निकालते हैं। समस्या का स्वयं समाधन करने की प्रक्रिया से उनकी छिपी हुई प्रवत्तियों जैसे रचनात्मकता, आलोचनात्मक निरीक्षण आदि का विकास होता है और समस्या का हल उन्हें परम सुख की अनुभूति प्रदान करता है। इस प्रकार प्राप्त ज्ञान व अधिगम स्थायी एवं प्रभावपूर्ण होते हैं।
7. विद्यार्थी समस्या–समाधान विधि का प्रयोग अपने दैनिक जीवन में आने वाली समस्याओं को हल करने के लिए कर सकते हैं।
8. इस विधि के प्रयोग द्वारा गहकार्य देना, कापियाँ जांचना, कक्षा में अनुशासन बनाए रखना आदि कई समस्याओं का स्वतः ही निपटारा हो जाता है।

## 4.5 समस्या समाधान विधि की सीमाएं (Limitations of Probelm Solving Method)

1. यह विधि वर्तमान भारतीय शिक्षण परिस्थतियों के अनुरूप नहीं हैं। इस विधि का प्रयोग करने में निम्नलिखित व्यावहारिक बाधाएं हैं–

(i) पुस्तकालय में संसाधनों का अभाव।

(ii) अच्छी प्रयोगशालाओं का अभाव।

(iii) पाठ्यक्रम समाप्त करने का दबाव।

(iv) अध्यापक–विद्यार्थी अनुपात अधिक होना।

(v) अनुभवी एवं सुयोग्य विज्ञान शिक्षकों की अनुपलब्धता।

(vi) शिक्षण एवं मूल्यांकन में कौशलों के विकास को दिया जाने वाला कम महत्त्व।

2. इस विधि में विद्यार्थियों से अत्यधिक अपेक्षाएं की जाती हैं। वैज्ञानिक विधि से समस्या का विश्लेषण करना एवं उसका समाधान ढूंढ़ना सभी विद्यार्थियों के लिए संभव नहीं होता।

3. अध्यापक पाठ्यक्रम में दिए गए सभी उपविषयों से सम्बन्धित समस्या–चयन कर भी ले तो अधिकांशतः वह समस्या विद्यार्थियों की रूचि, मानसिक स्तर, योग्यताओं आदि के अनुसार नहीं होती।

4. इस विधि में संसाधनों का अपव्यय होता है। विद्यार्थी समस्या समाधान संबंधी आंकड़ें एकत्रित करते समय, उनका विश्लेषण करते समय और परिकल्पनाओं का निर्माण करते समय अटकलें लगाते हैं जिससे धन, शक्ति और समय का अपव्यय होता है।

5. यह विधि विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुरूप नहीं है।

6. इस विधि द्वारा प्राप्त ज्ञान को कहीं लिख कर नहीं रखा जाता जिससे कुछ समय पश्चात वह विस्मत हो सकता है।

### अपनी प्रगति जांचिए

(i) समस्या समाधान विधि के विभिन्न चरणों का वर्णन कीजिए।

(ii) समस्या समाधान विधि जीव विज्ञान शिक्षण में कितनी प्रभावशाली है? विवेचन कीजिए।

## 4.6 सारांश

समस्या समाधान विधि विज्ञान शिक्षण की महत्वपूर्ण विधि है। इसे वैज्ञानिक विधि के नाम से भी जाना जाता है। इस विधि में विद्यार्थियों के समक्ष किसी समस्या को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है जिससे वे उद्देश्यपूर्ण गहन चिन्तन कर सकें तथा अपने पूर्व ज्ञान व अनुभवों के आधार पर समस्या समाधान सम्बन्धी विकल्प प्रस्तुत कर सकें। इस कार्य में अध्यापक उनकी सहायता करता है। विद्यार्थी प्रयोग एवं अनुभव द्वारा विकल्पों की पुष्टि करके समस्या का समाधान करने का प्रयत्न करते हैं। समस्या समाधान विधि के मुख्य चरण हैं– समस्या को महसूस करना, समस्या को परिभाषित करना, समस्या का विश्लेषण, उपयुक्त आंकड़ों का संकलन, परिकल्पनाओं का निर्माण व परीक्षण, निष्कर्ष निकालना आदि।

समस्या समाधान विधि वैज्ञानिक दष्टिकोण के विकास में, वैज्ञानिक विधि से कार्य करने का प्रशिक्षण देने में, दैनिक जीवन से संबंधित समस्याओं के समाधान में और अध्यापक–विद्यार्थी मधुर संबंधों के निर्माण में विशेष रूप से सहायक है। यह विधि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है और इसमें अध्यापक का कार्य अपेक्षाकृत कम हो जाता है। परन्तु यह विधि वर्तमान भारतीय शिक्षण परिस्थितियों के अनुरूप नहीं है। इसके मुख्य कारण हमारे विद्यालयों में संसाधनों का अभाव, सुयोग्य शिक्षकों की अनुपलब्धता, पाठ्यक्रम की कमियां, विद्यार्थियों से अत्यधिक अपेक्षा आदि हैं।

### आदर्श उत्तर

(i) समस्या समाधान विधि के चरण हैं– समस्या को महसूस करना, समस्या को परिभाषित करना, समस्या का विश्लेषण, उपयुक्त आंकड़ों का संकलन, परिकल्पनाओं का निर्माण व परीक्षण, निष्कर्ष निकालना आदि।

(ii) कृपया 4.4 में देखें।

## 4.7 मुख्य शब्द

**समस्या समाधान विधिः** वह विधि जिसमें समस्या को चुनौतीपूर्ण रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि विद्यार्थी अपने पूर्व ज्ञान एवं अनुभवों के आधार पर उसके समाधान का प्रयत्न करें और नवीन ज्ञान एवं कौशलों का अर्जन करें।

## 4.8 संन्दर्भ ग्रन्थ

Soni, Anju – 'Teaching of Life Science', Tandon Publications, Ludhiana.

मंगल, एस. के. – 'भौतिक एवं जीव विज्ञान शिक्षण', आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, 1995.

भूषण, शैलेन्द्र. – 'जीव विज्ञान शिक्षण', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1989.

कुलश्रेष्ठ, एस.पी – 'जीव विज्ञान शिक्षण', लायल बुक डिपो, मेरठ, 1993.

# इकाई-4 (b)

# अध्याय-1: अस्थाई एवं स्थाई माऊंटस तैयार करना (Preparation of Temporary and Permanent Mounts)

**उद्देश्य :**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि –

– सैक्शन कटिंग की विधि बता सकें।

– स्टेनिंग की विधि बता सकें।

– माऊंटस बनाने की प्रक्रिया का वर्णन कर सकें।

**संरचना :**

1.1 प्रस्तावना

1.2 सैक्शन कटिंग

1.3 स्टेनिंग

1.4 माऊंटस बनाना

1.5 सारांश

आदर्श उत्तर

1.6 मुख्य शब्द

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

## 1.1 प्रस्तावना

विज्ञान केवल पुस्तकों से पढ़कर नहीं सीखा जा सकता इसके लिए विद्यार्थियों को प्रयोग करने की आवश्यकता होती है जिससे उनमें सोचने, निरीक्षण करने, निर्णय करने तथा हाथ से काम करने की क्षमताओं का विकास हो सके। विज्ञान में जीवों का अध्ययन किया जाता है इसलिए उनके शरीर अथवा विभिन्न भागों का विस्तत अध्ययन करने के लिए उनके माऊंटस तैयार किए जाते हैं।

जीवों के अस्थायी एवं स्थायी माऊंटस तैयार करने की विधि जानने से पूर्व सैक्शन काटना **(Sectioning)** एवं स्टेन करना **(Staining)** विधियों की जानकारी आवश्यक है। इनका वर्णन इस प्रकार है–

## 1.2 सैक्शन कटिंग (Sectioning)

जिस भी पौधे या जन्तु का अथवा उसके शरीर के जिस भाग का माऊंट बनाना है उसकी पतली परतें काटना आवश्यक है। इस पतली परत को सैक्शन कहा जाता है। सैक्शन जीवों का विस्तत अध्ययन करने में सहायक है। सैक्शन काटने के लिए जीव (पौधे अथवा जन्तु) के भागों को मोम के ब्लाक में रखा जाता है।

### विधि

1. सैक्शन काटने के लिए मोम के ब्लॉक को माइक्रोटॉम **(Microtome)** उपकरण में रख कर पतले–पतले सैक्शन काटे जा सकते हैं। इन्हें कांच की स्लाइड पर रख कर हल्का सा गर्म करते हैं जिससे मोम पिघल जाये और फिर स्टेन कर देते हैं।
2. वनस्पतियों के सैक्शन काटने के लिये इन्हें पानी में रखकर तेज धार वाले ब्लेड से पतले एवं उपयुक्त सैक्शन काटे जा सकते हैं। अक्सर पतले सैक्शन पानी में तैरते हैं। केवल वे सैक्शन उपयुक्त समझे जाते हें जो समान रूप से कटे हों। उपयुक्त सैक्शन को ब्रुश की सहायता से वॉच ग्लॉस **(Watch Glass)** में उपस्थित पानी में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। सैक्शन को ब्रुश की सहायता से कांच की स्लाइड पर रख कर माइक्रोस्कोप **(Dissecting Microscope)** में देखा जा सकता है। जिस सैक्शन के ऊतक स्पष्ट दिखाई देते हैं, उन्हें रंग करने **(Staining)** के लिए चुना जाता है।

## 1.3 स्टेनिंग अथवा रंग करना (Staining)

पौधे अथवा जन्तुओं के किसी विशेष भाग के सैक्शन के ऊतकों, कोशिकाओं, अंगों आदि में अन्तर स्पष्ट करने के लिए उन्हें स्टेन किया जाता है। स्टेन करने की विधियां, स्टेन और स्टेन के घोल बहुत से हें परन्तु सामान्यतः निम्नलिखित स्टेनों का प्रयोग किया जाता है।

ऐसीटोकारमीन **(Acetocarmine)**, एनीलीन ब्लू **(Aniline Blue),** एरिथ्रोसीन **(Erythrocin),** सेफ्रानिन **(Safranin)** आदि।

(i) **एक रंग (Single Stain):** शैवाल **(Algra)** कवक या फफूंदी **(Fungi)** एवं ब्रायोफाइटा **(Bryophytes)** के सैक्शनों की सामान्यतः एक ही रंग द्वारा रंगा **(Stain)** जाता है। जैसे– सेफरानिन **(Safaranning)** या गहरा हरा रंग।

(ii) **मिश्रण:** जहाँ विभिन्न ऊतकों में अन्तर स्पष्ट करना होता है वहाँ साधारणतया दो या दो से अधिक रंगों का प्रयोग किया जाता है। ये रंग निम्नलिखित रूप में मिश्रित किये जा सकते हैं।

- हिमोटोजाइलीन एवं सेफरानिन (Haematoxylin and Safranine)
- सेफरानिन एवं एनीलीन ब्लू (Safranine and Aniline Blue)

स्टेनिंग स्थाई अथवा अस्थाई रूप से की जा सकती है। स्थाई माऊंट तैयार करने के लिए स्थाई स्टेनिंग की जाती है।

1. **अस्थाई स्टेनिंग (Temporary Staining):** चुने हुए सैक्शनों को वॉच ग्लास से स्टेन वाले वॉच ग्लास में ब्रुश की सहायता से स्थानान्तरित किया जाता है। इन सैक्शनों को स्टेन में 4 से 5 मिनट तक रखा जाता है। बहुतायत स्टेन को उतारने के लिए सैक्शनों को बार–बार पानी से धोया जाता है।

2. **स्थाई स्टेनिंग (Permanent Staining):** स्थाई स्टेनिंग के लिए सैक्शनों को पहले निर्जल (Dehydrate) किया जाता है। इसके पश्चात् इन्हें पानी से धोया जाता है ताकि बहुतायत रंग सैक्शन से उतर जाये और सैक्शन को पुनः अल्कोहल में रख कर निर्जल किया जाता है। स्थाई स्टेनिंग की विस्तत प्रक्रिया निम्नलिखित है–

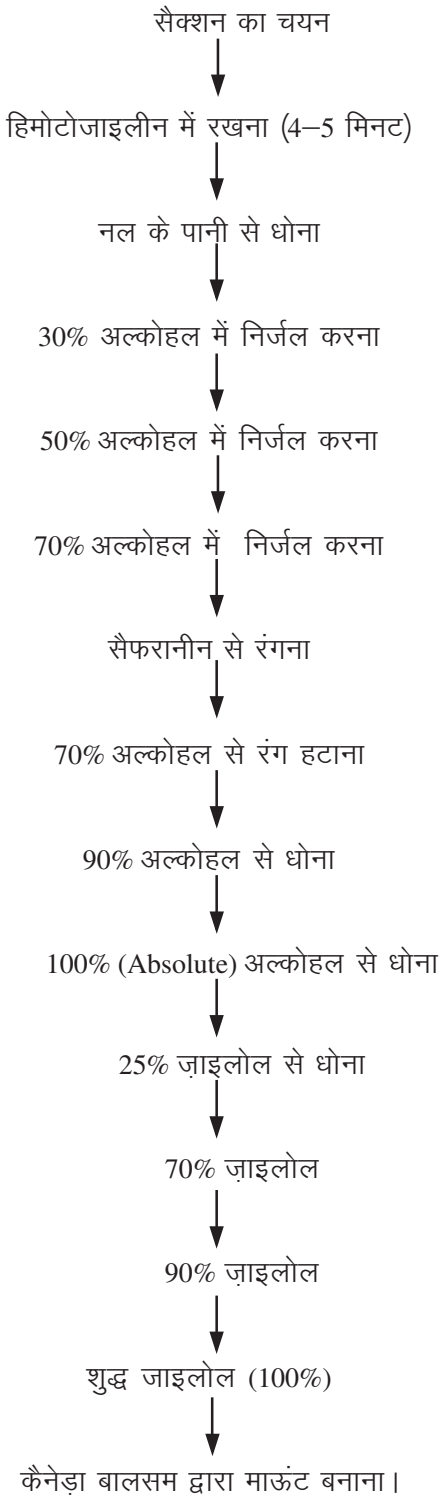

## 1.4 माऊंट बनाना (Mounting)

1. **अस्थाई माऊंट तैयार करना (Temporary Mounting):** अस्थाई माऊंट पानी एवं नमक के घोल से तैयार किया जाता है। उपयुक्त सैक्शन को इस घोल में रखा जाता है और कुछ देर बाद स्लाइड़ के ऊपर रख दिया जाता है। इसे कवर स्लिप (Cover Slip) से ढ़क दिया जाता है और माइक्रोस्कोप द्वारा इसका अध्ययन किया जाता है।

2. **स्थाई माऊंट तैयार करना (Permanent Mounting):** स्थाई माऊंट बनाने के लिए अलग–अलग घोलों का प्रयोग किया जाता है जैसे कैनेड़ा बालसम (Canada Balsam), लैक्टोफिनोल ग्लिसरीन (Lactophenol Glycerine) एवं ग्लिसरीन जैली (Glycerine Jelly)। स्थाई माऊंट बनाने के लिए प्रायः कैनेडा बालसम का उपयोग किया जाता है। इसकी सहायता से सैक्शन को कई वर्षों तक एक ही अवस्था में रखा जा सकता है। उपयुक्त सैक्शन का चयन कर उसे स्थाई रूप से स्टेन किया जाता है। उचित विधि से स्टेनिंग के पश्चात सैक्शन को स्लाइड के मध्य में रखा जाता है और इसके ऊपर एक छोटी सी बूंद कैनेड़ा बालसम डाला जाता है। इसके पश्चात उसे कवर स्लिप द्वारा ढ़क दिया जाता है। इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता है कि कवर स्लिप में हवा के बुलबुले न जा सकें। स्थाई माऊटिंग की स्लाईड तैयार है। इसके किनारों को पेन्ट या नेलपॉलिश द्वारा सील कर दिया जाता है। इसके बाद इसका नामांकन कर दिया जाता है।

### अपनी प्रगति जांचिए

(i) माऊटिंग पर संक्षिप्त नोट लिखो।

## 1.5 सारांश

जीव विज्ञान प्रयोगशाला में सैक्शन कटिंग; स्टेनिंग और माऊटिंग के लिए पर्याप्त सामग्री चाहिए। माउंटस बना कर जीवों के शरीर अथवा विभिन्न भागों का अध्ययन सरलतापूर्वक किया जा सकता है और उन्हें लम्बे समय तक सुरिक्षत रखा जा सकता है। माऊंट बनाते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि ग्लिसरीन अथवा कैनेड़ा बालसम की छोटी सी बूंद स्लाइड पर डाली जाए और कवर स्लिप रखने के पश्चात स्लाइड में हवा के बुलबुले न हों।

### आदर्श उत्तर

(i) कृपया 1.4 में देखें।

## 1.6 मुख्य शब्द

**माइक्रोटामः** ऐसा उपकरण जिसकी सहायता से जीवों के शरीर अथवा किसी भाग के बहुत पतले–पतले सैक्शन काटे जा सकते हैं।

## 1.7 संन्दर्भ ग्रन्थ

**छिकारा, एम. एस. एवं शर्मा, एस.–** 'Teaching of Biology', Parkash Brothers, Ludhiana, 1982.

**सूद, जे. के.** – 'New Directions in Science Teaching' Kohli Publishers, Chandigarh, 1989.

# इकाई-4 (b)

# अध्याय-2: नमूनों का संग्रहण एवं संरक्षण

# (Collection and Preservation of Specimens)

**उद्देश्य :**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि:

- जन्तु नमूनों के संग्रहण एवं संरक्षण की विधि बता सकें।
- वनस्पति नमूनों के संग्रहण एवं संरक्षण की विधि बता सकें।

**संरचना :**

2.1 प्रस्तावना
2.2 जन्तु नमूनों का संग्रहण व संरक्षण
2.3 वनस्पति नमूनों का संग्रहण व संरक्षण
2.4 सारांश
आदर्श उत्तर
2.5 मुख्य शब्द
2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

## 2.1 प्रस्तावना

जीव विज्ञान शिक्षक को जीवों एवं वनस्पतियों को एकत्रित करने, उगाने एवं सुरक्षित रखने के उपायों का ज्ञान होना चाहिए। यद्यपि संग्रहालय में विभिन्न प्रकार के जीवों तथा पौधों को संग्रहित करके रखा जाता है तथापि उनकी सुरक्षा पर ध्यान देना उतना ही आवश्यक है अन्यथ एकत्रित की गई सामग्री नष्ट हो सकती है। इस अध्याय में हम विभिन्न प्रकार के पौधों तथा जीवों को संग्रहित एवं संरक्षित करने की विधि का अध्ययन करेंगे।

## 2.2 जन्तु नमूनों का संग्रहण एवं संरक्षण

### (Collection and Preservation of Animal Specimens)

| | जीव | पाये जाने वाले स्थान | उपकरण | सुरक्षित रखने के लिए रसायन |
|---|---|---|---|---|
| 1. | प्रोटोजोआ | तालाब, पोखर, गड्ढे, | जार, टीन के डब्बे आदि। | 10% फारमेलीन का घोल |
| 2. | केंचुए | गीले स्थानों में | चिमटी, जार आदि | 5% फारमेलीन का घोल |
| 3. | सेन्टीपीड़ एवं मिलीपीड़ | जंगलों में पत्थरों व लकड़ियों के नीचे | चिम्टी, जार टीन के डिब्बे आदि | कार्ल का घोल (Alcohol कार्ल का घोल 95%, Formalin 40%, जल+ग्लेसियल एसीटिक अम्ल) |
| 4. | केकड़ा तथा अन्य जलीय क्रस्टेशिया | तालाब, नाले, झील, पोखर आदि से | जाल, जार, चिमटी आदि | 8% एल्कोहल या फोरमेलीन |
| 5. | कीट | सभी स्थानों में | जाल, चिमटी, जार, डिब्बे आदि कीट संग्रह करने की बोतल | साइनाइड ऐल्कोहल या कार्ल के घोल में कुछ देर रखें और 8% ऐल्कोहल में स्थानान्तरित करें। (छोटे कीटों का शुष्क परिरक्षण किया जाता है)। |
| 6. | मछलियां एवं मोलस्क | तालाब, झील, समुद्र, नाले आदि। | जाल, चिमटी, जार, टीन | पहले गर्म पानी में मैग्नीशियम सल्फेट के घोल में और बाद में 10% फारमेलीन में। |
| 7. | मेंढ़क | गीले स्थानों में, तालाबों नदी के किनारे | चिमटी, जार आदि | 8% फारमेलीन का घोल |
| 8. | रेप्टाइल वर्ग के प्राणी | पेड़ों, झाड़ियों, तालाबों, नदियों, घरों आदि। | जार आदि में | 70% एल्कोहल अथवा 8% एल्कोहल का अथवा इंजेक्शन लगाकर |
| 9. | चिड़िया | सभी जगह पर | पिंजरों में | 7% फॉरमेलीन का घोल |

## 2.3 वनस्पति नमूनों का संग्रहण एवं संरक्षण

### (Collection and Preservation of Plant Specimens)

वनस्पतियों को सुरक्षित रखना जीवों के अपेक्षाकृत सरल है। पौधों के नमूनों को 4% फारमेंल्डिहाइड के घोल में सुरक्षित रखा जा सकता है परन्तु यह घोल पौधों के रंग को उड़ा देता है। पौधे के रंग की सुरक्षा के लिए हमें निम्नलिखित घोल का प्रयोग करना चाहिए–

| | | |
|---|---|---|
| 50% अल्कोहल | – | 90 घन सैं. मी. |
| 40% फॉरमेलीन | – | 5 घन सैं. मी. |

| | | |
|---|---|---|
| ग्लिसरीन | – | 2.5 घन सैं. मी. |
| ग्लेशियल एसीटिक एसिड़ | – | 2.5 घन सैं. मी. |
| कॉपर क्लोराइड | – | 10 ग्राम |
| यूरेनियम नाइट्रेट | – | 1.5 ग्राम |

फलों को सुरक्षित रखने के लिए निम्नलिखित घोल का उपयोग करना चाहिए–

| | | |
|---|---|---|
| डिस्टिलड जल | – | 400 घन सै. मी. |
| जिंक क्लोराइड | – | 200 ग्राम |
| फारमेलीन | – | 100 घन सै. मी. |
| ग्लिसरीन | – | 100 घन सै. मी. |

**अपनी प्रगति जांचिए**

(i) केंचुओं एवं मछलियों को किस घोल में सुरक्षित रखा जाता है?

(ii) पौधों को फारमेल्डीहाइड के घोल में रखने पर क्या हानि होती है?

## 2.4 सारांश

जीव विज्ञान संग्रहालय में जीवों एवं वनस्पतियों के नमूनों को सुरक्षित रखा जाता है जिससे विद्यार्थी उनका अध्ययन कर सकें। जीवों का संरक्षण करके उनके शरीर को गलने–सड़ने से बचाया जाता है। विभिन्न जीवों को सुरक्षित रखने के लिए विभिन्न रसायनिक पदार्थों के घोल का प्रयोग किया जाता है। इनमें से फार्मेलीन प्रमुख है। इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप विभिन्न जीवों को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक रसायनिक घोलों के सम्बन्ध में जान चुके हैं।

**आदर्श उत्तर**

(i) केंचुओं को 5% फार्मेलीन के घोल में एवं मछलियों को पहले गर्म पानी में मैग्नीशियम सल्फेट के घोल में तथा बाद में 10% फार्मेलीन के घोल में रखा जाता है।

(ii) पौधों को फारमेल्डीहाइड के घोल में रखने पर उनका रंग उड़ जाता है।

## 2.5 मुख्य शब्द

**संरक्षण:** वह प्रक्रिया जिसके द्वारा किसी वस्तु/जीव/शरीर के भाग को लम्बे समय एक ही अवस्था में रखा जा सकता है और गलने–सड़ने से बचाया जा सकता है।

## 2.6 संन्दर्भ ग्रन्थ

**छिकारा, एम. एस. एवं शर्मा, एस.–** 'Teaching of Biology', Parkash Brothers, Ludhiana, 1982.

**सूद, जे. के.** – 'New Directions in Science Teaching' Kohli Publishers, Chandigarh, 1989.

# इकाई-4 (c)

# अध्याय–1: पाठ-प्रस्तावना कौशल

# (Skill of Introducing the lesson -Set Induction)

**उद्देश्य :**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि:

- पाठ–प्रस्तावना कौशल के घटकों का वर्णन कर सकें।
- शिक्षण कौशल से सम्बन्धित अनुसूचियों के बारे में बता सकें।
- पाठ–प्रस्तावना कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची का प्रयोग कर सकें।
- प्रस्तावना कौशल पर आधारित सूक्षम पाठ योजना बना सकें।

**संरचना :**

1.1 प्रस्तावना
1.2. पाठ–प्रस्तावना कौशल के घटक
1.3 शिक्षण कौशल के अध्ययन से सम्बन्धित अनुसूचियां
1.4 पाठ–प्रस्तावना कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची
1.5 पाठ–प्रस्तावना कौशल सम्बन्धी मूल्यांकन अनुसूची
1.6 प्रस्तावना कौशल पर आधारित आदर्श सूक्ष्म–पाठ योजना
1.7 सारांश
आदर्श उत्तर
1.8 मुख्य शब्द
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

## 1.1 प्रस्तावना

शिक्षण एक कला है और इस कला के क्रियात्मक अभ्यास के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापकों एवं संभावित अध्यापकों को शिक्षण कार्य से सम्बन्धी विभिन्न कौशलों का ज्ञान करवाया जाए। प्रस्तुत यूनिट 4 के भाग (c) में आप कुछ शिक्षण कौशलों का अध्ययन करेंगें सूक्ष्म शिक्षण, शिक्षण का वह सरलीकृत लघु रूप है जिसमें किसी अध्यापक द्वारा किन्हीं पांच विद्यार्थियों के समूह को 5–6 मिनट की अल्प–अवधि में पाठ्यक्रम की एक छोटी इकाई का शिक्षण प्रदान किया जाता है। इस प्रकार की परिस्थिति, किसी अनुभवी अथवा अनुभवहीन अध्यापक को नवीन शिक्षण–कौशलों का अर्जन करने और पूर्व अर्जित कौशलों में सुधार लाने के लिए उपयोगी अवसर प्रदान करती है। शिक्षण कौशलों के सम्बन्ध में विभिन्न अनुसंधान किये गए हैं और उनके आधार पर विभिन्न शिक्षण कौशलों की पहचान की गई है।

ऐलन और रॉयन (Allen and Ryan, 1969) ने 14 शिक्षण कौशलों के नाम बताएं हैं जबकि बोर्ग और उसके सहयोगियों (Borg et. al, 1970) के अनुसार कुल 18 शिक्षण कौशल हैं। भारत में बड़ोदा विश्वविद्यालय के उच्चशिक्षा केन्द्र (CASE) में किये गए अनुसंधानों के आधर पर पासी (Passi 1976) ने शिक्षण कौशलों की संख्या 21 निर्धारित की है। जबकि जंगीरा और उसके संहयोगियों (Jangira et al, 1979) ने 20 कौशल बताए हैं। इस इकाई में आप इन शिक्षण कौशलों में से मुख्य पांच कौशलों का अध्ययन करेंगे। ये कौशल हैं–पाठ प्रस्तावना कौशल, प्रश्न कौशल, दष्टान्त कौशल, व्याख्या कौशल एवं उद्दीपक परिवर्तन कौशल। प्रस्तुत अध्याय पाठ–प्रस्तावना कौशल अथवा विन्यास प्रेरणा कौशल से सम्बन्धित है।

## 1.2 पाठ प्रस्तावना कौशल के घटक (Components of Skill of Introducing the Lesson)

पाठ–प्रस्तावना कौशल से अभिप्राय उस योग्यता से है जिसकी सहायता से अध्यापक पाठ को प्रभावशाली ढंग से प्रारंभ कर सकता है। शिक्षण–अधिगम को प्रभावपूर्ण उद्देश्यपूर्ण एवं सफल के लिये यह आवश्यक है कि पाठ को उचित रूप से प्रारम्भ किया जाए। विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने एवं पाठ में उनकी रुचि बनाये रखने के लिए भी पाठ को उचित रूप से प्रस्तावित किया जाना आवश्यक है। अध्यापक पाठ–प्रस्तावना के लिये विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान, सम्बन्धित साधनों आदि का प्रयोग करता है और असम्बन्धित व अस्पष्ट कथनों के प्रयोग से बचता है। एक अच्छी पाठ–प्रस्तावना के लिये अध्यापक अपनी कल्पना–शक्ति, अनुभव एवं सजनात्मकता के आधार पर क्रियाओं का निर्धारण कर सकता है। पाठ–प्रस्तावना कौशल को विन्यास प्रेरणा कौशल भी कहा जाता है क्योंकि इसमें विद्यार्थियों से मानसिक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

इसके मुख्य घटक निम्नलिखित हैं–

1. **विद्यार्थियों का पूर्व ज्ञान- (Previous knowledge of the students):** पूर्व ज्ञान से अभिप्राय उस ज्ञान से है जो विद्यार्थी पाठ आरम्भ होने से पूर्व रखते हैं। इसे विद्यार्थियों का आरम्भिक व्यवहार (Entering Behaviour) भी कहा जाता है। अध्यापक के लिये विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान का पता लगाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिस विषय से सम्बन्धित शिक्षण क्रियाएं आयोजित की जानी हैं, उस विषय में विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान को जानने के लिये अध्यापक विशिष्ट युक्तियों एवं प्रविधियों का प्रयोग करता है। पूर्व ज्ञान को जानने के पश्चात उसे नवीन ज्ञान से सम्बन्धित करने का प्रयास किया जाता है। इस कार्य को करने के लिए अध्यापक कक्षा में उचित परिस्थितियों का निर्माण करता है और यदि आवश्यक हो तो अपनी पाठ–योजना, शिक्षण विधि, युक्तियों आदि में भी सुधार लाता है।

2. **अध्यापक कथनों एवं शिक्षण-उद्देश्यों में सम्बन्ध (Relationship between Teacher statements and Teaching objectives):** पाठ को प्रारम्भ करने के लिये अध्यापक जिन कथनों का प्रयोग करता है वे कथन विषय–वस्तु से सम्बन्धित होने चाहिएं और उस विषय–वस्तु का संबंध पूर्व निर्धारित शिक्षण उद्देश्यों से होना चाहिए। यदि अध्यापक असम्बन्धित कथनों का प्रयोग करता है तो पाठ की प्रस्तवाना अरुचिकर हो सकती है।

3. **शिक्षण उद्देश्य एवं साधन (Teaching objectives and Devices):** पाठ की प्रस्तावना को प्रभावशाली बनाने के लिए अध्यापक कक्षा में विभिन्न सहायक सामग्री एव साधनों का प्रयोग कर सकता है। इन साधनों का चयन शिक्षण उद्देश्यों तथा विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप किया जाना चाहिए। ये साधन निम्न प्रकार के हो सकते हैं–

(i) प्रश्न पूछना (Questioning)

(ii) कहानी सुनाना (Story Telling)

(iii) व्याख्यान, विवरण देना (Lecturing, Description)

(iv) उदाहरणों, उपमाओं आदि का प्रयोग (Use of Examples Analogies etc)

(v) दश्य–श्रव्य साधनों का प्रयोग (Use of Audio-Visual Aids)

(vi) प्रयोग एवं प्रदर्शन करना (Experimentation & Demonstration)

(vii) नाटक (Drama)

4. **उचित क्रम (Proper sequence):** पाठ की प्रस्तावना के मुख्य बिन्दुओं में तर्कसंगत क्रम होना चाहिए। मुख्य बिन्दुओं काउचित क्रम पाठ्य–वस्तु को व्यवस्थित रूप देने एवं विद्यार्थियों के विचारों को संगठित करने में सहायता प्रदान करता है। इससे विद्यार्थी पाठ्य–वस्तु को सरलतापूर्वक समझ सकते हैं। यदि प्रस्तावना में प्रयोग किये गए विचारों, कथनों, प्रश्नों, क्रियाओंआदि का क्रम तर्कसंगत नहीं होगा तो इससे विद्यार्थियों की बोधगम्यता में अवरोध उत्पन्न हो जाता है।

5. **प्रस्तावना की अवधि (Duration of Introduction):** पाठ प्रस्तावना की अवधि न तो अधिक लम्बी होनी चाहिए और न ही अधिक छोटी। प्रस्तावना की अवधि इतनी होनी चाहिए कि विद्यार्थियों को अभिप्रेरित किया जा सके। इससे विद्यार्थी नवीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए उत्सुक हो जाते हैं और विषय–वस्तु में उनकी रुचि बनी रहती है। प्रस्तावना के दौरान अध्यापक को निरर्थक बातों से बचना चाहिए।

## 1.3 शिक्षण कौशल के अध्ययन से सम्बन्धित अनुसूचियां (Schedules Related with Teaching Skills)

प्रत्येक शिक्षण कौशल के अध्ययन के लिए निम्न दो प्रकार की अनुसूचियों का प्रयोग किया जाता है–

1. निरीक्षण अनुसूची (Observation Schedule)
2. मूल्यांकन अनुसूची (Evaluation Schedule)

1. **निरीक्षण अनुसूची (Observation Schedule):** निरीक्षण असुसूची से अभिप्राय उस अनुसूची से है जिसमें निरीक्षक छात्राध्यापक द्वारा किसी विशिष्ट कौशल के घटक व्यवहारों से सम्बन्धित आवत्ति अंकित करता है। आवत्ति का अंकन टैली (Tally) लगा कर किया जाता है। निरीक्षक प्रत्येक मिनट में घटक व्यवहारों की आवत्ति का अंकन टैलीयां (Tallies) लगा कर करता है। इस अनुसूची में छात्राध्यापक एवं निरीक्षक का नाम लिखा जाता है। इस अनुसूची के आधार पर शिक्षण/पुनः शिक्षण के सम्बन्ध में निर्णय किया जाता है।

2. **मूल्यांकन अनुसूची (Evaluation Schedule):** इस अनुसूची में छात्राध्यापक के व्यवहार का मूल्याकंन किया जाता है जिससे किसी विशिष्ट कौशल के विकास सम्बन्धी निर्णय लिया जा सके। दूसरे शब्दों में, मूल्यांकन अनुसूची का प्रयोग यह ज्ञात करने के लिए किया जाता है कि छात्राध्यापक ने किसी कौशल में कितनी दक्षता प्राप्त की है?

   मूलयांकन अनुसूची में भी छात्राध्यापक एवं निरीक्षक का नाम लिखा जाता है। इस अनुसूची के आधार पर भी शिक्षण/पुनः शिक्षण के सम्बन्ध में निर्णय लिया जाता है। इस अनुसूची में 7–बिन्दुओं वाली मापनी (7-point Rating Scale) का प्रयोग किया जाता है। इसमें रेटिंग के लिए 0–6 तक अंक होते है। ये सभी अंक घटक व्यवहारों के उपयोग की सीमा प्रदर्शित करते हैं। अंक '0' अत्यन्त निकृष्ट प्रदर्शन अर्थात् निम्नतम सफलता का सूचक है तथा अंक '6' उत्कृष्ट प्रदर्शन अर्थात् अधिकतम सफलता का सूचक है। निरीक्षक द्वारा विभिन्न घटक व्यवहारों की आवति के आधार पर उनका गुणात्मक मूल्यांकन किया जाता है और मूलयांकन के आधार पर छात्राध्यापक को प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है।

## 1.4 पाठ प्रस्तावना (विन्यास प्रेरणा) कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची (Observation Schedule for Skill of Introducing the Lesson )

सं. अध्यापक अनुक्रमांक–

कक्षा – सत्र–शिक्षण/ पुनः शिक्षण

विषय – दिनांक –

उपविषय निरीक्षक –

प्रस्तुत निरीक्षण अनुसूची का प्रयोग यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि छात्राध्यापक ने विन्यास प्रेरणा कौशल का प्रयोग कितनी सफलता से किया है।

| **घटक (Components)** | **आवत्ति टैलियां (Tallies)** | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 |
| 1. विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान का प्रयोग किया गया।<br>2. कथनो का विषय–वस्तु और उद्देश्यों से सम्बन्ध था।<br>3. विचारों, प्रश्नों तथा कथनों में उचित क्रम था।<br>4. पाठ प्रस्तावना की अवधि उपयुक्त थी।<br>5. उद्देश्यों के अनुसार साधनों का प्रयोग किया गया। | | | | | | | | | | |

## 1.5 प्रस्तावना कौशल सम्बन्धी मूल्यांकन अनुसूची (रेटिंग स्केल)
## (Evaluation schedule (Rating Scale) for the skill of Introducing the Lesson)

कक्षा – सं. अ. अनुक्रमांक –

विषय – सत्र–शिक्षण/पुनः शिक्षण

उपविषय– दिनांक –

निरीक्षक –

| घटक (Components) | रेटिंग | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | अत्यंत निकृष्ट | निकृष्ट | निम्न | औसत | उत्तम | अत्युत्तम | उत्कृष्ट |
| 1. विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान का समुचित प्रयोग किया गया। | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 2. कथनों का विषय–वस्तु और उद्देश्यों से उचित संबंध था। | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 3. विचारों, प्रश्नों तथा कथनों में उचित क्रम था। | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 4. पाठ प्रस्तावना की अवधि उपयुक्त थी। | | | | | | | |
| 5. उद्देश्यों के अनुरूप उपयुक्त साधनों का प्रयोग किया गया। | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |

## 1.6 प्रस्तावना कौशल पर आधारित आदर्श सूक्ष्म पाठ-योजना
## (Model Micro Lesson Plan based on skill of Introducing the Lesson)

विषय –जीव विज्ञान कक्षा–छठी

उपविषय – हमारे चारों ओर के पदार्थ समय – 6 मिनट

अध्यापक क्रिया – इस कक्षा में उपस्थित वस्तुओं के नाम बताओ।

विद्यार्थी क्रिया – बैंच, मेज, कुर्सी, चॉक, डस्टर, पंखा आदि।

अध्यापक क्रिया – इन वस्तुओं के अतिरिक्त कक्ष में क्या उपस्थित है?

विद्यार्थी क्रिया – अध्यापक, विद्यार्थी, सूक्ष्म जीव आदि।

अध्यापक क्रिया – आप के घर में कौन–कौन सी वस्तुएं हैं?

विद्यार्थी क्रिया – टी.वी., फ्रिज, मेज़, पलंग, सोफा आदि।

अध्यापक क्रिया – आप के घर में उपस्थित प्राणियों के नाम बताइये।

विद्यार्थी क्रिया – मम्मी, पापा, दादी, दादा, भाई–बहन टॉमी आदि।

अध्यापक क्रिया – स्कूल के बाग में उपस्थित पदार्थों के नाम बताओ।

विद्यार्थी क्रिया – पेड़, पौधे, फूल, फल, पत्थर, घास, घोंसला, बैंच, फव्वारा आदि।

अध्यापक क्रिया – बाग में उपस्थित कुछ जीवों के नाम बताओ।

विद्यार्थी क्रिया – पक्षी, तितली, मधुमक्खी, मेंढ़क, पौधे आदि।

अध्यापक क्रिया – पत्थर और पौधे में क्या अन्तर है?

विद्यार्थी क्रिया – पत्थर का रंग भूरा, लाल या सफेद होता है जबकि पौधे हरे रंग के होते हैं।

अध्यापक क्रिया – इसके अतिरिक्त पत्थर और पौधे में क्या अंतर होता है ?

विद्यार्थी क्रिया – इस प्रश्न के पूछे जाने पर विद्यार्थियों की विचार प्रक्रिया तेज़ हो जाएगी। यह संभव है कि विद्यार्थी वांछित अनुक्रिया नहीं कर पायें। इस स्थिति में अध्यापक उपविषय की घोषणा करेगा–

**अपनी प्रगति जांचिए**

(i) पाठ प्रस्तावना कौशल के विभिन्न घटकों का वर्णन कीजिए।

(ii) प्रस्तवाना कौशल पर आधारित एक सूक्ष्म पाठ योजना बनाइये।

## 1.7 सारांश

पाठ प्रस्तावना कौशल अथवा विन्यास प्रेरणा कौशल से अभिप्राय उस योग्यता से है जिसकी सहायता से अध्यापक पाठ को प्रभावशाली ढ़ंग से प्रारम्भ कर सके। पाठ प्रस्तावना के लिए अध्यापक विद्यार्थियों के पूर्वज्ञान, सम्बन्धित साधनों आदि का प्रयोग करता है। पाठ प्रस्तावना कौशल के पांच घटक हैं – विद्यार्थियों का पूर्व ज्ञान, अध्यापक कथन एवं शिक्षण–उद्देश्यों में संबंध, शिक्षण उद्देश्य एवं साधन, उचित क्रम, प्रस्तावना की अवधि। अध्यापक ने इन घटक व्यवहारों का उपयोग कितनी कुशलता एवं प्रभावपूर्ण ढ़ंग से किया है, इसका निरीक्षण करके मूल्याकंकन अनुसूची में रेटिंग की जाती है। अर्थात् अध्यापक द्वारा घटक व्यवहारों के प्रयोग के आधार पर उसका गुणात्मक मूल्यांकन किया जाता है और यह ज्ञात किया जाता है कि कौशल का विकास किस सीमा तक हुआ है।

**आदर्श उत्तर**

(i) कृपया 1.2 में देखें।

(ii) कृपया 1.6 में देखें।

## 1.8 मुख्य शब्द

**सूक्ष्म शिक्षणः** शिक्षण क्रिया का सरल व लघु रूप जिसे थोड़े से विद्यार्थियों (5–6) की कक्षा में थोड़े समय (5–6 मिनट) के लिए एक संप्रत्यय और एक शिक्षण कौशल के अभ्यास तक सीमित रखा जाता है।

**शिक्षण कौशलः** वे शिक्षण क्रियाएं अथवा व्यवहार स्वरूप जो छात्रों के अधिगम को सुगम बना सकें और उनमें अपेक्षित व्यवहार–परिवर्तन ला सकें।

## 1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

Jangira, N.K. & Singh, Ajit - 'Core Teaching skill : The Micro-teaching Approach, New Delhi : NCERT, 1983.

Passi, B.K. 'Becoming Better Teacher : Micro-teaching Approach, Ahmedabad, Sahitya Mudranalya, 1976.

Singh, L.C. -' Micro Teaching : An innovation in eacher Education' New Delhi, Department of Teacher Education, NCERT, 1977

शर्मा, आर. ए. – 'शिक्षण–अधिगम के मूल तत्व', लायल बुक डिपो, मेरठ, 1989.

# इकाई-4 (b)

# अध्याय-2: नमूनों का संग्रहण एवं संरक्षण

# (Collection and Preservation of Specimens)

**उद्देश्य :**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि:

- जन्तु नमूनों के संग्रहण एवं संरक्षण की विधि बता सकें।
- वनस्पति नमूनों के संग्रहण एवं संरक्षण की विधि बता सकें।

**संरचना :**

2.1 प्रस्तावना
2.2 जन्तु नमूनों का संग्रहण व संरक्षण
2.3 वनस्पति नमूनों का संग्रहण व संरक्षण
2.4 सारांश
आदर्श उत्तर
2.5 मुख्य शब्द
2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

## 2.1 प्रस्तावना

जीव विज्ञान शिक्षक को जीवों एवं वनस्पतियों को एकत्रित करने, उगाने एवं सुरक्षित रखने के उपायों का ज्ञान होना चाहिए। यद्यपि संग्रहालय में विभिन्न प्रकार के जीवों तथा पौधों को संग्रहित करके रखा जाता है तथापि उनकी सुरक्षा पर ध्यान देना उतना ही आवश्यक है अन्यथ एकत्रित की गई सामग्री नष्ट हो सकती है। इस अध्याय में हम विभिन्न प्रकार के पौधों तथा जीवों को संग्रहित एवं संरक्षित करने की विधि का अध्ययन करेंगे।

## 2.2 जन्तु नमूनों का संग्रहण एवं संरक्षण

### (Collection and Preservation of Animal Specimens)

| | जीव | पाये जाने वाले स्थान | उपकरण | सुरक्षित रखने के लिए रसायन |
|---|---|---|---|---|
| 1. | प्रोटोजोआ | तालाब, पोखर, गड्ढे, | जार, टीन के डब्बे आदि। | 10% फारमेलीन का घोल |
| 2. | केंचुए | गीले स्थानों में | चिमटी, जार आदि | 5% फारमेलीन का घोल |
| 3. | सेन्टीपीड़ एवं मिलीपीड़ | जंगलों में पत्थरों व लकड़ियों के नीचे | चिम्टी, जार टीन के डिब्बे आदि | कार्ल का घोल (Alcohol कार्ल का घोल 95%, Formalin 40%, जल+ग्लेसियल एसीटिक अम्ल) |
| 4. | केकड़ा तथा अन्य जलीय क्रस्टेशिया | तालाब, नाले, झील, पोखर आदि से | जाल, जार, चिमटी आदि | 8% एल्कोहल या फोरमेलीन |
| 5. | कीट | सभी स्थानों में | जाल, चिमटी, जार, डिब्बे आदि कीट संग्रह करने की बोतल | साइनाइड ऐल्कोहल या कार्ल के घोल में कुछ देर रखें और 8% ऐल्कोहल में स्थानान्तरित करें। (छोटे कीटों का शुष्क परिरक्षण किया जाता है)। |
| 6. | मछलियां एवं मोलस्क | तालाब, झील, समुद्र, नाले आदि। | जाल, चिमटी, जार, टीन | पहले गर्म पानी में मैग्नीशियम सल्फेट के घोल में और बाद में 10% फारमेलीन में। |
| 7. | मेंढ़क | गीले स्थानों में, तालाबों नदी के किनारे | चिमटी, जार आदि | 8% फारमेलीन का घोल |
| 8. | रेप्टाइल वर्ग के प्राणी | पेड़ों, झाड़ियों, तालाबों, नदियों, घरों आदि। | जार आदि में | 70% एल्कोहल अथवा 8% एल्कोहल का अथवा इंजेक्शन लगाकर |
| 9. | चिड़िया | सभी जगह पर | पिंजरों में | 7% फॉरमेलीन का घोल |

## 2.3 वनस्पति नमूनों का संग्रहण एवं संरक्षण

### (Collection and Preservation of Plant Specimens)

वनस्पतियों को सुरक्षित रखना जीवों के अपेक्षाकृत सरल है। पौधों के नमूनों को 4% फारमेंल्डिहाइड के घोल में सुरक्षित रखा जा सकता है परन्तु यह घोल पौधों के रंग को उड़ा देता है। पौधे के रंग की सुरक्षा के लिए हमें निम्नलिखित घोल का प्रयोग करना चाहिए–

| | | |
|---|---|---|
| 50% अल्कोहल | – | 90 घन सैं. मी. |
| 40% फॉरमेलीन | – | 5 घन सैं. मी. |

| | | |
|---|---|---|
| ग्लिसरीन | – | 2.5 घन सैं. मी. |
| ग्लेशियल एसीटिक एसिड़ | – | 2.5 घन सैं. मी. |
| कॉपर क्लोराइड | – | 10 ग्राम |
| यूरेनियम नाइट्रेट | – | 1.5 ग्राम |

फलों को सुरक्षित रखने के लिए निम्नलिखित घोल का उपयोग करना चाहिए–

| | | |
|---|---|---|
| डिस्टिलड जल | – | 400 घन सै. मी. |
| जिंक क्लोराइड | – | 200 ग्राम |
| फारमेलीन | – | 100 घन सै. मी. |
| ग्लिसरीन | – | 100 घन सै. मी. |

**अपनी प्रगति जांचिए**

(i) केंचुओं एवं मछलियों को किस घोल में सुरक्षित रखा जाता है?

(ii) पौधों को फारमेल्डीहाइड के घोल में रखने पर क्या हानि होती है?

## 2.4 सारांश

जीव विज्ञान संग्रहालय में जीवों एवं वनस्पतियों के नमूनों को सुरक्षित रखा जाता है जिससे विद्यार्थी उनका अध्ययन कर सकें। जीवों का संरक्षण करके उनके शरीर को गलने–सड़ने से बचाया जाता है। विभिन्न जीवों को सुरक्षित रखने के लिए विभिन्न रसायनिक पदार्थों के घोल का प्रयोग किया जाता है। इनमें से फार्मेलीन प्रमुख है। इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप विभिन्न जीवों को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक रसायनिक घोलों के सम्बन्ध में जान चुके हैं।

**आदर्श उत्तर**

(i) केंचुओं को 5% फार्मेलीन के घोल में एवं मछलियों को पहले गर्म पानी में मैग्नीशियम सल्फेट के घोल में तथा बाद में 10% फार्मेलीन के घोल में रखा जाता है।

(ii) पौधों को फारमेल्डीहाइड के घोल में रखने पर उनका रंग उड़ जाता है।

## 2.5 मुख्य शब्द

**संरक्षण:** वह प्रक्रिया जिसके द्वारा किसी वस्तु/जीव/शरीर के भाग को लम्बे समय एक ही अवस्था में रखा जा सकता है और गलने–सड़ने से बचाया जा सकता है।

## 2.6 संन्दर्भ ग्रन्थ

**छिकारा, एम. एस. एवं शर्मा, एस.–** 'Teaching of Biology', Parkash Brothers, Ludhiana, 1982.

**सूद, जे. के.** – 'New Directions in Science Teaching' Kohli Publishers, Chandigarh, 1989.

# इकाई-4 (c)

# अध्याय-2: प्रश्न कौशल

# (Skill of Questioning)

**उद्देश्य :**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि:

- प्रश्न कौशल के महत्व का वर्णन कर सकें।
- अच्छे प्रश्नों की विशेषताएं बता सकें।
- प्रश्नों के स्वरूप की व्याख्या कर सकें।
- प्रश्न करने की पद्धति का वर्णन कर सकें।
- प्रश्न कौशल के घटकों की सूची बना सकें।
- प्रश्न कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची का प्रयोग कर सकें।
- प्रश्न कौशल सम्बन्धी मूल्यांकन अनुसूची का प्रयोग कर सकें।

**सरंचना:**

2.1 प्रस्तावना
2.2 अच्छे प्रश्नों की विशेषताएं
2.3 प्रश्नों का स्वरूप
2.4 प्रश्न करने की पद्धति
2.5 प्रश्न कौशल के घटक
2.6 प्रश्न कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची
2.7 प्रश्न कौशल सम्बन्धी मूल्यांकन अनुसूची
2.8 सारांश
आदर्श उत्तर
2.9 मुख्य शब्द
2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

## 2.1 प्रस्तावना

अब तक हम सूक्ष्मशिक्षण कौशलों एवं पाठ प्रस्तावना कौशल के सम्बन्ध में सामान्य जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम प्रश्न कौशल का अध्ययन करेंगे।

शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में प्रश्न पूछने की कला का विशेष महत्व है। इसकी सफलता विद्यार्थियों से अपेक्षित उत्तर प्राप्त करने पर निर्भर करती है। विद्यार्थियों से प्राप्त उत्तरों के आधार पर ही शिक्षण की दिशा निर्धारित की जाती है। कोई भी अध्यापक जो प्रश्न करने के कौशल में निपुण नहीं होता, वह शिक्षण और निर्देशन में कभी सफल नहीं हो सकता। शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के सभी स्तरों पर प्रश्न कौशल का महत्वपूर्ण स्थान है। विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान की परीक्षा, पूर्व ज्ञान एवं नवीन ज्ञान में सम्बन्ध स्थापित करने, पुनरावत्ति व मूल्यांकन में प्रश्नों और प्रश्न पूछने का विशेष महत्व है। प्रसिद्ध शिक्षाविद् मेकनी ने कहा है कि अच्छे ढ़ंग से प्रश्न करने की प्रयत्नपूर्ण प्रक्रिया द्वारा एक प्रतिभासम्पन्न अध्यापक अपने शिक्षा–यात्री को अपरिचित प्रदेशों में से निकालकर अभीष्ट लक्ष्य तक ले जा सकता है।

प्रश्न कौशल के घटक व्यवहारों को जानने से पूर्व यह आवश्यक है कि अध्यापक प्रश्नों के प्रकार, विशेषताएं, स्वरूप आदि से परिचित हों क्योंकि प्रश्न कौशल के लिए अच्छे प्रश्न आधार रूप में कार्य करते हैं। यदि अध्यापक प्रश्नों की रचना अथवा चयन सही ढ़ंग से नहीं करता तो प्रश्न पूछने की क्रिया उसकी महत्वहीन हो सकती है और वह विद्यार्थियों से अपेक्षित उत्तर प्राप्त नहीं कर सकता।

## 2.2 अच्छे प्रश्नों की विशेषताएं
## (Characteristics of Good Questions)

1. अच्छा प्रश्न स्पष्ट होता है।
2. अच्छा प्रश्न सुनिश्चित होता है।
3. अच्छा प्रश्न सामान्य न होकर विशिष्ट होता है।
4. अच्छे प्रश्न में संक्षिप्त कथन होता है।
5. अच्छा प्रश्न विद्यार्थियों की मानसिक आयु, योग्यता तथा अनुभव के अनुरूप होता है।
6. अच्छा प्रश्न विचार प्रक्रिया को तेज़ करता है।
7. अच्छा प्रश्न ज्ञान के समन्वय में सहायक होता है।

## 2.3 प्रश्नों का स्वरूप
## (Form of Questions)

### 2.3.1 प्रश्न कैसे होने चाहिएं -

1. प्रश्नों की भाषा सरल होनी चाहिए।
2. प्रश्न स्पष्ट, संक्षिप्त ओर उपविषय से सम्बन्धित होने चाहिएं।
3. प्रश्न विद्यार्थियों की योग्यता तथा बौद्धिक स्तर के अनुरूप होने चाहिएं।
4. प्रश्न न तो अत्याधिक सरल हों और न हीं अत्याधिक कठिन हों।
5. दो प्रश्न एक साथ नहीं पूछे जाने चाहिएं।
6. प्रश्नों का स्वरूप यथासम्भव आकर्षक होना चाहिए।
7. प्रश्न ऐसे हों कि विद्यार्थियों को सोचने के लिए प्रोत्साहित करें और न कि अनुमान लगाने को।
8. प्रश्नों में सह–सम्बन्ध होना चाहिए।

### 2.3.2 प्रश्न कैसे न हों?

1. **सुझावात्मक प्रश्न (Suggestive Questions):** सुझावात्मक प्रश्नों से अभिप्राय ऐसे प्रश्नों से हैं जिनमें उत्तर सम्बन्धी सुझाव दिया जाता है। ऐसे प्रश्नों का उत्तर देते समय विद्यार्थियों को मानसिक श्रम नहीं करना पड़ता क्योंकि प्रश्न में ही उत्तर निहित होता है।

   उदाहरण –क्या अमीबा कभी नहीं मरता?, क्या हमारा ह्रदय 24 घण्टे काम करता रहता है?, क्या पक्षी घोंसलों में रहते हैं? आदि।

2. **अलांकारिक प्रश्न (Rhetorical Question):** अलंकारिक प्रश्नों से अभिप्राय ऐसे प्रश्नों से हैं जिनमें भाषा को अलंकारिकबना कर पूछा जाता है। इन प्रश्नों का कोई अर्थ नहीं होता।

   उदाहरण –जीव विज्ञान शिक्षण में पारिस्थितिक संतुलन (Ecological Balance) पढ़ाते समय ऐसा प्रश्न पूछने से 'प्रकृति से अच्छा संतुलन कौन बनाए रख सकता है?' कोई अर्थ नहीं निकलता।

3. **पुष्टिकारक प्रश्न (Corroborative Question):** ऐसे प्रश्नों का उद्देश्य अपनी कही हुई बात की पुष्टि करना होता है। अध्यापक कोई वक्तव्य देने के पश्चात पूछता है, ''है या कि नहीं?'' विद्यार्थी भी बिना सोचे–समझे प्रायः कह देते हैं ''हाँ जी'' इन प्रश्नों से यह ज्ञात नहीं होता कि विद्यार्थियों को बोध हुआ है या नहीं।

4. **प्रतिध्वन्यात्मक प्रश्न (Echo Questions):** प्रतिध्वन्यात्मक प्रश्न अभी–अभी पढ़ाये गये पाठ पर आधारित होते हैं और उनमें से उत्तर प्रतिध्वनित होते हैं। उदाहरण– ''वायु में 1/5 भाग ऑक्सीजन होती है। वायु में ऑक्सीजन की कितनी मात्रा होती है?'' ''जल का रसायनिक सूत्र $H_2O$ है। जल का रसायनिक सूत्र क्या है?'' प्रतिध्वन्यात्मक प्रश्न विद्यार्थियों को सोचने के लिये प्रोत्साहित नहीं करते। इसीलिए अध्यापक को ऐसे प्रश्न नहीं पूछने चाहिएं। अध्यापक को ऐसे प्रश्न पूछने चाहिएं जो विद्यार्थियों को सोचने एवं तर्कसंगत उत्तर देने के लिये प्रेरित करें।

5. **उत्तर उन्मुख प्रश्न (Leading Questions):** ऐसे प्रश्न जिनका उत्तर प्रश्न में ही होता है, उत्तर –उन्मुख प्रश्न कहलाते हैं। उदाहरण –क्या आप जानते हैं कि प्रकाश–संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा वायुमण्डल में आक्सीजन गैस छोड़ी जाती है? इस प्रश्न में उत्तर भी दिया गया है। ऐसे प्रश्नों को पूछने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

6. **इलिप्टिकल प्रश्न (Elliptical Questions):** ऐसे प्रश्न जिनमें एक अधूरा कथन होता है जिसे पूर्ण करके उत्तर प्राप्त हेाता है, इलिप्टिकल प्रश्न कहलाते हैं। उदाहरण –

   (i) आहार श्रंखला से अभिप्राय – – – – – – – – – –

   (ii) रक्त का मुख्य कार्य – – – – –– – – – –

अध्यापक को ऐसे प्रश्नों के स्थान पर निम्नलिखित रूप में प्रश्न पूछने चाहिएं

प्र. – आहार श्रंखला किसे कहते हैं?

प्र. – रक्त का मुख्य कार्य क्या हैं?

### 2.3.3 प्रश्नों के प्रकार (Suggestive Questions)

गाटो (Gato) ने अपनी पुस्तक 'Pupil's Questions' में प्रश्नों को निम्नलिखित आठ भागों में बांटा है –

1. स्मति प्रश्न (Memory Questions)
2. संगठनात्मक प्रश्न (Organisation Question)
3. तर्कात्मक प्रश्न (Reasoning Questions)
4. मूल्यांकनात्मक प्रश्न (Evaluative Questions)
5. निष्कर्षात्मक प्रश्न (Inference Questions)
6. समस्या प्रश्न (Problem Questions)

7. विश्लेषणात्मक प्रश्न (Analytical Questions)
8. विवेचनात्मक प्रश्न (Interpretation Questions)

विद्यार्थियों की अधिकतम सहभागिता प्राप्त करने के लिए 'प्रश्न पूछना' प्रभावशाली सिद्ध हो सकता हे। प्रश्न पूछने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रश्नों एवं अच्छे प्रश्नों की विशेषताओं को जानना आवश्यक है। प्रश्न अध्यापक–कथन को कम करते हैं और विद्यार्थी सहभागिता को बढ़ाते हैं। अच्छे प्रश्नों में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिएं –

1. अच्छा प्रश्न स्पष्ट होता है।
2. अच्छा प्रश्न संक्षिप्त होता है।
3. अच्छा प्रश्न सामान्य न होकर विशिष्ट होता है।
4. अच्छा प्रश्न पाठ्य–वस्तु से सम्बद्ध होता है।
5. अच्छा प्रश्न सुनिश्चित होता है।
6. अच्छा प्रश्न व्याकरण–संगत (Grammatically correct) होता है।
7. अच्छा प्रश्न ज्ञान के समन्वय में सहायक होता है।

## 2.4 प्रश्न करने की पद्धति (Method of Asking Questions)

अध्यापक को शिक्षण–अधिगम परिस्थितियों में प्रश्न पूछते समय निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए–

1. प्रश्न पूछते समय अध्यापक की आवाज़ स्पष्ट और इतनी ऊंची होनी चाहिए कि सभी विद्यार्थी उसे सुन सकें। यदि अध्यापक की आवाज़ स्पष्ट और ऊंची नहीं होगी तो हो सकता है विद्यार्थी प्रश्न को न समझ सकें।
2. प्रश्न पूछने की गति न तो बहुत धीमी और न ही बहुत तेज़ होनी चाहिए।
3. अध्यापक को कक्षा में पहले प्रश्न पूछना चाहिए और विद्यार्थियों को उत्तर देने के लिए बाद में कहना चाहिए। पहले प्रश्न पूछने से सभी विद्यार्थी एक साथ प्रश्न का उत्तर सोचने में व्यस्त होंगे। इसके विपरीत यदि केवल एक विद्यार्थी को पहले खड़ा करके उससे प्रश्न पूछा जायगा तो संभवतः सभी विद्यार्थी प्रश्न का उत्तर सोचने का प्रयत्न नहीं करेंगे।
4. प्रश्नों का उत्तर सोचने के लिए विद्यार्थियों को पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए। समय प्रश्नों के अनुसार दिया जाना चाहिए। वर्णनात्मक और सूचनात्मक प्रश्नों की अपेक्षा आलोचनात्मक, तुलनात्मक ओर विश्लेषणातमक प्रश्नों का उत्तर सोचने के लिए अधिक समय देना चाहिए।
5. प्रश्न पूछते समय अध्यापक की मुख–मुद्रा, एवं भाव–भंगिमा सकारात्मक एवं सहयोगात्मक होनी चाहिए।
6. प्रश्नों का कक्षा के सभी विद्यार्थियों में समान रूप से वितरण (distribution) होना चाहिए। प्रश्न पूछते समय किसी भी छात्र की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए और न ही किसी एक छात्र से बहुत अधिक प्रश्न पूछने चाहिएं। प्रश्न न तो बहुत अधिक मात्रा में और न ही बहुत कम मात्रा में पूछे जाने चाहिएं।
7. प्रश्न को तब तक नहीं दोहराना चाहिए जब तक अध्यापक को पूर्ण विश्वास न हो कि प्रश्न विद्यार्थियों की समझ में नहीं आया।
8. जहाँ तक संभव हो, 'क्या कोई यह बता सकता है' जैसी शैली का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
9. प्रश्न विद्यार्थियों के बौद्धिक स्तर के अनुसार करने चाहिएं। प्रश्न का उत्तर न देने की विद्यार्थी की असमर्थता को स्वीकार किया जाना चाहिए। अध्यापक में इतनी योग्यता होना आवश्यक है कि वह विद्यार्थी की क्षमतानुसार उससे प्रश्न करे, उसे सोचने का पर्याप्त समय दे और प्रयत्न करने पर भी यदि विद्यार्थी उत्तर न दे पाए तो उस पर समय व्यर्थ न करे।

## 2.5 प्रश्न कौशल के घटक (Components of Skill of Questioning)

प्रश्न कौशल के मुख्य घटक निम्नलिखित हैं–

(i) स्पष्ट आवाज

(ii) प्रश्न करने की गति

(iii) प्रश्नों की भाषा

(iv) प्रश्न का उत्तर सोचने में दिया गया समय

(v) प्रश्नों का कक्षा में वितरण

(vi) अध्यापक की मुख मुद्रा व भाव–भंगिमा

(vii) प्रश्नों का उत्तर

(viii) प्रश्नों का स्वरूप

## 2.6 प्रश्न कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची (Obsevation Schedule for Skill of Questioning)

कक्षा–

विषय–

उपविषय–

सं. अ.– अनुक्रमांक

सत्र– शिक्षण/पुनःशिक्षण

दिनांक–

निरीक्षक

प्रस्तुत निरीक्षण अनुसूची का प्रयोग यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि सं. अध्यापक ने प्रश्न कौशल का प्रयोग कितनी सफलतापूर्वक किया है।

| **घटक (Cmponents)** | **आवत्ति टैलियां** | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 |
| 1. प्रश्न पूछते समय अध्यापक की आवाज़ स्पष्ट थी। | | | | | | | | | | |
| 2. प्रश्नों की भाषा सरल थी। | | | | | | | | | | |
| 3. प्रश्न का उत्तर सोचने में दिया गया समय उपयुक्त था। | | | | | | | | | | |
| 4. प्रश्नों का कक्षा में वितरण समान था। | | | | | | | | | | |
| 5. अध्यापक की मुखमुद्रा व भाव भंगिमा सहयोगात्मक थी। | | | | | | | | | | |
| 6. प्रश्न विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप थे। | | | | | | | | | | |
| 7. प्रश्नों का स्वरूप उचित था। | | | | | | | | | | |

## 2.7 प्रश्न कौशल सम्बन्धी मूल्यांकन अनुसूची (Evaluation Schedule for skill of Questioning)

कक्षा –
विषय –
उपविषय –

सं. अ. अनुक्रमांक–
सत्र–शिक्षण/पुनः शिक्षण
दिनांक –
निरीक्षक –

| घटक (Components) | आवत्ति टैलियां (Tallies) | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | अत्यंत निकृष्ट | निम्न | औसत | उत्तम | अत्युत्तम | उत्कृष्ट निकृष्ट |
| 1. प्रश्न पूछते समय अध्यापक की आवज़ स्पष्ट थी। | | | | | | |
| 2. प्रश्नों की भाषा सरल थी। | | | | | | |
| 3. प्रश्नों का उत्तर सोचने में दिया गया समय उपयुक्त था। | | | | | | |
| 4. प्रश्नों का कक्षा में वितरण समान रूप से किया गया। | | | | | | |
| 5. अध्यापक की मुख मुद्रा व भाव भंगिमा सहयोगात्मक थी। | | | | | | |
| 6. प्रश्न विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप थे। | | | | | | |
| 7. प्रश्न का स्वरूप उचित था। | | | | | | |

### अपनी प्रगति जांचिए

(i) अच्छे प्रश्नों का स्वरूप कैसा होता है? वर्णन कीजिए।

(ii) प्रश्न कौशल के विभिन्न घटकों की सूची बनाइये।

(iii) प्रश्न कैसे नहीं होने चाहिएं?

## 2.8 सारांश

अब तक आप जान चुके हैं कि प्रश्न कौशल का शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के सभी स्तरों पर विशेष महत्व है। पाठ की प्रस्तावना में, व्याख्या में, पुनरावत्ति एवं मूल्यांकन में प्रश्न पूछने की कला को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। प्रश्न अच्छे होने चाहिएं। एक अच्छा प्रश्न स्पष्ट, सुनिश्चित, विशिष्ट, विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप एवं ज्ञान के समन्वय में सहायक होता है। प्रश्न पूछते समय अध्यापक की आवाज़ स्पष्ट, मुख–मुद्र व भाव भंगिमा सहयोगात्मक होनी चाहिए। प्रश्नों को कक्षा में समान रूप से वितरित करना चाहिए और प्रश्नों का उत्तर सोचने के लिए पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए।

**आदर्श उत्तर**

(i) अच्छे प्रश्न स्पष्ट, संक्षिप्त, उपविषय से सम्बन्धित तथा विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप होते हैं।

(ii) प्रश्न कौशल के विभिन्न घटक निम्नलिखित हैं–

स्पष्ट आवाज़, प्रश्न करने की गति, प्रश्नों की भाषा, प्रश्नों का स्तर, प्रश्नों का कक्षा में वितरण, प्रश्नों का स्वरूप एवं उत्तर सोचने में दिया गया समय

(iii) कृपया 2.4 में देखें

## 2.9 मुख्य शब्द

प्रश्न कौशल – वह योग्यता जिनके द्वारा अध्यापक विद्यार्थियों से उचित रूप से प्रश्न पूछता है और अपेक्षित उत्तर प्राप्त करता है।

## 2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

Jangira, N.K. and Singh, Ajit - 'core Teaching Skill : The Micro Teaching Approach, New Delhi : NCERT, 1983.

Passi, B.K. 'Becoming better Teacher : Micro Teaching Approach', Ahmedabad, Sahitya Mudranalya, 1976.

Singh, L.C. - 'Micro Teaching : An innovation in Teacher Education', New Delhi, Department of Teacher Edu., N.C.E.R.T, 1977

शर्मा, आर. ए. – 'शिक्षण–अधिगम के मूल तत्व', लायल बुक डिपो, मेरठ, 1989.

# इकाई-4 (c)

# अध्याय-4: व्याख्या कौशल

# (Skill of Explaining)

**उद्देश्य :**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि –

- व्याख्या कौशल का अर्थ बता सकें।
- व्याख्या कौशल के घटक व्यवहारों का वर्णन कर सकें।
- व्याख्या कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची का प्रयोग कर सकें।
- व्याख्या कौशल सम्बन्धी मूल्यांकन अनुसूची का प्रयोग कर सकें।
- व्याख्या कौशल पर आधारित सूक्ष्म पाठ योजना का निर्माण कर सकें।

**संरचना :**

4.1 प्रस्तावना
4.2 व्याख्या कौशल के घटक
4.3 व्याख्या कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची
4.4 व्याख्या कौशल सम्बन्धी मूल्यांकन अनुसूची
4.5 व्याख्या कौशल के अभ्यास के लिए आदर्श सूक्ष्म पाठ योजना
4.6 सारांश
आदर्श उत्तर
4.7 मुख्य शब्द
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

## 4.1 प्रस्तावना

पिछले अध्यायों में हम विभिन्न सूक्ष्म शिक्षण–कौशलों का अध्ययन कर चुके हैं। इस अध्याय में भी हम एक सूक्ष्म शिक्षण कौशल का अध्ययन करेंगे। प्रस्तुत अध्याय व्याख्या कौशल से सम्बन्धित है। जीव विज्ञान शिक्षण में व्याख्या कौशल का विशेष महत्व है क्योंकि इसका उपयोग जीव विज्ञान के जटिल संप्रत्ययो, जैविक प्रक्रियाओं, संरचनाओं आदि को स्पष्ट करने के लिए किया जाता है।

अध्यापक विद्यार्थियों को ज्ञान प्रदान करने एवं पाठ का बोध करवाने के लिए जिस कौशल का उपयोग करता है, उसे व्याख्या कौशल कहा जाता है। कक्षा शिक्षण का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन (Desirable chages) लाना होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अध्यापक कक्षा में विभिन्न विधियों, प्रविधियों तथा कौशलों का प्रयोग करता है जिससे विषय वस्तु को सरलतम रूप में प्रस्तुत किया जा सके और विद्यार्थियों की बोधगम्यता में वद्धि हो सके। इस प्रकार व्याख्या कौशल से अभिप्राय विषय–वस्तु को सरल रूप में प्रस्तुत करने तथा उसे ग्रहण करने योग्य बनाने के कौशल से है। व्याख्या कौशल का प्रयोग सभी विषयों में किया जाता है। जीव–विज्ञान शिक्षण में अध्यापक जटिल नियमों, जैविक प्रक्रियाओं, सरंचनाओं आदि को स्पष्ट करने के लिए इस कौशल का प्रयोग करता है। इसमें अध्यापक जीवों, पर्यावरण, शरीर एवं शारीरिक क्रियाओं से सम्बन्धित नवीन ज्ञान की व्याख्या करता है। अध्यापक विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान से नवीन ज्ञान को इस प्रकार जोड़ता है कि वे नवीन ज्ञान का सरलतापूर्वक बोध कर सकें।

## 4.2 व्याख्या कौशल के घटक (Components of the skill of Explaining)

जीव विज्ञान शिक्षण में किसी नियम, प्रक्रिया, संरचना आदि की व्याख्या करने के लिए अध्यापक द्वारा किये गए व्यवहारों को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है– वांछनीय तथा अवांछनीय व्यवहार। व्याख्या को प्रभावशाली बनाने के लिए अध्यापक को वांछनीय व्यवाहारों की आवत्ति में वद्धि करनी चाहिए और अवांछनीय व्यवहारों की आवत्ति में कमी करनी चाहिए।

### 4.2.1 वांछनीय व्यवहार (Desirable Behaviours)

(i) ***उपयुक्त प्रारम्भिक कथन का उपयोग (Use of Appropriate Starting Statement):*** किसी प्रत्यय, नियम आदि की व्याख्या से पूर्व अध्यापक स्पष्ट रूप से प्रारम्भिक कथन द्वारा यह घोषणा करता है क वह क्या पढ़ाने वाला है। इससे विद्यार्थी व्याख्या सुनने एवं समझने के लिए मानसिक रूप से तैयार हो जाते हैं। सामान्यतः प्रारम्भिक कथन एक वाक्य होता है परन्तु यदि प्रस्तावना लम्बी हो तो प्रारम्भिक कथन एक से अधिकभी हो सकते हैं। प्रारंभिक कथन विषय–वस्तु के अनुरूप होना चाहिए।

(ii) ***उपयुक्त निष्कर्ष कथन का उपयोग (Use of Appropriate Concluding Statement):*** किसी नियम, प्रत्यय आदि की व्याख्याके अन्त में सारांश व्यक्त करने अथवा निष्कर्ष प्रस्तुत करने के लिए निष्कर्ष कथन का उपयोग किया जाता है। निष्कर्ष कथन भी प्रारम्भिक कथन की भांति एक से अधिक हो सकते हैं। इसके द्वारा व्याख्या किये गए नियम, प्रत्यय आदि को एकीकृत रूप में व्यवस्थित कर लिया जाता है जिसे तत्कालिक संदर्भ में प्रयोग किया जा सकता है। निष्कर्ष कथन विषय–वस्तु के अनुरूप होना चाहिए।

(iii) ***व्याख्या सेतुओं का उपयोग (Use of Explaining Links):*** व्याख्या सेतुओं अथवा सेतु शब्दों से अभिप्राय उन संयोजक शब्दों से है जो कारणों, परिणामों, प्रयोजनों, साधनों, स्थान, समयक्रम आदि को स्पष्ट करते हैं। उदाहरण– क्योंकि, इसलिए, इसका, ताकि, अपितु परिणामस्वरूप, फिर भी, तात्पर्य, इससे पहले, इसके पश्चात, इसी प्रयोजन से, अर्थात्, फलस्वरूप आदि। व्याख्या सेतु कथनों में निरन्तरता एवं तारतम्यता बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं। जीव विज्ञान शिक्षण में अध्यापक को नियम, प्रत्यय आदि की व्याख्या करते समय व्याख्या सेतुओं का उचित उपयोग करना चाहिए।

(iv) ***आवश्यक बिन्दुओं का समावेश करना (Covering Essential Points):*** जीव विज्ञान शिक्षण में किसी नियम, प्रत्यय आदि की व्याख्या प्रभावशाली ढ़ंग से करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्यय से सम्बन्धित सभी आवश्यक बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाए और व्याख्या में उनका समावेश किया जाए।

(v) ***विद्यार्थियों का बोध परीक्षण (Testing Student's Understanding):*** किसी नियम, प्रत्यय आदि की व्याख्या के उपरान्त उसकी सफलता ज्ञात करने के लिए विद्यार्थियों का बोध परीक्षण किया जाता है। बोध परीक्षण में अध्यापक विद्यार्थियों से व्याख्या किए गए प्रत्यय आदि से सम्बन्धित प्रश्न पूछता है। विद्यार्थियों द्वारा दिये गए उत्तरों के आधार पर व्याख्या की प्रभावपूर्णता ज्ञात की जाती है। यदि अधिकांश विद्यार्थी स्पष्ट उत्तर देते हैं तो यह निष्कर्ष निकलता है कि व्याख्या उचित रूप से गई है।

### 4.2.2 अवांछनीय व्यवहार (Undesirable Behaviours)

(i) ***निरर्थक कथनों का प्रयोग (Use of Irrelevant Statements):*** निरर्थक कथन से अभिप्राय ऐसे कथन से है जो व्याख्या से सम्बन्धित नहीं होता और जिससे व्याख्या में कोई सहायता नहीं मिलती। ऐसे कथन अस्पष्टता एवं अव्यवस्था उत्पन्न करते हैं जिससे विद्यार्थियों को बोध करने में अवरोध उत्पन्न होता है। निरर्थक कथन विद्यार्थियों को उनके उद्देश्य से दूर कर देते हैं इसलिए अध्यापक को निरर्थक कथनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(ii) ***कथनों में निरन्तरता तथा तारतम्यता का अभाव (Lack of Fluency and Continuity in Statements):*** जीव विज्ञान शिक्षण में किसी नियम, प्रत्यय आदि की व्याख्या करते समय प्रयोग किये कथनों में निरन्तरता तथा तारतम्यता का अभाव नहीं होना चाहिए। निरन्तरता एवं तारतम्यता के अभाव से अभिप्राय प्रयोग किए गए कथनों में क्रम संबंधी कमी तथा पारस्परिक असम्बद्धता से है। यह अभाव विद्यार्थियों के बोध में अवरोध उत्पन्न करता है।

(iii) ***प्रवाहिकता का अभाव (Lack of Fluency):*** प्रवाहिकता से अभिप्राय स्वाभाविक गति एवं प्रवाह से है जिसमें किसी प्रकार की बाधा या अवरोध न हो। जीव विज्ञान शिक्षण में किसी प्रत्यय आदि की व्याख्या में जितने कथन प्रयोग में लाये जाएं उनमें प्रवाहिकता होनी चाहिए। यदि प्रवाहिकता का अभाव होगा तो अध्यापक व्यवहार में निम्नलिखित बातें देखने को मिल सकती हैं–

वह अधूरे व अपूर्ण वाक्य बोलता है।

वह स्पष्ट रूप से नहीं बोल पाता।

वह अनुपयुक्त शब्दों का प्रयोग करता है।

वह बोलते–बोलते बीच में अटक जाता है।

वह कथनों को बीच में ठीक करने का प्रयास करता है।

(iv) ***अनुपयुक्त शब्दावली, अस्पष्ट शब्दों तथा मुहावरों का प्रयोग (Use of Inappropriate Vocabulary, Vague Words and Phrases):*** इस घटक में निम्नलिखित बातें देखी जा सकती हैं–

अध्यापक द्वारा विद्यार्थियों की आयु एवं परिपक्वता स्तर से अधिक कठिन शब्दावली या अनुपयुक्त शब्दावली का प्रयोग।

अस्पष्ट शब्दावली का प्रयोग जिससे व्याख्या एवं विद्यार्थियों के बोध में अवरोध उत्पन्न होता है जैसे– मसलन, समझे या नहीं, हो सकता है, तुम जानते हो, आप देख सकते हैं आदि।

अनुपयुक्त मुहावरों का उपयोग।

## 4.3 व्याख्या कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची (Obsevation Schedule for the Skill of Explaining)

कक्षा–
विषय– जीव विज्ञान शिक्षण
उपविषय–

संभावित अध्यापक अनुक्रमांक
सत्र– शिक्षण/पुनः शिक्षण
दिनांक–
निरीक्षक

प्रस्तुत निरीक्षण अनुसूची का प्रयोग यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि सं. अध्यापक ने व्याख्या कौशल का प्रयोग कितनी सफलता से किया है। विभिन्न घटक व्यवहारों के प्रयोग के प्रति निर्णय करने के लिए टैलीयाँ (Tallies) लगाई जाती हैं। सं. अ. के व्यवहार का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करके निरीक्षक निम्नलिखित घटक व्यवहारों की आवत्ति का टंकन टैलियाँ लगाकर प्रत्येक मिनट के अन्तराल में करता है।

| **घटक (Components)** | **आवत्ति टैलियाँ** |
|---|---|
| A. **वांछनीय व्यवहार** | **1 2 3 4 5 6 7 8 9 10** |
| 1. उपयुक्त प्रारम्भिक कथन का उपयोग किया। | |
| 2. उपयुक्त निष्कर्ष कथन का उपयोग किया। | |
| 3. व्याख्या सेतुओं का उपयोग किया। | |
| 4. आवश्यक बिन्दुओं का समावेश किया गया। | |
| 5. विद्यार्थियों का बोध परीक्षण किया गया। | |
| B. **अवांछनीय व्यवहार** | |
| 1. निरर्थक कथनों का प्रयोग किया। | |
| 2. कथनों में निरन्तरता तथा तारतम्यता का अभाव था। | |
| 3. कथनों में प्रवाहिकता का अभाव था। | |
| 4. अनुपयुक्त शब्दावली अस्पष्ट शब्दों एवं मुहावरों का प्रयोग किया। | |

## 4.5 व्याख्या कौशल सम्बन्धी मूल्यांकन अनुसूची (Evaluation Schedule for Skill of Explaining)

कक्षा–
विषय– जीव विज्ञान शिक्षण
उपविषय–

संभावित अध्यापक अनुक्रमांक
सत्र– शिक्षण/पुनः शिक्षण
दिनांक–
निरीक्षक

प्रस्तुत मूल्यांकन अनुसूची – रेटिंग स्केल का प्रयोग यह जानने के लिए किया जाता है कि सं. अ. ने व्याख्या कौशल का उपयोग कितने प्रभावशाली ढ़ंग से किया है। 7–बिन्दु रेटिंग स्केल पर 0 से 6 तक अंक अंकित होते है। अंक '0' अत्यन्त निकृष्ट प्रदर्शन अर्थात् निम्नतम सफलता को प्रदर्शित करता है। निरीक्षण अनुसूची में निरीक्षक द्वारा लगाई गई टैलियों अर्थात् विभिन्न घटक व्यवहारों की आवत्ति के आधार पर उनका गुणात्मक मूल्यांकन किया जाता है और निम्न अनुमाप पर अंकित किया जाता है। इसके आधार पर सं. अ. को प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है।

| घटक (Components) | रेटिंग (Rating) | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | अत्यन्त निकृष्ट | निकृष्ट | निम्न | औसत | उत्तम | अति उत्तम | उत्कृष्ट |
| 1. उपयुक्त प्रारम्भिक कथन का उपयोग | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 2. उपयुक्त निष्कर्ष कथन का उपयोग | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 3. व्याख्या सेतुओं का उपयोग | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 4. आवश्यक बिन्दुओं का समावेश | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 5. विद्यार्थियों का बोध परीक्षण | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 6. सार्थक कथनों का प्रयोग | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 7. कथनों में निरन्तरता तथा तारतम्यता | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 8. कथनों में प्रवाहिकता | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 9. उपयुक्त शब्दावली, वाक्यों व मुहावरों का प्रयोग | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |

## 4.5 व्याख्या कौशल के अभ्यास के लिए आदर्श सूक्ष्म पाठ-योजना (Model Micro Lesson Plan for Practising Skill of Explaining)

कक्षा– VIII
विषय– जीव विज्ञान
उपविषय– वायु प्रदूषण के स्रोत

संभावित अध्यापक अनुक्रमांक
दिनांक – DD. MM. YY
समय– 6 मिनट

सं अ. वायु नाइट्रोजन, कार्बन–डाई–ऑक्साइड, आकसीजन आदि गैसों का मिश्रण है। इन गैसों के अनुपात में असंतुलन की स्थिति में वायु प्रदूषण उत्पन्न होता है।

वायु प्रदूषण से अभिप्राय वायु की विभिन्न घटक गैसों की मात्रा में असंतुलन अथवा वायु में उपस्थित ऐसी गैसों व कणों आदि से है जिससे जीवन को क्षति पहुंचे। वायु–प्रदूषण के स्रोतों को– (i) प्राकृतिक तथा (ii) मानव निर्मित समूहों में रखा जा सकता है।

1. **वायु प्रदूषण के प्राकृतिक स्रोत हैं:** दावानल (Forest Fire), ज्वालामुखी विस्फोट से उत्पन्न राख, धूल भरी आंधी तथा कार्बनिक पदार्थों का अपघटन।
2. **मानव-निर्मित प्रदूषण के स्रोत हैं:** जनसंख्या विस्फोट, वनोन्मूलन (Deforestation) शहरीकरण तथा औद्योगीकरण। मनुष्य के अनेक क्रियाकलापों द्वारा वायु में छोड़ी जाने वाली कार्बन मोनोक्साइड, सल्फर डाई आकसाइड, हाइड्रोकार्बन,

नाइट्रोजन के ऑक्साइड, सीसा, आर्सेनिक, एस्बेस्टस, धूल के कण तथा रेडियोधर्मी पदार्थों द्वारा भी वायु प्रदूषण हो रहा है।

कोयला तथा पैट्रोलियम जैसे जीवाश्म ईंधनों के अत्यधिक उपयोग से बहुत बड़ा संकट उत्पन्न हो गया है। ताप, विद्युत घर, स्वचालित गाड़ियां तथा विविध उद्योग भी वायु प्रदूषण के मुख्य स्रोत हैं, नाभिकीय ऊर्जा के उपयोग के बढ़ने से वायुमण्डल में रेडियोधर्मिता भी बढ़ी है। खनन द्वारा उत्पन्न धूल के कण भी वायु को प्रदूषित करते हैं। कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए उर्वरकों तथा पीड़कनाशियों के उपयोग से भी वायु प्रदूषण होता है।

| अध्यापक द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्न | छात्रों के संभावित उत्तर |
|---|---|
| प्र.– वायु प्रदूषण के प्राकृतिक स्रोतों के नाम बताओ? | उ.– दावानल, ज्वालामुखी विस्फोट, धूल भरी आंधी, अपघटन क्रियाएं। |
| प्र.– मनुष्य के कौन–कौन से क्रिया कलाप वायु को प्रदूषित करते हैं? | उ.– जनसंख्या विस्फोट, औद्योगीकरण, खनन, कृषि, नाभिकीय ऊर्जा का दोहन। |
| प्र.– वायु प्रदूषण की परिभाषा दो। | उ.– वायु प्रदूषण से अभिप्राय वायु में बाह्य तत्वों की उपस्थिति अथवा घटक गैसों के अनुपात में असंतुलन से है। |

### अपनी प्रगति जांचिए

(i) व्याख्या कौशल के विभिन्न घटक व्यवहारों का वर्णन कीजिए।

(ii) व्याख्या कौशल पर आधारित एक सूक्ष्म पाठ योजना का निर्माण कीजिए।

## 4.6 सारांश

व्याख्या कौशल से अभिप्राय शिक्षक की उस योग्यता से है जिससे वह विषय–वस्तु को सरल एवं बोधगम्य रूप में प्रस्तुत करता है। व्याख्या कौशल का उपयोग सभी विषयों में किया जाता है। व्याख्या कौशल के घटक व्यवहारों को मुख्यतः दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है– वांछनीय एवं अवांछनीय व्यवहार। अध्यापक के वांछनीय व्यवहारों में उपयुक्त प्रारम्भिक एवं निष्कर्ष कथन का उपयोग, व्याख्या सेतुओं का प्रयोग, आवश्यक बिन्दुओं का समावेश और विद्यार्थियों का बोध परीक्षण आदि सम्मिलित हैं। इन व्यवहारों के अतिरिक्त कुछ अवांछनीय व्यवहार भी हैं– निरर्थक कथनों का प्रयोग, कथनों में निरंतरता तथा तारतम्यता का अभाव, प्रवाहिकता का अभाव, अनुपयुक्त शब्दावली व अस्पष्ट शब्दों का प्रयोग आदि। अध्यापक को वांछनीय व्यवहारों की आवत्ति बढ़ानी चाहिए और अवांछनीय व्यवहारों की आवत्ति को कम करना चाहिए। व्याख्या कौशल शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने में विशेष रूप से सहायक है। व्याख्या सरल भाषा में, विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप एवं पाठ के उद्देश्यों, संप्रत्यय की जटिलता के अनुरूप लम्बी या छोटी होनी चाहिए। व्याख्या को सजीव बनाने के लिए विद्यार्थियों को भी प्रश्न पूछने का अवसर प्रदान करना चाहिए।

### आदर्श उत्तर

(i) उपयुक्त प्रारम्भिक एवं निष्कर्ष कथन, व्याख्या सेतुओं का प्रयोग, आवश्यक बिन्दुओं का समावेश, विद्यार्थियों का बोध परीक्षण, सार्थक कथनों का प्रयोग, कथनों में निरन्तरता एवं तारतम्यता, कथनों में प्रवाहिकता, स्पष्ट शब्दों व उपयुक्त शब्दावली का प्रयोग।

(ii) कृपया 4.6 में देखें।

## 4.7 मुख्य शब्द

**वांछनीय व्यवहारः** ऐसे अपेक्षित व्यवहार जो विषय–वस्तु को सरल एवं बोधगम्य बनाने में सहायक हों।

**अवांछनीय व्यवहारः** ऐसे व्यवहार जिनकी अध्यापक से अपेक्षा नहीं की जाती और विषय वस्तु को जटिल बनाते हैं।

## 4.8 संन्दर्भ ग्रन्थ

**Jangira, N.K. and Singh, Ajit –** 'Core Teaching Skill: The Micro-Teaching Approach, New Delhi, NCERT, 1983.

**Passi, B.K. 'Becoming Better Teacher:** Micro Teaching Approach', Ahemedabad Sahitya Mudranalya, 1976.

**Singh, L.C.–** 'Micro Teaching: An Innovation in Teacher Education', New Delhi, NCERT, 1977.

**शर्मा, रविन्द्र**–'शिक्षण अधिगम के मूल तत्व', श्री राम पब्लिकेशन्ज़, भिवानी, 2000.

# इकाई-4 (c)

# अध्याय-5: उद्दीपक परिवर्तन कौशल

# (Skill of Stimulus Variation)

**उद्देश्य:**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि:

- उद्दीपक परीवर्तन कौशल के घटक व्यवहारों का वर्णन कर सकें।
- उद्दीपक परीवर्तन कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची का प्रयोग कर सकें।
- उद्दीपक परीवर्तन कौशल के घटक व्यवहारों का वर्णन कर सकें।

**संरचना:**

5.1. प्रस्तावना
5.2. उद्दीपक परिवर्तन कौशल के घटक
5.3. उद्दीपक परिवर्तन कौशल सम्बन्धी निरीक्षण अनुसूची
5.4. उद्दीपक परिवर्तन कौशल सम्बन्धी मूल्यांकन अनुसूची
5.5. उद्दीपक परिवर्तन कौशल पर आधारित सूक्ष्म पाठ योजना
5.6. सारांश
आदर्श उत्तर
5.7. मुख्य शब्द
5.8. सन्दर्भ ग्रन्थ

## 5.1 प्रस्तावना

शिक्षण को सफल बनाने के लिए आवश्यक है कि अध्यापक विद्यार्थियों के ध्यान को आकर्षित एवं केन्द्रित कर सके। इस कार्य के लिए वह कभी श्यामपट्ट का उपयोग करता है, चित्र दिखाता है, चार्ट या मॉडल का उपयोग करता है, विद्यार्थियों के बीच में जाता है, प्रश्न पूछता है, अपनी आवाज़ एवं अपने हाव–भाव में परिवर्तन करता है। इन उद्दीपकों की सहायता से वह विद्यार्थियों का ध्यान विषय–सामग्री की ओर आकर्षित व केन्द्रित करता है तथा वांछित प्रतिक्रिया प्राप्त करता है।

किसी एक उद्दीपक का लम्बे समय तक उपयोग करने से वह प्रभावपूर्ण नहीं रहता । विद्यार्थियों की रूचि बनाए रखने एवं ध्यान केन्द्रित करने के लिए उद्दीपकों में परिवर्तन लाना आवश्यक होता है। इस प्रकार उद्दीपक परिर्वतन कौशल से अभिप्राय उस कौशल से है जिसमें अध्यापक विद्यार्थियों के ध्यान को कक्षा की गतिविधियों की ओर आकर्षित व केन्द्रित करने के लिए विभिन्न प्रकार के उद्दीपकों में परिवर्तन करके विद्यार्थियों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाने में सफल होता है।

इस अध्याय में आप उद्दीपक परिवर्तन कौशल का अध्ययन करेंगे।

## 5.2 उद्दीपक परिवर्तन कौशल के घटक (Components of the Skill of Stimulus Variation)

1. **शरीर संचालन (Body Movements):** अध्यापक स्वयं एक उद्दीपक के रूप में कार्य करता है। इसलिए अध्यापक की शारीरिक क्रियाएं कक्षा शिक्षण में महत्व रखती हैं। यदि अध्यापक एक ही स्थान पर खड़ा रहेगा तो विद्यार्थियों का ध्यान उससे हट जाएगा और वह उनका ध्यान विषय में केन्द्रित करने में सफलता नहीं प्राप्त कर सकेगा। अध्यापक को कक्षा में एक ही स्थान पर खड़े होकर नहीं पढ़ाना चाहिए । अध्यापक को कक्षा में सक्रिय रहना चाहिए और आवश्यकतानुसार शरीर संचालन करना चाहिए । उसे श्यामपट्ट का उपयोग करना चाहिए, विद्यार्थियों की क्रियाओं का निरीक्षण करना चाहिए और उनकी समस्याओं का समाधान करने के लिए उनके निकट जाना चाहिए। अध्यापक का इस प्रकार सार्थक रूप से शरीर संचालन विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करता है परन्तु अध्यापक को शिक्षण के दौरान कक्षा में निरर्थक शरीर संचालन नहीं करना चाहिए क्योंकि आवश्यकता से अधिक शरीर संचालन विद्यार्थियों का ध्यान विकर्षित करता है।

2. **हाव-भाव (Gestures):** अध्यापक को पढ़ाते समय विषय वस्तु के अनुरूप हाव–भाव करने चाहिए। हाव–भाव मौखिक विवरण को प्रभावशाली बनाते हैं । अध्यापक अपने हाथों, आंखों, चेहरे द्वारा भाव अभिव्यक्ति करके विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित एवं केन्द्रित कर सकता है तथा अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बना सकता है–मुख–मुद्रा (हंसना, क्रोध करना), सिर हिलाना, आंखों से संकेत अथवा हाथों से संकेत आदि द्वारा अध्यापक भावनाओं को व्यक्त करता है, किसी बिन्दु विशेष पर बल देता है और आकार; आकति आदि को स्पष्ट करता है।

3. **आवाज़ में परिवर्तन करना (Change in Voice):** कक्षा में पाठ प्रस्तुत करते समय अध्यापक यदि एक समान स्वर व गति रखता है तो विद्यार्थी ऊब जाते हैं और उनका ध्यान पाठ से विकर्षित हो जाता है। अध्यापक को विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करने एवं पाठ को प्रभावशाली बनाने के लिए अपने स्वर में उतार–चढ़ाव लाने चाहिएं। आवाज़ की गति में परिवर्तन करके भी अध्यापक विषय–वस्तु के विशिष्ट भाग पर बल दे सकता है और मौखिक अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बना सकता है।

4. **केन्द्रण (Focusing):** केन्द्रण से अभिप्राय विद्यार्थियों का ध्यान पाठ के किसी विशिष्ट बिन्दु पर केन्द्रित करने से है। केन्द्रण शाब्दिक, मुद्रात्मक अथवा शाब्दिक–मुद्रात्मक हो सकता हैं । शाब्दिक केन्द्रण (Verbal Focussing) में अध्यापक शब्दों का प्रयोग करके तथा उनकी पुनरावत्ति करके विद्यार्थियों का ध्यान किसी बिन्दु पर केन्द्रित करता है। जैसे– इधर देखो, यहाँ देखो, कोई बाहर नहीं देखेगा आदि ।

   मुद्रात्मक केन्द्रण (Gesture Focusing) में केवल भाव–मुद्राओं की सहायता से विद्यार्थियों का ध्यान किसी विशिष्ट बिन्दु, पर केन्द्रित किया जाता है जैसे हाथ से चार्ट या मानचित्र पर कुछ इंगित करना ।

शाब्दिक मुद्रात्मक केन्द्रण (Verbal Gesture Focussing) में अध्यापक शाब्दिक और मुद्रात्मक दोनों ही प्रकार के व्यवहारों से विद्यार्थियों का ध्यान किसी विशिष्ट बिन्दु पर केन्द्रित करता है। इस प्रकार का केन्द्रण अपेक्षाकत अधिक प्रभावशाली होता है। जैसे– अध्यापक चार्ट या मॉडल पर उंगली रख कर एवं बोलकर किसी बिन्दु की व्याख्या करता है।

5. **अंतः क्रिया शैली में परिवर्तन (Change in Interaction Styles):** कक्षा–कक्ष में अध्यापक एवं विद्यार्थियों के बीच होने वाले विचारों के आदान–प्रदान को अंतः क्रिया कहा जाता है। अंतः क्रिया निम्नलिखित तीन रूपों में होती है।

   (i) ***अध्यापक-विद्यार्थी अंतः क्रिया (Teacher Student Interaction):*** अध्यापक–विद्यार्थी अंतः क्रिया में अध्यापक एक समय में किसी एक विद्यार्थी के साथ अंतःक्रिया करता है। अध्यापक विद्यार्थी के विचार सुनता है या उससे प्रश्न पूछता है और वही विद्यार्थी उसका उत्तर देता है।

   (ii) ***अध्यापक-कक्षा अंतःक्रिया (Teacher Class Interaction):*** इस अंतःक्रिया में अध्यापक पूरी कक्षा में एक साथ सम्प्रेषण करता है। अध्यापक प्रश्न पूछता है और विद्यार्थी उन प्रश्नों के उत्तर देते हैं ।

   (iii) **विद्यार्थी-विद्यार्थी अंतःक्रिया (Student-Student Interaction)** इस अंतःक्रिया में दो या अधिक विद्यार्थियों में विचारों का आदान–प्रदान होता है। अध्यापक प्रश्न पूछ कर विद्यार्थियों को वार्तालाप में संलग्न कर सकता है।

   प्रभावशाली कक्षा शिक्षण के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक अंतःक्रिया शैलियों में परिर्वतन करता रहे। यदि कक्षा में एक ही प्रकार की अंतःक्रिया होगी तो विद्यार्थियों की पाठ में रूचि कम हो जाएगी ।

6. **विराम (Pausing):** विराम से अभिप्राय है – बोलते–बोलते स्वेच्छा से मौन हो जाना । यदि कक्षा शिक्षण के दौरान अध्यापक कुछ समय के लिए मौन हो जाए तो इससे शिक्षण में विराम आ जाता है। अध्यापक के अचानक चुप हो जाने से विद्यार्थियों का ध्यान स्वतः पाठ की ओर आकर्षित हो जाता है। अतः विद्यार्थियों का ध्यान केन्द्रित करने के लिए अध्यापक को शिक्षण के दौरान अथवा प्रश्न से पहले और बाद में कुछ समय के लिए विराम देना चाहिए । परन्तु यह आवश्यक है कि मौन दो या तीन सैकिण्ड से अधिक समय का न हो ।

7. **मौखिक-दश्य बदलाव (Oral-Visual Switching):** अध्यापक कक्षा शिक्षण में विद्यार्थियों को कभी मौखिक विवरण देता है और कभी कुछ दिखाता है। मौखिक विवरण के लिए अध्यापक शब्दों, वाक्यों आदि का प्रयोग करता है और दश्य विवरण के लिए वह दश्य साधनों का प्रयोग करता है । यदि अध्यापक केवल मौखिक या केवल दश्य विवरण का निरंतर प्रयोग करता है तो विद्यार्थी ऊब जाते हैं और पाठ में उनकी रूचि समाप्त हो सकती है। अतः विद्यार्थियों का ध्यान केन्द्रित करने के लिए अध्यापक को मौखिक विवरण से दश्य साधन एवं दश्य साधन से मौखिक विवरण की ओर परिवर्तन करते रहना चाहिए। अध्यापक के इसी व्यवहार को मौखिक–दश्य बदलाव कहा जाता है।

8. **विद्यार्थियों का सक्रिय सहयोग (Active Co-operation of the Students):** अध्यापक को पाठ में विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता लेनी चाहिए । कक्षा शिक्षण में विद्यार्थियों का सक्रिय सहयोग विभिन्न प्रकार से लिया जा सकता है। विद्यार्थी विभिन्न प्रयोगों तथा परीक्षणों से, दश्य–श्रव्य साधनों के प्रयोग में आवश्यक सहायता कर सकते है एवं श्यामपट्ट पर कुछ लिखने व समझाने के लिए उनको बुलाया जा सकता है। इस प्रकार अध्यापक विद्यार्थियों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करके उनके ध्यान को पाठ में आकर्षित व केन्द्रित कर सकता है।

## 5.3 उद्दीपक परिवर्तन कौशल से सम्बन्धित निरीक्षण अनुसूची (Observation Schedule for the Skill of Stimulus Variation)

| | |
|---|---|
| कक्षा– | संभावित अध्यापक अनुक्रमांक– |
| विषय– | सत्र –शिक्षण/ पुनः शिक्षण |
| उपविषय– | दिनांक– |
| | निरीक्षक– |

जीव विज्ञान शिक्षण में प्रस्तुत निरीक्षण अनुसूची का उपयोग यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि संभावित अध्यापक (Prospective Teacher) ने उद्दीपक परिवर्तन कौशल का प्रयोग कितनी सफलता से किया है। विभिन्न घटक व्यवहारों के प्रति निर्णय करने के लिए टैलियां (Tallies) लगाई जाती हैं । सं.अ. के व्यवहार का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करके निरीक्षक निम्नलिखित घटक व्यवहार का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करके घटक व्यवहारों की आवत्ति का अंकन टैलियां लगा कर प्रत्येक मिनट के अंतराल में करता है।

| | **घटक (Components)** | **आकति टैलियां** |
|---|---|---|
| | | **1 2 3 4 5 6 7 8 9 10** |
| 1. | शरीर संचालन किया गया । | |
| 2. | हाव–भाव में परिवर्तन किया गया । | |
| 3. | अध्यापक ने आवाज में परिवर्तन किया । | |
| 4. | विद्यार्थियों का ध्यान केन्द्रण किया गया । | |
| 5. | अंतः क्रिया शैली में परिवर्तन किया गया। | |
| 6. | विराम का प्रयोग किया गया । | |
| 7. | मौखिक–दश्य बदलाव किया गया । | |
| 8. | विद्यार्थियों का सक्रिय सहयोग लिया गया । | |

## 5.4 उद्दीपक परिवर्तन कौशल से सम्बन्धित मूल्यांकन अनुसूची (Evaluation Schedule for the Skill of Stimulus Variation)

कक्षा– संभावित अध्यापक अनुक्रमांक–

विषय– सत्र –शिक्षण/ पुनः शिक्षण

उपविषय– दिनांक–

निरीक्षक–

प्रस्तुत मूल्यांकन अनुसूची (सात–बिन्दु रेटिंग स्केल) का प्रयोग यह जानने के लिए किया जाता है कि सं.अ.ने उद्दीपक परिवर्तन कौशल का उपयोग कितने प्रभावशाली ढंग से किया है। रेटिंग स्केल पर '0' से '6' तक अंक अंकित हैं। अंक '0' अत्यन्त निकष्ट प्रदर्शन अर्थात निम्नतम सफलता तथा अंक '6' उत्कष्ट प्रदर्शन अर्थात अधिकतम सफलता का सूचक है। निरीक्षण अनुसूची में निरीक्षक द्वारा लगाई गई टैलियों अर्थात विभिन्न घटक व्यवहारों की आवत्ति के आधार पर उनका गुणात्मक मूल्यांकन (Qualitative Evaluation) किया जाता है और निम्न अनुमाप पर अंकित किया जाता है। इसके आधार पर सं अध्यापक को प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है।

| घटक (Components) | रेटिंग (Rating) | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | अत्यन्त निकृष्ट | निकृष्ट | निम्न | औसत | उत्तम | अति उत्तम | उत्कृष्ट |
| 1. शरीर संचालन | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 2. हाव–भाव में परिवर्तन | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 3. आवाज़ में उतार–चढ़ाव | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 4. केन्द्रण | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 5. अंतः क्रिया शैली परिवर्तन | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 6. विराम | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 7. मौखिक–दश्य बदलाव | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 8. विद्यार्थियों का सक्रिय सहयोग | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |

## 5.5 उद्दीपक परिवर्तन कौशल के लिए आदर्श सूक्ष्म पाठ-योजना (Model Micro Lesson Plan for the Skill of Stimulus Variation)

विषय– जीव विज्ञान सं.अं.अनुक्रमांक

कक्षा– छठी समय– 6 मिनट

उपविषय– पुष्पी पादप के भाग

सं.अ. एक पुष्पी पादप (फूल वाले पौधे) को दिखाते हुए विद्यार्थियो, एक पुष्पी पादप के मुख्यतः 5 भाग होते हैं।

जड़, तना, पत्ते, फूल एवं फल ।

(जड़ दिखाते हुए) पौधे का जो भाग भूमि के अन्दर होता वह जड़ कहलाता है। जड़ का मुख्य कार्य भूमि से जल एवं लवणों का अवशोषण तथा पौधे को सहारा प्रदान करना होता है। (सं अ.अपने कथन की पुष्टि के लिए किसी चित्रात्मक साधन का प्रयोग करेगा )

(तना दिखाते हुए तथा स्वर में उतार–चढ़ाव लाते हुए)तना पौधे का वह भाग है जो जमीन के ऊपर होता है। यह हरा या भूरा होता है। तना पत्तियों, फलों, फूलों आदि को आधार प्रदान करता है। (चित्र अथवा मॉडल दिखाते हुए) तना जल, लवणों तथा भोजन आदि को पौघे के एक भाग से दूसरे भाग तक पहुंचाता है।

(पत्ती दिखाते हुए) पौधे के इस भाग को पत्ती कहा जाता है। पत्तियां सामान्यतः हरे रंग की होती हैं । इस हरे रंग की उपस्थिति के कारण ही पत्तियाँ भोजन बनाती हैं। (फूल दिखाते हुए) विद्यार्थियों, यह पौधे का वह भाग है जो पौधे की जनन में सहायता करता है।

विद्यार्थियों के निकट जाकर उन्हें विभिन्न प्रकार के फूल दिखाते हुए–विभिन्न पौधों में विभिन्न प्रकार के फूल होते हैं परन्तु सभी प्रकार के फूलों का कार्य समान होता है अर्थात वे लैंगिक जनन में सहायता करते हैं।

(विराम लेते हुए सं.अ.विभिन्न फलों की आकतियां फ्लैश कार्ड पर दिखाते हुए विद्यार्थियों से उनके नाम पूछेगा)आपने देखा कि ये विभिन्न प्रकार के फल हैं। फल भी पौधे का महत्वपूर्ण भाग है। इसमें भोजन संग्रहित किया जाता है और बीजों को सुरक्षा प्रदान की जाती है। कुछ फल खाने योग्य होते हैं और कुछ नहीं।

सं. अध्यापक ट्रांस्पेरन्सी दिखाते हुए विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता लेकर पाठ की पुनरावत्ति करवाएगा ।

**अपनी प्रगति जांचिए**

(i) उद्दीपक परिवर्तन कौशल के घटक व्यवहारों का वर्णन कीजिए।

(ii) उद्दीपक परिवर्तन पर आधारित एक पाठ योजना का निर्माण कीजिए।

## 5.6 सारांश

उद्दीपक परिवर्तन कौशल से अभिप्राय अध्यापक की उस योग्यता से है जिसका उपयोग करके वह विद्यार्थियों का ध्यान कक्षा की गतिविधियों की ओर आकर्षित व केन्द्रित करने के लिए विभिन्न उद्दीपकों का प्रयोग करता है और उद्दीपकों में परिवर्तन करके वह विद्यार्थियों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाने में सफल होता है। उद्दीपक परिवर्तन कौशल के विभिन्न घटक हैं– शरीर संचालन, हाव–भाव में परिवर्तन, आवाज में परिवर्तन, केन्द्रण, विराम, अतः क्रिया शैली में परिवर्तन, मौखिक–दश्य बदलाव एवं विद्यार्थियों का सक्रिय सहयोग।

अध्यापक शिक्षा में आजकल सूक्ष्म शिक्षण कौशलों के विकास पर विशेष बल दिया जा रहा है क्योंकि इसके बिना शिक्षण के व्यावहारिक पक्ष का विकास नहीं होता। यूनिट 4 के भाग 3 में आपने सूक्ष्म शिक्षण के मुख्य पांच शिक्षण कौशलों के सम्बन्ध में अध्ययन किया अब आप इन मुख्य शिक्षण कौशलों के घटक व्यवहारों आदि से परिचित हैं और इन शिक्षण–कौशलों से सम्बन्धित सूक्ष्म पाठ योजनाओं का निर्माण भी कर सकते हैं । इन शिक्षण कौशलों का अभ्यास आप Skill in Teaching कार्यक्रम में करेंगे।

**आदर्श उत्तर**

(i) शरीर संचालन, हाव–भाव में परिवर्तन, आवाज़ में परिवर्तन, केन्द्रण, विराम, अंतःक्रिया शैली में परिवर्तन, मौखिक–दश्य बदलाव एवं विद्यार्थियों का सक्रिय सहयोग।

(ii) कृपया 5.5 में देखें

## 5.7 मुख्य शब्द

**उद्दीपकः** वह वस्तु या क्रिया जो विद्यार्थियों के ध्यान को आकर्षित व शिक्षण में केन्द्रित करे।

## 5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

Jangira, N.K. and Singh, Ajit - Core Teaching Skill: The Micro Teaching Approach, New Delhi, NCERT, 1983.

Passi, B.K. Becoming Better Teacher: Micro Teaching Approach, Ahemedabad Sahitya Mudranalya, 1976.

Singh, L.C. — Micro Teaching: An Innovation in Teacher Education, New Delhi, NCERT, 1977.

**शर्मा, आर.ए.** — 'शिक्षण अधिगम के मूल तत्व' लायल बुक डिपो, मेरठ, 1989.

# इकाई-5

# अध्याय–1: मापन एवं मूल्यांकन का प्रत्यय

# (Concept of Measurement and Evaluation)

**उद्देश्य :**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगें कि

- मापन के प्रत्यय का वर्णन कर सकें।
- मापन के कार्यों की सूची बना सकें।
- मापन की विधियां बता सकें।
- मूल्यांकन के अर्थ एवं प्रत्यय का वर्णन कर सकें।
- मूल्यांकन के उपकरण व प्रविधियों के नाम बता सकें।
- मूल्यांकन के उपयोगों की सूची बना सकें।
- मापन एवं मूल्यांकन की तुलना कर सकें।

**संरचना:**

1.1 प्रस्तावना
1.2 मापन का प्रत्यय
1.3 मापन के कार्य
1.4 मापन की विधियां
1.5 मूल्यांकन का प्रत्यय
1.6 मूल्यांकन के उपकरण एवं प्रविधियाँ
1.7 मूल्यांकन के उपयोग
1.8 मापन एवं मूल्यांकन
1.9 सारांश
आदर्श उत्तर
1.10 मुख्य शब्द
1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

## 1.1 प्रस्तावना

शिक्षा, ज्ञान देना नहीं है, अपितु बालक या अधिगर्म कर्त्ता को स्वयं ज्ञान प्राप्त करने के लिए तैयार करना है। आज हमारी शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण हो गई है। विद्यार्थियों का लक्ष्य केवल परीक्षा में अधिक अंक प्राप्त करना ही रह गया है जबकि वास्तविक उद्देश्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात अर्जित ज्ञान का व्यावहारिक उपयोग होना चाहिए। अध्यापक भी केवल विषय केन्द्रित हो कर पढ़ाते हैं और विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं, रुचियों आदि पर कम ध्यान देते हैं। अभिभावक भी केवल परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर शिक्षण की सफलता निर्धारित करते हैं अर्थात् शिक्षा की प्रक्रिया परीक्षा–केन्द्रित हो गई है। शिक्षा में परीक्षाएँ प्राचीन काल से प्रचलित रही हैं। प्राचीन काल की शिक्षा में शारीरिक विकास को अधिक महत्व दिया जाता था, अतः परीक्षाएं भी शारीरिक गुणों का मापन करती थीं। जेसे–जैसे शिक्षाविदों का ध्यान शारीरिक से मानसिक विकास की ओर अधिक केन्द्रित हुआ, वैसे ही उनके समक्ष मानसिक गुणों की वद्धि के मापन की समस्या भी आई। शिक्षा के क्षेत्र में हुए विकास और नवीन विचारधाराओं के समन्वय के फलस्वरूप विद्यार्थी के व्यक्तित्व के सभी पक्षों शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक, सौन्दर्यातमक पक्षों आदि के विकास पर बल दिया गया। विद्यार्थी के व्यक्तित्व के इन सभी पक्षों के विकास की वद्धि ज्ञात करने के लिए मूल्यांकन पर बल दिया गया। मूल्यांकन कई परीक्षाओं का सम्मिलित रूप होता है और इसमें मापन की अपेक्षा अधिक समय लगता है। प्रस्तुत अध्याय में हम मापन एवं मूल्यांकन के संप्रत्यय का अध्ययन करेंगें।

## 1.2 मापन का प्रत्यय (Concept of Measurement)

मापन एक प्राचीन प्रक्रिया है। मापन का विकास संभवतया मानव सभ्यता के विकास के साथ ही हुआ है। चीन, जार्डन, मिस्र आदि संस्कृतियों से मापन के उपयोग सम्बन्धी विभिन्न प्रमाण मिले हैं। 500 ईसा पूर्व स्पार्टा में युवकों के शारीरिक विकास का परीक्षण करने के लिए अनेक कठिन कार्य कराकर उनकी परीक्षा ली जाती थी। ईसा से 2200 वर्ष पूर्व चीन में राज्य के अफसरों का चयन करने के लिए लिखित परीक्षाओं की व्यवस्था थी। प्रसिद्ध यूनानी–दार्शनिक सुकरात अपने शिष्यों के ज्ञान की परख करने एवं अपने विचारों को समझाने के लिए उनसे प्रश्न पूछता था। उसकी विधि इतनी अधिक प्रसिद्ध हुई कि इसका नाम ही सुकरात विधि पड़ गया।

मापन का आरम्भ भौतिक विज्ञान से हुआ है परन्तु आधुनिक समय में लगभग सभी विषयों एवं जीवन सम्बन्धित क्षेत्रों में इसका उपयोग किया जा रहा है। मापन के प्रत्यय को समझने से पूर्व इसका अर्थ समझना आवश्यक है। मापन से अभिप्राय उस परिमाणात्मक प्रक्रिया (Quantitative Processs) से है जिससे वस्तुओं, पदार्थों, जीवों आदि के भौतिक तथा व्यावहारिक गुणों की जानकारी प्राप्त की जाती है। दूसरें शब्दों में, मापन गुणों की वह प्रक्रिया है जिसमें चलराशि को परिमाण में बदल दिया जाता है। (Measurement is a process of Quantification) मापन के द्वारा किसी वस्तु या व्यक्ति का मापन नहीं किया जाता अपितु उसके गुण विशेष को ज्ञात करके परिमाण में परिवर्तित किया जाता है। मापन का हमारे जीवन में अत्यन्त महत्व हैं। सोते, जागते, उठते, पढ़ते सभी अवसरों पर हम मापन का उपयोग करते हैं। आधुनिक काल में हमारा लगभग पूरा जीवन मापन पर आधारित है।

उदाहरण– मान लीजिए एक व्यक्ति बस स्टैण्ड से 15 कि. मी. की दूरी पर रहता है। वह जानता है कि दूरी 15 कि.मी. है क्योंकि उसे इसका मापन ज्ञात है। ठीक समय पर बस स्टैण्ड पहुंचने के लिए वह अपनी घड़ी देखता है क्योंकि घड़ी समय का मापन करती है। उसके स्कूटर या कार में लगा गतिमापक (speedometer) गति का मापन करता है। बस स्टैण्ड पहुंचकर टिकट खरीदते समय वह कुछ धनराशि अदा करता है जैसे रुपये और पैसे। इनका भी वह निश्चित इकाइयों में मापन करता है।

इसी प्रकार किसी व्यक्ति को खाना तभी स्वादिष्ट लग सकता है यदि रसोइये ने भोजन के अनेक घटकों तथा आवश्यक पदार्थों का ठीक–ठीक मापन करके उन्हें पकाया हो। समाचार पत्र के स्तम्भ, उनकी शीर्ष रेखाएँ और विभिन्न स्तम्भों में प्रकाशित विज्ञापन पहले से ही प्रमापित होते हैं। वास्तव में हमारी सभ्यता का सम्पूर्ण विकास किसी न किसी प्रकार के मापन पर निर्भर है जैसे–वर्ष, घंटे, मिनट, सैकंड आदि की सहायता से समय का मापन किया जाता है और महत्वपूर्ण घटनाओं को याद रखा

जाता है। सेनाओं की प्रगति, नियमित सरकार चलाने में एवं दूरी, आकार, आयतन सभी का ज्ञान मापन पर ही निर्भर है। इसी कारण सड़कों, रेलों और नहरों का निर्माण सम्भव हुआ है। मानव शरीर का तापमान, रक्तचाप, दिल की धड़कन, नाड़ी की गति आदि की मापन विधियों का विकास होने के कारण चिकित्सा विज्ञान में प्रगति हुई है। मिट्टी एवं बीज के गुण, उर्वरक एवं कीटनाशक के मापन ने कृषि शास्त्र का विकास करने में सहायता की है। इस प्रकार मापन एक व्यापक प्रक्रिया है ओर मुख्यतः दो प्रकार की होती है–

1. भौतिक मापन (Physical Measurement)
2. व्यावहारिक मापन (Behavioural Measurement)

1. **भौतिक मापन (Physical Measurement):** भौतिक माापन से अभिप्राय वस्तुओं, पदार्थों व जीवों के भौतिक गुणों को मापने से है। भौतिक मापन प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति के शरीर का तापमान ज्ञात करना है तो उसके मुँह में या बगल में थर्मामीटर लगाकर तापमान का मापन कर लेते हैं। इसी प्रकार यदि उसके भार का मापन करना है तो उसे तुला पर खड़ा करके भार किलों में ज्ञात कर लेंगें। भौतिक मापन की इकाई सुनिश्चित होती है जैसे तापमान फारेनहाइट या सेन्टीग्रेड में, भार किलोग्राम या क्विंटल में ज्ञात किया जाता है।

   भौतिक मापन का एक मापक एक ही गुण का मापन करता है इसलिए भौतिक मापन अधिक शुद्ध होता है। जैसे थर्मामीटर का उपयोग केवल तापमान ज्ञात करने के लिए किया जा सकता है, किसी अन्य विशेषता के मापन के लिए नहीं। इसके अतिरिक्त भौतिक मापन का सन्दर्भ बिन्दु शून्य होता है। इसलिए जितना मापन आता है वह सार्थक होता है। भौतिक मापन में शून्य का मूल्य होता है।

2. **व्यावहारिक मापन (Behavioural Measurement):** व्यावहारिक मापन से अभिप्राय वस्तुओं एवं जीवों के व्यावहारिक गुणों एवं विशेषताओं को मापने से है। व्यावहारिक मापन अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है इसलिए व्यावहारिक मापन की प्रक्रिया अपेक्षाकृत कठिन एवं जटिल होती है। इसमें व्यक्ति के व्यवहार की विशेषताओं को मापने के लिए मापक उस पर सीधा नहीं रखा जा सकता। व्यावहारिक मापन का आधार केवल व्यक्ति का व्यवहार होता है। इस प्रकार व्यक्ति के सीमित व्यवहारों की सहायता से ही उसके अनेक व्यवहारिक गुणों का मापन किया जा सकता है। यह व्यावहारिक मापन का मूल आधार है। जैसे–बुद्धि (Intelligence) और उपलब्धि (Achievement) का मापन एक ही प्रश्न द्वारा किया जा सकता है।

   प्रश्न (1) पत्ता : हरा : : जड़ : (उत्तर–रंगहीन)

   प्रश्न (2) पत्ता : प्रकाश–संश्लेषण : : जड़ : (उत्तर–अवशोषण)

   ऊपरलिखित दोनों प्रश्न विद्यार्थी की बुद्धि और उपलब्धि दोनों पर आधारित हैं। प्रश्न नं. (1) में पत्ते और हरे रंग में सम्बन्ध देखना है विद्यार्थी अपनी तर्क–शक्ति का उपयोग करके इस सम्बन्ध को ज्ञात कर लेगा और उसी सम्बन्ध को जड़ के साथ स्थापित करेगा। इसी प्रकार प्रश्न नं. 2 में विद्यार्थी अपनी तर्क शक्ति का उपयोग करते हुए सम्बन्ध ज्ञात करेगा। तर्क–बुद्धि का प्रमुख घटक है। इसलिए यह प्रश्न बुद्धि का मापन करता है। इसके अतिरिक्त पत्ते के हरे रंग और जड़ के कोई रंग न होने के सम्बन्ध के लिए उपर्युक्त शब्दावली का ज्ञान होना आवश्यक है। शब्दावली का ज्ञान विद्यार्थी की उपलब्धि का पक्ष है। इस प्रकार यह प्रश्न बुद्धि के साथ –साथ उपलब्धि का मापन भी करता है।

   व्यावहारिक मापन में भौतिक मापन की तरह कोई इकाई सुनिश्चित नहीं होती। इससे साधारणतः अंक प्राप्त होते हैं। प्राप्तकों की कोई इकाई नहीं होती तथा प्राप्तांक अर्थहीन होते हैं। उनको सार्थक बनाने के लिये या उनका अर्थापन करने के लिए सांख्यिकी का प्रयोग अधिक उपर्युक्त होता है।

   व्यावहारिक मापन में शून्य माना हुआ होता है, उसका कोई विशेष अर्थ नहीं होता। यदि किसी विद्यार्थी का प्राप्तांक शून्य है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वह कुछ नहीं जानता, अपितु उससे जो प्रश्न किये गए, उन प्रश्नों के सही उत्तर नहीं दे सका इसलिये उसे शून्य दिया गया। व्यावहारिक मापन का सन्दर्भ बिन्दु समूह या न्यादर्श (Sample) होता है। समूह में विद्यार्थी का स्थान कहाँ है, यह अधिक सार्थक होता है।

व्यावहारिक मापन में एक परीक्षण एक समय में एक से अधिक गुणों का मापन करता है। ऐसे परीक्षण की रचना करना संभव नहीं होता जो केवल एक ही गुण का मापन करे। यही कारण है कि व्यावहारिक परीक्षणों की वैधता (validity) कम होती है।

## 1.3 मापन के कार्य (Functions of Measurement)

सामान्यतः मापन के तीन निम्नलिखित कार्य होते हैं –

1. साफल्य बताने का कार्य (Prognostic function)
2. निदान करने का कार्य (Diagnostic function)
3. भविष्यवाणी करने का कार्य (Predictive function)

## 1.4 मापन की विधियाँ (Methods of Measurement)

मापन के लिए निम्नलिखित तीन प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जाता है –

1. **परीक्षण विधि (Test Method):** इस विधि में कार्य एवं समय की परिभाषा की जाती है तथा ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं जो सही य गलत होती हैं। सही अनुक्रिया के लिए एक प्राप्तांक तथा गलत अनुक्रिया के लिए शून्य दिया जाता है इस विधि का आलेख स्थायी होता है जिसे मूल्यांकन या जांच के आधार पर तैयार किया जाता है।
2. **निरीक्षण विधि (Observation Method):** इस विधि से व्यवहारों का निरीक्षण स्वाभाविक जीवन परिस्थितियों में किया जाता है। इसमें स्वतः निरीक्षण अथवा दूसरों द्वारा निरीक्षण किया जाता है।
3. **मिश्रित विधि (Mixed Method):** इस विधि में परीक्षण तथा निरीक्षण दोनों विधियों का एक साथ उपयोग किया जाता है। व्यवहारों के निरीक्षण के आधार पर गुणों का मूल्यांकन किया जाता है।

## 1.5 मूल्यांकन का प्रत्यय (Concept of Evaluation)

मूल्यांकन से अभिप्राय उस गुणात्मक एवं परिमाणात्मक प्रक्रिया से है जिससे व्यक्ति, वस्तु, प्रक्रिया आदि के सभी गुणों को ज्ञात करके उसका मूल्य निर्धारित किया जाता है। 'मूल्यांकन' शब्द शिक्षा में अपेक्षाकृत नवीन विचारधारा है। यह शब्द शिक्षा तथा मनोविज्ञान में विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है। शैक्षिक मूल्यांकन एक निर्णयात्मक प्रक्रिया है जिससे शिक्षण –अधिगम की सफलता एवं प्रभावशीलता का आकलन किया जाता है। इसके द्वारा अधिगम परिस्थितियों तथा सीखने के अनुभवों के लिए प्रयोग की जाने वाली सभी विधियों एवं प्रविधियों की उपादेयता की जांच की जाती है। परम्परागत शिक्षा–प्रणाली में विषय–वस्तु तथा विद्यार्थियों की उपलब्धियों को ही महत्व दिया जाता है। विद्यार्थियों की सफलता तथा असफलता के लिए अधिगम परिस्थितियाँ उत्तरदायी होती हैं। मूल्यांकन प्रक्रिया में अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति के आधार पर शिक्षण, शिक्षण विधियों प्रविधियों तथा सहायक सामग्री की उपयोगिता एवं प्रभावपूर्णता का पता लगाया जाता है, परन्तु अभी इस प्रक्रिया का उपयोग शिक्षा में पूरी तरह नहीं हो पा रहा है क्योंकि मूल्यांकन के लिए शिक्षा, शिक्षण, अनुदेशन तथा अधिगम के उद्देश्य स्पष्ट नहीं है।

मूल्यांकन के अर्थ एवं संप्रत्यय को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न शिक्षाविदों ने इसे परिभाषित किया है।

कुछ मुख्य परिभाषाएं निम्नलिखित हैं –

(1) क्वालेन तथा हन्ना के अनुसार, – '' विद्यालय में हुए विद्यार्थियों के व्यवहार –परिवर्तन के सम्बन्ध में प्रमाणों के संकलन तथा उनकी व्याख्या करने की प्रक्रिया ही मूल्यांकन है।''

"Evaluation is the process of gathering and interpreting evidences on changes in the behaviour of all students as they progress through school."

2. कोठारी कमीशन के अनुसार,– ''मूल्यांकन एक सतत् प्रक्रिया है जोकि सम्पूर्ण शिक्षा–प्रणाली का एक आवश्यक अंग है जो कि शिक्षा के उद्देश्यों से घनिष्ठ रूप से सम्बधित है।''

"Evaluation is a continuous process which forms an integral part of total system of education and is intimately related to educational objectives." – Kothari commission 1964&666-

3. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के अनुसार, ''मूल्यांकन एक प्रक्रिया है जिसमें यह ज्ञात किया जाता है कि किसी विषय में उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हो पाई है, कक्षा में विद्यार्थियों को दिये गए अनुभव किस सीमा तक प्रभावशाली रहे हैं और विषय के लक्ष्यों की पूर्ति कहाँ तक हुई है।"

इन परिभाषाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि मूल्यांकन में विद्यार्थी के सम्पूर्ण व्यवहार परिवर्तन और शिक्षण की प्रक्रिया के उपकरणों एवं विधियों का मापन किया जाता है। विद्यार्थी, विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाता है और विभिन्न प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है। इन अनुभवों से उसके ज्ञान में वद्धि होती है। उसके सोचने के ढ़ंग में परिवर्तन आता है, उसकी कार्यशैली में परिवर्तन होता है तथा उसकी संवदेनशीलता एवं अभिवत्ति विकसित होती है। विद्यार्थी के इस विकास को उसका 'व्यवहार–परिवर्तन' कहते हैं।

इस व्यवहार परिवर्तन में विद्यार्थी के ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्ष से सम्बन्धित परिवर्तन सम्मिलित हैं। इन व्यवहार परिवर्तनों के आधार पर शिक्षा–प्रणाली की सफलता का पता लगाया जाता है इस प्रक्रिया को मूल्यांकन कहा जाता है। शैक्षिक उद्देश्य, अधिगम–अनुभव तथा मूल्यांकन के उपकरण निम्नलिखित रूप में मूल्यांकन से सम्बन्धित है–

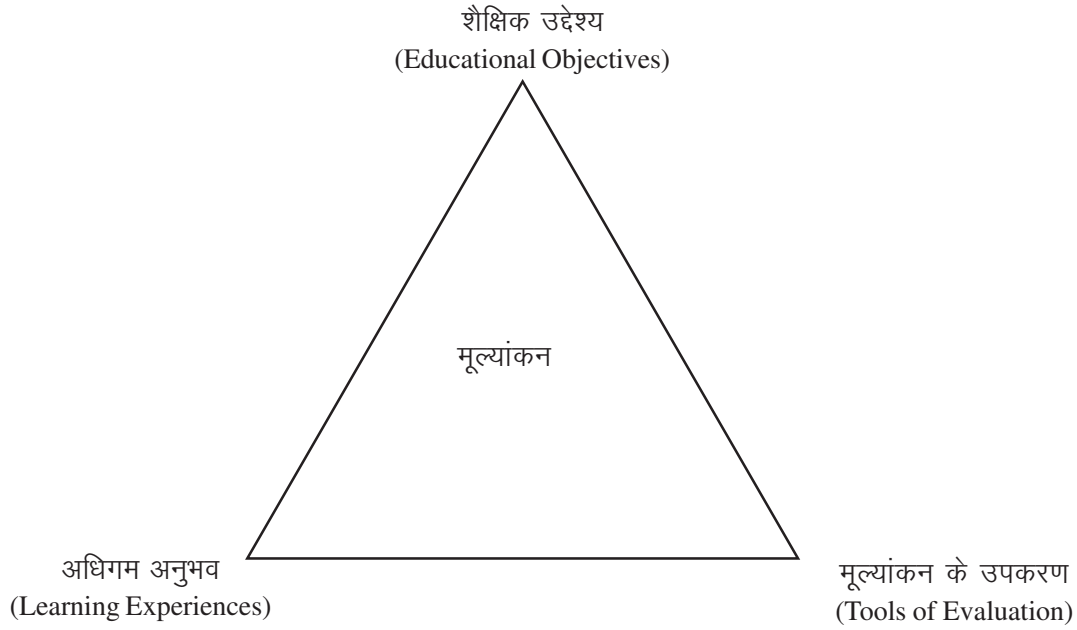


मूल्यांकन करते समय निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए–

1. विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन किस दिशा में हो रहा है?
2. विद्यार्थियों के व्यवहार–परिवर्तन को ज्ञात करने के लिए उपयुक्त विधियों का प्रयोग करना चाहिए जैसे प्रश्नावली (Questionaire). लिखित परीक्षाएँ, निरीक्षण (Observation) आदि।

## मूल्यांकन प्रक्रिया
## (Process of Evalutaion)

मूल्यांकन एक जटिल प्रक्रिया है। इसके मुख्यतः तीन कारण हैं। इनका वर्णन निम्नलिखित है–

1. **शिक्षण उद्देश्यों का निर्धारण (Stipulation of Educational Objectives):** यह मूल्यांकन का प्रथम चरण है। विद्यार्थियों के वस्तुनिष्ठ एवं पूर्ण मूल्यांकन के लिए अध्यापक को शिक्षण उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से निर्धारित करना चाहिए। यदि शिक्षण उद्देश्यों का निर्धारण उचित ढ़ंग से नहीं किया जाता तो शिक्षा प्रक्रिया अर्थहीन हो जाती है। जीव विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य ब्लूम के वर्गीकरण के आधार पर विद्यार्थी के व्यवहार के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित होते हैं। इनमें मुख्यतः ज्ञान, बोध, प्रयोग, कौशल, वैज्ञानिक दष्टिकोण, रूचि, प्रशंसात्मक क्षमताओं आदि से सम्बन्धित उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। इन उद्देश्यों की रचना करते समय निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए–

   (i) शिक्षण उद्देश्यों का निर्धारण स्तर–केन्द्रित होना चाहिए। ये उद्देश्य विद्यार्थियों के शैक्षिक स्तर एवं विकासक्रम को ध्यान में रखकर निर्धारित किए जाने चाहिएं।

   (ii) शिक्षण उद्देश्य समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप निर्धारित किये जाने चाहिएं।

   (iii) उद्देश्यों का निर्धारण शिक्षण विधि के अनुरूप करना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि अध्यापक व्याख्यानयुक्त प्रदर्शन विधि का प्रयोग करता है तो विद्यार्थियों में प्रयोगात्मक कौशलों का विकास किया जा सकता है जबकि भाषण विधि द्वारा इन कौशलों का विकास नहीं किया जा सकता।

   शिक्षण उद्देश्यों का स्पष्ट रूप से निर्धारण करने के पश्चात् उन्हें व्यवहारपरक शब्दावली में लिखना चाहिए जिससे अध्यापक शिक्षण व्यूह–रचनाओं एवं युक्तियों का चयन कर सके और उसे मूल्यांकन करने में सहायता भी मिले।

2. **अधिगम अनुभवों का विकास (Developing Learning Experiences):** अधिगम अनुभवों से अभिप्राय उन अनुभवों एवं साधनों से है जिनकी सहायता से शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। अध्यापक कक्षा शिक्षण के दौरान ऐसी क्रियाओं का आयोजन करता है जिससे विद्यार्थियों को अपेक्षित अनुभव हो सकें। विद्यार्थियों को अधिगम अनुभव करवाने के लिये अध्यापक सहायक सामग्री, शिक्षण–विधि, प्रविधि अथवा अनुदेशन का उपयोग कर सकता है। अधिगम अनुभव शिक्षण उद्देश्यों तथा पाठ्य–वस्तु (Contents) पर आधारित होते हैं। उदाहरण के लिए ज्ञान सम्बन्धी उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अध्यापक पूर्व ज्ञान सम्बन्धी बिन्दुओं का प्रत्यास्मरण करवा सकता है, व्याख्यान दे सकता है, चार्ट का प्रयोग कर सकता है तथा गहकार्य दे सकता है जिससे विद्यार्थी अपेक्षित अधिगम अनुभव प्राप्त कर सकें। बोध सम्बन्धी उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अध्यापक मॉडल का उपयोग कर सकता है, प्रश्नोत्तर विधि या प्रदर्शन विधि या वाद–विवाद विधि का प्रयोग कर सकता है।

   इसी प्रकार प्रयोग उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अध्यापक समस्या–समाधान विधि (Problem Solving Method), अनुसंधान विधि (Heuristic Method) अथवा प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method) आदि का उपयोग कर सकता है। इसके अतिरिक्त संसाधनों की उपलब्धता (Resource Availability) के आधार पर भी अधिगम अनुभवों का सजन किया जाता है।

3. **अधिगम या व्यवहार-परिवर्तन का मूल्यांकन (Evaluation of Learning or Change in Behaviour):** यह मूल्यांकन प्रक्रिया का तीसरा एवं अंतिम चरण होता है। विद्यार्थियों को दिये गए अनुभवों के आधार पर उनके व्यवहार में जो परिवर्तन आते हैं, उनका इस चरण में मूल्यांकन किया जाता है। मूल्यांकन के लिए शिक्षण–उद्देश्य आधार रूप में कार्य करते हैं। जिस सीमा तक उद्देश्यों को प्राप्त किया गया है उसके आधार पर अधिगम अनुभवों की प्रभावशीलता को ज्ञात किया जाता है।

   विद्यार्थियों के व्यवहार के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित उद्देश्यों के मूल्यांकन के लिए विभिन्न विधियों का उपयोग किया जाता है। ज्ञानात्मक पक्ष (Cognitive Domain) से सम्बन्धित उद्देश्यों के मूल्यांकन के लिए मौखिक परीक्षा (Oral Test), निरीक्षण (Essay Type Test) वस्तुनिष्ठ परीक्षा (Objective Type Test) निबन्धात्मक परीक्षा (Essay Type Test) आदि विधियों का उपयोग किया जा सकता है।

भावात्मक पक्ष (Affective Domain) से सम्बन्धित उद्देश्यों (रूचि, अभिरूचि, अभिवत्ति प्रशंसात्मक क्षमताओं) के लिए निरीक्षण (Observation), रेटिंग स्केल (Rating Scale), अभिरूचि परीक्षा (Aptitude Test) आदि की सहायता ली जा सकती है। इसी प्रकार क्रियात्मक पक्ष (कौशल के मूल्यांकन के लिए) अध्यापक निरीक्षण, साक्षात्कार आदि का प्रयोग कर सकता है।

## 1.6 मूल्यांकन के उपकरण एवं प्रविधियां (Tools and Techniques of Evaluation)

मूल्यांकन सतत्, व्यापक, विश्वसनीय, व्यावहारिक तथा वस्तुनिष्ठ होना चाहिए। जीव विज्ञान शिक्षण में मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यवहार–परिवर्तनों को ज्ञात करना होता है। विद्यार्थी के व्यवहार के तीनों पक्षों– ज्ञानात्मक (Cognitive), भावात्मक (Affective) और क्रियात्मक (Psychomotor) पक्ष एवं उनसे सम्बन्धित विभिन्न स्तरों का मूल्यांकन करके उनकी

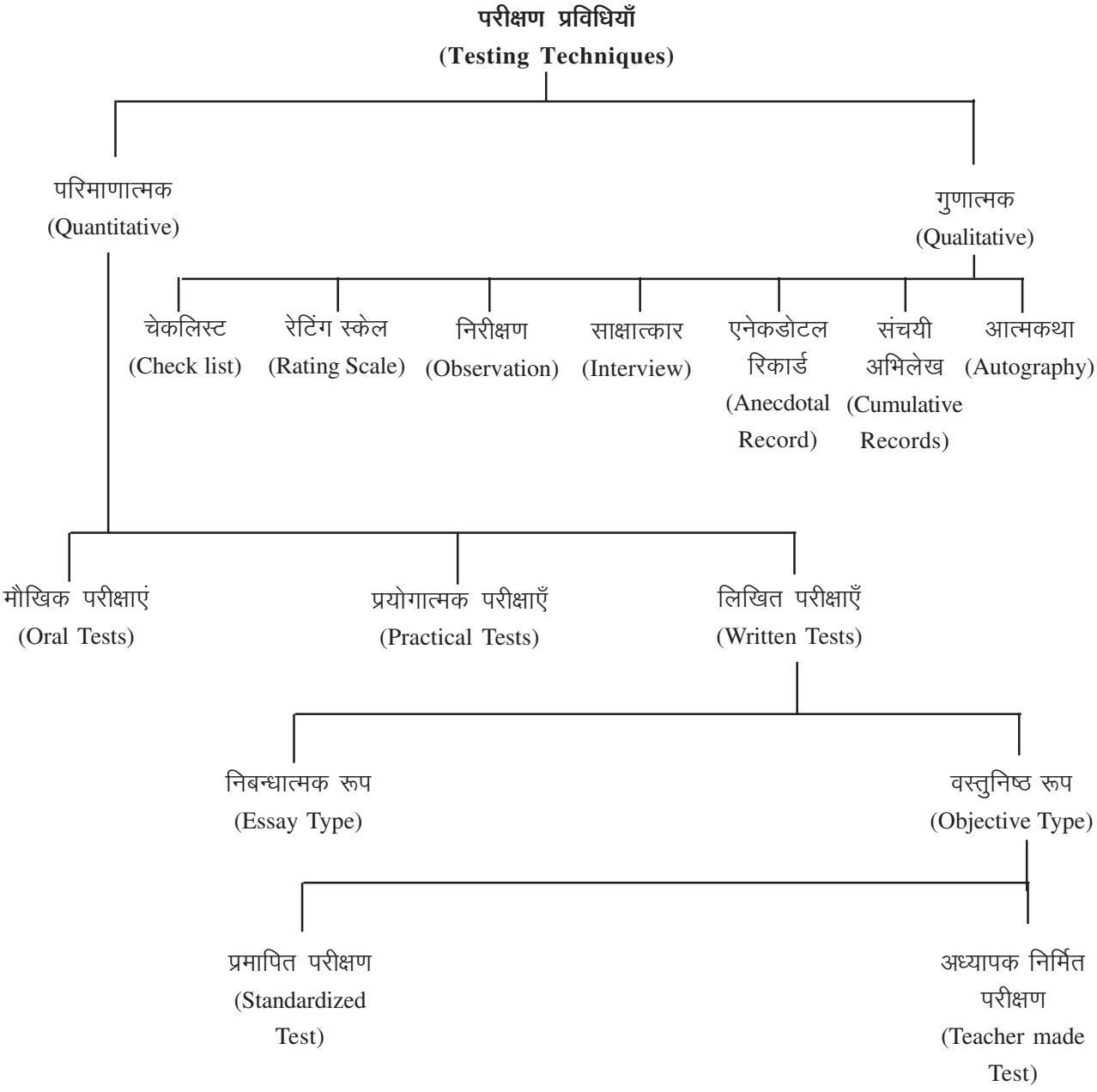

अधिगम उन्नति (व्यवहार परिवर्तन) से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त की जाती है। व्यवहार के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित विभिन्न शैक्षिक उद्देश्यों का मापन किसी एक मूल्यांकन उपकरण अथवा प्रविधि के माध्यम से सम्भव नहीं है। किसी निश्चित उपकरण एवं प्रविधि के माध्यम से किसी एक ही उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है, जैसे जीव विज्ञान में छात्रवत्ति के चयन के लिए परीक्षण, उपलब्धि परीक्षण के लिए कम वैध होगा।

मूल्यांकन के विभिन्न उपकरण एवं प्रविधियां है। इन प्रविधियों को मुख्यतः परिमाणात्मक (Quantitative) तथा गुणात्मक (Qualitative) रूपों में वर्गीकृत किया जाता है। गुणात्मक प्रविधियों का उपयोग व्यक्ति के गुणों का मनोवैज्ञानिक मापन करने के लिए किया जाता है। इन प्रविधियों के अन्तर्गत चेक लिस्ट (Check List) रेटिंग स्केल, निरीक्षण, एनेकडोटल रिकार्ड (Anecdotal Records) संचयी अभिलेख (Cumulative Records), समाजमिति प्रविधि (Sociometric Technique), साक्षात्कार (Interview), आत्मकथा (Autobiography) आदि का उपयोग किया जाता है।

परिमाणात्मक प्रविधियां मुख्यतः तीन प्रकार की होती हैं– मौखिक परीक्षण, प्रयोगात्मक परीक्षण एवं लिखित परीक्षण।

मौखिक परीक्षणों में मौखिक प्रश्न, वाद–विवाद, विचार–विमर्श तथा नाट्य प्रदर्शन आदि सम्मिलित होते हैं। प्रयोगात्मक परीक्षणों के अन्तर्गत विद्यार्थी की प्रयोगात्मक क्षमता का परीक्षण किया जाता है। लिखित परीक्षाएं सबसे अधिक प्रचलित एवं उपयोगी हैं। इन परीक्षाओं में निबन्धात्मक रूप (Essa y Type) तथा वस्तुनिष्ठ रूप (Objective Type) मुख्य होते हैं। निबन्धात्मक परीक्षाओं में विद्यार्थी को विस्तारपूर्वक उत्तर लिखना होता है जबकि वस्तुनिष्ठ परीक्षा में उत्तर का ढ़ंग अत्यन्त सरल तथा संक्षिप्त होता है। ये दोनों ही परीक्षाएँ आन्तरिक एवं बाह्य (Internal and External), व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूपों में आयोजित की जाती है। वस्तुनिष्ठ परीक्षाएं दो प्रकार की होती हैं। पहली, प्रमापित (Standardized) जिनका निर्माण वैज्ञानिक ढ़ंग से किया जाता है और उनका सामान्य स्तर (norm) ज्ञात होता है। दूसरी, अध्यापक–निर्मित (Teacher-made) जिनमें अध्यापक प्रश्नों का निर्माण अनौपचारिक तरीके से कर लेता है। इन प्रश्नों का निर्माण करते समय विशेष विधियों का उपयोग किया जाता है। इन प्रविधियों का विस्तारपूर्वक विवरण इस इकाई के अध्याय 5 में दिया गया है।

## 1.7 मूल्यांकन के उपयोग (Uses of Evaluation)

विद्यार्थियों के व्यवहार परिवर्तन ज्ञात करने के अतिरिक्त मूल्यांकन के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. **मूल्यांकन शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में सुधार लाता है (Evaluation brings improvement in Teaching-Learning Process):** कक्षा शिक्षण में अध्यापक विभिन्न विधियों, तकनीकों, व्यूह रचनाओं आदि का प्रयोग करता है जिससे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया प्रभावशाली बने। मूल्यांकन की सहायता से अध्यापक को यह पुनर्बलन प्रदान किया जा सकता है कि कौन सी विधियां उपयुक्त सिद्ध हुई है और किन विधियों अथवा युक्तियों आदि का निरन्तर प्रयोग करना चाहिए। विद्यार्थियों की अधिगम सम्बन्धी कठिनाईयां ज्ञात करके यह बताया जाता है कि किन बिन्दुओं में सुधार की आवश्यकता है।

2. **मूल्यांकन शिक्षण उद्देश्यों में स्पष्टता लाता है (Evaluation brings Clarity in Educational Objectives):** मूल्यांकन उद्देश्यों पर आधारित होता है। इसका कोई आधार या अर्थ नहीं होगा जब तक इसे स्पष्ट रूप से वर्णित न किया जाए। एक अध्यापक के लिए जिसे शिक्षण हेतु विभिन्न उपविषयों से भरपूर पाठ्यक्रम दिया जाता है उसके लिए मूल्यांकन विधि उसके विषय के शिक्षण में उद्देश्यों को स्पष्ट रुप से आकर्षित करने का माध्यम होगी।

3. **मूल्यांकन मार्ग दर्शन को आधार प्रदान करता है। (Evaluation Provides basis for guidance):** मूल्यांकन विद्यार्थी के व्यवहार–परिवर्तन एवं अधिगम प्रगति के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करता है। विद्यार्थी की व्यक्तिगत कमजोरियों एवं कठिनाईयों को ज्ञात करने में भी मूल्यांकन सहायक है। विद्यार्थी की इन कठिनाईयों, कमजोरियों आदि को ज्ञात करके उसे सुधारात्मक शिक्षण एवं मार्गदर्शन देने में सहायता मिलती है।

4. **मूल्यांकन पाठ्यक्रम परिवर्तन लाता है (Evaluation leads to curriculum changes):** शैक्षिक उद्देश्य एवं उन पर आधारित पाठ्यक्रम मूल्यांकन का केन्द्र है जो समाज की आवश्यकताओं तथा शिक्षा मनोविज्ञान के द्वारा निश्चित किये

जाते हैं। समाज परिवर्तनशील है। विज्ञान एवं तकनीकी की उन्नति के कारण पूरे विश्व की परिस्थितियां तेजी से बदल रही हैं और साथ ही शिक्षा के क्षेत्र में हुए अनुसन्धानों ने नवीन सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला है इसलिए अध्यापक एवं शिक्षा शास्त्रियों को समय–समय पर निम्न प्रश्नों का सामना करना पड़ता है–

(i) क्या विषय–सामग्री के कुछ भाग को छोड़ा जा सकता है?

(ii) क्या विषय–सामग्री के कुछ भाग पर पहले से भी अधिक बल दिया जाना चाहिए?

(iii) क्या हमारा शैक्षिक कार्यक्रम विश्व की बदलती परिस्थितियों के अनुरूप है?

(iv) क्या पाठ्य–क्रम में नए कोर्स होने चाहिएं?

(v) क्या नवीन पाठ्यक्रम में उपविषयों के क्रम में परिवर्तन किया जाना चाहिए?

उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर पाठ्यक्रम के आवश्यकतानुसार निरन्तर पुनः अवलोकन में सहायता कर सकते हैं।

## 1.8 मापन एवं मूल्यांकन (Measurement and Evaluation)

| | मापन | | मूल्यांकन |
|---|---|---|---|
| 1. | मापन एक परिमाणात्मक प्रक्रिया है। | 1. | मूल्यांकन एक गुणात्मक एवं परिमाणात्मक प्रक्रिया है। |
| 2. | यह औपचारिक प्रक्रिया है। | 2. | यह आपैचारिक एवं अनौपचारिक दोनों रूपों में होती है। |
| 3. | इसमें विद्यार्थी के कुछ विशिष्ट गुणों को ही ज्ञात किया जा सकता है। | 3. | इसमें विद्यार्थी के सभी गुणों से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त की जा सकती है। |
| 4. | मापन का क्षेत्र संकुचित है। | 4. | मूल्यांकन का क्षेत्र अपेक्षाकृत व्यापक है। |
| 5. | मापन की विधियां सीमित है। | 5. | इसमें अनेक विधियों का उपयोग किया जाता है। |
| 6. | मापन में समय, धन तथा श्रम की कम आवश्यकता होती है क्योंकि इसमें परीक्षाएँ कम होती है। | 6. | मूल्यांकन में श्रम, धन तथा समय की अधिक आवश्यकता होती है क्योंकि इसमें कई परीक्षाओं का निर्माण, प्रशासन तथा विश्लेषण सम्मिलित होता है। |
| 7. | मापन के आधार पर निश्चित धारणा नहीं बनाई जा सकती जैसे– यदि कोई विद्यार्थी अंग्रेजी में 100 में से 95 अंक प्राप्त करता है तो हम यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि वह कक्षा का सबसे अच्छा छात्र है। | 7. | मूल्यांकन के आधार पर निश्चित धारणा बनाई जा सकती है क्योंकि इसमें उसके सभी पहलुओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया जाता है। |

### अपनी प्रगति जांचिए

(i) मापन एवं मूल्यांकन में क्या अन्तर है।

(ii) मूल्यांकन की प्रविधियों की सूची बनाइये।

## 1.9 सारांश

मापन का विकास मानव सभ्यता के विकास के साथ हुआ जबकि मूल्यांकन शिक्षा में अपेक्षाकृत नवीन विचारधारा है। मूल्यांकन का क्षेत्र विस्तत होता है जबकि मापन का क्षेत्र सीमित होता है। व्यक्ति के गुण विशेष जैसे अंग्रेजी बोलने की कुशलता या विज्ञान के ज्ञान को जानना, मापन कहलाता है। मापन भौतिक एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार का होता है। मापन में वस्तु या व्यक्ति

विशेष के गुण को ज्ञात करके उसे परिमाण में बदल दिया जाता हे। मापन विधियां सीमित हैं– परीक्षण विधि, निरीक्षण विधि एवं मिश्रित विधि।

मूल्यांकन वह गुणात्मक व परिमाणात्मक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति, वस्तु, प्रक्रिया आदि के सभी गुणों को ज्ञात करके उनका मूल्य निर्धारित किया जाता है। मूल्यांकन एक जटिल प्रक्रिया है। इसके मुख्य तीन चरण हैं– शिक्षण उद्देश्यों का निर्धारण, अधिगम अनुभवों का सजन एवं व्यवहार परिवर्तन का मूल्यांकन। मूल्यांकन प्रक्रिया औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों रूपों में होती है। मूल्यांकन में विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के सभी पक्षों के विकास से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त की जाती है इसलिए मूल्यांकन में कई परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है और इसमें अपेक्षाकृत अधिक धन व समय व्यय होता है। मूल्यांकन का क्षेत्र व्यापक है और इसके आधार पर निश्चित धारणा बनाई जा सकती है। मूल्यांकन शिक्षण उद्देश्यों में स्पष्टता, पाठ्यक्रम में परिवर्तन, शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में सुधार लाने और मार्गदर्शन को आधार प्रदान करने में सहायक है। मूल्यांकन में मुख्यतः दो प्रकार की विधियां सम्मिलित हैं– परिमाणात्मक एवं गुणात्मक।

**आदर्श उत्तर**

(i) कृपया 1.8 में देखें

(ii) कृपया 1.6 में देखें

## 1.10 मुख्य शब्द

**मापनः** मापन वह प्रक्रिया है जिसमें चल राशि को परिमाण में बदल दिया जाता है।

**मूल्यांकनः** मूल्यांकन वह गुणात्मक व परिमाणात्मक प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति, प्रक्रिया आदि के सभी गुणों को ज्ञात करके उनका मूल्य निर्धारित किया जाता है।

## 1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

**Sood, J.K.** – 'New Directions in Science Teaching, Kohli Publishers, Chandigarh, 1989.

**शर्मा, आर. ए.** – 'मापन एवं मूल्यांकन', लायल बुक डिपो, मेरठ, 1993.

**पाण्डेय, कामता प्रसाद** – 'शिक्षा में मूल्यांकन', मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1993.

**गुप्ता, रमेशचन्द्र, एवं भट्ट, चन्द्रशेखर** – 'शिक्षा में मापन और मूल्यांकन', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशक, आगरा, 1974.

# इकाई-5

# अध्याय–2: निर्माणात्मक एवं संकलनात्मक मूल्यांकन (Formative and Summative Evaluation)

**उद्देश्य :**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे किः

- निर्माणात्मक मूल्यांकन का अर्थ एवं महत्व बता सकें।
- संकलनात्मक मूल्यांकन का अर्थ एवं महत्व बता सकें।
- निर्माणात्मक एवं संकलनात्मक मूल्यांकन में अंतर बता सकें।

**संरचना :**

2.1 प्रस्तावना
2.2 निर्माणात्मक मूल्यांकन का अर्थ एवं महत्व
2.3 संकलनात्मक मूल्यांकन का अर्थ एवं महत्व
2.4 निर्माणात्मक एवं संकलनात्मक मूल्यांकन में अंतर
2.5 सारांश
आदर्श उत्तर
2.6 मुख्य शब्द
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

## 2.1 प्रस्तावना

मूल्यांकन एक सतत् एवं व्यापक प्रक्रिया है। मूल्यांकन मुख्यतः तीन प्रकार का होता है– निर्माणात्मक मूल्यांकन, संकलनात्मक एवं निदानात्मक मूल्यांकन। विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अध्यापक कक्षा–शिक्षण के दौरान एवं शिक्षण की समाप्ति पर विद्यार्थियों की उपलब्धियों का मूल्यांकन करते हैं। इस तरह परीक्षण करने का उद्देश्य विद्यार्थियों की अधिगम उन्नति की जानकारी प्राप्त करना होता है। एक सफल अध्यापक के लिए विद्यार्थियों की अधिगम उन्नति ज्ञात करना आवश्यक होता है। क्योंकि इसके आधार पर वह स्वयं पुनर्बलन प्राप्त करता है और विद्यार्थियों को भी पुनर्बलन एवं प्रतिपुष्टि प्रदान करता है। इस प्रकार के मूल्यांकन को निर्माणात्मक अथवा निर्मायी मूल्यांकन कहा जाता है और इस मूल्यांकन में उपयोग किये गए परीक्षणों को निर्माणात्मक अथवा निर्मायी परीक्षण कहा जाता है। प्रस्तुत अध्याय में हम निर्माणात्मक एवं संकलनात्मक मूल्यांकन का अध्ययन करेंगे।

## 2.2 निर्माणात्मक मूल्यांकन का अर्थ एवं महत्व
## (Meaning and Importance of Formative Evaluation)

अध्यापक शिक्षण तथा अनुदेशन में पाठ्य–वस्तु को छोटे–छोटे भागों या इकाईयों में बांट कर विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत करता है। इन इकाइयों को विभिन्न उपविषयों में बांट कर शिक्षण किया जाता है। प्रत्येक उपविषय अथवा इकाई की समाप्ति पर अध्यापक विद्यार्थियों का मूल्यांकन करता है। यह मूल्यांकन प्रतिदिन, प्रतिसप्ताह, प्रत्येक दो सप्ताहों में एक बार या मासिक रूप से किया जाता है। इस मूल्यांकन की सहायता से अध्यापक विद्यार्थियों की आवश्यकताओं का पूर्वानुमान लगा सकता है, अधिगम की प्रगति का परिवीक्षण (monitoring) कर सकता है, अधिगम सम्बन्धी कठिनाईयां ज्ञात कर सकता है और यह निर्धारित कर सकता है कि अभिप्रेरित शिक्षा किस सीमा तक प्राप्त की गई है। निर्माणात्मक मूल्यांकन विद्योर्थी को पुनर्बलन प्रदान करता है। विद्यार्थी को उसके द्वारा प्राप्त अधिगम की मात्रा, गुण, गति आदि से सम्बन्धित सूचना प्रदान की जाती है। जिससे उसे पुनर्बलन प्राप्त हो। यह पुनर्बलन विद्यार्थी के अधिगम में सम्मिलित ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक विशेषताओं के संदर्भ में देखा जाता है। यह मूल्यांकन अध्यापक को भी पुनर्बलन प्रदान करता है कि इकाई अथवा उपविषय का कौन सा भाग स्पष्ट रूप से नहीं पढ़ाया गया है और कौन से उद्देश्य स्पष्ट रूप से प्राप्त नहीं किये गए हैं। इस प्रकार निर्माणात्मक मूल्यांकन विद्यार्थियों एवं अध्यापकों दोनों को पुनर्बलन प्रदान करता है। इस पुनर्बलन की सहायता से विद्यार्थियों की अधि गम–प्रगति का परिवीक्षण एवं अध्यापक की कार्य–क्षमता का विकास किया जा सकता है। विद्यार्थियों में अधिगम मुख्यतः दो प्रकार से हो सकता है। स्वयं की गति से अथवा अनुमानित गति से। पुनर्बलन की सहायता से विद्यार्थियों की अधिगम प्रगति की जांच की जाती है। इस सन्दर्भ में उपलब्धि का मानक स्तर निर्धारित किया जाता है जिससे विद्यार्थियों के उपलब्धि स्तर की तुलना की जाती है।

इस मूल्यांकन में अध्यापक स्वयं भी पुनर्बलन प्राप्त करता है और पुनर्बलन के आधार पर अपनी कार्य–क्षमता का विकास करता है। विद्यार्थियों की अधिगम प्रगति के आधार पर अध्यापक अपनी शिक्षण–विधियों, शिक्षण–युक्तियों तथा व्यूह–रचनाओं में परिवर्तन ला सकता है, सहायक सामग्री का अधिक उपयोग करके शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली एवं अन्तःक्रियात्मक (Interactive) बना सकता है अथवा सुधारात्मक शिक्षण (Remedial Teaching) कर सकता है।

इस प्रकार के मूल्यांकन में अंकों को कोई महत्व नहीं दिया जाता है और ग्रेड को थोड़ा महत्व दिया जाता है। इसमें ग्रेड या सर्टिफिकेट प्रदान करने की अपेक्षा अधिगमकर्ता या विद्यार्थी एवं अध्यापक की सहायता करने पर विशेष बल दिया जाता है जिससे शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में सुधार लाया जा सके।

अभिक्रमित अधिगम (Programmed Learning) में निर्माणात्मक मूल्यांकन का विशेष महत्व होता है क्योंकि इसमें प्रत्येक फ्रेम या पद के अन्त में मूल्यांकन किया जाता है। इससे अनुदेशन के दौरान अधिगमकर्ता की प्रगति का परिवीक्षण भी होता है और उसकी अधिगम सम्बन्धी कमजोरियों एवं कठिनाइयों को भी दूर किया जाता है।

निर्माणात्मक मूल्यांकन के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं–

1. मूल्यांकन प्रक्रिया को अधिक सार्थक एवं प्रभावशाली बनाने में सहायता करना।
2. अध्यापक को अपनी अध्यापन प्रक्रिया में समुचित सुधार हेतु परामर्श प्रदान करना।
3. विद्यार्थी को विषय सम्बन्धी कमियों (Weakness), हीनताओं (Deficiencies) तथा कठिनाईयों (Difficulties) की जानकारी प्राप्त करना।
4. शिक्षण–अधिगम परिस्थितियों को प्रभावशाली बनाना।
5. विभिन्न विषय सम्बन्धी विशेषताओं एवं कमियों के आधार पर पाठ्यपुस्तकों अथवा पाठ्यक्रम में परिवर्तन लाना और उन्हें विद्यार्थियों की दष्टि से अधिक उपयोगी बनाना।
6. उपलब्धि परीक्षा के निर्माण हेतु विभिन्न प्रकार के प्रश्नों के चयन में सहायता करना।
7. उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था करना।

निदानात्मक मूल्यांकन के लिए जिन परीक्षणों (Tests) का प्रयोग किया जाता है उन्हें निदानात्मक परीक्षण (diagnostic Tests) कहा जाता है। निदानात्मक मूल्यांकन का क्षेत्र सीमित होता है क्योंकि यह किसी विशिष्ट विषय की सूक्ष्म प्रक्रिया है।

## 2.3 संकलनात्मक मूल्यांकन का अर्थ एवं महत्व (Meaning and Significance of Summative Evaluation)

संकलनात्मक मूल्यांकन से अभिप्राय पूर कोर्स की समाप्ति के पश्चात किये जाने वाले समग्र मूल्यांकन से है। इस मूल्यांकन के लिए प्रयोग किए गए परीक्षणों को संकलनात्मक परीक्षण कहा जाता है। संकलनात्मक मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य किसी कोर्स की समाप्ति के बाद विद्यार्थियों की अधिगम उन्नति एवं उपलब्धियों को ज्ञात करना होता है। यह मूल्यांकन कोर्स की अवधि के पश्चात अर्थात् लम्बे समय पश्चात किया जाता है। अर्थात् छः महीने या एक वर्ष पश्चात्। इस मूल्यांकन की सहायता से यह ज्ञात किया जाता है कि शिक्षण उद्देश्यों की पूर्ति किस सीमा तक हुई है।

संकलनात्मक मूल्यांकन का दूसरा उद्देश्य विद्यार्थियों को ग्रेड या अंक एवं प्रमाणपत्र (Certificate) प्रदान करना होता है। इन ग्रेड अथवा अंकों की सहायता से विद्यार्थियों को उनकी योग्यताओं के अनुरूप वर्गीकृत किया जा सकता है और विभिन्न उद्देश्यों के लिए उनका चयन भी किय जा सकता है। इन्हीं अंकों अथवा ग्रेड के आधार पर विद्यार्थियों को अगली कक्षा में उन्नत किया जाता है।

इस मूल्यांकन में प्रयोग की जाने वाली प्रविधियों का निर्धारण शिक्षण उद्देश्यों के आधार पर किया जाता है परन्तु इनमें मुख्यतः अध्यापक निर्मित उपलब्धि परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि इस मूल्यांकन का उद्देश्य विद्यार्थियों की उपलब्धि का स्तर ज्ञात करके उन्हें प्रमाणपत्र प्रदान करना होता है फिर भी यह शिक्षण की प्रभावशीलता और पाठ्यक्रम के उद्देश्यों की शुद्धता का परीक्षण करने सम्बन्धी सूचना भी प्रदान करता है।

इस प्रकार के मूल्यांकन में न्यादर्श अथवा समूह सीमाएं होती हैं। इसमें परीक्षण–पदों या प्रश्नों की संख्या अधिक होती है इसलिए इसमें न्यादर्श त्रुटियाँ (Sampling Error) होने की संभावना अधिक होती है। अतः इसमें विषय–वस्तु एवं योग्यताओं के न्यादर्श लेने की प्रक्रिया में सावधानी की आवयकता होती है।

## 2.4 निर्माणात्मक एवं संकलनात्मक मूल्यांकन में अन्तर (Difference between Formative and Summative Evaluation)

1. निर्माणात्मक मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य किसी दिए गए अधिगम कार्य में प्रवीणता की सीमा ज्ञात करना है और कार्य के वह भाग जिसमें प्रवीणता नहीं प्राप्त की गई है, का भी पता लगाना है। इसीलिए इसमें ग्रेडिंग या सर्टिफिकेट प्रदान करने की अपेक्षा विद्यार्थी और अध्यापक को अधिगम प्रक्रिया में सुधार लाने में सहायता करने पर अधिक बल दिया जाता है। संकलनात्मक मूल्यांकन में अधिगम प्रक्रिया में सुधार लाने की अपेक्षा कोर्स की समाप्ति के पश्चात् अधिगम में हुई वद्धि को ज्ञात करने और उसके आधार पर ग्रेड और सर्टिफिकेट प्रदान करने को विशेष महत्व दिया जाता हे। उदाहरण के लिए– भौतिकी (विद्युत और चुम्बकत्व) में एक सैमिस्टर की समाप्ति पर किए गए संकलनात्मक मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य यह ज्ञात करना होगा कि विद्यार्थियों ने इससे सम्बन्धित सिद्धांतों और प्रत्ययों को किस सीमा तक सीखा है और इनका दूसरे क्षेत्रों में किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है। दूसरी ओर, इस विषय से संबंधित एक इकाई की समाप्ति पर किए गए निर्माणात्मक मूल्यांकन का उद्देश्य यह ज्ञात करना होगा कि क्या विद्यार्थी ने चुम्बकत्व से सम्बन्धित सिद्धान्तों को परिभाषित करना, अनुवाद करना, व्याख्या करना और दैनिक जीवन में उपयोग करना सीख लिया है। यदि विद्यार्थी में ऊपर लिखित क्षमताओं का विकास नहीं हुआ है तो उसे सहायक सामग्री और संसाधन उपलब्ध करवाए जाते हैं ताकि वह अपनी कमियों को दूर कर सकें।
2. निर्माणात्मक मूल्यांकन समान और छोटे अंतरालों के पश्चात् किया जाता है जबकि संकलनात्मक मूल्यांकन अपेक्षाकृत काफी लम्बे समय के पश्चात् किया जाता है। उदाहरण के लिए सोलह सप्ताहों में पूरे होने वाले एक कोर्स के लिए निर्माणात्मक मूल्यांकन प्रति सप्ताह के अन्त में किया जाएगा और समग्र मूल्यांकन सोलहवें सप्ताह के अंतिम दिन किया जाएगा।

3. निर्माणात्मक और संकलनात्मक मूल्यांकन में अंतर स्पष्ट करने 'सामान्यीकरण स्तर' सबसे अधिक सहायता करता है जहाँ निर्माणात्मक मूल्यांकन में विद्यार्थी को किसी दिए गए सिद्धान्त को किसी दी गई नई परिस्थिति में प्रयोग करने की योग्यता की जांच की जाती है वहीं संकलनात्मक मूल्यांकन में किसी विद्यार्थी के कौशल के विकास और योग्यता की जांच की जाती है वहीं संकलनात्मक मूल्यांकन में किसी विद्यार्थी के कौशल के विकास और विभिन्न परिस्थितियों में जांच की जाती है। ये विभिन्न परिस्थितियां विभिन्न सिद्धान्तों का एकीकृत या समन्वीकृत रूप प्रस्तुत करती है। इसी कारण संकलनात्मक मूल्यांकन का नियोजन करते समय अध्यापक को विषय–वस्तु और योग्यताओं को व्यापक एवं समन्वीकृत रूप में व्यवस्थित करना चाहिए। इस मूल्यांकन में परीक्षण की वैधता भी निर्धारित की जानी चाहिए।

**अपनी प्रगति जांचिए**

(i) निर्माणात्मक मूल्यांकन पर एक संक्षिप्त नोट लिखो।

(ii) संकलनात्मक मूल्यांकन का महत्व स्पष्ट कीजिए।

## 2.4 सारांश

निर्माणात्मक मूल्यांकन प्रतिदिन, प्रतिसप्ताह, प्रत्येक दो सप्ताहों में एक बार मासिक रूप से किया जाता है। इस मूल्यांकन की सहायता से विद्यार्थियों एवं स्वयं अध्यापक को भी पुनर्बलन प्राप्त होता है। निर्माणात्मक मूल्यांकन में अंकों या ग्रेड की अपेक्षा अधिगमकर्ता की सहायता पर विशेष बल दिया जाता है। जिससे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सुधार लाया जा सके। संकलनात्मक मूल्यांकन से अभिप्राय पूरे कोर्स की समाप्ति के पश्चात् किये जाने वाले समग्र मूल्यांकन से है। यह मूल्यांकन छः महीने या एक वर्ष की अवधि के पश्चात किया जाता है। इस मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को ग्रेड एवं प्रमाण पत्र प्रदान करना होता है। इसके अतिरिक्त यह मूल्यांकन शिक्षण की प्रभावशीलता और पाठ्यक्रम के उद्देश्यों की शुद्धता का परीक्षण करने में भी सहायक है। इस प्रकार के मूल्यांकन में न्यादर्श त्रुटियाँ होने की संभावना अधिक होती है फिर भी शिक्षा में इस मूल्यांकन का विशिष्ट महत्व है।

**आदर्श उत्तर**

(i) कृपया 2.2 में देखें।

(ii) कृपया 2.3 में देखें।

## 2.5 मुख्य शब्द

**निर्माणात्मक मूल्यांकनः** ऐसा मूल्यांकन जो छोटे–छोटे अंतरालों– प्रतिदिन, प्रति सप्ताह, मासिक के पश्चात किया जाता है।

**संकलनात्मक मूल्यांकनः** वह मूल्यांकन जो एक सत्र अथवा पूरे कोर्स की समाप्ति के पश्चात् किया जाता है।

## 2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

शर्मा, आर. ए. – 'मापन एवं मूल्यांकन', लायल बुक डिपो, मेरठ, 1993.

# इकाई-5

# अध्याय–3: ग्रेडिंग के विभिन्न प्रकार

# (Different Types of Grading)

**उद्देश्य :**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात, आप इस योग्य हो जाएंगे कि:

- ग्रेडिंग का अर्थ बता सकें।
- ग्रेडिंग के लाभों की सूची बना सकें।
- ग्रेडिंग के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कर सकें।

**संरचना :**

3.1 प्रस्तावना
3.2 ग्रेड़िंग
3.3 ग्रेड़िंग के लाभ
3.4 ग्रेड़िंग के प्रकार
3.5 सारांश
आदर्श उत्तर
3.6 मुख्य शब्द
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

## 3.1 प्रस्तावना

हम सभी अंकन प्रणाली से परिचित हैं जिसमें विद्यार्थी द्वारा परीक्षा में दिये गए उत्तरों के आधार पर 100 में से अंक प्रदान किए जाते हैं। ये अंक विद्यार्थी के निष्पादन स्तर को प्रदर्शित करते हैं। इस प्रणाली को संख्यात्मक अंकन प्रणाली कहा जाता है। संख्यात्मक अंक देने की इस प्रथा में कई विसंगतियां है जो अनेक भूलों के कारण और अंक देने के लिए उपयोग की जाने वाली अंतराल मापनी (Interval Scale) की अंतर्निहित सीमाओं के कारण पैदा होती हैं।

संख्यात्मक अंकन प्रणाली में अध्यापक 0 से लेकर 100 तक अंक प्रदान करता है इसीलिए इसे 101 बिन्दु मापनी कहा जाता है। इस मापनी के अनुसार 57 अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थी को 56 अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थी से श्रेष्ठ समझा जाता है। यह निष्कर्ष असंगत है क्योंकि प्रत्येक विद्यार्थी द्वारा प्राप्त अंकों में अनिश्चितता होती है। विभिन्न परीक्षकों द्वारा एक ही उत्तरपुस्तिका पर दिये गए अंकों में भिन्नता होती है। यहाँ तक कि एक ही परीक्षक द्वारा विभिन्न अवसरों पर दिये गए अंक भिन्न हो सकते हैं। इसका कारण यह है क्योंकि विभिन्न परीक्षक एक ही उत्तर को विभिन्न मापकों से या विभिन्न योग्यताओं जैसे – ज्ञान, स्मति, बोध आदि को मापने का प्रयत्न करते हैं। इस दिशा में किये गए विभिन्न शोधों अध्ययनों के आधार पर यह पता लगाया गया है कि परीक्षकों द्वारा उत्तरपुस्तिकाओं में अंक देते समय इस बात की 50% संभावना होती है कि अंकन

त्रुटि 5 प्रतिशत से अधिक होगी अर्थात् यदि किसी परीक्षा में किसी विद्यार्थी ने 35 अंक प्राप्त किये हैं तो 50 प्रतिशत स्थितियों में उसके वास्तविक अंक 40 या उससे अधिक हो सकते हैं और 50 प्रतिशत स्थितियों में 30 या उससे कम हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में प्रचलित 101 बिन्दु मापनी का प्रयोग अर्थहीन है, विशेषरूप से उन परिस्थितियों में जब हम कम से कम पास अंक 35 रखने का या प्रथम श्रेणी के लिए 60 अंक निर्धारित करने का निर्णय करते हैं।

आप सबको इस बात का व्यक्तिगत अनुभव होगा कि विभिन्न विषयों में विद्यार्थियों के दिए जाने वाले अंकों में भिन्नता होती है। उदाहरण के लिए गणित में दिए गए अंक 0 से 100 तक की सीमा में होते हैं। परन्तु भाषा में दिए गए अंकों की सीमा प्रायः 20–80 होती है। इसका अर्थ यह है कि परीक्षाओं में दिए जाने वाले अंक कच्चे अंक होते हैं, क्योंकि उनमें कई त्रुटियां होती हैं। इस प्रकार वे अंक अलग–अलग विद्यार्थियों की वास्तविक योग्यताओं के द्योतक होते परन्तु फिर भी उनका उपयोग एकल प्राप्तांक इकाई (Single Score Unit) के आधार पर विद्यार्थियों में भेद करने के लिए किया जाता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस मिथ्या धारणा के आधार पर कि अंग्रेजी में प्राप्त 60 अंक गणित में प्राप्त 60 अंकों के समान होते हैं, एक विषय के अंक दूसरे विषय के अंकों के साथ उन विषयों की परिधि और भिन्नता का ध्यान किए बिना, जोड़ दिए जाते हैं। यह बात तकनीकी रूप से ठीक नहीं है क्योंकि विभिन्न किस्मों की भूलें, जो अंकन में हो जाती हैं और इसे दूषित कर देती हैं, कच्चे अंकों को निरपेक्ष अंकों का रूप में लेने से रोकती हैं।

## 3.2 ग्रेडिंग (Grading)

संख्यात्मक अंकन प्रणाली विद्यार्थियों को परीक्षा में उनके निष्पादन के आधार पर शुद्ध रूप से वर्गीकृत करने में सक्षम नहीं है। इस अयोग्यता के दो कारण हैं, पहला यह कि हम विद्यार्थियों की व्यापक विभिन्नताओं का एक सिंगल यूनिट के आधार पर मूल्यांकन करने का प्रयत्न करते हैं और दूसरा, विद्यार्थियों की उपलब्धि का संख्यात्मक अंकों के रूप में मूल्यांकन करते हैं। यह स्पष्ट है कि मानव प्रकृति की जटिलता एवं व्यापक भिन्नताओं को किसी अंतराल मापनी पर सही–सही नहीं मापा जा सकता है। इस त्रुटि को कम अवश्य किया जा सकता है। 101 बिन्दु अंकन प्रणाली में 0–100 अर्थात् कुल 101 वर्गीकरण इकाईयाँ हैं। इन इकाईयों में विभिन्न विद्यार्थियों के निष्पादन स्तर के साथ एक से एक समता (one to one correspondance) नहीं होती।

इसका अभिप्राय यह है कि हमें एक सघन मापनी का प्रयोग करना चाहिए जिसमें निष्पादन स्तरों को प्रदर्शित करने के लिए श्रेणियों की संख्या कम हो। दूसरे शब्दों में, विद्यार्थियों को योग्यता–पट्टियों में रखा जा सकता है, जो प्राप्तंकों के परास की द्योतक हों। इन योग्यता–पट्टियों की संख्या उन श्रेणियों की संख्या के अनुसार भिन्न–भिन्न हो सकती है जिनका उपयोग हम विद्यार्थियों का वर्गीकरण करने के लिए करना चाहते हैं। यह संख्या 5, 7 या 10 हो सकती है। प्रत्येक योग्यता परास को किसी अक्षर का नाम दिय जा सकता है, जिसे ग्रेड कहा जाता है। 0–5 बिन्दु मापनी (Scale) पर ये ग्रेड A, B, C, D एवं E वर्गों द्वारा एवं 7–बिन्दु मापनी पर A+, A, B+, B, C+, C एवं D द्वारा प्रदर्शित किये जा सकते हैं।

## 3.3 ग्रेडिंग के लाभ (Advantages of Grading)

ग्रेडिंग के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. ग्रेडिंग से अंकों को दिया जाने वाला महत्व कम हो जाता है।
2. इसमें वितरण का पूरा परास शामिल होता है।
3. यह प्रश्न पत्र की कठिनता के स्तर के प्रभाव को घटाता है।
4. इससे विभिन्न विषयों, बोर्डों और वर्षों के बीच विद्यार्थियों के बीच विद्यार्थियों के कार्य–निष्पादन की तुलना किए जाने की व्यवस्था होती है।
5. सापेक्ष ग्रेडिंग की सहायता से ग्रेड मूल्यों की योगशीलता का उपयोग किया जा सकता है।
6. इससे विद्यार्थियों और उनके माता–पिता पर पड़ने वाला परिहार्य दबाव कम हो जाता है।
7. इससे इस तथ्य का समर्थन होता है कि अधिगम समान रूप से वितरित अथवा विभाजित होता है।
8. यह मूल्यांकन प्रक्रिया को अधिक वैज्ञानिक बनाता है।

## 3.4 ग्रेडिंग के प्रकार (Types of Grading)

1. **प्रत्यक्ष ग्रेडिंगः** इसमें विद्यार्थियों की योग्यता को अंकों के स्थान पर ग्रेड द्वारा प्रदर्शित किया जाता है ये ग्रेड O, A, B, C, D अथवा A, B, C, D, E अथवा A+, A, B+, B, C+, C, D आदि हो सकते हैं। I. G. N. O. U. (इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय) प्रत्यक्ष ग्रेडिंग प्रणाली का सफलतापूर्वक प्रयोग कर रही है।

2. **अप्रत्यक्ष ग्रेड अथवा अंकों को ग्रेड में परिवर्तित करनाः** केन्द्रीय विद्यालय शिक्षा बोर्ड एवं अन्य बहुत से शिक्षा संस्थानों ने इस प्रणाली के अनुसार अपनी कार्य–पद्धति में परिवर्तन किया है। जहाँ तक संभव हो अध्यापकों को प्रत्यक्ष ग्रेड देने चाहिएं। जब तक सभी अध्यापक एवं शिक्षा संस्थान प्रत्यक्ष ग्रेड प्रणाली को पूर्ण रूप से न अपना लें, वितरण सारणी (Distribution Table) की सहायता से अध्यापकों द्वारा दिये गए अंकों को ग्रेड में परिवर्तित करना चाहिए। संख्यात्मक अंकों को ग्रेड में परिवर्तित करने के लिए निम्नलिखित विधि का प्रयोग किया जा सकता है–

   किसी भी बोर्ड अथवा विषय में दिये गए उच्चतम अंकों को नोट करें एवं इसे 'O' ग्रेड दें। फेल अंकों को 'E' एवं 'F' ग्रेड दें और बचे हुए अंकों को समान अन्तरालों के आधार पर बांटें। उदाहरण के लिए–

   (i) यदि भौतिक शिक्षण में पास अंक 35 हैं और पिछले तीन वर्षों में भौतिक विज्ञान में प्राप्त उच्चतम अंक 75 हैं तो ग्रेड निर्धारण इस प्रकार होगा–

| | | |
|---|---|---|
| 67 या अधिक | O (Outstanding) | |
| 59-66 | A | |
| 51-58 | B | |
| 43-50 | C | |
| 35-42 | D | |
| 25-34 | E | Failed |
| 24 या कम | F | Failed |

   (ii) यदि पिछले तीन वर्षों में गणित में प्राप्त उच्चतम अंक 99 हैं तो अंक वितरण एवं ग्रेड निर्धारण इस प्रकार होगा–

| | | |
|---|---|---|
| 87 या अधिक | O (Outstanding) | |
| 74-86 | A | |
| 61-73 | B | |
| 48-60 | C | |
| 35-47 | D | |
| 25-34 | E | Failed |
| 24 या कम | F | Failed |

   (iii) आंतरिक एवं बाह्य परीक्षाओं में दिए गए ग्रेड अंक तालिका में अलग–अलग स्थानों पर प्रदर्शित किए जाने चाहिए। प्रत्येक विषय में विद्यार्थी द्वारा प्राप्त ग्रेड के साथ ग्रेड बिन्दु मध्यमान (Grade Point Average) भी प्रदर्शित करना चाहिए। इससे किसी भी वर्ग से सम्बन्धित विद्यार्थियों में विभेद करने में सुविधा होती है। प्रत्येक बोर्ड अपनी आवश्कताओं के अनुसार ग्रेड बिन्दु मध्यमान निर्धारित कर सकता है। किसी भी विषय में कम से कम निर्धारित ग्रेड बिन्दु मध्यमान 2.00 होना चाहिए।

$$\text{ग्रेड बिन्दु मध्यमान} = \frac{\text{ग्रेड बिन्दु} + \text{ग्रेड बिन्दु}}{2}$$

ग्रेड बिन्दु से अभिप्राय प्रत्येक ग्रेड को दिए गए बिन्दुओं से है। ये बिन्दु इस प्रकार हैं– 'O' – 6, 'A' – 5, 'B' – 4, 'C' – 3, 'D' – 2, 'E' – 1 एवं 'F' – O.

**तालिकाः ग्रेड प्रदान करने की विधि**

| प्रश्न संख्या | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | कुल |
|---|---|---|---|---|---|---|
| ग्रेड (Grade) | O | A | A | O | B | |
| ग्रेड बिन्दु (Grade Points) | 6 | 5 | 5 | 6 | 4 | 26 |

$$\text{ग्रेड बिन्दु मध्यमान} = \frac{26}{5} = 5.2$$

सकेल ग्रेड = A

(iv) ग्रेड प्रणाली को पूरी तरह से अपनाने से पूर्व निम्नलिखित तैयारियां करनी आवश्यक हैं–

I. विश्वविद्यालय/बोर्ड के पिछले तीन वर्षों के प्रत्येक विषय के परिणामों का क्रमबद्ध विश्लेषण करके सांख्यिकीय मात्रकों जैसे– मध्यमान (Mean), प्रमाणिक विचलन (Standard Deviaiton), प्रमाणिक त्रुटि (Standard Errors), विश्वसनीयता गुणांक (Reliability Coefficents) आदि का पता लगाना चाहिए।

II. प्रत्येक विषय में अंकों को ग्रेड में परिवर्तित करने के लिए मानक सारिणयां बनानी चाहिए और अंतरिम उपाय (Interim Measure) के रूप में इन्हें प्रयोग करना चाहिए।

III. प्रत्यक्ष ग्रेडिंग (Direct Grading) प्रारम्भ करने से पूर्व अध्यापकों एवं दूसरे सम्बन्धित व्यक्तियों को इस क्षेत्र में प्रशिक्षण देना चाहिए।

IV. ग्रेडिंग प्रणाली में संबंधित विवरण एवं सूचनाएं और इनकी उपयोगिता का अध्यापकों, छात्रों एवं अभिभावकों को ज्ञान करवाना चाहिए।

**अपनी प्रगति जांचिए**

(i) ग्रेड प्रणाली के क्या लाभ हैं?

(ii) ग्रेड बिन्दु एवं ग्रेड बिन्दु मध्यमान में क्या अन्तर है?

(iii) अंकों को ग्रेड में सरलतापूर्वक परिवर्तित करने का क्या उपाय है?

## 3.5 सारांश

संख्यात्मक अंकन प्रणाली दोषपूर्ण है। इससे विद्यार्थियों की योग्यता का सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। संख्यात्मक प्रणाली की विसंगतियों को दूर करने के लिए ग्रेडिंग प्रणाली का जन्म हुआ। ग्रेडिंग में विद्यार्थियों के उपलब्धि स्तर को प्रदर्शित करने के लिए योग्यता पट्टियों अर्थात् ग्रेड का उपयोग किया जाता है। ग्रेड O, A, B, C, D अथवा A+, A, B+, B, C+, C एवं D द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। ग्रेडिंग मूल्यांकन प्रक्रिया को अधिक वैज्ञानिक एवं विश्वसनीय बनाती है। ग्रेडिंग मुख्यतः दो प्रकार की होती है– प्रत्यक्ष ग्रेडिंग एवं अप्रत्यक्ष ग्रेडिंग। प्रत्यक्ष ग्रेडिंग, अप्रत्यक्ष ग्रेडिंग की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली है। प्रत्यक्ष ग्रेडिंग को पूर्ण रूप से लागू करने से पूर्व अध्यापकों, प्रशासकों आदि का प्रशिक्षण देना चाहिए और मानक सारिणयों का निर्माण करना चाहिए जिनकी सहायता से अंकों के ग्रेड में परिवर्तित किया जा सके।

**आदर्श उत्तर**

(i) ग्रेडिंग से अंकों दिया जाने वाला महत्व कम हो जाता है, इसमें वितरण का पूरा परास होता है और यह मूल्यांकन प्रक्रिया को अधिक वैज्ञानिक बनाता है।

(ii) ग्रेड बिन्दु से अभिप्राय प्रत्येक ग्रेड को दिये गए बिन्दुओं से है।

$$\text{ग्रेड बिन्दु का मध्यमान} = \frac{\text{ग्रेड बिन्दु} + \text{ग्रेड बिन्दु}}{2}$$

(iii) मानक सारणियों का निर्माण एवं उपयोग।

## 3.6 मुख्य शब्द

**ग्रेडिंगः** विद्यार्थी की योग्यता को प्रदर्शित करने के लिए अंकों के स्थान पर ग्रेड देने की प्रक्रिया।

**ग्रेड बिन्दुः** प्रत्येक ग्रेड के लिए निर्धारित बिन्दु।

## 3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

'Improving Instructions in Biology' , NCERT, New Delhi.

# इकाई-5

# अध्याय-4: एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण के गुण (Attributes of a Good Achievement Test)

**उद्देश्य:**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि:

– एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण के गुणों का वर्णन कर सकें।

**संरचना:**

4.1. प्रस्तावना
4.2. एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण के गुण
4.3. सारांश
आदर्श उत्तर
4.4. मुख्य शब्द
4.5. संदर्भ ग्रन्थ

## 4.1 प्रस्तावना

प्रचलित परीक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है। इसमें विद्यार्थियों की उपलब्धि का मूल्यांकन उचित रूप से नहीं हो पाता। ऐसा प्रायः देखा जाता है कि अधिकांश विद्यार्थी परीक्षाओं से कुछ समय पहले ही पढ़ना आरम्भ करते हैं और परीक्ष में अच्छे अंक प्राप्त कर लेते हैं। हमारे प्रश्न पत्र और उत्तर पुस्तिकाओं की मूल्यांकन प्रणाली भी दोषपूर्ण है। इस दिशा में किये गए विभिन्न अनुसंधानों से प्राप्त परिणामों से यह स्पष्ट है कि एक ही उत्तर पुस्तिका का विभिन्न अवसरों पर एक ही परीक्षक द्वारा मूल्यांकन करने पर अलग–अलग अंक प्राप्त हुए। एक विद्यार्थी को एक विषय में सात परीक्षकों ने अनुत्तीर्ण घोषित किया। आठ परीक्षकों ने उस विद्यार्थी को उसी विषय में प्रथम श्रेणी के अंक दिए और 10 परीक्षकों द्वारा उस विद्यार्थी को दिये गए अंकों का विस्तार 22 से 76 तक था। प्रश्न उठता है कि इस प्रकार की समस्या को दूर कैसे किया जाए? एक अच्छा उपलब्धि परीक्षण इस प्रकार की समस्याओं को दूर करने में सहायक हो सकता है। प्रस्तुत अध्याय में हम एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण के गुणों का अध्ययन करेंगे।

## 4.2 एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण के गुण (Attributes of a Good Achievement Test)

उपलब्धि परीक्षण से अभिप्राय ऐसे परीक्षण से है जिसकी सहायता से किसी निश्चित क्षेत्र में अर्जित ज्ञान अथवा योग्यता का मापन किया जाता है। एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण में निम्नलिखित गुण होने चाहिए–

1. **विश्वसनीयता (Reliability)** विश्वसनीयता से अभिप्राय एकरूपता (Consistency) से है। किसी परीक्षण की विश्वसनीयता से अभिप्राय उस परीक्षण को विभिन्न अवसरों पर एक ही प्रकार के विभिन्न पदों पर प्रशासित करके एक जैसे निष्कर्ष

प्राप्त करने से है। एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण में विश्वसनीयता होनी चहिए अर्थात् यदि किसी उपलब्धि परीक्षण को विभिन्न अवसरों पर किसी विशेष आयु वर्ग के विद्यार्थियों को दिया जाए और प्रत्येक अवसर पर प्राप्त फलांक या निष्कर्ष एक जैसे हों तो वह उपलब्धि परीक्षण विश्वसनीय है अन्यथा नहीं। किसी उपलब्धि परीक्षण की विश्वसनीयता मापन की यथार्थता से सम्बन्धित है। उदाहरण के लिए तापमान बढ़ने और घटने से धातु की छड़ फैलती है और सिकुड़ती है। अतः यथार्थ मापन तभी संभव है जब तापमान स्थिर रहे। इसी प्रकार किसी उपलब्धि परीक्षण की जांच करते समय यदि समान परिस्थितियां दी जाएं तो ही परीक्षण की विश्वसनीयता ज्ञात की जा सकती है।

किसी परीक्षण की विश्वसनीयता ज्ञात करने के लिए विभिन्न विधियों जैसे परीक्षण– पुनः परीक्षण विधि (Test -Retest Method), समान्तर प्रतिरूप विधि (Parallel Form Method), अर्द्ध–विच्छेद विधि (Split-Half Method) एवं युक्ति–युक्त पद–साम्यविधि (Rational Equivalence Method) का प्रयोग किया जा सकता है।

2. **वैधता (Validity)** वैधता से अभिप्राय प्रयोजन– सापेक्षता से है। किसी परीक्षण की वैधता से अभिप्राय उस परीक्षण द्वारा वह मापन करने की योग्यता से है जिसके लिये उसकी रचना की गई है। एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण में वैधता का गुण होना आवश्यक है अर्थात् यदि कोई उपलब्धि परीक्षण किसी श्रेणी अथवा स्तर के विद्यार्थियों की उस विशेषता अथवा योग्यता का मापन करता है जिसके लिए उसकी रचना की गई है तो वह परीक्षण वैध माना जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई उपलब्धि परीक्षण विद्यार्थियों के जीव–विज्ञान विश्वसनीयता सम्बन्धी ज्ञान का मूल्यांकन करने के लिए बनाया गया है और उपयोग में लाने पर वह परीक्षण इसी ज्ञान का मूल्यांकन करता है तो वह वैध है अन्यथा नहीं। कोई भी परीक्षण सार्वभौमिक नहीं हो सकता। एक परीक्षण केवल उन्हीं परिस्थितियों में वैध होता है जिसमें उसे प्रमापीकृत (Standardized) किया गया है और वह केवल उसी समग्र (Population) के लिए उपयुक्त होता है जिसके न्यादर्श (Sample) पर उसे प्रमापीकृत किया गया है। उदाहरण के लिए बारहवीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए बनाया गया उपलब्धि परीक्षण किसी अन्य कक्षा के विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त नहीं होगा।

3. **वस्तुनिष्ठता (Objectivity)** वस्तुनिष्ठता से अभिप्राय निष्पक्षता से है। किसी परीक्षण की वस्तुनिष्ठता से अभिप्राय उस परीक्षण पर परीक्षक का व्यक्तिगत प्रभाव न पड़ने से है। एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण का वस्तुनिष्ठ होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इसका प्रभाव विश्वसनीयता एवं वैधता दोनों पर पड़ता है। वास्तव में जो परीक्षण वस्तुनिष्ठ नहीं होता, वह विश्वसनीय और वैध भी नहीं हो सकता। एक पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ परीक्षण वह है जिसमें प्रत्येक परीक्षक किसी व्यक्ति के मूल्यांकन के सम्बन्ध में एक ही निष्कर्ष पर पहुंचे, जिसके प्रश्नों की व्याख्या या जिनके अर्थ भिन्न–भिन्न प्रकार से न किये जा सकें, जिनके प्रश्नों के उत्तरों पर अंक देते समय विभिन्न व्यक्तियों में मतभेद न होता हो। संक्षेप में, एक वस्तुनिष्ठ परीक्षण पर परीक्षक की व्यक्तिगत भावनाओं, धारणाओं तथा विचारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

4. **व्यापकता (Comprehensiveness):** किसी परीक्षण की व्यापकता से अभिप्राय उसमें पाठ्यक्रम से सम्बन्धित तथ्यों के अधिकतम समावेश से है। एक अच्छा उपलब्धि परीक्षण व्यापक होना चाहिए। एक उपलब्धि परीक्षण पाठ्यक्रम विभिन्न अंशों से जितना अधिक सम्बन्धित होता है, वह उतना ही अधिक व्यापक होता है। किसी परीक्षण की व्यापकता का अनुमान किसी सांख्यिकी सूत्र के आधार पर नहीं लगाया जा सकता। परीक्षण की व्यापकता के बारे में निर्णय करना स्वयं निर्माता की सूझ–बूझ, उसकी कुशाग्र बुद्धि तथा परीक्षण–निर्माण की क्षमता पर निर्भर है। किसी परीक्षण को व्यापक बनाने के लिए परीक्षण के उद्देश्यों एवं परिणामों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

5. **विभेदकारिता (Discriminativity):** किसी परीक्षण की विभेदकारिता से अभिप्राय उसकी उच्च योग्यता एवं निम्न योग्यता वाले विद्यार्थियों में अंतर करने की क्षमता से है। एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण में विभेदकारिता का गुण आवश्यक है। इसीलिए परीक्षण में कुछ सरल प्रश्नों एवं कुछ जटिल प्रश्नों की रचना की जाती है जिससे प्रतिभाशाली एवं कमजोर दोनों प्रकार के विद्यार्थी उन्हें हल कर सकें। अच्छे परीक्षण में यह विशेषता होनी चाहिए कि इसके आधार पर उच्च योग्यता एवं निम्न योग्यता वाले छात्रों में भेद किया जा सके। जिन प्रश्नों के उत्तर अधिकांश विद्यार्थी नहीं दे सकते, उनकी विभेदकारिता नकारात्मक होती है। ऐसे प्रश्नों को परीक्षण में सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए। जिन प्रश्नों के उत्तर अधिकांश प्रतिभाशाली विद्यार्थी दे सकते हैं और कमजोर या निम्न योग्यता वाले विद्यार्थी नहीं दे सकते उनकी

विभेदकारिता सकारात्मक होती है। परीक्षण–पदों की विभेदीकरण क्षमता (Discrimination Power) ज्ञात करने के लिए प्रत्येक पद का विश्लेषण किया जाता है। विश्लेषण की इस प्रक्रिया को पद–विश्लेषण (Item-analysis) कहा जाता है।

6. **व्यावहारिकता (Practicability):** किसी परीक्षण की व्यावहारिकता से अभिप्राय व्यावहारिक परिस्थितियों में इसके उपयोग से है। एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण में व्यावहारिकता अथवा व्यवहारशीलता होना आवश्यक है। किसी परीक्षण को व्यवहार में उपयोग करते समय जितनी कम ऊर्जा व समय व्यय होगा और प्रशासन, फलांकन व विवेचन में जितनी अधिक सुविधा होगी वह परीक्षण उतना ही उपयोगी माना जाएगा। उपलब्धि परीक्षण की व्यावहारिकता से सम्बन्धित बिन्दुओं का वर्णन निम्नलिखित है–

(i) ***मितव्ययता (Economical):*** एक अच्छा उपलब्धि परीक्षण समय, ऊर्जा एवं धन की दष्टि से मितव्ययी होना चाहिए। परीक्षण की रचना करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि परीक्षण अनावश्यक रूप से विस्तत न हो और इसकी रचना में अनावश्यक रूप से धन का व्यय न हो। केवल उन्हीं पदों को परीक्षण में स्थान देना चाहिए जिनसे परीक्षा उद्देश्यों की पूर्ति हो सके।

(ii) ***प्रशासन में सुविधा (Easy to Administer):*** परीक्षण के प्रशासन में सुविधा से अभिप्राय प्रशासकों को परीक्षण देने में एवं विद्यार्थियों को परीक्षण लेने में किसी प्रकार की कठिनाई न होने से है। एक अच्छा उपलब्धि परीक्षण प्रशासित करने में सुविधाजनक होता है। ऐसे परीक्षण के लिए यह आवश्यक है कि विवरण पुस्तिका में परीक्षण से सम्बन्धित पूर्ण विवरण दिया जाए। यदि संभव हो तो अभ्यास के लिए नमूने उदाहरण (Model Examples) भी देने चाहिएं। इसके अतिरिक्त परीक्षण आरम्भ करने से पूर्व विद्यार्थियों को लिखित एवं मौखिक निर्देश दिये जाने चाहिएं, परीक्षण पदार्थों का उचित रूप से वितरण तथा पुनः संग्रहण हो तथा विद्यार्थियों को परीक्षण के लिए नियत समय दिया जाना चाहिए।

(iii) ***फलांकन एवं विवेचन में सुविधा (Easy to Score and Interpret):*** एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण का फलांकन एवं विवेचन सरलतापूर्वक एवं शीघ्रता से किया जा सकता है। फलांकन व्यक्ति द्वारा स्टेन्सिल, उत्तर कुंजी आदि का उपयोग करके हाथ से (Manually) किया जा सकता है अथवा कम्प्यूटर की सहायता से किया जा सकता है। कम्प्यूटर से फलांकन करने के लिए विशेष प्रकार की उत्तरपुस्तिकाओं (Answr sheets) की आवश्यकता पड़ती है।

फलांकन से प्राप्त अंकों अथवा परिणामों का विवेचन सरलतापूर्वक करने के लिए परीक्षण के साथ संलग्न विवरण पुस्तिका पूर्ण होनी चाहिए। इस विवरण पुस्तिका में परिणाम सारणियाँ, आवश्यक गणना विधियाँ तथा नियमों का (Norms) पूर्ण विवरण होना चाहिए।

(iv) ***उपयोगिता (Utility):*** उपयोगिता से अभिप्राय परीक्षण के स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वांछित परिणामों की प्राप्ति के लिए प्रयोग से है। उपलब्धि परीक्षण का प्रयोग उसकी उपयोगिता पर निर्भर होता है। जो परीक्षण जितना अधिक उपयोगी होता है उसका प्रयोग उतना अधिक होता है।

### अपनी प्रगति जांचिए

(i) एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण में क्या गुण होने चाहिएं?

## 4.3 सारांश

उपलब्धि परीक्षण से अभिप्राय ऐसे परीक्षण से है जो विद्यार्थी द्वारा किसी निश्चित क्षेत्र में अर्जित ज्ञान या योग्यता का मापन करने में सहायता करता है। एक अच्छा उपलब्धि परीक्षण विश्वसनीय, वैध, वस्तुनिष्ठ, व्यापक, विभेदकारी तथा व्यावहारिक होना चाहिए। उपलब्धि परीक्षण की व्यावहारिकता से अभिप्राय है कि व्यावहारिक परिस्थितियों में उसका सरलता से प्रशासन, फलांकन व विवेचन किया जा सके और वह ऊर्जा, धन व समय की दष्टि से मितव्ययी हो।

**आदर्श उत्तर**

1 (i) कृपया 5.2 में देखें

## 4.4 मुख्य शब्द

**उपलब्धि परीक्षणः** वह परीक्षण जिसकी सहायता से किसी निश्चित क्षेत्र में अर्जित ज्ञान व योग्यता का मापन किया जाता है।

**विश्वसनीयताः** वह गुण जिसके द्वारा किसी परीक्षण को विभिन्न अवसरों पर एक ही प्रकार के विभिन्न पदों (विद्यार्थियों) पर प्रशासित करने पर एक जैसे निष्कर्ष प्राप्त किया जा सके।

**वैधताः** परीक्षण उन बिन्दुओं की जांच करे जिनकी जांच करने के लिए उसका निर्माण किया गया है।

**वस्तुनिष्ठताः** परीक्षण का वह गुण जिसके कारण उस पर परीक्षक के व्यक्तित्व, रूचियों एवं पक्षपातों का प्रभाव न पड़े।

## 4.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

Sood, J.K.- 'New Directions in Science Teaching', Kohli Publishers, Chandigarh, 1989.

पाण्डेय, कामता प्रसाद– 'शिक्षा में मूल्यांकन', मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1968.

गुप्ता, रमेश चन्द्र एवं भट्ट, चन्द्रशेखर– 'शिक्षा में मापन और मूल्यांकन', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 1974.

शर्मा, आर. ए. – 'मापन एवं मूल्यांकन', लायल बुक डिपो, मेरठ, 199.

भटनागर, ए. बी. एवं मीनाक्षी– 'मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन', लायल बुक डिपो, मेरठ, 1992.

# इकाई-5

# अध्याय-5: एक वस्तुनिष्ठ उपलब्धि परीक्षण तैयार करना

# (Preparation of an Objective Type and Achievement Test)

**उद्देश्यः**

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे किः

- उपलब्धि परीक्षण के प्रत्यय का वर्णन कर सकें।
- निबंधात्मक परीक्षण की उदाहरण सहित व्याख्या कर सकें।
- वस्तुनिष्ठ परीक्षण की उदाहरण सहित व्याख्या कर सकें।
- उपलब्धि परीक्षण के प्रकारों के नाम बता सकें।
- उपलब्धि परीक्षण के निर्माण के विभिन्न चरणों का वर्णन कर सकें।
- निबन्धात्मक एवं वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में अन्तर कर सकें।

**संरचनाः**

5.1. प्रस्तावना
5.2. उपलब्धि परीक्षण–प्रत्यय
5.3. निबन्धात्मक परीक्षण
5.4. वस्तुनिष्ठ परीक्षण
5.5. उपलब्धि परीक्षण के प्रकार
5.6. उपलब्धि परीक्षण का निर्माण
5.7. निबन्धात्मक एवं वस्तुनिष्ठ परीक्षण में अन्तर
5.8. सारांश
आदर्श उत्तर
5.9. मुख्य शब्द
5.10. संदर्भ ग्रन्थ

## 5.1 प्रस्तावना

हम जानते हैं कि एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण में विभिन्न गुणों जैसे– विश्वसनीयता, वैधता, वस्तुनिष्ठता, विभेदकारिता, व्यापकता एवं व्यावहारिकता का होना आवश्यक है। उपलब्धि परीक्षण कितने प्रकार के होते हैं एक उपलब्धि परीक्षण में किस प्रकार के प्रश्न होते हैं? उपलब्धि परीक्षण की रचना एवं प्रमापीकरण किस प्रकार किया जाना चाहिए? इन सभी प्रश्नों के उत्तर हम प्रस्तुत अध्याय के अध्ययन के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

## 5.2 उपलब्धि परीक्षण-प्रत्यय (Concept of Achievement Test)

किसी विद्यार्थी की योग्यता अथवा उपलब्धि का मूल्यांकन करने के लिए उसे जो परीक्षण दिया जाता है, उपलब्धि परीक्षण कहलाता है। लिंडक्विस्ट एवं मन्न (Lindquist & Munn) के अनुसार, ''एक सामान्य उपलब्धि परीक्षण वह है जो किसी दए हुए क्षेत्र में विद्यार्थी के सापेक्षिक उपलब्धि का एक ही फलांक द्वारा बोध कराए।"

(A general Achievement test is one designed to express in terms of a single score a pupil's relative achievement in a given field of achievement.)

विद्यार्थी की उपलब्धि परीक्षण के लिए प्रारम्भ में मौखिक परीक्षाओं का प्रयोग होता था। ऐसा प्रमाण मिलता है कि 16वीं शताब्दी तक यूरोपीय देशों में मौखिक परीक्षाएं ही विद्यार्थियों की उपलब्धि परीक्षण का मुख्य माध्यम थी। 17वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में लिखित परीक्षाओं का प्रयोग किया गया। अमेरिका में सन् 1845 तक बोस्टन में मौखिक परीक्षाओं का उपयोग किया जाता था। इस समय Horace Mann 'मैसेच्यूसैटस शिक्षा मण्डल' (Mossachusets Board of Education ) का मंत्री था। उसने एक विद्यालय पत्रिका में, जिसका वह सम्पादक था, परीक्षाओं के सुधार के लिए अनेक सुझाव दिये। इसमें उसने मौखिक परीक्षाओं के दोष तथ लिखित परीक्षाओं के उपयोगों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। इसके पश्चात एक अंग्रेजी अध्यापक श्री जार्ज फिशर ने प्रथम वस्तुगत परीक्षणों का सूत्रपात किया। सन् 1864 में 'ग्रीन विच – विद्यालय में उसकी प्रमाप पुस्तकों (Scale Books) का प्रयोग होता था। इनके माध्यम से व्याकरण, रचना, गणित, हस्तलेखन, वर्ण–विन्यास, सामान्य इतिहास आदि विषयों में उपलब्धि का मापन किया जाता था।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक थार्नड़ाइक (Thorndike) ने सन् 1904 में शैक्षिक मापन (Educational Measurement) पर प्रथम पुस्तक प्रकाशित की। सन् 1908 में उसके शिष्य 'स्टोन' ने गणितीय तर्क पर प्रथम प्रमापीकृत परीक्षण बनाया। प्रारम्भ में इन प्रयासों का विरोध हुआ परन्तु कालान्तर में इस प्रकार के परीक्षणों का महत्व समझा गया और परिणामस्वरूप विभिन्न परीक्षणों जैसे बुद्धि परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण, अभिवति परीक्षण (Intelligence Test, Personality Test, Aptitude Test) आदि का निर्माण किया गया है।

इस प्रकार के उपलब्धि परीक्षण अध्यापक के लिए शिक्षण की दष्टि से अत्यन्त सहायक सिद्ध होते हैं। उपलब्धि परीक्षण प्रमापीकृत अथवा अध्यापक–निर्मित हो सकते हैं। किसी उपलब्धि परीक्षण की रचना सीखने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम उपलब्धि परीक्षण में दिए गए परीक्षण–पदों (Test-items) अथवा प्रश्नों सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करें। किसी उपलब्धि परीक्षण या लिखित परीक्षा में निबन्धात्मक या वस्तुनिष्ठ प्रश्न अथवा दोनों प्रकार के प्रश्न हो सकते हैं। प्रश्नों के महत्व का इसी बिन्दु से अनुमान लगाया जा सकता है कि हम प्रश्नों के स्वरूप के आधार पर परीक्षाओं को निबन्धात्मक परीक्षण अथवा वस्तुनिष्ठ परीक्षण कहते हें। इसलिए एक उपलब्धि परीक्षण की रचना के विभिन्न चरणों सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने से पहले हम निबन्धात्मक एवं वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के गुण, दोष, सीमायें आदि से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त करेंगे–

## 5.3 निबन्धात्मक परीक्षण (Essay Type Test)

निबन्धात्मक परीक्षण से अभिप्राय ऐसी परीक्षा से है जिसमें विद्यार्थी पूछे गए प्रश्न का उत्तर निबन्ध रूप में प्रस्तुत करता है। इसमें विद्यार्थी अपने विचारों को स्वतन्त्र रूप से व्यक्त करता है जिसमें उसके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप प्रतिबिम्बित होती है। इनके माध्यम से व्यक्ति की उपलब्धि के साथ–साथ उसकी अभिव्यक्ति, लेखन क्षमता तथ व्यक्तित्व का मूल्यांकन हो जाता है।

एक निबन्धात्मक परीक्षण में शैक्षिक उद्देश्यों के अनुकूल विभिन्न प्रकार के प्रश्नों को सम्मिलित किया जाता है। ये प्रश्न निम्नलिखित प्रकार के होते हैं–

1. **वर्णनात्मक प्रश्न (Descriptive Questions):** इन प्रश्नों से विद्यार्थी से किसी वस्तु, घटना, प्रक्रिया अथवा जीव विशेष आदि का वर्णन करने के लिये कहा जाता है।

उदाहरण– जीव विज्ञान के महत्व पर एक लेख लिखिए।

– डा. हरगोविन्द खुराना के जीवन एवं अनुसंधान कार्य का विस्तत वर्णन कीजिए।

2. **व्याख्यात्मक प्रश्न (Explainatory Questions):** इस प्रकार के प्रश्नों में कारण–प्रभाव (Cause-Effect) सम्बन्ध की तर्क रूप से व्याख्या करनी होती है। इनके उत्तर में विद्यार्थी को तर्क एवं तथ्य प्रस्तुत करने होते हैं।

उदाहरण– जीव विज्ञान का हमारे दैनिक जीवन में क्या उपयोग है? व्याख्या कीजिए।

– वनों के लाभों की व्याख्या कीजिए।

3. **विवेचनात्मक प्रश्न (Discussion Type Questions):** इस प्रकार के प्रश्नों में विद्यार्थी से किसी वस्तु, जीव या प्रक्रिया के वर्णन के साथ–साथ उसकी विशेषताओं एवं दोषों की व्याख्या करने के लिए कहा जाता है।

उदाहरण– स्कूल में एक्वेरियम या जल–जीवशाला बनाने की योजना की विवेचना कीजिए।

4. **उदाहरणार्थ प्रश्न (Illustrative Type Questions):** इस प्रकार के प्रश्नों में किसी प्रक्रिया की उदाहरण सहित व्याख्या करने के लिए कहा जाता है। ये प्रश्न विद्यार्थियों के व्यावहारिक ज्ञान एवं व्यक्तिगत जीवन के अभ्यास करने में सहायक होते हैं।

उदाहरण– पाचन क्रिया की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

– प्रयोग द्वारा सिद्ध करों कि प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा ऑकसीजन गैस वायुमण्डल में छोड़ी जाती है।

5. **रूपरेखात्मक प्रश्न (Outline Type Questions):** इस प्रकार के प्रश्नों में किसी वस्तु की रूपरेखा पूछी जाती है।

उदाहरण– बायो गैस प्लांट का नामांकित चित्र बनाओं।

– पाचन तंत्र का नामांकित चित्र बनाओ।

6. **आलोचनात्मक प्रश्न (Critical Questions):** इस प्रकार के प्रश्नों में किसी विचार की शुद्धता, सत्यापन, पर्याप्तता आदि का मूल्यांकन करके उसके सुधार हेतु सुझाव पूछे जाते हैं।

उदाहरण– क्या वर्षा का जल पीने योग्य होता है? यदि नहीं, तो क्यों?

7. **विश्लेषणात्मक प्रश्न (Analytical Questions):** इस प्रकार के प्रश्नों में तथ्यों अथ्वा विचारों का विश्लेषण करने के लिए कह जाता है।

उदाहरण– किसी आहार श्रंखला में छः से अधिक स्तर क्यों नहीं हो सकते ?

– साफ सुथरा परिवेश बीमारियों की रोकथाम में किस प्रकार सहायक है ?

8. **वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions):** इस प्रकार के प्रश्नों में वस्तुनिष्ठता होती है। कभी–कभी इस प्रकार के प्रश्न भी पूछे जा सकते हैं।

उदाहरण– जीवधारियों को कुल कितने वर्गों में बांटा गया है ?

– जीवशालाएं कितने प्रकार की होती हैं ?

9. **तुलनात्मक प्रश्न (Comprarative Questions):** इस प्रकार के प्रश्नों में विचारों, वस्तुओं, प्रत्ययों, प्रक्रियाओं आदि की तुलना सम्बन्धी प्रश्न पूछे जाते हैं।

उदाहरण– रीढ़धारियों एवं अरीढ़धारियों की तुलना कीजिए।

– श्वसन एंव प्रकाशसंश्लेषण प्रक्रिया की तुलना कीजिए।

निबंधात्मक परीक्षाएं विद्यार्थियों के निर्देशन, व्यापक मूल्यांकन, उच्च मानसिक क्षमताओं के मापन, वर्गीकरण मौलिकता, विचारों को संगठित करने की क्षमता, अपेक्षित अध्ययन विधियों के विकास आदि में सहायक होती हैं। इन की रचना सरल है और सभी विषयों में इनका उपयोग किया जा सकता है। परन्तु इनकी विश्वसनीयता, वैधता, वस्तुनिष्ठता, व्यापकता व विभेदकारिता निम्न स्तर की होती है। ये परीक्षाएँ रटने पर बहुत अधिक बल देती हैं। इनका अंकन आत्मनिष्ठ होता है जिससे विद्यार्थियों की

उपलब्धि का उचित रूप से मूल्यांकन नहीं हो सकता इसीलिए आजकल वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के प्रयोग पर बल दिया जा रहा है।

## 5.4 वस्तुनिष्ठ परीक्षण (Objective Test)

इन परीक्षणों में प्रत्येक प्रश्न का एक विशिष्ट उत्तर होता है और छात्रों से वही विशिष्ट उत्तर देने की आशा की जाती है। वस्तुनिष्ठ परीक्षण में मुख्यतः दो प्रकार के प्रश्न होते हैं–

I. पहचान रूप (Recognition Type) II. प्रत्यास्मरण रूप (Recall Type)

पहचान रूप प्रश्न निम्नलिखित प्रकार के होते हैं–

(अ) एकान्तर प्रत्युत्तर रूप (Alternate - Response Type)

(ब) बहुनिर्वचन/बहुविकल्पी रूप (Multiple Choice Type)

(स) क्रमबद्ध रूप (Matching Type)

(द) वर्गीकरण रूप (Classification Type)

प्रत्यास्मरण रूप प्रश्न निम्नलिखित प्रकार के होते हैं–

(अ) साधारण प्रत्यास्मरण रूप (Simple Recall Type)

(ब) रिक्त स्थान पूर्ति रूप (Completion Type)

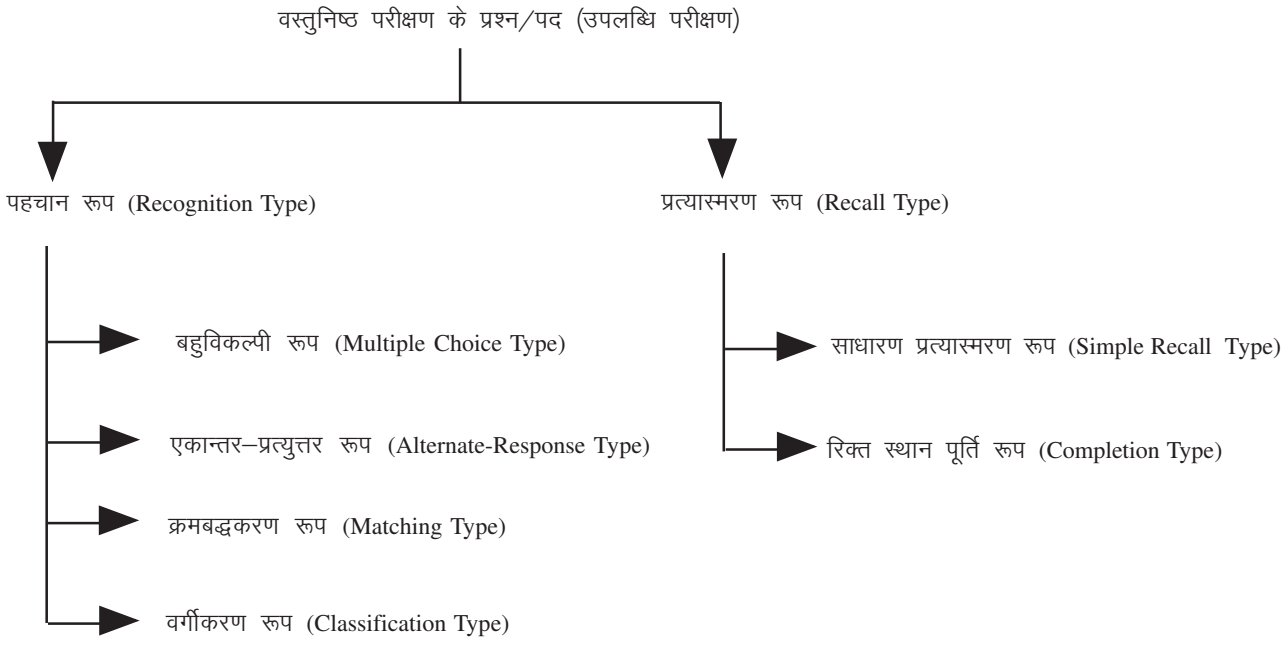


परीक्षण पदों के विभिन्न रूपों का वर्णन निम्न प्रकार से है–

(अ) **एकान्तर प्रत्युत्तर रूप (Alternate Response Type):** ऐसे प्रश्नों को सत्य–असत्य रूप भी कहा जाता है क्योंकि इन प्रश्नों का उत्तर सत्य (True) तथा असत्य (False) इन दो सम्भावनाओं में सीमित रहता है। इन प्रश्नों में कभी–कभी हाँ या नहीं में उत्तर दिया जा सकता है। इसलिए इन्हें हाँ–या नहीं रूप (Yes-No Type) प्रश्न भी कहा जाता है।

एकान्तर प्रत्युत्तर में जैसा कि नाम से भी स्पष्ट है, दो विकल्पों (alternatives) में से एक को चुनने के लिए कहा जाता है अर्थात् परीक्षार्थी को दिए गए कथन के प्रति सत्य–असत्य अथवा हाँ–नहीं में से किसी एक को निर्देश के अनुसार चिन्हित करना पड़ता है।

उदाहरण– निम्नलिखित कथनों में से सत्य कथन को चिन्हित करो। पहला कथन उदाहरण के रूप में चिन्हित कर दिया गया है।

(i) मलेरिया मादा मच्छर द्वारा फैलता है। √ सत्य/असत्य

(ii) जीवाणु को नंगी आंखों से देखा जा सकता है। सत्य/असत्य

(iii) सांप में रीढ़ की हड्डी नहीं होती है। सत्य/असत्य

(iv) स्वेद ग्रंथियां संयोजी ऊतक हैं। सत्य/असत्य

(v) यकृत शरीर से अपशिष्ट पदार्थों का उत्सर्जन करने में सहायक है। सत्य/असत्य

एकान्तर प्रत्युत्तर रूप प्रश्न बनाते समय निम्नलिखित सावधनियाँ रखनी चाहिएं–

(i) जो कथन लिखे जाएं, उनमें भाष सम्बन्धी दोष न हों।

(ii) निर्देश सरल तथा स्पष्ट शब्दों में दिये जायें।

(iii) कथनों में एक निश्चित क्रम नहीं होना चाहिए। कथन, जहाँ तक संभव हो अव्यवस्थित रूप (Randomized) में रखा जाना चाहिए।

(iv) अनुमान करके उत्तर देने की प्रवत्ति को निरूतसाहित करना चाहिए। इसके लिए सामान्य निर्देशों में उल्लेख किया जाना चाहिए।

**एकान्तर प्रत्युत्तर रूप प्रश्नों के गुण (Characteristics of Alternative -Response Type Questions)**

(1) **सरलता (Simplicity):** ऐसे प्रश्नों की रचना सरल होती है।

(2) **व्यापकता (Universality):** इन प्रश्नों का उपयोग सभी विषयों की परीक्षा में व्यापक रूप से किया जाता है।

(3) **समय की बचत (Time Saving):** कम से कम समय में अधिकांश प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकता है।

(4) **अनिवार्यता (Compulsory):** जहाँ पर कई सम्भव विकल्पों का अभाव हो, वहाँ ऐसे प्रश्नों का प्रयोग अनिवार्य हो जाता है।

(5) **अंकन में सुविधा (Easy to Score):** इन प्रश्नों में अंक देने की रीति वस्तुनिष्ठ तथा सरल होती है।

(6) **निर्णय तथा तर्क शक्ति का प्रयोगः** ऐसे प्रश्नों के कुछ विशेष रूप भी हैं जिनमें विद्यार्थियों को अपनी निर्णय एवं तर्कशक्ति का उपयोग करना पड़ता है। प्रश्न केवल स्मरण पर आधारित नहीं होते।

## एकान्तर-प्रत्युत्तर रूप प्रश्नों की सीमायें (Limitations of Alternate Response Type Questions)

1. इस प्रकार के प्रश्न अनुमान लगाने पर बल देते हैं। इस तथ्य का निवारण शुद्धिपत्र (Correction Form) द्वारा हो जाता है। परन्तु इससे उन विद्यार्थियों के साथ अन्याय हो जाता है जिन्होंने अनुमान नहीं लगाया।
2. इन प्रश्नों में संदिग्धात्मकता (Ambiguity) अधिक होती है।
3. इन प्रश्नों से प्रायः विद्यार्थी की वास्तविकता योग्यता का सही मापन नहीं हो पाता।
4. ऐसे प्रश्नों की अधिकता से परीक्षण की विश्वसनीयता (Reliability) कम हो जाती है।

## बहुविकल्पी रूप प्रश्न (Multiple Choice Type Questions)

बहुविकल्पी प्रश्नों से अभिप्राय ऐसे प्रश्नों से है जिनमें एक कथन के उत्तर के रूप में कई विकल्प (alternative) दिये जाते हैं। इन विकल्पों की संख्या प्रायः 3 से 6 तक होती है। परीक्षार्थी को इन विकल्पों में से अधिक उपयुक्त अथवा सही विकल्प

का चयन करना होता है। इस प्रकार के प्रश्नों के निम्नलिखित उपभेद किये जाते हैं–

(1) जिनमें केवल एक सही उत्तर का चयन करना होता है।

(2) जिनमें सबसे उत्तम उत्तर का चयन करना होता है।

(3) जिनमें गलत उत्तर का चयन करना होता है।

(1) **जिनमें केवल एक सही उत्तर का चयन करना होता है:** यह बहुविकल्पी प्रश्नों का सबसे अधिक प्रचलित रूप है। इसके अन्तर्गत एक कथन के अनेक सम्भावित उत्तर होते हैं किन्तु इन सम्भावित उत्तरों में एक ही उत्तर सही होता है। परीक्षार्थी को उस सही उत्तर की पहचान करनी होती है।

उदाहरण– निम्नलिखित प्रत्येक प्रश्न के पाँच उत्तर दिये गए हैं। इनमें से केवल एक उत्तर सही है। सही उत्तर को पहचान कर चिन्हित कीजिए।

(i) प्र. मनुष्य के हृदय में कितने खण्ड होते हैं ?

उ. (क) 2 (ख) 3

(ग) 4 (घ) 5

(ii) प्र. मेंढ़क, साँप आदि को सुरक्षित रखने के लिए कितने प्रतिशत फार्मेलीन के घोल की आवश्यकता होती है?

उ. (क) 4% (ख) 8%

(ग) 5% (घ) 15%

(iii) प्र. तापक्रम मापने के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले यन्त्र का नाम है–

उ. (क) बैरोमीटर (ख) हाइड्रोमीटर

(ग) लैक्टोमीटर (घ) थर्मामीटर

(iv) प्र. निम्नलिखित में से कौन सा अंग उत्सर्जन में सहायक है–

उ. (क) वृक्क (ख) हृदय

(ग) छोटी आंत (घ) अमाशय

2. **जिनमें सबसे उत्तम उत्तर का चयन करना होता है:** इस प्रकार के प्रश्नों में एक कथन के अनेक सही उत्तर दिये जाते हें जिनमें से परीक्षार्थी को सर्वोत्तम उत्तर का चयन करना होता है।

**निर्देश:** निम्नलिखित कथनों के पाँच उत्तर दिये गये हैं। इनमें से सभी उत्तर सही हैं। किन्तु एक उत्तर अधिक सही है। इस उत्तर को ( √ ) चिन्हित करो।

(i) हम पौष्टिक भोजन करते हैं क्योंकि–

(क) यह स्वादिष्ट होता है।

(ख) इससे थकान कम हो जाती है।

(ग) इससे स्वास्थ्य ठीक रहता है।

(घ) यह बुद्धि को बढ़ाता है।

(ii) सर्दी में ऊनी वस्त्रों का प्रयोग किया जाता है क्योंकि वे –

(क) सुन्दर लगते हैं।

(ख) टिकाऊ होते हैं।

(ग) सूती वस्त्रों की अपेक्षा अधिक भारी होते हैं।

(घ) शरीर का ताप बाहर नहीं निकलने देते।

(iii) गिरगिट अपने परिवेश के अनुसार अपने शरीर का रंग बदल लेता है जिससे–

(क) उसे आसानी से देखा जा सके।

(ख) वह आसानी से अपना भोजन प्राप्त कर सके।

(ग) उसका शरीर परिवेश का एक भाग लगे।

(घ) वह शत्रुओं से स्वयं की रक्षा कर सके।

(ङ) वह परिवेश से समायोजन करते हुए सफलतापूर्वक जीवनयापन कर सके।

(3) **जिनमें गलत उत्तर का चयन करना होता है:** इस प्रकार के प्रश्नों में भी एक कथन के कई उत्तर दिए जाते हैं जिनमें से एक गलत होता है। परीक्षार्थी को इस गलत उत्तर को निर्देशानुसार चिन्हित करना होता है।

**निर्देश**– निम्नलिखित प्रत्येक प्रश्न के पांच उत्तर दिये गए हैं। प्रत्येक प्रश्न में एक उत्तर गलत है। 'गलत उत्तर' को चिन्हित ( √ ) करो।

(i) फसल–चक्र के निम्नलिखित लाभ हैं:

(क) इससे मदा की उपजाऊ शक्ति बनी रहती है।

(ख) इससे फसल रोगों से बचाव होता है।

(ग) इससे उपज अधिक होती है।

(घ) इससे फसल कीटो आदि से सुरक्षित रहती है।

(ङ) इससे मदा में नमी बनी रहती है।

(ii) वायु प्रदूषण के कारण–

(क) मनुष्य को सांस से सम्बन्धित रोग हो जाते हैं।

(ख) वायुमण्डल का तापमान बढ़ जाता है।

(ग) संगमरमर की इमारतों में पीलापन आ जाता है।

(घ) कपड़ों, शरीर के खुले भागों, इमारतों को हानि पहुंचती है।

(ङ) वक्षों की संख्या में कमी आ जाती है।

(iii) माँ का दूध बच्चे के लिए सर्वोत्तम है क्योंकि:

(क) इससे बच्चे को आवश्यक पोषक तत्व मिल जाते हैं।

(ख) इससे बच्चे में रोग–प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है।

(ग) इससे बच्चे का स्वास्थ्य ठीक रहता है।

(घ) इससे बच्चे के मस्तिष्क का विकास होता है।

(ङ) बच्चा इसका पाचन सरलतापूर्वक कर सकता है।

**बहुविकल्पनी प्रश्नों की रचना करते समय सावधानियाँ–**

(i) प्रश्नों से सम्बन्धित निर्देश स्पष्ट शब्दों में दिये जाएं

(ii) उदाहरण के रूप में प्रथम प्रश्न हल कर देना चाहिए।

(iii) विकल्पों का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिससे परीक्षार्थी सरलतापूर्वक अनुमान न लगा सकें।

**बहुविकल्पी प्रश्नों के गुण–**

(i) ये प्रश्न वस्तुनिष्ठ (Objectives) होते हैं इसलिए इनका अंकन सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

(ii) इन प्रश्नों की सहायता से तर्कपूर्ण चिन्तन एवं बोध की जांच की जा सकती है।

(iii) ये प्रश्न पहचान योग्यता का प्रभावशाली ढ़ंग से मापन करते हैं।

(iv) इन प्रश्नों का उपयोग किसी भी प्रकार की विषय–वस्तु का मूल्यांकन करने के लिए किया जा सकता है।

(v) इन प्रश्नों में कई विकल्प होने के कारण अनुमान लगाने की आशंका कम हो जाती है।

**बहुविकल्पी प्रश्नों की सीमायें–**

(i) इन प्रश्नों के निर्माण में अधिक समय लगता है। इसके अतिरिक्त इनके लिए अधिक स्थान की आवश्यकता भी होती है।

(ii) इन प्रश्नों में विकल्पों की व्यवस्था करना अपेक्षाकृत कठिन होता है इसलिए अंकन कुंजी तैयार करने में त्रुटियों की संभावना बनी रहती है।

(iii) इन प्रश्नों द्वारा अनुमान लगाने की प्रवत्ति का पूर्ण रूप से परित्याग नहीं हो सकता।

**तुलनात्मक प्रकार के प्रश्न)**

### (स) क्रमबद्धकरण रूप (Matching Type)

ऐसे प्रश्नों में दो स्तम्भ होते हैं। प्रथम स्तम्भ में कुछ अधूरे कथन दिये जाते हैं। द्वितीय स्तम्भ में उन कथनों के अपूर्ण अंशों को अव्यवस्थित रूप में दिया जाता है। परीक्षार्थी उन अपूर्ण अंशों को स्तम्भ एक के अनुसार व्यवस्थित करने का निर्देश दिया जाता है।

उदाहरण–

निर्देश–निम्नलिखित प्रश्न में एक ओर कुछ जन्तुओं के नाम दिए गए हैं और दूसरी ओर उनके वर्ग लिखे गए हैं। प्रत्येक जन्तु के सही वर्ग का मिलान कीजिए–

| जन्तु | वर्ग |
|---|---|
| (i) मेंढ़क | (i) संधिपाद |
| (ii) सर्प | (ii) एवीज़ |
| (iii) केंचुआ | (iii) एनेलिंड़ा |
| (iv) चींटी | (iv) पोरीफेरा |
| (v) कबूतर | (v) सरीसप |

**क्रमबद्धकरण प्रश्नों के गुण–**

1. ये प्रश्न समय व रचना की दष्टि से सरल तथा मितव्ययी होते हैं।
2. इन प्रश्नों में अनुमान लगाना कठिन होता है।
3. ज्ञान–विषयों के परीक्षण हेतु ऐसे प्रश्नों का अमूल्य स्थान है। सम्बन्धों के तुलनात्मक ज्ञान की परीक्षा इनके द्वारा सफलतापूर्वक हो जाती है।
4. ये प्रश्न विशेष रूप से 'कब', 'क्या', 'कौन' बोधक परिस्थितियों अथवा योग्यताओं की पहचान व निर्धारण करने में सहायक हैं।

**क्रमबद्धकरण रूप प्रश्नों की सीमायें–**

1. इन प्रश्नों का प्रयोग केवल ज्ञान विषयों तक ही सीमित है।
2. परीक्षार्थियों की बोधात्मक शक्ति का शुद्ध एवं सही मापन इस प्रकार के प्रश्नों द्वारा नहीं हो पाता।

3. ये प्रश्न परीक्षार्थियों की निर्णय एवं तर्कशक्ति ज्ञात करने में अधिक सक्षम नहीं होते।
4. इन प्रश्नों द्वारा असंगत तथा भ्रमपूर्ण संकेतों की सम्भावना पूर्ण रूप से नष्ट नहीं की जा सकती।

**सावधानियां**

1. दोनों स्तम्भों में रखे गए कथन संगत होने चाहिए।
2. अनुमान लगाने की प्रवत्ति को कम करने के लिए दूसरे स्तम्भ में आवश्यकता से अधिक पूरक कथनों की व्यवस्था करनी चाहिए।
3. निर्देश सर्तकता पूर्वक लिखे जाने चाहिएं।

### (द) वर्गीकरण रूप
### (Classification Type)

इन प्रश्नों को क्रमबद्धकरण प्रश्नों का एक अन्य रूप माना जा सकता है। इन प्रश्नों के गुण एवं सीमाएं वही हैं जो क्रमबद्धकरण प्रश्नों की हैं परन्तु इनमें स्वरूप की दष्टि से अन्तर होता है। इन प्रश्नों के अन्तर्गत कुछ ऐसे शब्दों का समूह परीक्षार्थियों के समक्ष रखा जाता है जिनमें से एक शब्द बेमेल या असंगत होता है। परीक्षार्थी से उस बेमेल शब्द को रेखांकित करने के लिए कहा जाता है।

उदाहरण– निम्नलिखित प्रत्येक प्रश्न में एक शब्द अंसगत है। इस शब्द को रेखांकित कीजिए–

1. प्रोटोजोआ, पोरीफेरा, कोरडेटा, एम्फीबिया, एवीज़।
2. जड़, तना, पत्ती, फल, फूल, बाग।
3. क्लोरोफिल, एन्थ्रोसाइनिन, मेलानिन, जेन्थोसाइनिन।
4. बकरी, हिरन, भेड़, शेर, गाय, भैंस।
5. पौधे, घोड़ा, गधा, चूहा, बकरी।

### II प्रत्यास्मरण रूप

(अ) **साधारण प्रत्यास्मरण रूप (Simple Recall Type):** इस प्रकार के प्रश्न परीक्षार्थियों की प्रत्यास्मरण शक्ति का परीक्षण करते हें। विद्यार्थी किसी विषय से सम्बन्धित घटनाओं, तथ्यों आदि को किस रूप में पुनः स्मरण कर सकते हैं, यह इन प्रश्नों द्वारा ज्ञात किया जा सकता है।

उदाहारण –

निर्देश– निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर उनके सामने दिए गए कोष्ठक में लिखे

(i) पौधे रात्रि के समय कौन सी गेस छोड़ते हैं? ( )

(ii) आहार श्रंखला में अधिकतम कितने स्तर हो सकते हैं। ( )

(iii) आलू क्या है– जड़, तना या फल? ( )

(iv) वायुमण्डल में सबसे अधिक मात्रा में उपस्थित गैस कौन सी है। ( )

(v) आजोन गैस का रासायनिक सूत्र क्या है? ( )

(अ) **रिक्त स्थान पूर्ति रूप (Completion Type):** प्रत्यास्मरण रूप प्रश्नों का यह दूसरा प्रकार है। ये प्रश्न अपूर्ण कथनों अथवा वाक्यों के रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। परीक्षार्थी इन अपूर्ण कथनों अथवा रिक्त स्थानों की पूर्ति करता है। पूर्तिकरण की इस प्रक्रिया में उसे प्रत्यास्मरण की सहायता लेनी पड़ती है। ये प्रश्न मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं–

(i) एक रिक्त स्थान पूर्ति रूप जिसमें केवल एक रिक्त स्थान होता है।

(ii) बहुरिक्त स्थान पूर्ति रूप जिसमें अनेक रिक्त स्थानों की पूर्ति करनी होती है।

**उदाहारण** - 1

निर्देश– निम्नलिखित कथनों में एक स्थान रिक्त है। इस स्थान की पूर्ति उपयुक्त शब्द द्वारा कीजिए–

(i) हरे पौधे .....द्वारा भोजन बनाते हैं।

(ii) पथ्वी की समस्त ऊर्जा का स्रोत .....है।

(iii) भैंस की सबसे उन्नत किस्म का नाम .....है।

(iv) क्वाशिओरक रोग .....की कमी से होता है।

(v) पैट्रोलियम ..... संसाधन है।

**उदाहरण - 2**

निर्देश– निम्नलिखित कथनों मं दो या दो से अधिक स्थान रिक्त हैं। इन स्थानों में उपयुक्त शब्द लिखिए जिससे कथन का सही अर्थ स्पष्ट हो सके।

(i) वन महोत्सव समारोह का आरम्भ सन् ..... ई में श्री ..... के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ।

(ii) न्यूटन ने पेड़ से गिरते ..... को देखकर ..... नियम प्रतिपादित किया।

**रिक्त स्थान पूर्ति रूप प्रश्नों के गुण**

(i) इन प्रश्नों का निर्माण तथा अंकन सरल होता है।

(ii) इन प्रश्नों द्वारा विद्यार्थियों की अध्ययन प्रवत्ति को प्रोत्साहन मिलता है।

(iii) ये प्रश्न विद्यार्थियों में पुनःस्मरण की प्रवत्ति का विकास करते हैं।

(iv) ज्ञान विषयों के परीक्षण के लिए ये प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

(v) इन प्रश्नों द्वारा विद्यार्थियों में स्वतंत्र चिन्तन विकसित होता है।

**रिक्त स्थान पूर्ति रूप प्रश्नों की सीमायें-**

(i) इन प्रश्नों का प्रयोग केवल ज्ञान विषयों तक सीमित है।

(ii) इन प्रश्नों की रचना सरल होती है अतः बहुत से लोग अनुपयुक्त स्थानों पर इन प्रश्नों का प्रयोग करके परिश्रम बचाने का प्रयत्न करते हैं।

(iii) इन प्रश्नों में यदि रिक्त स्थानों में समरूपता न हो तो अंकन कठिन हो जाता है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं में अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीयता, वैधता, व्यापकता, वस्तुनिष्ठता तथा विभेदकारिता होती है। इनका अंकन करने में कम समय लगता है और अंकन वस्तुनिष्ठ होता है। ये परीक्षाएं रटने को कोई महत्व नहीं देती। इनमें विषयवस्तु, को समझने पर बल दिया जाता है। परन्तु इन परीक्षाओं द्वारा विद्यार्थियों की मानसिक क्षमतओं का मापन करना संभव नहीं होता। ये परीक्षाएं विद्यार्थियों की मौलिक अभिव्यक्ति का विकास नहीं करती। इन परीक्षाओं के निर्माण पर अधिक व्यय होता है और विद्यार्थियों में नकल करने एवं अनुमान लगाने की प्रवत्ति को प्रोत्साहन मिलता है। ये परीक्षा विद्यार्थियों की कमजोरियों एवं कठिनाइयों को ज्ञात करने में भी कोई सहायता नहीं करती।

## अपनी प्रगति जांचिए–1

(i) एक उपलब्धि परीक्षण में किस प्रकार के प्रश्न हो सकते हैं? विवेचन कीजिए।

## 5.5 उपलब्धि परीक्षण के प्रकार
## (Types of Achievement Test)

थार्नडाइक का कथन है कि ''जिस वस्तु का भी अस्तित्व है, उसका किसी न किसी मात्रा में अस्तित्व होता है।'' और जो कुछ भी किसी मात्रा में उपस्थित है, उसे मापा जा सकता है। इस आधार पर हम विद्यार्थी को योग्यता एवं उपलब्धि का भी मूल्यांकन कर सकते हैं। किसी विद्यार्थी की योग्यता या उपलब्धि का मूल्यांकन करने के लिए हम उसे जो परीक्षण देते हैं उसे उपलब्धि परीक्षण कहा जाता है।

उपलब्धि परीक्षण दो प्रकार के होते हैं–

I. **प्रमापीकृत परीक्षण (Standardized Test):** ये परीक्षण विशेषज्ञों द्वारा निर्मित होते हैं। ये देश या राज्य के विभिन्न विद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले समान पाठ्यक्रम पर आधारित होते हैं। ये ज्ञान के विस्तत क्षेत्र से सम्बन्धित होते हैं और सामान्य रूप से उपयोग में लाए जा सकते हैं।

II. **अध्यापक निर्मित परीक्षण (Teacher Made Test):** ये परीक्षण अध्यापक की स्वयं की योग्यता पर निर्भर होते हैं। इनकी रचना विशिष्ट विद्यालय या कक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की जाती है। ये किसी विशिष्ट एवं सीमित विषय–वस्तु पर आधारित हाते हैं।

यद्यपि प्रमापीकृत एवं अध्यापक–निर्मित परीक्षणों को किसी स्पष्ट सीमा रेखा से विभाजित करना अनुपयुक्त है। दोनों में एक ही प्रकार के प्रश्न–पदों का उपयोग किया जाता है और ये दोनों समान ज्ञान–क्षेत्रों पर बनाए जा सकते हैं, फिर भी प्रमापीकृत परीक्षणों का अधिक महत्त्व है क्योंकि इनके द्वारा विभिन्न समूहों की तुलना करना अथवा एक ही समूह के व्यक्तियों का ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में स्तर ज्ञात करना सम्भव है।

## 5.6 उपलब्धि परीक्षण का निर्माण
## (Construction of an Achievement Test)

एक उपलब्धि परीक्षण (वस्तुनिष्ठ) के निर्माण हेतु निम्नलिखित सोपानों (steps) का अनुसरण करना पड़ता है।

1. **उद्देश्यों का निर्धारण (Determination of Objectives):** यह वस्तुनिष्ठ उपलब्धि परीक्षण की रचना का प्रथम–चरण होता है। इस चरण में हम परीक्षण के उद्देश्य निर्धारित करते हैं। उद्देश्य निश्चित हो जाने से परीक्षण की सार्थकता तथा उपादेयता बढ़ जाती है। कोई परीक्षण पर्याप्त रूप से उपादेय हे अथवा नहीं, यह ज्ञात करने के लिए आवश्यक है कि उसके द्वारा सिद्ध होने वाले उद्देश्यों का ज्ञान प्राप्त कर लिया जाए।

   उपलब्धि परीक्षण में उद्देश्य निर्धारित करते समय निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए–

   (अ) निर्धारित पाठ्यक्रम (Syllabus) का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करना।

   (ब) मनोनीत (Prescribed) पाठ्य पुस्तकों का सर्वेक्षण (survey)

   (स) विषय से सम्बन्धित विद्वानों के विचारों का संकलन।

   (द) शिक्षकों की सम्मतियाँ प्राप्त करना।

   इस प्रकार पाठ्यक्रम, पाठ्य–पुस्तकें, अनुभवी विद्वानों के मत तथा शिक्षकों के विचार आदि स्रोतों की सहायता से उपलब्धि परीक्षण के उद्देश्य ज्ञात किए जाते हैं।

2. **प्रश्नों की रचना एवं उनका मूल्यांकन (Preparation of Test items and their Evaluation):** उपलब्धि परीक्षण के उद्देश्य निर्धारित करने के उपरान्त प्रश्नों अथवा परीक्षण पदों की रचना निम्नलिखित दो रूपों में की जाती है–

   (i) ***पहचान रूप (Recognition type)*:** ऐसे प्रश्न जो विद्यार्थियों के पहचानने की क्षमता का परीक्षण करते हैं।

   (ii) ***प्रत्यास्मरण रूप (Recall Type)*:** ऐसे प्रश्न जो विद्यार्थियों की प्रत्यास्मरण क्षमता की परीक्षण करते हैं।

   परीक्षण पदों की रचना करते समय निम्नलिखित सामान्य **सावधानियों** पर ध्यान देना आवश्यक है–

(i) परीक्षण–पदों या प्रश्नों की भाषा सरल, स्पष्ट, असन्दिग्ध तथा बोधनीय होनी चाहिए।

(ii) प्रश्नों को हल करने के लिए लिखित निर्देश भी सरल तथा बोधगम्य भाषा में दिए जाने चाहिएं।

(iii) प्रश्न न तो अत्यधिक कठिन और न ही अधिक सरल हों। प्रश्नों की रचना विद्यार्थियों की आयु एवं स्तर के अनुरूप की जानी चाहिए।

(iv) एक प्रकार के प्रश्नों को इकट्ठा करके उन्हें व्यवस्थित रूप में रखना चाहिए। इससे अंकन में सुविधा होती है।

(v) प्रत्येक प्रकार के प्रश्न में उदाहरण के रूप में प्रथम प्रश्न हल कर देना चाहिए।

(vi) प्रत्येक प्रश्न उद्देश्य पर आधारित होना चाहिए।

(vii) प्रश्नों में प्रयुक्त होने वाले शब्दों तथा विकल्पों (Alternatives) की पूर्ण समीक्षा कर लेनी चाहिए।

(viii) प्रश्नों द्वारा विषय–वस्तु के अधिक से अधिक अंशों का मापना होना चाहिए।

(ix) प्रश्नों की शुद्धता, यथार्थता, अपर्याप्तता तथा तर्कसंगतता के सम्बन्ध में अनुभवी अध्यापकों की सम्मति ले लेनी चाहिए।

3. **निर्मित प्रश्नों को लागू करना (Trying out the Test-items):** प्रश्नों की रचना हो जाने के उपरान्त, परीक्षण–कर्ता एक प्रतिनिधि समूह अथवा न्यादर्श (Representative Sample) का चयन करता है। यह समूह उन्हीं विद्यार्थियों का होता है जिनके लिए परीक्षण बनाया गया है। इस समूह के चयन में दो बिन्दुओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है।

(i) ***प्रतिनिधित्व (Representativeness):*** समूह उस बड़े समुदाय का प्रतिनिधि होना चाहिए जिसके लिए परीक्षण की रचना की गई है।

(ii) ***निष्पक्षता (Absence of Bias):*** समूह का चयन परीक्षणकर्ता एवं अध्यापक के व्यक्तिगत पक्षपातों से अलग रहकर किया जाता है।

समूह का चयन करने के पश्चात सभी प्रश्नों को उस समूह पर लागू किया जाता है। प्रश्न हल करने के लिए परीक्षार्थियों को उदारतापूर्वक समय देना चाहिए परन्तु व्यावहारिक कठिनाईयों को ध्यान में रखकर 90% परीक्षार्थियों द्वारा सभी प्रश्न हल कर लेने पर उत्तरपुस्तिकाएं अन्य सभी परीक्षार्थियों से भी ले लेनी चाहिएं।

इसके पश्चात् उत्तर पुस्तिकाओं का अंकन किया जाता है। अंकन के लिए पूर्वनिर्मित अंकन कुंजी (Scoring key) के अनुसार ही अंकन करना चाहिए। अंकन में एक प्रश्न के लिए एक अंक रखने की प्रथा मितव्ययी एवं व्यावहारिक दष्टि से अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है परन्तु यह कोई अनिवार्य नियम नहीं है।

कई विकल्प वाले प्रश्नों अथवा एकान्तर–प्रत्युत्तर रूप प्रश्नों के अंकन में शुद्धि–सूत्र (Correction Formula) का प्रयोग किया जाना चाहिए। इससे अनुमान तत्वों (Guessing Factors) का प्रायः निवारण हो जाता है। सामान्यतः निम्नांकित शुद्धि–सूत्र का प्रयोग किया जाता हैः

$$S = R - \frac{W}{N-1}$$

S = शुद्ध किया हुआ अंक (Score corrected for guessing factor)

R = शुद्ध उत्तरों की संख्या (No. of Right Answers)

W= गलत उत्तरों की संख्या (No. of Wrong Answers)

N = प्रत्येक प्रश्न में विकल्पों की संख्या

4. **प्रश्न-विश्लेषण (Item - Analysis):** यह उपलब्धि परीक्षण के निर्माण का चौथा सोपान होता है। प्रश्न – विश्लेषण से अभिप्राय है– प्रश्न की उपयोगिता (utility), कुशलता (efficiency) तथा तर्कशीलता की व्याख्या करना। उदाहरण के लए किसी परीक्षण के लिए निर्मित अमुक प्रश्न अपना कार्य किस रूप में कर रहा है? इस प्रश्न की सहायता से विद्यार्थियों की योग्यता का मापन कहाँ तक सम्भव हो सका है? आदि।

प्रश्न–विश्लेषण मुख्यतः दो तथ्यों पर केन्द्रित होता है–

(i) प्रश्नों का कठिनाई स्तर (Difficulty Level of Items)

(ii) प्रश्नों का विभेदीकरण मान (Discriminatory Value of Items)

(i) ***प्रश्नों का कठिनाई स्तर (Difficulty Level of Items):*** परीक्षार्थियों के समूह का वह अनुपात जो किसी प्रश्न को शुद्ध रूप में हल करता है अथवा वास्तविक रूप में जानता है, उस प्रश्न का 'कठिनाई–स्तर' माना जाता है। उदाहरण के लिए यदि 200 परिक्षार्थियों के समूह में एक प्रश्न को 150 परीक्षार्थी शुद्ध रूप में हल कर देते हैं तो इस प्रश्न का कठिनाई स्तर ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया का अनुसरण किया जाएगा–

∴ उदाहरण में कठिनाई स्तर

अथवा 75%

इस प्रकार परीक्षण के अन्य प्रश्नों का कठिनाई स्तर ज्ञात किया जा सकता है।

कठिनाई स्तर (Difficulty Level) = $\frac{\text{सही उत्तर वाले परीक्षार्थियों की संख्या।}}{\text{कुल परीक्षार्थियों की संख्या।}}$ = $\frac{150}{200}$ = 0.75

(i) ***प्रश्नों का विभेदीकरण मान (Discriminatory Value of Items):*** विभेदीकरण मान की सहायता से उच्च योग्यता एवं निम्न योग्यता वाले विद्यार्थियों में अन्तर किया जा सकता है। यदि प्रश्न–समूह सीमित हो तो साधारण सांख्यिकीय विधियों (Statistical Techniques) द्वारा प्रश्नों का कठिनाई–स्तर तथा विभेदीकरण मान ज्ञात किया जा सकता है परन्तु गणना (Computation) की सुविधा के लिए आजकल प्रश्न–विश्लेषण तालिकाओं (Item Analysis Tables) का उपयोग किया जा रहा है। कुछ प्रमुख प्रश्न–विश्लेषण तालिकाएँ निम्न हैं–

(i) *आइटम एनालिसिस डेटा एण्ड टेबल ( Item Analysis Data and Table):* एफ. बी. डेविस द्वारा निर्मित।

(ii) *आइटम एनालिसिस टेबल ( Item Analysis Table by C.T. Fan):* सी. टी. फैन द्वारा प्रतिपादित।

## प्रश्न/पद विश्लेषण की विधियाँ
## (Methods of Item Analysis)

(1) **वर्गीकरण के द्वारा**

(i) उत्तर–पुस्तिकाओं को तुलनात्मक समूहों में बांटकर – परीक्षार्थियों को परीक्षा देने के बाद उनका परीक्षण कर लिया जाता है। फिर कॉपियों को अंकों के अनुसार क्रम से रख लिया जाता है। सबसे ऊपर उस विद्यार्थी की कॉपी होगी जिसको सबसे अधिक अंक मिले हैं। इसके बाद उससे कम वाले की और इसी प्रकार अन्तिम कॉपी उसकी होगी जिसके सबसे कम अंक आये हैं। इसके पश्चात् उन्हें हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। केली के अनुसार प्रथम भाग में ऊपर की 27% कॉपी होनी चाहिए, दूसरे भाग में बीच की 46% और तीसरे भाग में नीचे की 27% कॉपियाँ होनी चाहिए। परन्तु भागों को हम 25% प्रथम व ततीय और 50% द्वितीय भाग में ही बांट सकते हें। इतना ध्यान में रखना चाहिए कि उच्च अथवा प्रथम भाग और ततीय भाग अथवा निम्न भागों में विद्यार्थियों की संख्या समान होनी चाहिए। क्योंकि हम बीच के भाग को छोड़ देते हैं और अन्तिम तथा प्रथम भाग की ही तुलना

करते हैं। मान लीजिए जिस कक्षा में परीक्षा दी गई उसमें विद्यार्थी 74 हैं तो उच्च वर्ग में 74 का 27% अर्थात 20 विद्यार्थी होंगे। इसी तरह निम्न वर्ग में भी 20 विद्यार्थी होंगे और 34 विद्यार्थी बीच के वर्ग में होंगे, जिनका अध्ययन नहीं किया जायेगा। फिर हम उनकी प्रतिक्रियाओं को निम्न तालिका में अंकित कर सकते हैं।

| | उच्च वर्ग (20) | | निम्न वर्ग (20) | |
|---|---|---|---|---|
| | सही | गलत | सही | गलत |
| पद संख्या | सही प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत | गलत प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत | सही प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत | गलत प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत |
| 1 | 80 | 20 | 60 | 40 |
| 5 | 75 | 25 | 40 | 60 |
| 14 | 90 | 10 | 35 | 65 |
| 21 | 60 | 40 | 50 | 50 |
| 35 | 35 | 65 | 60 | 40 |
| 38 | 70 | 30 | 40 | 60 |

इसके पश्चात् निम्न सूत्र से प्रत्येक पद का विभेदकारी मान निकाल सकते हैं। इस विधि से यदि विभेदकारी मान 1.96 से कम आये तो कह सकते हैं कि पद कम विभेदकारी है।

$$D = \frac{P_1 - P_2}{\sqrt{\frac{P_1Q_1}{N_1} + \frac{P_2Q_2}{N_2}}}$$

जिसमें:–

D = विभेदकारी मान (Discriminating Value)

$P_2$ = उच्च वर्ग में सही प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत।

$P_2$ = निम्न वर्ग में सही प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत।

$Q_1$ = उच्च वर्ग में गलत प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत।

$Q_2$ = निम्न वर्ग में गलत प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत।

$N_1$ = उच्च वर्ग में विद्यालयों की संख्या।

$N_2$ = निम्न वर्ग में विद्यालयों की संख्या।

उपर्युक्त तालिका में यदि हम 21 वें पद का विभेदकारी मान ज्ञात करें तो:–

$P_1$= 60, $Q_1$= 40, $N_1$= 20,

$P_2$= 50, $Q_2$= 50, $N_2$= 20,

$$D = \frac{P_1 - P_2}{\sqrt{\frac{P_1Q_1}{N_1} + \frac{P_2Q_2}{N_2}}}$$

$$\frac{60\times40}{20} + \frac{50\times50}{20}$$

$$\frac{10}{\sqrt{\frac{2400}{20} + \frac{2500}{20}}}$$

$$\frac{10}{D = \sqrt{\frac{2450}{10}}}$$

$$D = \frac{10}{49.5}$$

क्योंकि इसका विभेदाकारी मान 0.2 है। अतः हम कह सकते हैं कि पद विभेदकारी नहीं है। क्योंकि इस विधि में हम उन प्रश्नों को अच्छा समझते हैं जिसका विभेदकारी मान 1.96 या इससे अधिक है।

(ii) **रौस एण्ड स्टेनले की विधि द्वारा (गलत प्रतिक्रियाओं द्वारा)** वर्गीकरण के आधार पर हम विभेदकारी मान दूसरी विधि से भी निकाल सकते हैं, जो कि रौस एण्ड स्टेनले (Ross and Stanley) ने अपनी पुस्तक में प्रस्तुत की है। उसके अनुसार भी हम उत्तर पुस्तिकाओं का विभाजन इसी प्रकार 27: प्रथम भाग में और 27: ततीय भाग में तथा 46: द्वितीय भाग में करते हैं। फिर हमें यह देखना पड़ता है कि प्रत्येक वर्ग में कितने विद्यार्थियों से अशुद्ध हल हुआ या प्रश्न को छोड़ दिया। उसे निम्न तालिका में प्रस्तुत किया जाता है। उच्च और निम्न वर्ग में मान लीजिए दस विद्यार्थी हैं।

| पद संख्या | उच्च वर्ग द्वारा अशुद्ध WH | निम्न वर्ग द्वारा अशुद्ध WL | विभेदकारिता 2-1 WL | कठिनाई 1+2 $D_2$=WL+WH | विभेदकारी निर्देशक 3–N | कठिनाई स्तर 4–2N |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1 | 8 | 10 | 2 | 18 | .2 | .9 |
| 4 | 10 | 5 | -5 | 15 | -.5 | .75 |
| 11 | 7 | 5 | -2 | 12 | -.2 | .6 |
| 16 | 4 | 8 | 4 | 12 | -.2 | .6 |

WH = (Wrong High) उच्च वर्ग द्वारा अशुद्धि

WL = (Wrong Low) निम्न वर्ग द्वारा अशुद्धि

$D_1$ = (Discriminating value) विभेदकारी मान

$D_2$ = (Difficulty Value) कठिनाई मान

कठिनाई निर्देशांक $\frac{D_2}{N}$

N = विद्यार्थियों की संख्यां।

III. **सही प्रतिक्रियाओं द्वारा:** वर्गीकरण द्वारा एक सरल विधि और है जिसमें विद्यार्थियों को उपर्युक्त तीन वर्गों में बाँट कर उनके सही उत्तरों की प्रतिक्रियाओं को अंकित कर लिया जाता है। मान लीजिए प्रत्येक समूह में 30 विद्यार्थी हैं।

| पद संख्या | उच्च वर्ग में सही प्रतिक्रियाएँ | निम्न वर्ग में सही प्रतिक्रियाएँ | विभेदकारिता मान $\frac{RU-RL}{N}$ |
|---|---|---|---|
| 24 | 18 | 10 | .26 |
| 47 | 22 | 15 | .23 |
| 51 | 12 | 20 | -.26 |
| 54 | 15 | 15 | 0 |
| 60 | 25 | 10 | .5 |

विभेदकारी मान निकालने के लिए निम्न सूत्र उपयोग लाया जा सकता है–

RU = उर्च्च वर्ग में सही प्रतिक्रियाएँ

RL = निम्न वर्ग में सही प्रतिक्रियाएँ

N = विद्यार्थियों की संख्या एक वर्ग में।

इस तरह हम पद संख्या 47 के बारे में निकाल सकते हैं।

इस तरह किसी का भी मान 1 से ज्यादा नहीं हो सकता और यदि मान ऋण (–) में आता है जैसा कि पद संख्या 51 का है तो उसे नकारात्मक (Negative) पद कहते हैं, अर्थात यह पद जिस उद्देश्य से परीक्षा में रखा गया है उसके विपरीत कार्य करता है। ऐसे प्रश्नों को परीक्षा से निकाल देते हैं। इसी तरह पद संख्या 54 जिसका मान 0 है – अर्थात वह पद कोई कार्य नहीं करता, क्योंकि वह उच्च और निम्न वर्ग के विद्यार्थियों में अन्तर मालूम नहीं कर सकता।

(2) **प्रत्येक पद की सही प्रतिक्रियाओं के प्रतिशत द्वारा (Percentage of Correct Responses)**

इसमें हमें निम्न बातों का पता लगाना पड़ता है–

N = विद्यार्थियों की संख्या

R = विद्यार्थियों द्वारा पद की सही प्रतिक्रियाएँ

W = विद्यार्थियों द्वारा पद की गलत प्रतिक्रियाएँ

O = पद में विकल्पों (Choices) की संख्या

NR = वे विद्यार्थी जिन्होंने पद को खाली छोड़ दिया है।

उपयुक्त तथ्यों को जानकर हम निम्न सूत्र से प्रत्येक पद की सही प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत ज्ञात कर सकते हैं।

जिसमें P सही प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत है। उदाहरण के लिए किसी पद के लिए–

R = 60 सही प्रतिक्रियायें है।

W = 30 गलत प्रतिक्रियायें हैं।

O = 4 पदों में विकल्पों (Choices) की संख्या है।

N = 100 कुल विद्यार्थी की संख्या

NR = 10वें विद्यार्थी जिन्होंने प्रश्न को खाली छोड़ दिया है।

तो इसके लिए हम निम्न रीति से प्रतिशत निकाल सकते हैं–

$$P = 100 \times \frac{R - \frac{W}{O-1}}{N - NR} \qquad P = 100 \times \frac{60 - \frac{30}{4-1}}{100 - 10}$$

$$P = 100 \times \frac{50}{90} \qquad P = 55\%$$

सही प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत इस पद के लिए 55% है। अर्थात इसका विभेदकारी मान भी 55 प्रतिशत है।

(3) **प्रत्येक पद की विभेदकारी सारणी द्वारा (Discriminating - Index)**

इस प्रणाली में हमें प्रत्येक पद के लिए सही प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत और गलत प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत मालूम करना पड़ता है। और फिर निम्न सूत्र से विभेदकारी सारणी निकाल लेते हैं।

D.I. = PR X PW

जिसमें D.I. = (Discriminating Index) विभेदकारी सारणी

PR = सही प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत (Percentage of Right Response)

PW = गलत प्रतिक्रियाओं का प्रतिशत। (Percentage of Wrong Response)

मान लीजिए PR = 60 और PW = 40 के हैं तो विभेदकारी सारिणी = 60 x 40 = 2400 ये अधिक से अधिक 2500 हो सकती है और कम से कम 99 इस तरह हमें प्रत्येक पद की सारिणी ज्ञात करके उसकी विभेदकारिता के बारे में जान सकते हैं।

(4) **पदों की कठिनाई तथा सरलता मान द्वारा (Difficulty and Facility Value)**

इसमें हमें प्रत्येक पद की कठिनाई तथा सरलता का प्रतिशत निकालना पड़ता है। इसे निम्न तालिका द्वारा अच्छी तरह समझाया जा सकता है–

| विद्यार्थियों की संख्या / पद संख्या | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 | Difficulty Value कठिनाई मान | Facility Value सरलता मान |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1 | √ | √ | √ | √ | √ | √ | √ | √ | X | X | 20% | 80% |
| 8 | √ | √ | √ | X | X | X | X | X | X | X | 70% | 30% |
| 17 | √ | √ | √ | √ | X | X | X | X | X | √ | 50% | 50% |
| 25 | √ | √ | √ | √ | √ | √ | √ | √ | √ | √ | 0% | 100% |
| 82 | X | X | √ | √ | √ | √ | √ | √ | X | X | 40% | 60% |
| 38 | X | X | X | X | X | X | X | X | X | X | 100% | 0% |

उपर्युक्त विधि अत्यन्त सरल है। इसके द्वारा प्रत्येक पद की कठिनाई तथा सरलता के बारे में पता चल जाता है। जैसा कि ऊपर की तालिका में पद संख्या 8 को 7 विद्यार्थियों में गलत किया है तो इसका कठिनाई मान 70% हो गया और 3 विद्यार्थियों ने सही किया है इसलिए सरलता मान 30% हो जाता है।

5. **परीक्षण का अन्तिम प्रारूप (Final Form of the Test):** पद विश्लेषण के पश्चात हमें प्रत्येक पद/प्रश्न की स्थिति का पता चल जाता है अर्थात् हमें प्रत्येक पद की कठिनाई, सरलता तथा विभेदकारिता का ज्ञान हो जाता है। हमें यह ज्ञात हो जाता है कि कौन से प्रश्न ऐसे हैं जिनका उत्तर कोई विद्यार्थी नहीं दे सका और कौन से ऐसे हैं जिन्हें सभी विद्यार्थियों ने किया है और कौन से ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें 70 प्रतिशत विद्यार्थी सही कर सके। उपलब्धि परीक्षण का अन्तिम प्रारूप निर्धारण करने के लिए प्रश्नों के 'कठिनाई स्तर' तथा 'विभेदीकरण मान' को एक साथ तालिका में लिख लिया जाता है। उसके पश्चात दोनों मानों की तुलनात्मक समीक्षा करके प्रत्येक प्रश्न की कुशलता का विश्लेषण किया जाता है और उचित कठिनाई स्तर तथा संतोषप्रद विभेदीकरण मान रखने वाले प्रश्नों का चयन किया जात है। शेष प्रश्नों का बहिष्कार कर दिया जाता है।

6. **सामान्य-स्तर निर्धारण (Determination of Norms):** सामान्य स्तर (Norm) से अभिप्राय एक ऐसे मानदण्ड से है जिसके द्वारा अन्य परीक्षार्थियों के अंक सरलतापूर्वक समझे जा सकते हैं। ये सामान्य स्तर निम्नलिखित प्रकार के होते हैं।

(i) श्रेणी सम्बन्धी सामान्य स्तर (Grade Norm) जो विद्यालय की विभिन्न श्रेणियों के लिए प्रतिपादित किया जाता है।

(ii) आयु सम्बन्धी सामान्य स्तर (Age Norm)

(iii) लिंग सम्बन्धी सामान्य स्तर (Sex Norm)

(iv) नगर तथा ग्राम सम्बन्धी सामान्य स्तर (Urban and Rural Norms)

(v) प्रतिशतीय सामान्य स्तर (Percentile Norm)

आजकल प्रतिशतीय सामान्य स्तर ज्ञात करना अधिक उपयुक्त समझा जाता है। इन सामान्य स्तरों पर यह ज्ञात किया जा सकता है कि अमुक परीक्षार्थी की स्थिति पूर्ण समूह में कैसी है। उसके ऊपर तथा नीचे कितने प्रतिशत विद्यार्थी हैं उदाहरण के लिए यदि एक परीक्षार्थी का प्रतिशतीय अंक 30 है तो हम कह सकते हैं कि इस परीक्षार्थी के नीचे 30% छात्र तथा ऊपर 70% छात्र हैं। इसी प्रकार कुछ प्रतीशतीय अंकों की व्याख्या निम्नलिखित हैं–

| प्रतिशतीय अंक | व्याख्या |
|---|---|
| 20 | 20% नीचे तथा 80% ऊपर |
| 40 | 40% नीचे तथा 60% ऊपर |
| 50 | 50% नीचे तथा 50% ऊपर |
| 60 | 60% नीचे तथा 40% ऊपर |
| 70 | 70% नीचे तथा 30% ऊपर |

7. **विश्वसनीयता निर्धारण (Estimation of Reliability):** वही परीक्षण विश्वसनीय माना जाता है जिस पर विद्यार्थियों द्वारा प्राप्तांकों में देश, काल, परीक्षक तथा परीक्षार्थी के व्यक्तिगत अंशों का लेश–मात्र भी प्रभाव न पड़े। ऐसे परीक्षणों के प्राप्तांक स्थिर और अपरिवर्तनशील होते हैं। किसी परीक्षण की विश्वसनीयता निर्धारण करने के लिए विभिन्न विधियों का उपयोग किया जाता है परन्तु सबसे अधिक तर्कसंगत विधि तर्क–युक्त समानता विधि (Method of Rational Equivalence) होती है। इस विधि द्वारा अन्य सभी विधियों के दोषों का निवारण हो जाता है।

इस विधि का प्रतिपादन कूडर एवं रिचर्डसन (Kuder & Richardson) ने किया। इस विधि की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें सभी प्रश्नों का पारस्परिक सुगमतापूर्वक ज्ञात किया जा सकता है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एवं शिक्षाशास्त्री गिलफोर्ड (Guilford) ने इस विधि के प्रयोग पर विशेष बल दिया है। उनके अनुसार इस विधि का सरलतम सूत्र निम्नलिखित है–

$$\text{विश्वसनीयता (Reliability)} = \frac{\text{प्रश्नों की संख्या (प्रमाणिक विचलन)}^2 - \text{मध्यमान (प्रश्नों की संख्या} - \text{मध्यमान)}}{\text{(प्रश्नों की संख्या} - 1) \quad \text{(प्रमाणिक विचलन)}^2}$$

उदाहरण– एक परीक्षा में कुल प्रश्नों की संख्या 100 है। यदि उसका मध्यमान 50 तथा प्रमाणिक विचलन 10 है तो परीक्षा की विश्वसनीयता क्या होगी?

सूत्र में अंकों को रखने पर –

$$\text{विश्वसनीयता} = \frac{100(10)^2 - 50(100-50)}{(100-1)(10)^2} = \frac{100(100) - 50(50)}{(99)(100)} = \frac{10000 - 2500}{9900} = \frac{7500}{9900} = 0.76 \text{ approx.}$$

अर्थात् परीक्षा की विश्वसनीयता 0.76 है जो अधिक सन्तोषप्रद नहीं है। उपलब्धि परीक्षाओं के लिए 0.80 से अधिक की विश्वसनीयता सन्तोषप्रद कही जाती है।

8. **वैधता निर्धारण (Estimation of Validity):** वैधता से अभिप्राय किसी कसौटी (Criterion) के साथ परीक्षण के सह–सम्बन्ध से है। यह उपलब्धि परीक्षण के निर्माण का अन्तिम–चरण होता है। वैधता मुख्यतः निम्नलिखित पांच प्रकार की होती है।

(i) **पाठ्यविषय सम्बन्धी वैधता (Content Validity):** इस प्रकार की वैधता का सम्बन्ध पाठ्यक्रम से होता है अर्थात् जब परीक्षण और पाठ्यक्रम में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है तो वह पाठ्य विषय सम्बन्धी वैधता होती है। इस प्रकार की वैधता प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है–

(क) सर्वप्रथम पूर्ण पाठ्यक्रम को पाँच भागों में बाँट लिया जाए। उसके पश्चात् प्रत्येक भाग को पांच पाठों (lessons) में बांट लिया जाए और प्रत्येक पाठ पर दस प्रश्नों की रचना की जाए। इस प्रकार प्रश्नों की कुल संख्या 250 हो जाएगी। प्रश्नों की संख्या भागों के अनुसार कम या अधिक भी की जा सकती है।

(ख) प्रश्नों की भाषा सरल तथा विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त परीक्षण में पाठ्यक्रम के मुख्य बिन्दुओं से सम्बन्धित प्रश्नों का समावेश होना चाहिए।

(ii) **समवर्ती वैधता (Concurrent Validity):** इसमें एक उपलब्धि परीक्षण द्वारा प्राप्त किये हुए अंकों का सहसम्बन्ध किसी दूसरे प्रचलित परीक्षण के अंकों से किया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि हमने जीव विज्ञान के एक परीक्षण का निर्माण किया है और उस परीक्षण को विद्यार्थियों को दिया जाता है। विद्यार्थियों द्वारा परीक्षण में प्राप्त अंकों का सहसम्बन्ध विद्यार्थियों की मासिक परीक्षा के प्राप्तांकों अथवा किसी पहले से प्रमापीकृत परीक्षण के प्राप्तांकों से किया जा सकता है। इस प्रकार की वैधता को समवर्ती वैधता कहा जाता है। समवर्ती वैधता के लिए यह आवश्यक है कि हम एक वैध परीक्षण के साथ हम अपने बनाये परीक्षण की वैधता ज्ञात करें।

(iii) **निर्वचन वैधता (Construct Validity):** किसी परीक्षण को देने के पश्चात इस परीक्षण का फलांक हमारे सम्मुख आता है जिसे देख कर हम कह सकते हैं कि इसका परिणाम क्या होगा अथवा इसका फलांक के आने पर क्या निष्कर्ष निकाला जा सकता है? इसका उत्तर प्राप्त करने के लिए हमें यह देखना पड़ता है कि हमारे परीक्षण के निर्वचन में कौन–कौन से विचारों अथवा अवधारणाओं (Concepts) पर बल दिया जाए और उनमें से किन विचारों में विद्यार्थियों ने औसत अंक प्राप्त किए हैं अथवा औसत से कम या अधिक। इस प्रकार की वैधता में हमें पाठ्यक्रम का निर्वचन नहीं करना पड़ता है। इसमें हम किसी अन्य विशेषज्ञ की राय भी ले सकते हैं।

(iv) **रूप वैधता (Face Validity):** जब एक परीक्षण उस योग्यता का मापन करता है जिसके लिए उसका निर्माण किया है तो उसे रूप वैधता कहा जाता है। उदाहरण के लिए एक जीव विज्ञान परीक्षण दसवीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए बनाया गया है। इस परीक्षण को जीव विज्ञान विशेषज्ञों के पास भेजकर उनके विचारों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है और इस आधार पर परीक्षण की रूप वैधता ज्ञात की जा सकती है।

(v) **पूर्वकथानात्मक वैधता (Predictive Validity):** जब किसी परीक्षण के फलांक के आधार पर विद्यार्थियों की भावी सफलता से सम्बन्धित भविष्यवाणी की जाती है तो इसे पूर्वकथनात्मक वैधता कहा जाता है। उदाहरण के लिए विज्ञान की परीक्षा में प्रथम श्रेणी प्राप्त करने वाला कक्षा नौवीं (9) का विद्यार्थी एक वर्ष बाद भी प्रथम श्रेणी प्राप्त कर सकेगा या नही। यदि वह विद्यार्थी कक्षा दसवीं (10) में भी प्रथम श्रेणी प्राप्त करता है तो विज्ञान की परीक्षा वैध कहलाएगी।

किसी वस्तुनिष्ठ उपलब्धि परीक्षण का निर्माण करते समय इन आठ सोपानों या चरणों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

## 5.7 निबन्धात्मक तथा वस्तुनिष्ठ रूप परीक्षणों में अंतर (Difference between Essay Type and Objective Type Tests)

उपलब्धि परीक्षण के इन दोंनों रूपों में कोई विरोधभास नहीं है। विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धियों के सम्बन्ध में व्यापक जानकारी प्राप्त करने के लिए दोनों प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग करना आवश्यक है। एक ही प्रश्न–पत्र में दो खण्डों के रूप में इनका प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु यह आवश्यक है कि ये दोनों प्रकार के परीक्षण उद्देश्य–आधरित (Objective - based) हों।

इन दोनों प्रकार के परीक्षणों की तुलना निम्नलिखित हैं–

| | विशेषता | निबन्धात्मक परीक्षण | वस्तुनिष्ठ परीक्षण |
|---|---|---|---|
| 1. | प्रश्नों की रचना (Preparation of Test-items) | प्रश्नों की रचना अपेक्षाकृत सरल होती है। | प्रश्नों की रचना अपेक्षाकृत कठिन होती है |
| 2. | विषय–वस्तु का न्यादर्शकरण (Sampling of the subject Matter) | विषय–वस्तु का प्रायःसीमित रूप में मूल्यांकन किया जाता है। | विषय वस्तु का चयन एवं मूल्यांकन व्यापक होता है। |
| 3. | ज्ञान एवं बोध का मापन (Measurement of Knowledge and Understanding) | इसके द्वारा ज्ञान तथा बोध दोनों का परीक्षण किया जा सकता है परन्तु ये बोध परीक्षण के लिए अधिक सक्षम होते हैं। | इसके द्वारा भी ज्ञान एवं बोध दोनों का का परीक्षण किया जा सकता है किन्तु ज्ञान परीक्षण पर अधिक बल दिया जाता है। |
| 4. | विद्यार्थियों द्वारा तैयारी (Preparation by Students) | इसमें विषय–वस्तु की बड़ी इकाईयों की तैयारी पर बल दिया जाता है। | इसमें विषय–वस्तु के तथ्यात्मक पक्षों की तैयारी पर ही विशेष बल दिया जाता है। |
| 5. | विद्यार्थियों के उत्तर (Responses by Students) | इसमें विद्यार्थियों के मौलिक ढ़ंग से उत्तर देने की व्यवस्था होती है। | इसमें विद्यार्थियों के लिए मौलिक उत्तर देने की व्यवस्था नहीं होती है। |
| 6. | सही उत्तर का अनुमान (Guessing of Correct Response) | इसमें अनुमान के आधार पर उत्तर देने की विशेष संभावना नहीं रहती। | इसमें अनुमान के आधार पर उत्तर देने की बहुत अधिक संभावना होती है। |
| 7. | उत्तरों का अंकन (Scoring of Responses) | इसमें उत्तरों का मूल्यांकन कठिन, अविश्वसनीय तथा समय साध्य होता है। | इसमें उत्तरों का मूल्यांकन सरल, विश्वसनीय तथा शीघ्रतापूर्वक होता है। |

### अपनी प्रगति जांचिए-2

(i) उपलब्धि परीक्षण के विभिन्न चरणों का वर्णन कीजिए।

(ii) उपलब्धि परीक्षण एवं वस्तुनिष्ठ परीक्षण की तुलना कीजिए।

## 5.8 सारांश

हम जान चुके हैं कि उपलब्धि परीक्षण व्यक्ति की किसी क्षेत्र विशेष में विशिष्ट योग्यता का मापन करने में सहायक है। उपलब्धि परीक्षण में निबन्धात्मक अथवा वस्तुनिष्ठ या दोनों प्रकार के प्रश्न हो सकते हैं। प्रश्नों के स्वरूप के आधार पर उपलब्धि परीक्षण को निबन्धात्मक अथवा वस्तुनिष्ठ परीक्षण कहा जाता है। निबन्धात्मक परीक्षणों में विद्यार्थी से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जिनका उत्तर उसे निबन्ध रूप में प्रस्तुत करना होता है। निबन्धात्मक परीक्षण में वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक, विवेचनात्मक, उदाहरणार्थ, रूपरेखात्मक, वर्गीकरण एवं आलोचनात्मक प्रश्न होते हैं। निबन्धात्मक परीक्षण विद्यार्थियों के निर्देशन, व्यापक मूल्यांकन, उच्च मानसिक क्षमताओं के मापन, वर्गीकरण, मौलिकता, विचारों के संगठित करने की क्षमता, अपेक्षित अध्ययन विधियों के विकास आदि में सहायक होते हैं परन्तु इनकी विश्वसनीयता, वैधता, वस्तुनिष्ठता, व्यापकता एवं विभेदकारिता निम्न स्तर की होती है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षण में मुख्यतः पहचान व प्रत्यास्मरण रूप के प्रश्न होते हैं। वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं में अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीयता, वैधता, व्यापकता, वस्तुनिष्ठता एवं विभेदकारिता होती है। इनका अंकन करने में कम समय लगता है और अंकन वस्तुनिष्ठ होता है। उपलब्धि परीक्षण प्रमापीकृत अथवा अध्यापक निर्मित हो सकते हैं। एक प्रमापीकृत उपलब्धि परीक्षण का निर्माण करते समय विभिन्न चरणों का अनुसरण किया जाता है। ये चरण हैं– उद्देश्यों का निर्धारण, परीक्षण पदों की रचना एवं मूल्यांकन, निर्मित प्रश्नों को लागू करना, प्रश्न–विश्लेषण, परीक्षण का अंतिमप्रारूप, सामान्य–स्तर निर्धारण, विश्वसनीयता निर्धारण, वैधता निर्धारण आदि।

### आदर्श उत्तर

1. (i) निबन्धात्मक रूप एवं वस्तुनिष्ठ रूप प्रश्न कृपया (5.3 एवं 5.4 में देखें)।
2. (i) एक उपलब्धि परीक्षण के निर्माण में निम्नलिखित चरणोंय का अनुसरण करना पड़ता है। उद्देश्यों का निर्धारण, प्रश्नों की रचना व मूल्यांकन, प्रश्नों को लागू करना, प्रश्न–विश्लेषण, परीक्षण का अंतिम प्रारूप, सामान्य स्तर निर्धारण, विश्वसनीयता निर्धारण, वैधता निर्धारण आदि।

   (ii) कृपया 5.7 में देखें।

## 5.9 मुख्य शब्द

**प्रमापीकरणः** उपलब्धि परीक्षण के प्रश्न/पदों का विश्लेषण करके उनकी विश्वसनीयता, वैधता एवं सामान्य स्तर निर्धारित करना जिससे वे सामान्य रूप से उपयोग में लाए जा सकें और उनके द्वारा विभिन्न समूहों की तुलना करना अथवा एक ही समूह के व्यक्तियों का ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में स्तर ज्ञात किया जा सके।

## 5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

**Sood, J.K. –** "New Directions in Science Teaching', Kohli Publishers, Chandigarh, 1989.

**पाण्डेय, कामता प्रसाद** – 'शिक्षा में मूल्यांकन', मिनाक्षी प्रकाशन, 1968.

**गुप्ता, रमेश चन्द्र एवं भट्ट, चन्द्रशेखर** – 'शिक्षा में मापन और मूल्यांकन' लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 1974.

**शर्मा, आर. ए.** – 'मापन एवं मूल्यांकन', लायल बुक डिपो, मेरठ, 1993.

**अस्थाना, विपिन** – 'मनोविज्ञान व शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन', विनोद पुस्तक मन्दिर, 1990.